I-H-5461

DAUD

चांदायन

[दाऊद-विरचित प्रथम हिंदी सूफ़ी प्रेम-काव्य]

संपादक

माताप्रसाद गुप्त, एम० ए०, डी० लिट्०

निदेशक, क० मु० हिंदी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ, आगरा

प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक :
रामजी गुप्त,
प्रामाणिक प्रकाशन,
३५, लाजपत कुंज,
सिविल लाइन्स, आगरा

समस्त प्रकाशनाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण, मई, १९६७
११०० प्रतियाँ
मूल्य : २० रुपये

B953696

मुद्रक :
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स
दरेसी नं० २, आगरा

प्रस्तावना

'चांदायन' की फ़ारसी-अरबी में लिखी हुई कतिपय त्रुटित प्रतियों में बिखरे हुए ८० कडवकों को नागरी में लिपिबद्ध कर प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास अब से सात-आठ वर्ष पूर्व इन पंक्तियों के लेखक ने किया था। इसके अनंतर क० मु० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ के तत्कालीन निदेशक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने फ़ारसी में लिपिबद्ध भोपाल की एक प्रति के कडवकों को, जो प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम बंबई में थी, नागरी में लिपिबद्ध किया था। ये दोनों प्रयास एक ही जिल्द में उक्त विद्यापीठ द्वारा १९६२ में 'चंदायन' नाम से प्रकाशित हुए थे। तीन वर्षों के लगभग हुए डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त ने जॉन राइलैण्डस लाइब्रेरी, मैनचेस्टर की एक प्राचीन प्रति, तथा अन्य कुछ नवीन संपादन-सामग्री के साथ उक्त प्रतियों का भी उपयोग करते हुए, जो मेरे और डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए पाठों में प्रयुक्त हो चुकी थीं, 'चंदायन' नाम से रचना का एक पूर्णतर पाठ प्रस्तुत किया। इन प्रयासों ने हिंदी सूफ़ी प्रेमाख्यान परंपरा की प्रथम रचना के संबंध में जहाँ विचारणीय सामग्री प्रस्तुत की, वहाँ रचना के एक ऐसे आलोचनात्मक संस्करण के अभाव की ओर भी निर्देश किया जिसको रचना और उसकी परंपरा के अध्ययन के लिए एक अधिक निश्चयपूर्ण आधार बनाया जा सकता। प्रस्तुत प्रयास इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए किया गया है।

ऊपर उल्लिखित प्रतियों के अतिरिक्त और उन सब की अपेक्षा पूर्णतर रचना की एक प्रति जयपुर के एक साहित्य-सेवी श्री रावत सारस्वत के पास थी और यह प्रति नागरी में थी, जबकि शेष समस्त प्रतियाँ फ़ारसी-अरबी लिपियों में थीं। लगभग छः मास हुए इसी पाठ-शोध के प्रसंग में मैंने श्री सारस्वत को रचना के एक कडवक का पाठ अपनी प्रति से भेजने को लिखा, तो उन्होंने न केवल उसका पाठ मुझे भेजा, बल्कि मेरी पाठ-शोध-निष्ठा को देखकर उन्होंने लिखा कि यदि मैं रचना का आलोचनात्मक पाठ-संपादन करने को प्रस्तुत हूँ तो वे उक्त प्रति को दे सकते थे और तदनंतर उन्होंने उक्त प्रति विद्यापीठ को दे भी दी।

इस अंतिम प्रति के उपयोग के लिए मैं आगरा विश्वविद्यालय के विद्यानुरागी कुलपति, जिसका उक्त विद्यापीठ एक अभिन्न अंग है, डॉ० श्री रञ्जन जी

का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत कार्य के लिए उक्त प्रति के उपयोग की अनुमति दी। शेष प्रतियों में से कुछ के फ़ोटोग्राफ़ का उपयोग मैं अपने पहले के प्रकाशित कार्य में कर चुका था, प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम में सुरक्षित भोपाल की त्रुटित प्रति के फ़ोटोग्राफ़ जो डॉ० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा प्रस्तुत किए हुए रचना के पूर्वोल्लिखित संकलन में प्रयुक्त हो चुके थे, विद्यापीठ में सुरक्षित थे, राइलैण्ड्स पुस्तकालय मैनचेस्टर की प्रति के फ़ोटोग्राफ़ राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के पुस्तकालय में मुझे उस समय मिल गए थे जब मैं चार वर्ष पूर्व वहाँ पर था, मसाचसेट्स के होफ़र-संग्रह के दो पृष्ठों के अक्स 'मध्ययुगीन' हिंदी प्रेमाख्यान के लेखक और मेरे प्रिय शिष्य डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय ने दो-ढाई वर्ष पूर्व भिजवाए थे, जब वे शिकागो विश्वविद्यालय में अमेरिका में थे। इन अन्य सामग्रियों के भी स्वामियों और उपयोग-सूत्रों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

सुंदर छपाई के लिए मैं स्थानीय दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, और विशेष रूप से उसके व्यवस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास भार्गव को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता के साथ पुस्तक छापी है। कुछ भूलें रह गई हैं, जो पुस्तक के अन्त में शुद्धि-पत्र में दी हुई हैं। पाठक कृपया इन्हें शुद्ध कर पढ़ेंगे।

प्रस्तुत प्रयास भी उसी परंपरा में है जिसमें लेखक के अधिकतर पूर्ववर्ती प्रयास हैं—रचना के निर्धारित पाठ को देते हुए संदर्भ, शीर्षक, पाठ-टिप्पणियाँ, पाठांतर, अर्थ और शब्द-कोश देने के अतिरिक्त भूमिका में रचना से संबंधित समस्त समस्याओं पर एक मौलिक प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। इस प्रयास में स्वीकृत पाठों के उन अंशों को जिनके पाठान्तर दिए गए हैं अंकों से चिह्नित करने के स्थान पर उलटे कामों से चिह्नित किया गया है, जिससे इस भ्रम की संभावना न रहे कि पाठांतर स्वीकृत पाठ के किन अंशों के हैं। आशा है कि इस नवीनता से पाठकों को यथेष्ट सुविधा होगी।

आगरा
८-५-६७

माताप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

		पृष्ठ-संख्या
भूमिका	...	१-७२
१. दाऊद और उसके सम-सामयिक	... ...	१
२. रचना-काल और स्थान	... ...	३
३. रचना का नाम-रूप	... ...	४
४. रचना की कथा और उसका आधार	... ...	१६
५. रचना का संदेश	... ...	३६
६. रचना की संपादन-सामग्री	... ...	५२
७. रचना की लिपि-परंपरा	... ...	५६
८. रचना के संपादन-सिद्धान्त	... ...	५८
९. रचना की भाषा	... ...	६०
चांदायन (पाठ, पाठांतर तथा अर्थ)	...	१–३९२
परिशिष्ट (प्रक्षिप्त कडवक)	...	३९३–४२६
शब्द-कोश	...	४२७–४४४

प्रियवर

राम तथा श्याम

को

सस्नेह

जायसी की भाषा में -'अइ' '-ऐ' हो गया है (पद्मावत १०२.२-६) और 'पइ' 'पै' के रूप में मिलता है (वही, ८१.६, १४०.१, २२९.१, आदि)।

केवलार्थ बोधक क्रिया विशे० रचना में 'हि' है।

उक्ति० में भी यह है (उ० भा० अनु० ८९)।

जायसी की भाषा में भी यह है (जा० भा० पृ० १६५)।

परिमाणवाचक क्रिया वि० रचना में 'अत', 'केत' और 'अति' हैं।

उक्ति० में इनमें से कोई नहीं है।

जायसी की भाषा में 'अत' है (पद्मावत ५१.४, ५१.८), 'केत' है (वही, ५७९.५) और 'अति' भी है (वही ३४५.१)।

संबोधनबोधक क्रिया विशे० रचना में 'रे' है।

यह उक्ति० में है (उ० भा० अनु० ८९)।

जायसी की भाषा में भी यह है (जा० भा० अनु० १६५)।

इस प्रकार ऊपर दिए हुए कुछ सौ रूपों में से चार-छः रूपों में ही रचना की भाषा उक्ति० की भाषा से भिन्न दिखाई पड़ती है, अन्यथा वह उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित होती है। जायसी की भाषा से वह मिलती-जुलती होते हुए भी किंचित् पूर्व की स्थिति का आभास देती है।

चांदायन

१. स्तुति खण्ड

(१)

पहलै गाउ(उं) सिरजन हारू।
जिनि सिरज्या यह दौ(दे)स वि(दि)यारू।
सिरजसि धरती औरु अगासू।
सिरजसि मेर म(मं)दर कबिलासू।
सिरजसि चांद सुरुज उजियारा।
सिरजा(सिरजसि?)सरग नषत की मारा।
सिरजसि छाह सीव औ धूपा।
सिरजयि(सि) किर तन और सरूपा।
सिरजसि मेघु पवन अ(अं)धकारा।
सिरजसि बीज करै चमकारा।
जाकर सभै पिरथमी सिरजसि(?) कह्यो(ह्यों) येक सो गाई।
हीय गहवर मन हुल्हसै दूसर चित न समाई॥

सन्दर्भ—बी० १-३।

शीर्षक—बी० सिफति धणी की।

अर्थ—(१) पहले मैं सृष्टिकर्ता का [गुण] गान करता हूँ, जिसने इस देश-प्रदेश की सृष्टि की है, (२) जिसने धरती और आकाश की सृष्टि की है, जिसने मेरु, मन्दर और कैलास की सृष्टि की है, (३) जिसने उज्ज्वल (प्रकाशपूर्ण) चन्द्र और सूर्य की सृष्टि की है, जिसने स्वर्ग (आकाश) और नक्षत्र-माला की सृष्टि की है, (४) जिसने छाया, शीत और धूप की रचना की है, जिसने किल शरीर और रूपों की सृष्टि की है, (५) जिसने मेघ, पवन और अन्धकार की सृष्टि की है, और जिसने उस विद्युत् की सृष्टि की है जो चमत्कार करती है। (६) जिसकी सृष्टि की हुई (?) समस्त पृथ्वी है, उस एक का कथन मैंने गा कर किया है। (७) [उसके स्मरण से]

हृदय हर्षित होता और मन उल्लसित होता है, और अन्य कोई चित्त में नहीं समाता है।

(२)

सिरजसि तीन (तेइँ ?) मेदनि नव षंडा।
सिरजसि नदी अठारह गंडा।
सिरजसि नीर षीर ओ(औ) षारू।
सिरजसि सम(मु)द न जानौ पारू।
सिरजसि गिर(रि) परष(ब)त तरवरा।
सिरजसि बनष(षं)ड औ सरवरा।
सिरजसि रतन पदारथ मोंती।
सिरजसि मान(नि)क दीय(?) जोती।
सिरजसि माकार(मकर) गोह घार(रि)याराा।
सिरजसि बहुते मंछ अपारा।
सिरजसि सभ संसार सपूरन जल[?] महियल सोइ।
ज(जि)ह कर ठाव न जानीये तिह बिन ठाव न होइ॥

सन्दर्भ—बी० ४-६।

शीर्षक—बी० : सिफति धणी की।

अर्थ—(१) उसने (?) नौ खण्ड पृथ्वी की सृष्टि की, और उसने अठारह गण्डे (१८×२०=३६०) नदियाँ रचीं। (२) उसने नीर, क्षीर तथा क्षार [समुद्रों] की रचना की, और [ऐसे] समुद्रों की रचना की जिनका पार हम नहीं जानते हैं। (३) उसने गिरियों, पर्वतों और तरुवरों की रचना की, उसने वनखण्ड और सरोवरों की रचना की। (४) उसने रत्नों, पदार्थों (बहुमूल्य पत्थरों) और मोतियों की रचना की, और उसने माणिक्यों की रचना की, [जिन्हें] उसने ज्योति दी। (५) उसने मकरों, गोहों, और घड़ियालों की रचना की, और उसने अपार [अपरिमित] मत्स्यों की रचना की। (६) उसने समस्त संसार और उसी ने सम्पूर्ण जल-राशि और महीतल की रचना की। (७) वह ऐसा है कि जिसका स्थान हम नहीं जान सकते हैं, [यद्यपि] उसके बिना कोई स्थान नहीं होता है।

(३)

सिरजसि बेलि फूल ओ(औ) बासूं(सू)।
सिरजसि भ(भं)वर न छाडहि पासू।
सिरजसि सीतर चंदनु सुहावा।
सिरजसि नाग तिही यु(जु)बिढवि(बिढावा)।
सिरजसि कोइल(लि) मधुरी बैनी।
सिरजसि दादुर चवै यु (जु) रैनी।
सिरजसि क(कं)वर पदम जर माहां।
सिरज[सि]पानौ यु(जु)अछैहि बाहा(छाहां)।
सिरजसि अगनि जरत यों (जो) दहा।
सिरजसि कनिक झार यों (जो) सहा।
सिरजसि षानि अठारा(र)ह सिरजसि अगनित मूरि।
सिरजसि कत अगुरायनि (आकरायनि?) सबै रहा भरपूरि॥

सन्दर्भ—बी० ७-९।

शीर्षक—बी० : याह भी सिफति धणी की।

अर्थ—(१) उसने वल्लियों, फूलों और (उनकी) सुवासों की रचना की, और उसने उन भ्रमरों की रचना की जो (उनका) पार्श्व नहीं छोड़ते हैं। (२) उसने शीतल और सुख देने वाले चन्दन की रचना की, और उसने उन नागों की रचना की जो उसका [सुख] भोग करते हैं। (३) उसने उस कोकिला की रचना की जो मधुर वचनों वाली है, और उसने उस दादुर की रचना की जो रात्रि में (?) बोलता है। (४) उसने कमल और पद्म की रचना की जो जल में होते हैं, और उसने उनके पर्णों [पत्तों] की भी रचना की जो छाये रहते हैं। (५) उसने उस अग्नि की रचना की जो जलते ही दग्ध करती है, और उसने उस स्वर्ण की [भी] रचना की जो [उस अग्नि की] ज्वाला को सहन करता है। (६) उसने अट्ठारह खानियों (प्रकार के प्राणियों) की और अगणित [प्रकार की] मूलों (जड़ी-बूटियों) की रचना की; (७) उसने कितनों की ही आकर पदार्थों के रूप में (?) रचना की, और [तदनन्तर] वह सभी में भरित-पूरित (व्याप्त) हो रहा।

(४)

सिरजसि अंन य (यु-जु) मानसु (मानुस) षाई ।
सिरजसि भूष यु (जु) तिही बुझाई ।
सिरजसि दाष दो (ऊ)षि रस भरी ।
सिरजसि बेलि य(जु)बीन (बिन) यर(जर) फरी ।
सिरजसि मीठ षांड के (कै) उ(ऊ)षा ।
सिरजसि कर(रु)ये बहोति (ते) रूषा ।
सिरजसि साप डंक बिस भरा ।
सिरजसि गारुरि यों (जो) तिह हर(रा) ।
सिरजसि माह (हु) रु मनै(रै) यु (जु)षाइ(ई) ।
सिरजसि मधु माषी लै जाइ(ई) ।
सिरजसि हाथी घोरे औ गै(ग)हि बा(बां)धे राइ दुवारि ।
सभ राय(ज)नि कर राया(जा) यु (ज्यों) यों(जो?) ससि रैनि अहार ॥

सन्दर्भ—बी० १०-१२ ।

अर्थ—(१) उसने अन्न की रचना की जिसे मनुष्य खाता है, और उसने उस भूख की रचना की जो उससे ही बुझती है । (२) उसने द्राक्षा [अंगूर] और रसभरी ऊख (इक्षु) की रचना की, और उसने ऐसी बेलों की [भी] रचना की जो बिना जल से [सिंचे भी] फला करती हैं । (३) उसने ऊख (इक्षु) [की रचना] कर खाँड (शर्करा) की रचना की और उसने बहुतेरे कड़ुए वृक्षों की [भी] रचना की । (४) उसने उस सर्प की रचना की, जिसके डंक (दंश) में विष भरा रहता है, और उसने उस गारुड़ी की [भी] रचना की जो उसे हरण करता है । (५) उसने उस महाविष की रचना की जिसे खाकर जीव मर जाता है, और उसने उस मधु की रचना की जिसे मक्खियाँ ले जाती हैं । (६) उसने हाथी-घोड़े रचे, और उन्हें पकड़ (पकड़वा) कर राज-द्वार पर बाँध [बँधवा] दिये । (७) वह समस्त राजाओं का राजा है; जैसे शशि रजनी का आधार है ।

(५)

सिरजसि मिरग नारि(भि?) यो(जो) वी(ची)ना ।
सिरजसि तिह की बासु यों (जो) ल्हीना ।
सिरजसि साड(उ)ज थरहि बिचाही ।

सिरजसि भगती (भुगुती) जरमहि षाई ।
सिरजसि पंषि(पष्षि) राति उजियारी ।
सिरजसि बरन यों (जो) द्योस बिकारी ।
सिरजसि भ(भं)बर पाट यों (जो) तना ।
सिरजसि गुबिरोरा भुवि षना ।
सिरजसि पंष(षि?) अवर(?) फर माहा ।
सिरजसि बरु(बर्रु)सु तिह(हि) ठाहा ।
सिरजसि आंथि न साथि औ झा(झां)कि (षि)* मरै जिन(नि)कोइ ।
येकि अकेलें सब जगु सिरजा दु(दू)सर औरु न कोइ (होइ ?) ॥

सन्दर्भ—बी० १३-१५ ।

* बी० प्रति अपने मूल रूप में इसके बाद मिलती है, इसके पूर्व का अंश मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में है; ऐसा लगता है कि मूल प्रति का प्रथम पत्र गल कर निकला जा रहा था, इसलिए उसकी प्रतिलिपि कर यहाँ से पूर्व का अंश जो उक्त पत्र पर था उसमें रख दिया गया ।

अर्थ—(१) उसने उस मृग (कस्तूरे) की रचना की, जिसकी नाभि में चीना रहता है (कस्तूरी रहती है); और उसने उस [चीना—कस्तूरी] की वासना की रचना की जो ली जाती है । (२) उसने स्थल के बीच श्वापदों (हिंस्र जन्तुओं) की रचना की, और उनके लिए उस भुक्ति (भक्ष्य) की रचना की जिसे वे जन्म भर खायें । (३) उसने रात्रि के उज्ज्वल (शुक्ल) पक्ष की रचना की, और उसने उस·····दिवस की रचना की जो·····। (४) उसने उस भ्रमर (कीट) की रचना की जो पाट (रेशम) [का धागा] तनता है, और उसने उस गुबरोरे की [भी] रचना की जो भूमि को खनता (चालता) है । (५) उसने पक्षियों (?) की रचना की जो [?] फलों में···और उसने उसी स्थान पर भिड़ों की भी रचना की । (६) उसने [इस प्रकार यह समस्त] रचना की कि कोई [उसका] साथी-संगी नहीं था, और कोई [इस प्रकार के उसके साथी-संगी की खोज में] झंष कर न मरे (व्यर्थ श्रम न करे) । (७) एक और अकेले ही उसने समस्त जगत् का निर्माण किया, दूसरा और कोई [निर्माता] नहीं हुआ है ।

(६)

पुरिषु येकु सिरजसि उजियारा ।
नाउ महंमदु जगतु पियारा ।

जिह(हि) लग सबै पिरथमी सिरी ।
औ तिहि नाउ मोनदी फिरी ।
जिह जिहवा वहु नाउ न लीजा ।
बर(रु) सी(सि)र काटि अगनि मुष दीजा ।
दूसर ठाउ(उं) दइ(ई) यों (जो) कीन्हा ।
बचनु सुनाइ पंथु कै दीन्हा ।
तिह(हि) मारगि जौ चाल(लि?) सिराइ(ई) ।
दुह(हुं) महि गति पि(?) छहि बडाई ।
पाप पुन की त(ता)री कालि यों (ज्यों ?) बरै(नै ?) तुम्हार(रि) ।
दइ(ई) लिषा सभु मागिहौं(है) धरहर कै हम (?) भार ॥

सन्दर्भ—बी० १६-१८ ।

अर्थ—(१) उसने एक उज्ज्वल (निष्पाप) पुरुष का निर्माण किया, जिसका नाम मुहम्मद है, और जो जगत् का प्रिय है, (१) जिसके लिए (ही) सभी पृथ्वी निर्मित हुई, और उसके नाम की मुनादी (दुंदुभी) फिरी। (३) जिसने [भी] जिह्वा से उसका नाम न लिया, [उसके लिए] अच्छा यह होता कि वह [अपना] सिर काटकर आग के मुख में डाल देता। (४) दूसरे (उसके बाद के) स्थान पर दैव ने उन्हें [निर्मित] किया जिन्हें उसने अपना वचन (कलमा) सुना कर अपने धर्म-पथ (इस्लाम) पर लगा दिया। (५) उस [धर्म-] पथ पर चल कर जो उसे समाप्त कर लेता है, उसे दोनों [जगत्] में सद्गति और बड़ाई·····। (६) कल जब (?) तुम्हारी पाप-पुण्य की तालिका बनेगी (?) (७) और दैव (विधाता) उनका समस्त लेखा माँगेगा, तब वही हमारा (हमारे अपराधों का?) भार सँभालेगा।

(७)

चारि मीत मिलि यकु मत कीन्हा ।
बेद पुरांन चहूं कहुं दीन्हा ।
ओ जस सुना कहत तस आवइ ।
चहू व(च)क तिहि उ(औ)रेहि पत्या[व]इ ।
पंडित येकु चहू मिलि गनी ।
चहु महि पंचवा और न सुना(नी) ।

सो पढति जाकौ ति पढावहि ।
ते वहु पंथ सु(सो?)धि कै पावहि ।
तिहु कर(रि) जिह वोहु नाउ न भावा ।
आपनु कौं(क्यों ?) बैरी स कहावा ।
अबाबकर उमरै उसमाना अली स्यंघ ये चारि ।
जे निद तु(?) कर विज लि(?) सतुरह(हि) घालै(ले) मारि ॥

सन्दर्भ—बी० १९-२१ ।

अर्थ—(१) चार मित्रों ने मिलकर एक विचार किया [कि वे ह० मुहम्मद से धर्मोपदेश ग्रहण करें], तो उन्होंने उन चारों को वेद-पुराण (इस्लाम के धर्म-ग्रंथ) दिये। (२) उन्होंने जैसा सुना, वैसा वे कहते आये; [पृथ्वी के] चारों चक्रों ने उन्हें उच्चरित किया और उन पर प्रतीति की। (३) चारों को मिलाकर एक ही पंडित समझिए; चारों में पाँचवाँ और किसी को न सुनिए (जानिए)। (४) उसी ने पढ़ा जिसको उन्होंने पढ़ाया; वे ही वह [धर्म-] मार्ग शोध कर पा सके। (५) इस प्रकार कर के जिसे वह नाम अच्छा न लगा, वह आत्म (अपना ही) बैरी क्यों कहलाया ? (६) अबूबकर, उमर, उसमान और अली—ये चार सिंह हुए, (७) जिन्होंने·····[इस्लाम के ?] शत्रुओं को मार डाला।

(८)

साहि प(ये)रोज ढीली बड़ राजा ।
छात पाट औ ते* पैं छाज (जा) ।
येकु पड़ितु(पंडितु) औ है पडिवाहा ।
दानि अपरिस (अपार ?) सराहै काहा ।
नीर षीर निरमर करि छानै ।
छोटें बड़े बेव(ह)रि जानै ।
अति सिरवंतु (सिरिवंतु) भागे(गै)भरा ।
मान(नि)क जोति जानु परय(ज)रा ।
षरग झार लंका लहु जाइ(ई) ।
हनवतु स(सं)गु सि(सइ?)रहै बुझाइ(ई) ।
देइ असीस पिरथमी य(ज)सु पु(पू)रौ बरुवाहा (पडिवाह?) ।
राजु करौ गढि ढीलरी जुगि जुगि हम अ(प ?)र छाह ॥

*'ते' को 'तो' बाद में बनाया गया है।

सन्दर्भ—बी० २२-२४ ।

शीर्षक—बी० : साही पेरोज की सिफत [किन्तु यह शीर्षक अन्य लिखावट में है और हाशिए में दिया हुआ है] ।

अर्थ—(१) फ़ीरोज़ शाह [तुगलक़] दिल्ली का बड़ा राजा (सुल्तान) है; छत्र तथा सिंहासन उसी को शोभित होते हैं। (२) एक तो वह पंडित है और दूसरे प्रतिवाह (आक्रमण को रोकने अथवा शत्रु को पीछे ढकेलने वाला) है; वह ऐसा अपार (अपरिमित ?) दानी है कि उसकी क्या सराहना की जाए ? (३) वह [ऐसा न्याय करने वाला है कि] निर्मल कर के नीर से क्षीर को (असत्य से सत्य को) अलग कर देता है, और छोटे-बड़े के साथ उचित व्यवहार करना जानता है। (४) वह अत्यधिक श्रीमंत और भाग्य से पूरित है, [उसे देखने पर ऐसा लगता है] मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्ज्वलित हो रही हो। (५) [उसके] खड्ग की ज्वाला लंका तक जाती है, और उसके साथ हनुमान भी रहते हैं, वही उसको बुझा कर रखते हैं। (६) पृथ्वी भर उसको आशीर्वाद देती है, "हे प्रतिवाह (शत्रुओं को पीछे ढकेलने वाले ?) तुम यश-लाभ करो। (७) तुम दिल्ली के गढ़ में युगानुयुग राज्य करो और हम पर तुम्हारी छाया [बनी] रहे !"

(९)

सेष जैनदी हौ(हौं) पथि लावा ।
धरम पंथु जिह(हि) पापु गवावा ।
पाप दीन्ह में गांग बहाइ(ई) ।
धरम नाव हौं लीन्ह चुराइ (चड़ाई) ।
उघर(रे) नैन हिये उजियारे ।
पायो लिष(षि) नौ अक्ष(क्ख)र कारे ।
पुनि मै(मैं)अषि(ष्षि)र की सुधि पाइ(ई) ।
तुरकी लिषि लिषि हिंदुकी(गी?)गाइ(ई) ।
ये(जै ?) पइए या(जा)इ स(से)ष पसारा ।
पाप गये तसीकर(तसिकर) मारा ।
त्यहु का घरु निरमरा जिह चितु रहा लुभाइ ।
सेष जैनदी सेवता पाप निरंतरु जाइ ॥

सन्दर्भ—बी० २५-२७ ।

अर्थ—(१) शेख़ जैनुद्दीन ने मुझे मार्ग पर लगाया, उस धर्म-मार्ग पर जिस पर [चल कर] मैंने अपने पाप गँवाये। (२) मैंने [अपने] पाप गंगा में बहा दिये, [जब] उन्होंने मुझे अपनी धर्म-नौका पर चढ़ा लिया। (३) [उनकी कृपा से] मेरे हृदय में उज्ज्वल (ज्ञान के) नेत्र उद्घाटित हुए, और मैंने [क़लमे के ?] काले नौ अक्षर लिख पाये। (४) तदनन्तर मैंने [वर्णमाला के] अक्षरों का शोध प्राप्त किया और तुर्की (अरबी-फ़ारसी) लिख-लिख कर हिन्दुकी (हिन्दुगी ?) का गान किया। (५) यदि इस प्रकार शेख़ (जैनुद्दीन) [की कृपा] का प्रसार प्राप्त हो जाए तो पाप उसी प्रकार मारे जाते हैं जैसे तस्कर (चोर-डाकू) मारे जाते हैं। (६) उनका घर (सम्प्रदाय) निर्मल है, जिससे उस पर मेरा चित्त लुब्ध हो रहा है। (७) शेख़ जैनुद्दीन की सेवा करते रहने से पाप निरन्तर जाते (नष्ट होते) रहते हैं।

(१०)

खानजहां घरि जुग जुग षानी ।
अति नागरु बुधिवंतु बिनानी ।
चतुर सुजान भाष सब जान(नू) ।
रूपवंत मंत(ति)री सयानु(नू) ।
बहुत बिनानु दइ(ई) दे(दै) गढ़ा ।
चौदह पढतु हिये पै पढा ।
पोथि पुरान अवहिरै (अवरेहि ?) लगावै ।
पंडित कै(के) मुष बकत न आवै ।
पिरथमि पति(?)ये (जे) चोर स(सि)यारा ।
भवर पुरष प्रिथमी महिआरा ।
भयो राजु फुनि बररुचि (बररुचि) जोरत अरथ अगाह(हि) ।
षौंद षान [?] जी(बि?)ना और गुनी को आह(हि) ॥

सन्दर्भ—२८-३० ।

अर्थ—(१) खानेजहाँ युगानुयुग से चले आते हुए खानी कुल से है; वह अत्यधिक नागर, बुद्धिमान और विज्ञानी है। (२) वह चतुर, ज्ञानी और समस्त भाषाओं का जानकार है; वह रूपवान् है और [सुल्तान का] सज्ञान मन्त्री है। (३) बहुतेरा विज्ञान प्रदान कर दैव ने उसे निर्मित किया है; वह,

हो न हो, हृदय में चौदह विद्याएँ पढ़े हुए है। (४) [धर्म-] पुस्तक और पुराण के वह ऐसे अर्थ (?) लगाता है कि [उन्हें सुनकर] पंडितों के मुखों में [उसकी प्रशंसा के उपयुक्त] वाक्य नहीं आते हैं। (५) पृथ्वी में (?) जहाँ चोर-शृगाल [बहुलता से] हैं, [ख़ानेजहाँ जैसा] उसी मही तल पर (गुणग्राही) भ्रमर-पुरुष भी है। (६) वह [सुल्तान के] राज्य में वररुचि [जैसा पंडित] हुआ है और [धर्म-पुस्तक के] अग्राह्य (पकड़ में न आने वाले) अर्थों को भी वह जोड़ (लगा) लेता है। (७) [इस समय] ख़ाविंद (स्वामी) ख़ानेजहाँ [?] को छोड़ कर (?) दूसरा गुणी कौन है ?

(११)

षौंद जान गैं दान दिवावै।
देते(त) करनु नि सरभरि पावै।
सम(मु)द लहरि जिहि दिन दिन आवै।
मानिक आनै तीर चरा (ड़ा)वै।
तस सतु दानु पाइ औतरा।
देत न घसि (खसइ ?) सम(मु)[द] जस भरा।
देत न अंतु रवा(खा ?)गी द(दा)रिदु गयौ पराइ।
उठा सबदु जसु लीन्हा कीरति जगत फिराइ॥

सन्दर्भ—बी० ३१-३२। कडवक की दो अर्द्धालियाँ उसमें छूटी हुई हैं, इसीलिए एक चतुष्पदी की क्रम-संख्या में कमी हो गई है।

अर्थ—(१) ख़ाविंद (स्वामी) ख़ानेजहाँ हाथियों को दान में दिलाता है, [इसलिए] उसके दान करते समय कर्ण भी उसकी समता नहीं पाता है। (२) समुद्र की लहर जिस प्रकार दिनानुदिन आती और तटपर माणिक्य ला कर चढ़ा (डाल) जाती है, (३) इसी प्रकार दान (का संसर्ग) पाकर उसका सत्व अवतरित हुआ है; वह देते हुए घटता नहीं है, और उसी प्रकार भरपूर रहता है कि जिस प्रकार समुद्र। (४) "(दान) देते हुए उसका अन्त..... और दारिद्रय भाग गया," (५) यह कथन (चारों ओर से) उठने लगा और यह यश उसने प्राप्त किया, उसकी कीर्ति जगत् भर में फिर गयी।

(१२)

मदन म(अ?)नंगु तु र(रे) पर बिन बानै।
सोवन बरन देह तोरी जानै।

चंदु लिलारु धरा जनु लाइ(ई)।
चंदु घाटि वह अधिक सवाइ(ई)।
सहस करा जौ सुरिजु बषानौ(नौ)।
सुरिजु चाहि जगि निरमर जानौ।
देषि पिरथमी रूप भुलानी।
मानु मनोहर सकरत(संकिरित) बानी।
घन(नि) सु राति(राट ?) जिह तूं औतरा।
जो देषो (षा) सो सिरुभुइ धरा।
तोहि रूप जगु[?] गहा चंदु तराइनु जानु।
इह (एहि ?) रूपि जग कोइ न देषा अब फुनि होइ न आन॥

सन्दर्भ—बी० ३३-३५।

अर्थ—(१) तू अनंग मदन है, किन्तु बिना बाणों के है, तेरी देह स्वर्ण के वर्ण की जान पड़ती है। (२) तेरा ललाट ऐसा [देदीप्यमान] है कि मानो उस पर चन्द्रमा लाकर रख दिया गया हो; किन्तु चन्द्रमा उससे घट कर है, और वह उससे सवा-गुना अधिक है। (३) सहस्र कलाओं के सूर्य का यदि वर्णन करो, तो उस सूर्य की अपेक्षा भी तुझे जगत् में [अधिक] निर्मल जानना चाहिए। (४) पृथ्वी तेरा रूप देख कर [उस पर] इस प्रकार भूली हुई है, मानो मनोहर संस्कृत वाणी हो। (५) वह रात्रि (अथवा राष्ट्र—राज्य ?) धन्य है जिसमें तू [सूर्य] अवतरित हुआ है, क्योंकि जिसे देखो वही [तेरे आगे] अपना सिर भूमि पर रख देता है। (६) रूप मानो जगत् में चन्द्र तथा तारागण ने तुझसे ही ग्रहण किया है। (७) ऐसा रूप जगत् में [अवतरित हुआ] कभी नहीं (?) देखा गया है, और न अब अन्य पुनः होगा।

(१३)

हय चरि(ड़ि) कोप(पि) षांडह(हि) जो धरा(र)इ।
सरगि यन्दु बासिगु षहराइ(षरहरइ ?)।
गहि सी(सीं)गनि जा कौ(क)हु कहुं सरु मेलै।
रहै न सो धरु सुर्गेहि षेले (षेलै)।
षरगु ज देषौं तिरीअ धारू।
बारक काटै जनम किवारू।

सागि (?) कैं षरगु ति अरि सिर धरा ।
येक पुरिष सिघ(घ्घ) तिरि परा ।
षान षरगु मै फु(सु)ने न आना ।
टूटि(ट) पाउ सिर धरनि पराना ।
पूरब पछिम उत्तर दषिन तुम सरि औरु न आन ।
षान षरग बैरनि(बैरिन) सिर तपै जैसें देषि(षी)रबि भान ॥

सन्दर्भ—बी० ३६-३८ ।

अर्थ—(१) खानेजहाँ ! जब तू घोड़े पर चढ़ कर खड्ग धारण करता है, तब स्वर्ग में इन्द्र और [पाताल में] वासुकी खलबला उठता है । (२) जिस पर तू सिंगिनी ग्रहण कर शर छोड़ता है, उस [शत्रु का] धड़ भूमि पर नहीं रहता है, वह स्वर्ग (आकाश) में खेलने लगता है । (३) जब तेरे खड्ग की तीक्ष्ण धार देखता हूँ, तो [लगता है कि] इस जन्म (?) का किवाड़ (भी) एक बार वह काट देगा । (४) तू जब साध (?) करके शत्रु के सिर पर उस खड्ग को रखता है, तो एक पुरुष शीघ्र ही नीचे तिर्यक् पड़ा (गिरा) हुआ होता है । (५) खानेजहाँ ! [ऐसा] खड्ग मैंने अन्य नहीं सुना है कि [उसके लगते ही] [शत्रु का] सिर धरती पर टूटा और दूर गया हुआ मिले । (६) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में तुम्हारे समान अन्य नहीं है । (७) ऐ खानेजहाँ ! तुम्हारा खड्ग बैरियों के सिर पर ऐसा तप्त होता है जैसे रवि-भानु को देखिये ।

(१४)

एकु खंभु 'मेदिनि कहं' 'कीन्हां' । 'डोलि परइ' 'जउ होत न दीन्हां' ।
'तेहि कें बेरे' 'लोक चढावइ' । 'कर' गुन 'खैंचि' तीरु लइ 'लावइ' ।
'हिंदू' तुरुक 'दुहूं' सम 'राखइ' । सत्ति 'जो होइ' 'दुहुन्ह कहं भाषइ' ।
'गउव' सिंघु एक पंथु 'रेंगावइ' । एक घाटि 'दुहुं' पानि 'पियावइ' ।
एक' दीठि' 'देखइ सय(यं)सारू' । 'अचल न चलइ' 'चलइ बेवहारू' ।
'मेरु धरति जस' भारनि जग भारनि 'सयंसारु' ।
'खानजहां' 'सो' 'कवनि' बडाई 'बड जो कीन्हा' करतारु ॥

सन्दर्भ—बी० ४१-४२ [बी० में ३९-४० की संख्याएँ संभवतः भूल से छूट गयी हैं], भो० पत्र १० (नवीन) ।

शीर्षक—भो० : अैज़न लहू फ़ी मदहे खानजहाँ दर बाबे अदल व इन्साफ़ ।

इस कडवक पर भो० में पुरानी पत्र-संख्या बनी हुई, जो १२ है । उसमें प्रत्येक पत्र पर एक कडवक है, इसलिए उसमें इस कडवक की क्रम-संख्या भी वही रही होगी ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मेदुनि कौ । २. बी० कीन्हा । ३. बी० बूडि परौ । ४. बी० जिहि कोइ न दीन्हा । (२) १. बी० तिह कैं बैरी । २. बी० लोगु चरावा । ३. बी० षर । ४. बी० षांचि । ५. बी० लावा । (३) १. बी० ह्यंदू । २. बी० कोइ । ३. बी० राषै । ४. बी० यैं होय । ५. बी० दहू को भाषै । (४) १. बी० गाव । २. बी० चलावै । ३. बी० दुहु । ४. बी० पिलावै । (५) १. बी० दृष्टि । २. बी० देषै सैसारू । ३. बी० अनत नि चलै । ४. बी० चलै बौहारू । (६) १. बी० मोर धनि जस । २. बी० सैंसार । (७) १. बी० खानज (खानजहाँ ?) । २. बी० सें, भो० सो जो बाद में 'फुनि' बनाया गया है । ३. बी० कौन । ४. बी० बडौ कीन्हु ।

अर्थ—(१) खानेजहाँ को [विधाता] ने मेदिनी (पृथ्वी) के लिए एक [ही] खम्भा [निर्मित] किया है; यदि यह [खम्भा] न दिया होता, तो [पृथ्वी] डोल पड़ती । (२) [विधाता] उसके बेड़े पर—अथवा वह बेड़ा बना कर—लोक को चढ़ाता है और हाथों में [उस बेड़े के] गुण को खींच कर [लोक को] तीर पर लाकर लगा देता है । (३) वह हिन्दुओं और तुर्कों—दोनों—को समभाव से रखता है, और जो-कुछ सत्य होता है, [वही] दोनों को (से) कहता है । (४) वह [न्यायी ऐसा है कि] गाय और सिंह [जैसे परस्पर विरोधियों] को एक ही मार्ग पर रेंगाता [चलाता] है और एक ही घाट पर दोनों को पानी पिलाता है । (५) वह संसार [मात्र] को एक ही दृष्टि से देखता है और [न्याय पर] अचल ऐसा है कि विचलित नहीं होता है, भले ही [संसार का] व्यवहार चलायमान हो जा । (६) जैसे मेरु धरती के भार के लिए [निर्मित] है, वह संसार में जगत् के भार के लिए [निर्मित] है । (७) [किन्तु] इसमें खानेजहाँ की कौन-सी बड़ाई है जब कि उसे सृष्टि-कर्त्ता ने ही बड़ा कर रखा है ।

(१५)

मलिक 'ममारखु' दर 'क' सिंगारू । दान 'जूझ' बड बीर 'अपारू' ।
खडग घाइ 'ढंहि' 'परंहि' पहारा । 'बासुगि कांपइ' 'नाहिं' उबारा ।
'कांध' तोरि 'नई' रगत 'बहावइ' । धर बिनु सिरु 'तेहि' मांझ 'तरावइ' ।

'जेहिं' सिरु 'देइ' मुदगर कर घाऊ । 'फेरि' न 'धरइ' 'सीध कइ' पाऊ ।
'बिधना मारि देस महं आनी' । 'भागहिं राइ छाडि निसु' रानी ।
चहुं जग परा 'भंगानां' छाडि 'देस निप भाग' ।
'कइ रे दीन्ह सरब डंड' 'कइ ते' पायनु लाग ॥

सन्दर्भ—बी० ४३-४५, मसा० ।

भो० पत्र १०(नवीन)पर तर्क है 'मलिक मुबारक', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मसा० : मदहे मालिकुल उमरा मुबारक इब्न मलिक बयाँ मक़त असतू डलमऊ ।

पाठान्तर—(१) १. मसा० मुबारक । २. बी० कौ । ३. बी० सिगारू । ४. मसा० में 'रू' पर चिप्पी लगी हुई है । (२) १. बी० में नहीं है । २. बी० परै । ३. बी० बासिगु कंपै । ४. बी० नहीं । (३) १. बी० कंध । २. बी० नै । ३. बी० बहावै । ४. बी० तिस । ५. बी तिरावै । (४) १. बी० जिह । २. बी० दे । ३. बी० जनमि । ४. बी० धरै । ५. बी० सिध कौ । (५) १. बी० बैरिन्हि मारि देषि तवु (संशोधित) बानी । २. बी० भागैहि राज छाडि निसि । (६) १. बी० भगाना । २. बी० राइ निसि भागि । (७) १. बी० कै आइ दे डंड सभै । २. बी० कै राइ ।

अर्थ—(१) मलिक मुबारक [शाही] सेना के शृंगार हैं । वे दान तथा युद्ध—दोनों—में अपार वीर हैं । (२) उनके खड्ग के आघात से पहाड़ ढह (गिर) पड़ते हैं, और वासुकी इसलिए काँपने लगता है कि उससे [उसका भी] उबार (बचाव) नहीं है । (३) वह [युद्ध में] कन्धों को तोड़ कर रक्त की नदी बहाता है, और फिर उसमें धड़ से हीन सिरों को तैराता है । (४) जिसके सिर पर भी वह मुद्गर का घाव देता है, वह फिर पैर सीधा करके नहीं रख सकता है । (५) [शत्रु राजा-गण कहते हैं] 'विधाता ने देश में मारी ला दी है', [और यह कहते हुए] वे अपनी रानियों तक को छोड़कर भाग निकलते हैं । (६) [उसके आतंक से] जगत् में चारों ओर भगदड़ पड़ गयी है, और [शत्रु] राजा-गण अपने देश को छोड़कर भाग रहे हैं । (७) या तो उन्होंने अपना सर्वस्व दण्ड (कर) [के रूप में] दे दिया है, और या तो वे उसके पैरों से लगे हैं ।

(१६)

करन बिसेष दानु तसैं (तस) देइ(ई) । दारिदु छाडि दिसंतरु लेइ(ई) ।
भूषा देखि पास जौ आवै । जनम सभै कर भूष गवावा(वै) ।

अमी मेघ जनौ बरसै पानी । ना डरु देषै (देषिय) भुमि सुकानी ।
करि दीया ति सवर के वेषा । दूसर रांक न चित मै लेखा ।
किरति जाइ चहु भ(भु)वन जनावा । दान [पुं]न जसु हाथ उपावा ।
मलिक ममारष न्हावताह बार षिसौ जिन काव(उ?) ।
रिन रावर(रि) मुष बानी दिनु दिनु बधियो आव(उ?) ॥

सन्दर्भ—बी० ४६-४८ ।

अर्थ—(१) "जो कर्ण से भी विशेष (अधिक) हो, ऐसा दान तू देता है, [जिसके परिणाम-स्वरूप] दारिद्र्य [देश को छोड़ कर] देशान्तर को जा रहा है । (२) तुझे देख कर यदि कोई भूखा तेरे पास आता है, तो वह समस्त जन्मों की क्षुधा गँवा देता है । (३) मेघ मानो अमृत-जल की वर्षा करते हैं, [जिसके परिणाम-स्वरूप] यह डर नहीं है कि भूमि शुष्क दिखाई पड़ेगी । (४) उनको तूने सबलों के वेष का कर दिया है, अतः दूसरे रंक चित्त में मैं नहीं समझ पाता हूँ । (५) तेरी कीर्ति जा-जाकर चारों भुवनों में[अपने को] व्यक्त करने लगी है, क्योंकि दान-पुण्य के द्वारा तेरे हाथों ने यश उत्पादित किया है । (६) ऐ मलिक मुबारक ! नहाते हुए भी तेरा बाल न गिरे (तेरा कोई अनिष्ट न हो) । (७) ·····तेरे मुख की वाणी दिनानुदिन बढ़ती ही जाए ।"

(१७)

बरस सातै(त) सै होये इक्यासी ।
तिहि याह कबि सरसे(स) उभासी ।
साहि पेरोज ढीली सुलतानू ।
जौना साहि इ*जीरु (उजीरु) वषानू ।
दलमौ (डलमउ) नयरु बसै नवरंगा ।
उपरि कोटु तलै बहै गंगा ।
धरमी लोगु बसहि भगवंता ।
गुनगाहका नागर जसवंता ।
मलिक बयां पुतु उ(यु ?)ध* रन धीरू ।
मलिक ममारषु तहा का (तहां क) मीरू ।
दाउद येह कबि जइ* गाइ(ई) मन महि लेहु बिचारि ।
जुरत बोलु चित राषहु टूटत लेहु स(सं)वारि ॥

सन्दर्भ—बी० ५०-५२; ४९ की संख्या भूल से छूटी लगती है। *चिह्नित अक्षरों पर प्रति में संशोधन किए हुए हैं।

अर्थ—(१) जब ७८१ का साल हुआ, तब [मैंने] इस सरस काव्य को उद्भाषित [प्रकाशित] किया। (२) [इस समय] दिल्ली का सुल्तान फ़ीरोज़शाह है, और जौनाशाह [उसका] वज़ीर कहलाता है। (३) एक नवरंग [नये रंग का] नगर डलमऊ बसता है, जिसके ऊपर [की भूमि में] कोट (गढ़ या गढ़ का परकोटा) है और [जिसके] नीचे गंगा बहती है। (४) उसमें धर्मिष्ठ और भाग्यवान् लोग निवास करते हैं, वे गुण-ग्राहक, नागर और यशवान् हैं। (५) युद्ध में रणधीर मलिक बयाँ के पुत्र मलिक मुबारक वहाँ के मीर हैं। (६) दाऊद ने··· यह कविता गाई, इसे मन में विचार कर ग्रहण कीजिए। (७) इसके जो बोल (वाक्य) जुड़ रहे हों, उन्हें चित्त में [उसी प्रकार] रख लीजिए, और जो त्रुटिपूर्ण हों, उन्हें संवार (ठीक) कर स्वीकार कीजिए।

२. गोवर-वर्णन खण्ड

(१८)

कहू(हूं) कबितु मन भयो गियानू।
कहत सुहावन सुनहु दै कानू।
गोवर कहौ(हौं) महर कर ठाउ(ऊं)।
कूवा बाइ बहुत (अंबरांऊं)।
नारियर गो(गू)वा के तह(हं) रूषा।
देषत रहै न लागै भूषा।
दार्यौ(यौं) दाष बह(हु)ल लै लाइ(ई)।
नारि(रि)ग झारिग कहे न जाइ(ई)।
कटहर तारा(र) भरे अ(अं)बराना(मा?)।
जामिनि कैथ* न* को जाना।
बांस षिजूरि बर पीपरा(र?) अ(अं)बिली भई सैवार।
राइ महर की बारी द्योस होइ अ(अं)धियार॥

सन्दर्भ—बी० ५३-५५।

शीर्षक—बी० में हाशिए में 'गोवर की बरनी' शीर्षक दिया हुआ है [किन्तु यह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में है।]

*चिह्नित अक्षर बी० में संशोधित हैं।

अर्थ—(१) मेरे मन में ज्ञान [उदित] हुआ है, इसलिए मैं कवित्व (कविता) कह रहा हूं; यह [कवित्व] कहने में सुहावना है, इसे कान देकर सुनो। (२) मैं [अब] महर के स्थान गोवर का कथन कर रहा हूँ; वहाँ पर कूप, वापी और आम्राराम बहुतेरे थे। (३) वहाँ पर नारियल तथा गूवा (एक प्रकार की सुपारी) के वृक्ष थे, जिन्हें यदि कोई देखता रहता तो उसे भूख न लगती। (४) दाडिम (अनार) तथा द्राक्षा (अंगूर) वहाँ पर बहुतेरे लेकर लगाये हुए थे, नारंगी-झारंगी (?) तो इतने थे कि कहे नहीं जा सकते थे। (५) कटहल और ताड़ उस आम्राराम (?) में भरे हुए थे और जामुन तथा कैथ (कपित्थ) इतने थे कि उन्हें कोई जानता न था। (६) बाँस, खजूर, वट, पीपल तथा इमली [इस प्रकार] अधिकता से [लगे] हुए थे कि (७) राजमहर की बाटिका में दिन में ही अन्धकार हो रहता था।

(१९)

अति घन फेर(रि) देषि अ(अं)बराइ(ई)।
बासहि(हिं) पंखि कहूं ते आइ(ई)।
चुहचुहाहि(हिं) ते सूवा सारी।
कुहकुहाहि(हिं) ते कोकिल कारी।
पिउ पिउ बबिहा करै पुकारा।
नाचहि(हिं) मोर सबद झनकारा।
महर पुकार ले रि दह(हि) आइ(ई)।
आडुकि (पाडुकि) येक येक चिललाई।
हरियर आइ देस कर रहा।
कागरूद्र (रूक) बहु भाषा कहा।
अस अंबर(रा)उ सुहावना(न) जिहि चितु रहा लुभाइ।
बासैहि(सहिं)पंषी रहही(हिं)अ(उ?)ति छाडि न अंननरि(अंतरि)जाइ॥

सन्दर्भ—बी० ५६-५८।

मै० प्रति इस कडवक से सम्बंधित चित्र से मिलती है, इसके पूर्व वह खण्डित है।

अर्थ—(१) पुनः अत्यधिक सघन आम्राराम देख कर कहीं से भी आए हुए पक्षी वहाँ बोलते रहते थे; (२) शुक-सारिका वहाँ चुहचुहाते रहते थे और काली कोकिला कुहकुहाती रहती थी; (३) पपीहा पी-पी पुकारता रहता था, और मोर नाचते रहते तथा उनके शब्द झंकृत होते रहते थे; (४) महर पुकारता रहता था 'आकर दही लो', जबकि पंडुक 'एक' 'एक' चिल्लाता रहता था; (५) हारिल तो देश भर के आकर वहीं रहते थे और काकरूक (उलूक) बहुतेरी भाषाएँ बोलते थे। (६) वह आम्राराम इतना सुहावना था कि जो [पक्षियों के] चित्त को लुब्ध किये हुए था; (७) उसमें पक्षी बोलते तथा निवास करते रहते थे, और उसे छोड़ कर अन्य [आम्रारामों] में नहीं जाते थे।

(२०)

तारा 'पोखर' कुंड 'खनाए'। मढ़ 'देवर' चहुं पासि 'उठाए'।
'खूना' तपसी अछहिं तहां। 'अउ' भगवंतु 'रहइ तिन्ह महां'।
मसवासी सिव मंडपु छाई। 'पुरुख नांउं' तेहि 'ठौर' न जाई।
भररा 'डंवरू' डाक 'बजावा'। सबदु सुहाव 'नींद' सुनि आवा।
जोगी सहंस 'चारि तहं' 'गावहिं'। सींगी पूरहिं भसम 'चढावहिं'।
सिद्ध पुरुख गुनआगर देखि 'लुभाने' ठाउं।
कहत सुनत अस 'जानिय' 'दहुं' 'चलि देखइं जाउं'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३, बी० ५९-६१।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते बुतखानः बर हौज़ व मानदन जोगियान मर्दान व ज़नान दर आं।

पाठान्तर—(१) १. बी० पोषरि। २. दी० षनाइ। ३. मैं० देव। ४. बी० उठाइ। (२) १. बी० षैना। २. बी० औ। ३. बी० रहै तिन माहा। (३) १. बी० पुरष ना। २. बी० ठाव। (४) १. बी० डौरू। २. बी० बजावा। ३. बी० मैं० इन्द्र। (५) १. बी० मैं० पांच एक। २. बी० गावैहि। ३. बी० चरावहि। (६) १. बी० लुटाने। (७) १. बी० जानौ। २. बी० धौ। ३. बी० चलु देषौ जाउ।

अर्थ—(१) [गोवर नगर में] तडाग, पुष्कर और कुंड खुदवाए हुए थे और उनके पास चारों ओर मठ और देवालय उठाए हुए थे। (२) वहाँ (उनमें) खूना-पंथी (शरीर को क्षुण्ण—मर्दित चूर्णित करने वाले) तपस्वी थे और भागवत (अथवा भाग्यवान साधक) उनमें निवास करते थे।

(३) शिव के मण्डपों में मास-कल्प करने वाली स्त्रियाँ छाई रहती थीं, उनमें पुरुष नामधारी [मात्र] नहीं जाते थे। (४) उनमें भरडे (एक प्रकार का वाद्य), डमरू और डक्क बजते थे, जिनके सुहावने शब्द सुनकर निद्रा आती थी। (५) चार सहस्र योगी वहाँ गाते [रहते] थे; वे शृंग पूरते (फूंक कर बजाते) और [शरीर पर] भस्म चढ़ाते थे। (६) सिद्ध पुरुष और गुणों में अग्र—अथवा गुणों की खानि—लोग उस स्थान को देखकर [उस पर] लुब्ध थे। (७) कहने-सुनने में से ऐसा जान पड़ता था कि मानो चलकर उसे देखने जाऊं।

(२१)

सरवरु एकु सुभर भरि रहा। झरनां सहंस 'एक अउ' बहा।
अति 'अवगाहु न पाइय' थाहा। पानीं चोख 'सराहउं' काहा।
बास कपूर पियत खिन 'आवइ'। देखत मोंतीचूर 'सुहावइ'।
'कुंवरि' लाख दोइ पानी 'जांहीं'। तीरि 'बइठि' ते लेहिं भरांहीं।
'ठाउं ठाउं बइसे' रखवारा। 'खोरि नहाइ' न 'कोउव' 'पारा'।
'छाय(?)' होइ तरुन्ह 'कइ' 'केहुं' न 'पाइय' बाट।
चाप रूप सरवर कै रावत(ट) बांधे घाट॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४, शि०, बी० ६२-६४।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते हौज़ व लताफ़ते आब ऊ गोयद। शि० : अपाठ्य है।

मैं० में (३)। १, (४)। १, (५)। १, (६) तथा (७) के अधिकांश पत्र के त्रुटित होने के कारण नहीं हैं। शि० में (३), (४)। २, (६) तथा (७) के अधिकांश अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. मैं० पांच तहं। (२) १. बी० औगाहु न पाइये। २. बी० सराहौ। (३) १. बी० आवा। २. बी० र(स?)हावा। (४) १. बी० कवरि। २. बी० जाहीं। ३. बी० वैसी। (५) १. बी० ठाव ठाव राषै। २. बी० घोरा न्हाहि। ३. बी० कोउ, शि० कोइ। ४. बी० वारा। (६) १. बी० चापा। २. बी० नरुन (?) की। ३. बी० ककरि। ४. बी० सूझै।

अर्थ—(१) [वहाँ पर] एक सरोवर भरपूर भर रहा था, और [उसे भरने के लिए] एक सहस्र एक झरने प्रवाहित हो रहे थे। (२) वह [सरोवर] अत्यधिक गम्भीर (गहरा) था और उसकी थाह नहीं मिलती थी। उसका

पानी ऐसा चोखा (अच्छा) था कि उसकी क्या सराहना करूँ ? (३) उसको पीते समय क्षणमात्र में कपूर की सुवास आती थी, और देखने में वह मौक्तिक-चूर्ण जैसा सुहाता था। (४) दो लाख कुमारियाँ [वहाँ] पानी भरने के लिए जाती थीं, किन्तु वे उस सरोवर के तट पर ही बैठ कर पानी भर लिया करती थीं। (५) स्थान-स्थान पर रखवाले बैठे हुए थे, [जिससे] उसमें कोई भी खोर (अंग-मार्जन कर) अथवा स्नान नहीं कर सकता था। (६) वहाँ पर वृक्षों की ऐसी [सघन] छाया थी कि मार्ग नहीं मिल पाता था; (७) उस सरोवर को धनुष के आकार का [बना] कर उसके घाट रावट पत्थर से बाँधे हुए थे।

(२२)

'पैरहि' हंस 'मांछ' फहराहीं। चकवा चकवी केरि कराहीं।
'धौला' 'ढेंक' 'बइठ छिरियाए'। बगुला बगुली सिहरी 'खाए'।
'पीलू' सोन 'तहाँ रहे' छाई। 'अरु जल कुकुरी' 'चुहचुहाई'।
पसरी 'पुरइनि तूलमतूला'। हरियर पान 'ते' रातुर फूला।
'जलपंखी आइ देस' कर परा। कार 'कुरुंजवा जलहर भरा'।
सारस 'कुरलहिं राति नींदि तिल एक न आवइ'।
सबद 'सुहाव कान पर' जागत 'रइनि बिहावइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५; बी० ६५-६७। बी० में यहाँ भूल से एक संख्या बढ़ गयी है।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जानवरां दर आं हौज़ गोयद।
मैं० में (३) के कतिपय अंश अस्पष्ट हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहरैहि। २. बी० मछ। (२) १. मैं० देला। २. बी० ढीक। ३. बी० बैसि छिहरांहीं। ४. बी० खांही। (३) १. बी० पीयर। २. बी० रहे दुहु। ३. बी० और जकूकरि। ४. बी० चुहांचुहाई। (४) १. बी० परयनि (पुरइनि—फ़ा०) टोलमटूला (तूलमतूला—फ़ा०)। २. बी० तु। (५) १. बी० कंपिल देसु आइ। २. बी० करौजा जरहर भारा। (६) १. बी० कुररहि सभ निस तिलक नीद न आव। (७) १. बी० सुहावा कान रस। २. बी० रैनि बिहाइ।

अर्थ—(१) [उस सरोवर में] हंस तैरते रहते थे, मत्स्य फहराते (ऊपर आते ?) रहते थे तथा [उसके तट पर] चक्रवाक और चक्रवाकी केलि

करते रहते थे। (२) धौले और ढेंक [वहाँ पर] छिरिआए (पानी के छींटे लिए) हुए बैठे रहते थे और बकुले-बकुलियाँ शफरियाँ (मछलियां) खाते रहते थे। (३) पीलू तथा सोन वहाँ छाए रहते थे, और जल-कुक्कुटियाँ चुहचुहाती रहती थीं। (४) पुटकिनी (कमलिनी) [जल के] विस्तार के बराबर ही फैली हुई थी, [उसके] पत्ते हरे थे और उसमें फूल लाल थे। (५) देश [भर] के जल-पक्षी आ कर [वहाँ] पड़े हुए (निवास कर रहे) थे और काले क्रौंच उस जलाशय में भरे हुए थे। (६) [वहाँ पर] रात्रि में सारस बोलते थे, [जिससे] तिल मात्र (तनिक) भी नींद नहीं आती थी। (७) [उनका] सुहावना शब्द कानों में ऐसा पड़ता रहता था कि [उसको सुनते हुए] जागते ही रजनी व्यतीत हो जाती थी।

(२३)

'जाइ देखि' गोवर कइ खाई। 'पुरुस' 'पचास' 'कइ रे गहिराई'।
'तरहुत' 'पथरहिं तस कइ' बांधी। 'कतहुं न सूझइ आंतरु' सांधी।
'डुबुकी(कि) फिरे' 'आछे पैराऊं'। तिल 'एक नीर घटइ न[हि] काऊं'।
नीर डरावन हरियर बानूं। 'झांखत' हिए 'कांप तस पानूं'।
जो खिसि परइ 'सो जमपंथ' जाई। 'परतहिं मांछ मंगर' 'तेहिं' खाई।
राइ बीसि 'एक जउ चलि' आवहिं 'कैसहुं लिएहुं' न जाइ।
'दइ कै (कइ)' आपनु 'भागहिं' साहन जाहिं गंवाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६, बी० ६९-७१।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते खंदक बर गिर्द शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० देषि जाइ। २. बी० की। ३. बी० पुरस। ४. बी० की र (रे) गहराई। (२) १. बी० तरहत। २. बी० पथरह अस कै। ३. बी० कितहि न सूझै अंतरु। (३) १. बी० डभकै भरी। २. बी० अच्छे पैराऊ। ३. बी० इक पानि न सूझैं काऊ। (४) १. बी० देषत। २. मैं० कीन्ह डर आनूं। (५) १. बी० सु जमपुरि। २. बी० परतेह मगर मंच्छ। ३. बी० लै। (६) १. बी० औ मिलि कै। २. बी० कैसैं लियो। (७) १. मैं० डंडी (डंडि) कइ। २. बी० भाजहिं।

अर्थ—(१) गोवर की खाई जाकर देखी। पचास पुरसे ($५० \times ३\frac{१}{२} = १७५$ हाथ) की उसकी गहराई थी। (२) वह तल से ही पत्थरों से इस प्रकार बाँधी गयी थी कि उसमें कहीं पर भी अन्तर या सन्धि नहीं सूझती थी।

(३) उसमें डुबकी लगा कर अच्छे-अच्छे तैरने वाले भी लौट चुके थे; उसका जल कभी तिल [भर] भी नहीं घटता था। (४) उसका जल डराने वाला तथा हरे वर्ण का था; यदि उसको कोई झाँकता था तो वह अपने हृदय में पर्ण (पत्ते) के जैसा काँपने लगता था। (५) जो उसमें गिर पड़ता था, वह यम (मृत्यु) के मार्ग में गमन करता था, [क्योंकि] गिरते ही उसे मत्स्य तथा मकर खा जाते थे। (६) यदि बीस-एक राय [भी] चले आते, तो किसी प्रकार भी वह खाई उनके अधिकार में नहीं जा सकती थी; (७) वे अपना ही देकर भाग जाते और साधन (सैन्यादि) को भी वहाँ पर गँवा कर जाते।

(२४)

'तेहु' 'चाहि' 'जो कोटु' उचावा। 'कारु' सेतु गढि पाथरु लावा।
'पुरस (पुरुस)' तीस 'यक' आहि उंचाई। 'हाथ बीस केरी चकराई'।
कौसीसेहिं 'सब' ईंगुर लागा। ऊपर 'हेर' त खिसि पर पागा।
तेल 'धार' जइसि चिकनाई। ऊपर 'चांटी चरे (चड़ी)' न जाई।
सगर 'देवसु' चहुं दिसि फिरि 'आइय'। सूरु 'आंथवइ' 'ओर' 'न पाइय'।
बीस 'पवरि बीसउ' जरि लोहे 'सोनेइं' 'रसे' किवार।
'देवसहिं रहहिं' पंवरिया 'राति भंवहिं' कोटवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७; बी० ७२-७४।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते हिसार गिर्द शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. मै० एहुं। २. बी० चाहु। ३. बी० जौ कोट्ठ। ४. बी० कारु। (२) बी० में चरणों का क्रम बदला हुआ है। १. मै० हाथ। २. मै० करि। ३. मै० पुरुष सात कइ हइ चौड़ाई। (३) १. बी० सभ। २. मै० देख। (४) १. बी० ढार। २. मै० देखत चढ़ी। (५) १. बी० द्योंसु। २. बी० में नहीं है। ३. बी० अथवै पै। ४. बी० वार। ५. बी० में नहीं है। (६) १. बी० पैरि बीसै। २. बी० सोनैं। ३. मै० मढे। (७) १. बी० द्योंसहि राषहिं। २. बी० रति राषैहि। दोहे की दोनों पंक्तियों के बीच बी० में एक और पंक्ति है : षतरी षगेहि बहुत बीर दानि जुधि जूझार।

अर्थ—(१) उसी प्रकार जो परकोटा उठाया हुआ था, उसे देखिए। उसमें श्वेत पत्थर कारुओं (पत्थर-कटों) ने गढ़-गढ़ कर लगाये थे। (२) उसकी ऊँचाई तीस पुरसे (३० × ३½ = १०५ हाथ) के लगभग थी और उसकी चौड़ाई बीस हाथ की थी। (३) समस्त कौसीसों (कपिशीर्षों—बुर्जों) पर ईंगुर लगा हुआ था, और उनके ऊपर देखिए तो पाग (पगड़ी) गिर पड़ती थी। (४) उसकी चिकनाहट तेल की धार जैसी थी, इसलिए उसके ऊपर चींटी भी न चढ़ सकती थी। (५) सारे दिन उसके चारों ओर फिर आइए और सूर्यास्त हो जाए, तो भी उसका अन्त न पाइए [वह इतना लम्बा था]। (६) उसमें बीस पौरियाँ थीं, बीसों लौह-मण्डित थीं, और सोने से मढ़े हुए उनके कपाट थे। (७) [उनकी सुरक्षा में] दिन में पौरिये रहते थे और रात में कोटपाल भ्रमण करते (चक्कर लगाते) थे।

(२५)

'बांभन' खतरी 'बैंस' 'गोवारा'। 'खांडरवा[र]' 'अउ' अग्गरवारा।
बसहिं तिवारी 'अउ' पंचवानां। धाकर 'जोसी' 'अउ' जजमानां।
बसहिं 'खंधाई' 'अउ' बनिजारा। जाति सरावग 'अउर' प(पं)वारा।
सोनीं बसहिं सुनार बिनानी। रावत लोग 'बसाए' आनी।
ठाकुर 'बहुत' बसहिं चौहानां। परजा 'पौनि' गिनति को जानां।
बहुत 'चाप(पि)' दरमरि उठ' 'खोरिन्ह हींडि' न जाइ।
'बीस' 'बार बस' 'गोवरा' 'मानुस' चलत भुलाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८; बी० ७८-८०।

शीर्षक—मै० : सिफ़त खल्के शहर कज़ सुकना बूदन्द दर आं शहरे मज़कूर।

पाठान्तर—(१) १. बी० बाभन। २. मै० बसहिं। ३. बी० गवारा। ४. मै० गहरवार। ५. बी० औ। (२) १. बी० औ। २. मै० चौबे। ३. बी० औ। (३) १. बी० खदाइ। २. बी० औ। ३. बी० और। (४) १. बी० बसायो। (५) १. बी० बहुता। २. बी० नांव। (६) १. मै० जात। २. बी० दरम बुठ। ३. बी० घोरन हाथि। (७) १. मै० तीस। २. बी० पाच (?) रे। ३. बी० गोवारा। ४. बी० मानस।

अर्थ—(१) [नगर में] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ग्वाल, खण्डेलवाल और अग्रवाल बसते थे; (२) तिवारी, पंचवान, धाकड़ और जोशी बसते थे जो यजमान (यज्ञ कर्म करने वाले) थे; (३) खंधाई (गन्धी), बनजारे, श्रावक और पंवार निवास करते थे; (४) सोनी (सोने का पानी चढ़ाने वाले) तथा विज्ञानी सुनार बसते थे और रावत थे, जो (वहाँ) लाकर बसाये हुए थे;

(५) बहुतेरे चौहान ठाकुर [वहाँ] निवास करते थे। प्रजा-पवनियों की गिनती कौन जानता ? (६) [वहाँ की भरी गलियों में] चंप (दब) कर बहुतेरे दलित-मृदित हो उठते थे, और उन में चला-फिरा नहीं जाता था। (७) यदि बीस दिनों तक भी गोवर में कोई निवास करता, तो भी वह मनुष्य चलते हुए [मार्ग] भूल जाता।

(२६)

'राइ कुरी' 'कइ' 'बइस अथाईं'। हम फुनि 'ठाढ' भए तहां जाईं।
अति 'बिदवांस' पंडित 'ते पढे'। 'रूपि बेरासि दइय के गढ़े'।
अधरन 'लागइ' पान चबाहीं। दांत ति मुख 'महिं' 'दीसहिं' नाहीं।
दान झूझ 'के' 'बिरुद बोलावहिं'। 'भांटन्हि कापर घोर देवावहिं'।
हाथ खरग 'वै अरि' सिर देही। 'बैरिन्ह ऊपरि' बीरा लेहीं।
'छत्तीस कुरी' राजपुत 'भूंजहिं सासन गांउं'।
'देस के डांड आव महरइं कहं' तिन्ह कुंवरनि के 'नांउं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६; बी० ८१-८३।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते मजलिसे तरकश बन्दाने राय महर गोयद।
बी० : सिफति रावताह की।

पाठान्तर—(१) १. मै० राजकुरी। २. बी० की। ३. बी० बैठ औथाई। ४. मै० मैं नहीं है। (२) १. बी० बिधवांस। २. बी० तोहि पठा। ३. बी० रूपि मदन गति बिधना गढ़ा। (३) १. बी० लागै। २. बी० महि। ३. मै० सूझहिं। (४) १. मै० कर। २. बी० बिरद बुलावहिं। ३. बी० भाटेहि कौंपरु देहि दिवावैहि। (५) १. मै० बैरिन्ह (दे० दूसरा चरण)। २ बी० बैरी उपरी। (६) १. बी० छतीस्यौं कुरि। २. बी० भूचहिं सहंस ये गाँव। (७) १. बी० देस का डंडु महर कै आवै। २. बी० नाव।

अर्थ—(१) राजकुल के लोगों की वहाँ अथाई (गोष्ठी) बैठती थी, पुनः हम भी वहाँ जाकर खड़े हो गए। (२) वे अत्यधिक विद्वान् तथा पढ़े हुए पण्डित थे और रूप तथा विलास के लिए दैव के द्वारा निर्मित थे। (३) वे पान चाबते रहते थे, जो उनके अधरों पर लगता रहता था; [पान से रंग कर लाल हो जाने के कारण] उनके मुखों में जो दाँत थे वे दिखते नहीं थे। (४) वे दान और युद्ध के विरद [भाटों से] बुलवाया करते थे, और पुरस्कार में उन भाटों को कपड़े तथा घोड़े दिलाते थे। (५) वे खड्ग का हाथ वैरियों के सिरों पर देते थे, और वैरियों के ऊपर [खड्ग चलाने के लिए] वे बीड़ा लेते थे। (६) ऐसे छत्तीस कुलों के राजपुत्र [राज्य में] शासनादेशों से प्राप्त ग्रामों का भोग करते थे। (७) उन कुमारों (कुमारभुक्तों) के नामों से महर को देश भर के दण्ड (कर) आते रहते थे।

(२७)

'सून' फूल 'हाटन्ह सब' फूला। 'जिउ बिमोहि गा' देखत भूला।
अगरु चंदनु 'सबु' धरा बिकाई। कूंकूं 'परिमल' सुगंध 'खंधाईं'।
'बेनां अउरु' 'कपूर' सुहावा। 'मेद' 'कस्तूरी महंक सनावा'।
पान 'उडांगर (अडागर)' सुरंग सोपारी। जैफर लौंग बिकाइ 'छुहारी'।
'दौनां' मरुवा 'कुंद' निवारी। गूंदे 'हार' ति 'बेचहिं' मारी।
खांड 'चिरउंजी' दाख खुरुहरी बहुतइ लोग 'बेसाहिं'।
हीर 'पवार' 'सोन भल' कापर 'जत चाहिय सब आहिं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०; बी० ८४-८६।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते बाज़ार इत्रियात शहरे गोवर व ख़रीदने ख़ल्क़।

पाठान्तर—(१) १. बी० सोवन। २. बी० हाटन (?) भल। ३. बी० जीउ बिमोहा। (२) १. बी० सभु। २. मै० परीमल (परिमल)। ३. बी० सुहाइ। (३) १. बी० बीना औरु। २. बी० कफूर। ३. मै० मोद। ४. बी० कस्थूरी मह घसि ह्लावा। (४) १. मै० नगरखंड। २. बी० चहारी। (५) १ बी० दोन। २. बी गूद। ३. बी० हर। ४. बी० बेचिहै। (६) १. बी० चिरौंजी। २. बी० बसाहि। (७) १. मै० पंवर। २. बी० बहु। ३. बी० भवै अैसे अैसे सांहि।

अर्थ—(१) [गोवर की] हाटों में सभी [प्रकार के] प्रसून तथा फूल फूल रहे थे। उनको देखते ही जी बिमुग्ध हो जाता और भ्रमित हो जाता था। (२) अगुरु और चन्दन—सभी [उन हाटों में] रखे हुए बिकते रहते थे; कुंकुम, परिमल [आदि] सुगन्धित द्रव्य महकते रहते थे। (३) बीरण (खस) और सुहावना कर्पूर था, मेद था, और कस्तूरी थी जो महक से सनी हुई थी; (४) अडाकर (समूचे) पान और अच्छे रंग की सुपारी थी, जायफल, लवंग तथा छुहारी बिकते थे; (५) दौना, मरवा, कुंद और निवारी [के] गूंथे हुए हार माली बेचते रहते थे। (३) खांड, चिरौंजी, दाख (मुनक्का) तथा खुरहुरी को बहुतेरे लोग मोल लेते रहते थे। (७) हीरा, प्रवाल, सोना और अच्छा कपड़ा, जितना भी चाहिए, सभी था।

(२८)

'हाट छरहंटा पेखन' होई। 'देखहिं' निसरि 'मनुस अउ' जोई।
बरुवा राम रमाइनु कहहीं। गावहिं गीत नांच भल करहीं।
बहुरूपी 'बहु भेस फिरावा'। बार 'बूढ' चलि 'देखइ आवा'।
'राधा कान्ह देस छद ल्यावहिं'। मटकि मूंड 'मसि देह चरावहिं'।
'गावहिं गीत औ (अउ) कहहिं' पंवारा। नट नाचहिं 'अउ' बाजहिं तारा।
'भामनगारी' कोड 'चरित हम देखा होइ' अपार।
'अंछ' बधावा 'गोवर' 'घरि घरि मंगराचार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११; बी० ९०-९२।

शीर्षक—मै० : सिफ़त बाजीगरां दर बाज़ार शहर गोवर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० हाट चढ़ें तो पिषिना अस। २. बी० ते देषति। ३. बी० मनु औ। (३) १. बी० चहु भेस फिरावहि, मै० बहु फेस (भेस) फिरावा। २. मै० बूड। ३. बी० देषन आवहि। (४) १. मै० रासइं गावहिं भल छद लावहिं। २. बी० लै निसेहि चरावहि। (५) १. मै० कीनर गावहिं होइ। २. बी० औ। (६) १. बी० भाटमगारी। २. बी० रचित देषत सबै। (७) १. बी० इछ। २. बी० गोवर। ३. बी० घर घर मंगलचार।

अर्थ—(१) उन हाटों में छरहंटा (छल-कृत्य) के प्रेक्षणक (तमाशे) होते रहते थे, जिन्हें पुरुष और स्त्रियाँ निकल-निकल कर देखते थे। (२) बरुवा (वटु) राम का रामायण कहते थे, वे गीत गाते थे और अच्छा नृत्य करते थे। (३) बहुरूपिए अनेक वेष धारण करते रहते थे, जिन्हें चल कर देखने के लिए बालक-वृद्ध [सभी] आते थे। (४) वे राधा-कृष्ण के सुन्दर छद्म लगाते (धारण करते) थे तथा वे [राधा के छद्म के लिए] सिर पर मटकी और [कृष्ण के छद्म के लिए] देह पर मसि चढ़ाते (लगाते) थे। (५) वे गीत गाते और पंवारे कहते थे, नट नृत्य करते और [उन नृत्यों पर] ताल बजते थे। (६) हमने देखा कि वहाँ पर भुलावे में डालनेवाले अपार खेल तथा चरित्र होते थे। (७) गोवर [भर] में बधावा और घर-घर में मंगलाचार होता रहता था।

(२९)

'कहउं महर सीह' बारु 'बखांनी'। 'बइठ सींह गढ़ि धरे' बिनांनी।
'बहुत' 'बीर' तिन्ह देखि पराहीं। हिएं लाग डर 'खेंदि' न खाहीं।

'देखत पवरि डीठि' फिरि जाई। एक सूति 'सुतिहार' उचाई।
'ओपि' रूप 'कइ' पानीं ढारा। अस 'कइ' महर दुवार 'संवारा'।
सात लोह 'एकहिं' 'औटाए'। बजर केवार 'पंवरि गढ़ि लाए'।
'राति जु' 'बइसइ' चौकी कुंत खरग 'रह' छाइ।
पाखर 'सहस साठ फिर' 'चांटहिं' संचरि न जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२, बी० ८७-८९।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते दरबारे राय महर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहौं महर सभ (?)। २. मै० बखानी। ३. बी० बैठ (?) स्यंघ घरि धरौ। (२) १. बी० चाहत। २. बी० बी। ३. बी० षीर। (३) १. बी० देखि पौरि दिष्टि। २. मै० सुतिघार। (४) १. मै० औटि। २. बी० कै। ३. बी० कै। ४. बी० दुवारा। (५) १. बी० केये। २. बी० औटाइ। ३. बी० पौरि धरि लाइ। (६) १. मै० रातिहिं। २. बी० बैसहि। ३. बी० रहि। (७) १. बी० साठिन आगर। २. बी० चींटी।

अर्थ—(१)[अब] मैं महर के सिंह-द्वार को बखान (वर्णन) कर कह रहा हूँ, [जिस पर] सिंह बैठे हुए थे, जिन्हें विज्ञानी (सुतारों—गढ़ने वालों) ने गढ़कर (बना) रखा था। (२) बहुतेरे वीर [भी] उन्हें देख कर भाग जाते थे, उन्हें हृदय में डर लगता था कि वे दौड़ा कर (पीछा कर) उन्हें खा न जाएँ। (३) उस पौरी को देखते दृष्टि फिर जाती थी (उस पर ठहरती नहीं थी), [लगता था कि] सूत्रधार ने एक ही सूत (नाप-जोख) में उसे उठाया था। (४) उसको चमकाकर [उस पर] रौप्य (चाँदी) का पानी ढाला हुआ था, इस प्रकार से महर का द्वार संवारा हुआ था। (५) सात [चादरों के ?] लौहों को एक में औटा कर बनाए हुए वज्र (फ़ौलाद) के कपाट उस पौरी में गढ़ कर लगाये हुए थे। (६) रात्रि में (उस पर) जो चौकी बैठती थी (जो पहरेदारी होती थी), [उसके] कुन्त (बर्छे) और खड्ग छाये रहते थे, (७) साठ सहस्र पाखरे हुए (कवचित) सैनिक फिरते [हुए पहरा देते] थे, [जिसके कारण] चींटे से भी वहाँ संचरण नहीं किया जाता था।

(३०)

फुनि 'हउं कहउं' 'धौरहर' बाता। 'ईंगुर' पानि 'ढारि किय' राता।
सत 'षंड' पाटा 'अनवन' भांती। 'स(सा)ठि' चौखंडी 'भई जिन्ह' पांती।

'असि' रचना 'किय' कौन बिनानी। 'साठि' करस 'लै' धरे 'सोनवानी'।
चउरासी सै(सइ) 'भांति' उचाई। लिषी देररीं 'अतें' सुहाई।
कनक खंभ 'जडि' मानिक 'धरे'। जगमगाहिं 'जनु तरईं' भरे।
अगरु चंदन 'उषंटना' 'अछइ' 'सुहाई' बासु।
देवलोक 'अस' भाषहिं 'म कहुं आहि कबिलासु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३; बी० ९३-९५।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते क़सरहाय राय महर गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ कहौ। २. मै० धौराहर। ३. बी० हींगुर। ४. बी० ढरि किही। (२) १. बी० षिन। २. बा० अनअन। ३. मै० सात। ४. बी० भइ बहु। (३) १. बी० अस। २. बी० की। ३. मै० सात। ४. मै० में नहीं है। ५. बी० सुवानी। (४) १. मै० में नहीं है। २. मै० अती। (५) १. बी० जानौं। २. बी० जरे। ३. बी० जानौ तरियर। (६) १. मै० दुहुं तूलइं। २. बी० अछै। ३. मै० सुहावनि। (७) १. बी० सभ। २. बी० सुष ही आई बिलासु।

अर्थ—(१) पुनः (इसके अनन्तर) मैं धवल-गृह (राज-प्रासाद) की बात कह रहा हूँ, जो हिंगुल का पानी ढाल कर राता (लाल) किया हुआ था। (२) उसका सतषंडा (सप्तभौमिक प्रासाद) अनोखी भाँति से पाटा हुआ था, और उसमें सात चौखण्डियाँ थीं जिनकी पंक्तियां [बनी] हुई थीं। (३) ऐसी रचना किस विज्ञानी [विश्वकर्मा] ने की थी ? (सातों चौखण्डियों पर) साठ कलश ले (बना) कर रखे हुए थे, जो सोने का पानी किए हुए थे। (४) [महर की चौरासी रानियों के लिए] चौरासी [सदन] सुन्दर (?) भाँति से उठाये हुए थे, जिनमें अत्यधिक सुहाई देररिएँ (धारियाँ ?) लिखी (खिची ?) हुई थीं। (५) सोने के खम्भ माणिक्यों से जटित होकर रखे हुए थे, जो ऐसे जगमगाते थे जैसे वे तारिकाओं से भरे हुए हों। (६) अगुरु, चन्दन तथा उषंटने (?) की सुहावनी वास [उनमें] बनी रहती थी। (७) देवलोक [के प्राणी] ऐसा कहते थे कि "कहीं यही तो कैलास (शिवलोक) नहीं है ?"

(३१)

राइ महर रानीं 'चउरासी'। इक इक के 'तर' चेरि 'इकासी'।
'बेगर' बेगर 'होइ जेवनारा'। बेगर मंदिर सेज संवारा।
पाट 'महादे' फूला रानी। सबइ 'अचेति वह अही' सयानी।

अगर चंदन फूल 'अउ' पानूं। कूंकूं मेद न 'बेरसहिं आनूं'।
रचे हिंडोला झूलइं नारी। गावहिं अपर सब जोबन बारी।
अरथ दरब 'घोर अउ हस्ति(हस्ती)' गिनत न आवइ काउ।
अन धन पाट 'पटोर भल' 'कउतुक भूला' राउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४; बी० ९६-९८।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते हरमां राय महर किहश्ताद व चहार बूदंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० चौरासी। २. बी० कै घर। ३. बी० यीक्यासी। (२) १. बी० बेग। २. बी० हैइ ज्यैंनारा। (३) १. मै० महादेवि। २. बी० अचेती उहै। (४) १. बी० औ। २. बी० कवरि तन वानू। (५) बी० में यह पंक्ति हाशिए में मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा इस प्रकार दी हुई है : चरे (रचे ?) हिंडो [ला] उवरै ना [री] : गावहिं गी[त] सब जो[ब]न बारी। (६) १. बी० औ घोर बर। (७) १. बी० पटोरा हस्ती। २. बी० तीस कौअर।

अर्थ—(१) राजमहर की चौरासी रानियाँ थीं, और एक-एक (रानी) के नीचे (साथ) इक्यासी-इक्यासी चेरियाँ थीं। (२) उनके ज्यौनार अलग-अलग होते थे, और अलग-अलग मन्दिरों (भवनों) में उनकी शैयाएँ सँवारी जाती थीं। (३) पट्ट महादेवी फूला रानी थी; और सब रानियाँ अचेत (मुग्धा) थीं, एकमात्र वही सयानी (प्रौढ़ा) थी। (४) अगुरु, चन्दन, पुष्प, सज्जित तांबूल, कुंकुम और मेद का भोग वही करती थी, अन्य [रानियाँ] नहीं करती थीं। (५) हिंडोले रचे हुए थे, जिन पर नारियाँ झूलती थीं; अन्य सब यौवनवती बालिकाएँ गीत गाती थीं। (६) महर के अर्थ, द्रव्य, घोड़ों और हाथियों को कदापि नहीं गिना जा सकता था। (७) राजा (राजमहर) अन्न, धन, पाट (रेशम), अच्छे और पट्टकूल (रेशमी वस्त्र) के कौतुक में भूला रहता था।

३. चांदा-जन्म एवं विवाह खण्ड

(३२)

सहदेव मंदिर चांद 'अवतारी'। धरती सुरगि भई उजियारी।
'पहिलिइं' घरी 'भएउ' अवतारू। 'दुइ रातन(नि) जानौ' 'सयंसारू'।
'सातव' चंद्रु नखत भा मांगा। जानौं सूरु दिपइ 'तिसु' आंगा।

भई सपूरन 'चउदसि' राती । चांद महर 'धिय पदुमिनि' जाती ।
राहु केतु 'दुइ' सेव कराहीं । 'सूकु' 'सनीछरु' 'पहरइं' जाहीं ।

'अउर' नखत 'ओरगावन' आछहिं 'पंवरि' दुवारि ।
चांद चलत नर 'मोहहिं' जगत 'भएउ' उजियार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५; बी० १०३-१०५ ।

शीर्षक—मै० : तवल्लुद शुदने चांदा दर ख़ान-ए-महर व ख़िदमत फ़रदने हमह सितारगान ।

बी० : जिस पृष्ठ पर यह कडवक आता है, उसके ऊपरी हाशिए में मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में लिखा हुआ है "चांदा कौ जनमु ।" प्रसंग एक कडवक पूर्व प्रारम्भ होता है, जो (३१ अ) के रूप में परिशिष्ट में दिया गया है, और वह कडवक प्रति में पूर्ववर्ती पृष्ठ पर है, यह भी विचारणीय है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० औतारी । (२) १. बी० पहली । २. बी० भयो । ३. मै० दूज क चांद जानु । ४. बी० संसारू । (३) १. बी० सातवै । २. मै० चह । (४) १. बी० चौदसि । २. बी० घरि पदमनि । (५) १. बी० दोउ । २. बी० शूकु । ३. मै० सनीचर । ४. बी० पहरैं । (६) १. बी० और । २. बी० उरगावन । ३. बी० पौरि । (७) १. बी० मोहे । २. बी० भयो ।

अर्थ—(१) सहदेव के घर में चांद ने अवतार लिया तो धरती और स्वर्ग (आकाश) में उजाली (चांदनी) हो गयी । (२) [रात्रि की] प्रथम घड़ी में ही अवतार हुआ था, इसलिए संसार में मानो दो रातें हुई थीं । (३) उसकी माँग में सप्तमी का चन्द्र नक्षत्र [-वत्] हुआ, और उसके अंग (शरीर) में मानो सूर्य दीप्त हो रहा था । (४) [इस प्रकार] रात्रि सम्पूर्ण रूप से चतुर्दशी की हो गई, और पद्मिनी जाति की महर की वह कन्या [उसका] चांद हुई । (५) राहु तथा केतु दोनों उसकी सेवा कर रहे थे और शुक्र तथा शनैश्चर पहरे पर जा बैठे थे । (६) अन्य नक्षत्र उसकी सेवा में [उपस्थित होकर] उसकी पौरी के द्वार पर थे । (३) चांद से [उसको देख कर] मार्ग चलते हुए लोग मुग्ध हो जाते थे, और जगत् [उससे] प्रकाशित हो गया था ।

(३३)

'पांचउं' दिवसु छठी भइ राती । 'नेउता' गोवर 'छतीसउ' जाती ।
घर घर 'कहं कर टेका' आवा । 'अउ' तेहि 'पाढे (पाछें)' 'बाज बधावा' ।
महरीं सहस 'सात' इक 'आईं' । आंग मूंड 'सेंदुर अन्हवाईं' ।
बांभन सभा आइ 'जो' बईठी । काढि पुरानु रासि गनि दीठी ।
'छठी क' आखरु 'दीख लिलारा' । 'उरधइ सों जाइहि' 'जम बारा' ।

अगिनि 'पुरगु भा चांदहि' 'औ (अउ)' कट 'छुई' न जाइ ।
जस उजियारें 'फतिंगा' 'मरिहहिं' राइ उडाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६, बी० १०६-१०८ ।

शीर्षक—मै० : रोज़े पंजुमे शशमी शबे ज़ियाफ़ते रवांदा करदन व दीदन जुन्नार दां (दारां) तालअ् ।

पाठांतर—(१) १. बी० पाँचवों । २. बी० न्यैंता । ३. बी० छतीसै । (२) १. मै० सभ कर नेउता । २. बी० औ । ३. मै० ऊपर । ४. बी० बाजि बजावा । (३) १. बी० तीस । २. बी० आनी । ३. बी० सब सिंदुर अन्हवानी । (४) १. बी० जु । (५) १. बी० छठि का । २. बी० लिष्या लिलारू । ३. बी० उधरै सौ जाइहै । ४. बी० जमबारू । (६) १. बी० बरनु भया चांदेहि । २. मै० अउर । ३. बी० छुवन । (७) १. बी० फनका (फतिंगा—फ़ा०) । २. बी० मरिहैं ।

अर्थ—(१) पाँचवें दिन को ही रात में [जब चांदा के जन्म की छठी रात थी] उसकी छठी हुई, गोवर की छत्तीसों जातियाँ आमन्त्रित हुईं । (२) [निमन्त्रण के उत्तर में] घर-घर का कर-टेका (नमस्कार) आया, और उसके बाद [उनके] बधावे बजे । (३) [तदनन्तर] लगभग सात सहस्र महरियाँ आईं, जो अंग तथा शिर में सिन्दूर से स्नात थीं । (४) ब्राह्मणों (पंडितों) की सभा जो आकर बैठी, उसने पुराण (ज्योतिष-ग्रंथ) निकाल कर उसकी राशि गिन कर देखी । (५) [उन्होंने कहा,] "[इस कन्या के] ललाट में छठी का यह अक्षर (लेख) दिखाई पड़ रहा है कि ऊर्ध्व (अपने जीवन के सर्वोच्च समय) में ही यह यम-द्वार को जाएगी । (६) चांदा को अग्नि का पुटक (आच्छादन) हो गया है, और उसकी कट (शरीरयष्टि) [इस कारण] छुई नहीं जा सकती है । (७) जिस प्रकार [दीपक के] प्रकाश के लिए पतिंगे, उसी प्रकार [इसके रूप के लिए] राजा-गण उड़-उड़ कर आएँगे और मरेंगे ।"

(३४)

'बरहें' मांस 'देसि' गई बाता। धौर समंद 'माबर' गुजराता।
तिरहुति अवधि 'बदांऊं जानी'। चहूं भुवन 'असि' बात बखानी।
'गोवर हि' आहि महर 'कइ धिया'। 'चांद नांउं' धौराहर 'दिया'।
'असि तिरिया' 'जउ मांगे पाइय'। अरथ लाइ 'कइ' 'ब्याहइं जाइय'।
'राजा' के नित 'बरउत' आवहिं। बहुरि जाहिं 'पइ' उतरु न 'पावहिं'।

महरु 'कहइ' को 'मोरें जोगित' 'कासों करउं बिबाहु'।
टिकइतु 'मित सब को आहइं' जाति न 'देखउं काहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७, बी० १०६-१११।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जमाल सूरते चांदा दरहमः शहरहा मुश्तहिर शुद।

पाठांतर—(१) १. बी० बरहैं। २. मैं० में नहीं है। २. बी० मारव। (२) १. बी० चांद उजियानी। २. बी० अस। (३) १. बी० गोवर। २. बी० की धीया। ३. बी० सरग चांद। ४. बी० दीया। (४) १. बी० अस तिरियौ। २. बी० मागें जौ पइयहि। ३. बी० कैं। ४. बी० जाइ बिवाहहि। (५) १. बी० राजे। २. बी० परियत। ३. बी० पै। ४. बी० पावैहि। (६) १. बी० कहै। २. बी० मोरि जुगति। ३. बी० का तासौ करैं बिहाउ। (७) १. बी० परयतु कोय को देषो। २. बी० देषौं काउ।

अर्थ—(१) बारहवें महीने में [यह] बात देश में फैल गयी—वह धुर समुन्द (द्वार समुद्र), माबर (दक्षिण भारत का पूर्वी समुद्र तट) और गुजरात [तक] जा पहुँची; (२) तिरहुत, अवध तथा बदाऊँ ने यह बात जानी और चारों भुवनों में यह बात इस प्रकार बखानी गई (वर्णित हुई), (३) "गोवर में ही महर की एक कन्या है, जिसका नाम चांदा है और जो [महर के] धवल-गृह (प्रासाद) का दीपक है। (४) ऐसी स्त्री यदि माँगने से पा सकिए, तो अर्थ (संपत्ति) लगा कर उसे ब्याहने के लिए जाइए।" (५) राजा (महर) के पास नित्य बर होने के आकांक्षी आते थे, वे लौट जाते थे किन्तु उत्तर नहीं पाते थे। (६) महर कहता था, "मेरी योग्यता (जोड़ी) का कौन है जिससे मैं (कन्या का) विवाह करूँ? (७) टिकइत (तिलकधारी) तथा मित्र सभी कोई (बहुतेरे) हैं, किन्तु [उनमें से] किसी में [अपनी] जाति नहीं देख रहा हूँ।"

(३५)

'चउथें बरिसि धरिसि' जउ पाऊ। 'जइत' बोलावा बांभन 'नाऊ'।
दीन्हि सुपारी 'मोतिन्ह' हारू। 'कहिहु' महर 'सों' मोर 'जुहारू'।
'अउ अस कहेहु' 'मोर तूं' भाई। 'राजा नइ कइ करहु' सगाई।
'औ' जस 'जानि[सु]' 'कहिसु' संवारी।
'जइसइं बर घर सुनी(नि) रे संकारी'।
महर 'कैं राध' 'गवनहुं पइ' आजू। हम चाहत 'सु(सो) कीजै' काजू।

'एत कही कइ' बांभन नाऊ 'दोऊ' 'दीत' चलाइ।
बरी चांद बावन 'कहुं' बेगि 'कहउ' मोंहि आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १८; बी० ११२-११४।

शीर्षक—मैं० : फ़रिस्तादन राए जैत बरंभन व हज्जाम रा बर महर बराए पैग़ाम बावन रू।

पाठान्तर—(१) १. बी० चौथैं बरसि धरसि। २. बी० ज्योतिषि। ३. बी०·····न्हाउ। (२) १. बी० मोतिका। २. बी० कहसि। ३. बी० सौं। ४. बी० छुहारू। (३) १. बी० औ अस कहौ तु। २. बी० तु मोर त। ३. बी० मोसैं नवि करि करौहु। (४) १. मैं० और। २. बी० जानौहु। ३. बी० कहहु। ४. बी० जैसे पुरषु न पावहि गारी। (५) १. मैं० कहेसि। २. बी० कहौन। ३. मैं० हहिं आपन। (६) १. बी० अस करि करियहि। २. बी० दाउ। ३. मैं० दीन्ह। (७) १. बी० कौंहु। २. बी० कहहु।

अर्थ—(१) जब उस (कन्या) ने चौथे वर्ष में पैर रखा, जैत ने ब्राह्मण तथा नाई को बुलाया। (२) उन्हें [उसने] सुपारी दी तथा मोतियों का हार दिया और कहा, "महर से मेरा जुहार कहना, (३) और ऐसा कहना, 'तुम मेरे भाई (जाति के) हो, इसलिए हे राजा, तुम मुझसे नमित होकर सगाई (संबंध) कर लो।' (४) और भी जैसा-कुछ जानना, संवार कर कहना और जिस प्रकार से भी वर तथा घर [का बखान] सुनकर वह [प्रस्ताव को] सकारे, [उस प्रकार से कहना]। (५) महर के निकट, हो न हो, आज ही जाओ, और हम जो कार्य चाहते हैं, उस कार्य को करो।" (३) इतना कहकर उसने ब्राह्मण तथा नाई दोनों को चला दिया, और कहा, "चांदा ने बावन को वरण किया, यह बात तुम शीघ्र आकर मुझसे कहा।"

(३६)

'बांभन' नाऊ 'गए सीह' बारू। देखि महर 'दुहुं' कीन्ह जोहारू।
महर कहा 'कित' पांडे आवा। 'ओहट लहि अवधारिय' पावा।
सुनहुं 'देउ' हम 'जइत' पठाए। धरम लागि 'तुम बिनती' आए।
वोहू आहि 'तुम्हारेउ' भाई। राजा 'नइ कइ' करहु सगाई।
धरम राज 'तुम जुग जुग पावहु'। हम 'दिए' 'बेटी' बोलु सुनावहु।
जाति करम 'गुन' आगर देस मान सभ लोग।
'सुनइ बोल जउ दीजइ बेटी' बावन जोगु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९; बी० ११५-११७।

शीर्षक—मै० : आमदने बरंभन व हज्जाम बर महर व अरज़ करदने पैग़ामे बावन।

पाठांतर—(१) १. बी० बंभन। २. बी० जु गयो दुवारू। ३. बी० तिन्ह। (२) १. बी० कत। २. बी० औहट तौं अवधौरे। (३) १. बी० देव। २. बी० जैह। ३. बी० अस बीनति। (४) १. बी० तुम्हारा। २. बी० नवि करि। (५) १. बी० तुम्ह जाग जु पावोहु। २. बी० दे। ३. मै० बेटी। (६) १. बी० कर। (७) १. बी० सुनै बोल जौ बेटी दीयहि।

अर्थ—(१) ब्राह्मण और नाई [सहदेव महर के] सिंह-द्वार पर गए, और महर को देखकर दोनों ने जुहार की। (२) महर ने कहा "पांडे (पंडित), तुम कहाँ (किस प्रयोजन से) आए हो? ओहट (दूर) से [निकट] पैर अवधारो (रक्खो)।" (३) [पंडित ने कहा,] "हे देव, सुनो; हम जैत के भेजे हुए हैं, और धर्म [के कार्य] के लिए तुम्हारे पास बिनती [करने] आए हुए हैं। (४) वह भी तुम्हारा भाई है, हे राजा, [अतः] तुम [उससे] नमित होकर सगाई (संबंध) कर लो। (५) तुम युगयुगान्तर तक के लिए धर्म का राज्य पाओ; 'हमने कन्या दी'—यह वचन सुनाओ। (६) जाति, कर्म तथा गुणों में वह अग्र (बढ़ा-चढ़ा) है और देश में सभी लोग उसको मानते हैं (उसका सम्मान करते हैं)। (७) [हमारी बिनती है कि] वह यह बात सुने कि आप बावन की जोड़ के लिए अपनी बेटी दे रहे हैं।"

(३७)

सुनु साधू तू पंडित सयानां। 'गनित कार' कस 'होसि' अयानां।
छठि 'आठइं कइसें' जुर रासी। 'घरी धरसि अउ' गनत भुलासी।

अस फुनि 'असकिति' करी न जाई। 'पाछें रहइ न तोरि' बडाई।
नेह सनेह 'जउ पुरत न' होई। 'कहां क पुरुखु' 'कहां कइ' जोई।
'दइय क लिखना जो पइ आहा'। 'ताकों हम तुम करिहहिं काहा'।
तोर कहा 'हउं कैसे मेटउं' सुनि 'कइ रहउं' लजाइ।
'गनत रासि जनि भूलहि' 'पाछें' होइ 'पछिताइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०; बी० ११८-१२०।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने बरंभन व हज्जाम का अज तालअ् चाँदा व बावन।

पाठान्तर—(१) १. बी० गनतकार। २. बी० होइं। (२) १. बी० आठै कैसे। २. बी० षरी (घरी—फ़ा०) धरत औ। (३) १. बी० असगति। २. बी० पाछौ रहै न तोर। (४) १. बी० जौ न पै। २. बी० कत कर पुरिषु। ३. बी० कहो कर। (५) १. बी० दई कर लिखा जो रु पै अहा। २. बी० तिह कउ हउं तू कहिहैंह कहा। (६) १. बी० हौ कैसै मेटौ। २. बी० कैं रहौं। (७) १. बी० गिनतकार जिनि भूलहु। २. बी० पाछै। ३. बी० गुहराइ।

अर्थ—(१) [सहदेव महर ने कहा,] "ऐ साधु (सज्जन पुरुष), सुन; तू सज्ञान पंडित है; तू गणित करने वाला है, [फिर] तू कैसे अज्ञ हो रहा है? (२) छठी (कन्या) तथा आठवी (वृश्चिक्) राशियाँ कैसे जुड़ सकती हैं? तू घड़ी का निर्धारण कर रहा है और गणना करते हुए भूल रहा है? (३) पुनः, ऐसी असत्कृति की नहीं जाती है, क्योंकि [ऐसा करने से] पीछे तेरा बड़प्पन न रहेगा। (४) यदि नेह-स्नेह पूरा न पड़ता हो, तो कहाँ का पुरुष [रहा] और कहाँ की स्त्री [रही]? (५) दैव का लिखा जो भी है, उसको हम और तुम क्या कर सकेंगे? (६) तेरा कथन मैं कैसे मिटाऊँ? [किन्तु] उसे सुन कर मैं लज्जित हो रहा हूँ। (७) राशियों की गणना करते हुए तू भूल न कर कि पीछे पछतावा हो।"

(३८)

'बांभन' टेक बोल 'कइ' पाई। 'बरउ' चांद 'रह' 'मोरि' बडाई।
'तूं नरिंद' देस 'कर' राऊ। तो कहुं 'बुरह न आवइ' काऊ।
रासि 'गनित कर' नांउं न 'लीजा'। 'दइ[य]आनि बिचि' बेटी 'दीजा'।

'दइय' लागि काजु जो करा । 'ता कहुं' धरमु दुहूं जगि धरा ।
बांभन बोलु महर 'जउ' मानां । 'गूवक बिरचि' देवाए पानां ।
सेंदुर फूल 'चढ़ाए' 'अउ मोतिन्ह' 'गैं (गियं) हार' ।
दीत 'चांदा बावन कहं' तीरि लाउ करतार ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१; बी० १२१-१२३ ।

शीर्षक—मैं० : बाज़ नमूदने ज़ुन्नारदार पैग़ामे बावन व क़बूल करदने महर व दहानीदने नेग ।

बी० में बाएँ हाशिए में इस कडवक के सामने मूल प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति का लिखा हुआ है 'चांदा बावनैं दीन्ही' ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बाभनि । २. बी० की । ३. बी० बरौ । ४. बी० रहि । ५. बी० मोर । (२) १. बी० तू नरयंद । २. बी० कौं । ३. बी० बुरा न आवै । (३) १. बी० गिनतकरा । २. बी० लीया । ३. मैं० देइय जइत घर । ४. बी० दीया । (४) १. बी० दइ । २. मैं० ताकर । (५) १. बी० जौ । २. बी० गोवा (गूवा—फ़ा०) परच । (६) १. बी० चरावा । २. बी० अब मोती । ३. मैं० गलहार । (७) १. बी० चांद बावन कैं ।

अर्थ—(१) ब्राह्मण को बोलने के लिए टेक मिल गई और उसने कहा, "आप चाँद को वर (ब्याह) दें तो मेरी बड़ाई रहेगी । (२) आप नरेन्द्र हैं और देश के राजा हैं, आपको कोऊ बुरा (अनिष्ट) कदापि न आएगा । (३) राशि-गणना का नाम न लीजिए, दैव को बीच में ला कर अपनी कन्या दीजिए । (४) दैव के सहारे से जो कोई भी कार्य करता है, उसकों (उसके लिए) धर्म दोनों जगत् में रक्खा (सुरक्षित) रहता है । (५) जब महर ने ब्राह्मण का वचन मान लिया, उसने [जइत की भेजी हुई] गूवा (सुपारी) का सत्कार कर [सम्बन्ध-स्वीकार-सूचक] पान दिलाया; (६) उस पर सिन्दूर और फूल चढ़ाए तथा मोतियों का एक गलहार [उसे दिया] । (७) उसने चाँदा बावन को दी और कहा, "सृष्टिकर्त्ता [इस संकल्प को बाधाओं के समुद्र से खेकर] तट से लगाए ।"

(३९)

तेल फुलेल 'दुवउ' अन्हवाए । 'अपुरुब बस्तर काढि फिराए' ।
'महर' मंदिर 'जेएन्हि जेंवनारा' । 'प(पा)ए' पान भए असवारा ।

दिए असीस फिराए 'बागा' । रहसत चले बोलु 'भल' लागा ।
जाइ 'जइत' घरि 'दीति' बधाई । बरी चांद बावन कहुं पाई ।
'बिहफइ निसि अंधियारि बिहावा' । करहु बियाहु चांद घरि 'आवा' ।
'जइत बुलाए' लोगु 'कुटुंब' जन सुनहु एक मंति आइ ।
'महर' दीति बावन 'कहं' चांदा 'चलहु बियांहइं' जाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २२; बी० १२४-१२६ ।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तन ज़ुन्नारदारा व हज्जाम व बाज़ गुफ़्तन कैफ़ियत निकाह बर जैत ।

पाठान्तर—(१) १. बी० दोउ । २. बी० अपुरब वस्त्र लेइ पहराये । (२) १. बी० महरि । २. बी० जेयें ज्यैंनारा । ३. मैं० लीन्ह । (३) १. बी० पागा । २. बी० टलु । (४) १. बी० जैतु । २. बी० दीन्ह । (५) १. बी० बिप्रहि निसि अंधियार न भावै । २. बी० आवै । (६) १. बी० जैत बुलावा । २. बी० में नहीं है । (७) १. बी० महरि दीत । २. बी० कौं । ३. बी० चलौहु बिवाहि ।

अर्थ—(१) महर ने दोनों को तेल-फुलेल से नहलवाया (स्नान कराया) और अपूर्व वस्त्र निकलवा कर दोनों को पहनवाए । (२) महर के मन्दिर (प्रासाद) में [दोनों ने] ज्योंनार जेंई, पान ग्रहण किए और वे [लौट कर जाने को] सवार हुए । (३) [उन्होंने महर को] आशीर्वाद दिया और बागा पहना, [तदनन्तर] वे हर्षित होते हुए चल पड़े, क्योंकि उन्हें [महर का] वचन भला लगा । (४) जैत के घर जा (पहुँच) कर [उन्होंने] बधाई दी और कहा, "चाँदा ने बावन को प्राप्त कर उसका वरण किया । (५) [वार-विशेष तथा चाँदा की धाय] बृहस्पति और अँधेरे पक्ष की रात्रि को छोड़ कर ब्याह करो तो चाँद (चाँदा) घर आ जाएगी ।" (६) जैत ने अपने आत्मीयों तथा कुटुम्बी-जनों को बुलाया और कहा, "आ कर एक मति (विचारणीय बात) सुनो, (७) महर ने चाँदा बावन को दी है; चलो जा (चल) कर उसे ब्याह लाएँ ।"

(४०)

भार सहस 'दुइ' लाडू 'लावन' । 'जाजर पापड भए पकावन' ।
'कीत' 'खिरउरा अउ' कुसियारा । बहुल 'कं(खं)डौर भए' असंभारा ।

चीर पटोर फिराए बागा। 'टांका लाख सौ' अभरन लागा।
डांडी असी नवै इक 'चली'। इक इक 'चाहि सो' इक इक 'भली।'
सात आठ सै घोर पलाने। भए असवार राइ 'अउ' राने।
'जस' बसंत रितु टेसू 'फूलें' चहुं 'दिसि देखिय' रात।
भाट 'कलावंत' भररिया 'तुरिया' तस होइ चली बरात॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३; बी० १२७-१२९।

शीर्षक—मैं० : रवाँ करदन जैत बराय निकाह बर करदन दरखानः राय महर।

बी० में बायें हाशिए में इस कडवक के सामने कदाचित् भिन्न व्यक्ति के हस्तलेख में लिखा हुआ है : बरात चाली।

मैं० में (२)।२ में 'कंडौर' शब्द बाद में और कदाचित् प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा बढ़ाया गया है।

पाठान्तर—(१) १. बी० दोइ। २. बी० लवाना। ३. बी० चाचर (जाजर—फ़ा०) पापर भये पकवाना। (२) १. मैं० कीन्ह। २. बी० षिरौरा औ। ३. बी० लाद सिविलड। (३) १. बी० टंका लाखु सैं। (४) १. बी० चाली। २. बी० चैहि स। ३. बी० भाली। (५) १. बी० औ। (६) १. बी० जैसैं। २. बी० में नहीं है। ३. बी० दिस दीसै। (७) १. बी० बिदावंत। २. बी० में नहीं है।

अर्थ—(१) दो सहस्र भार (बैलों के बोझ ?) लावन (लावण्य पूर्ण) लड्डू, जर्जर (खस्ता) पापड़ तथा [अन्य] पक्वान्न हुए। (२) खिरौरे (दूध के लड्डू) और कुसियारे (गोझे) किये (बनाये) गए; खंडौर (?) तो इतने अधिक हुए कि वे सँभाले नहीं जा रहे थे। (३) बरातियों को चीर (सूती वस्त्रों) तथा पटोर (रेशमी वस्त्रों) के बागे पिन्हाए गये, सौ लाख टंकों के आभरण [उनकी सज्जा में] लगे हुए थे। (४) अस्सी-नब्बे के लगभग डाँडियाँ (पालकियाँ) चलीं, और वे एक से एक अधिक सुन्दर (सुसज्जित) थीं। (५) सात-आठ सै घोड़ों पर पलानें पड़ीं, [जिन पर] राजे और राने सवार हुए। (६) जिस प्रकार बसन्त ऋतु में टेसू (किंशुक-पुष्प) के फूलने से चारों दिशाएँ लाल दिखाई पड़ती हैं, (७) उसी प्रकार भाटों, कलावन्तों, भरडा बजाने वालों तथा तुरही बजाने वालों से [सज्जित] होकर बारात चल पड़ी।

(४१)

जहां 'महर' 'पटसारि' संवारी। आनि बरात 'तहां बइसारी'।
'छींपर' नेत पटोर बिछाए। 'कुसुंभी' 'एक रंग खंडि' लाए।
'दीया' सहस 'चहूं दिसि बारा'। 'घर बाहेर सभ भा' उजियारा।
मानुस बहुत 'सो देखत' अहा। 'को कहइ' रात दिवस 'कोइ' कहा।
भइ 'जेवनार' फिराए पानां। बेद भनहिं 'बांभन' परधानां।
लाइ 'बरहिं' बावन 'कहं' चांदा आरति 'दीन्हि उतारि'।
जाति 'सरागति देखउं नाहीं' 'पटुवा भुइंहर बारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४; बी० १३०-१३२।

शीर्षक—मैं० : निशानीदने जैत रा दर खानः व ख्वानदन निकाह मियान बावन व चाँदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० महरि। २. बी० पटसार। ३. बी० तही बैसारी। (२) १. बी० छीवर। २. बी० कसूभी। ३. बी० मक खंडी तर। (३) १. मैं० दिया। २. बी० दिसह सँवारा। ३. बी० रात पटोर होय। (४) १. बी० देखतह। २. बी० का कहि। ३. बी० को। (५) १. बी० जिवनार। २. बी० बंभन। (६) १. बी० बरी। २. बी० कौ। ३. बी० महर उतार। (७) १. बी० सरभरि नाहिन देषत। २. बी० तीर लाउ करतार (तुल० पूर्ववर्ती ३८.७)।

अर्थ—(१) जहाँ पर महर ने पटशालिका (शामियानी) सँवार (निर्मित कर) रक्खी थी, वहीं पर बारात लाकर बिठाई गई। (२) छपहुले नेत्र और पटोर वहाँ बिछाए गए, जो वहाँ एक ही—कुसुंभी—रंग के फाड़-फाड़ कर लगाये गए थे। (३) एक सहस्र दीपक चारों ओर जलाए गए थे, जिससे घर में तथा बाहर प्रकाश हो रहा था। (४) [इस प्रकाश को] बहुतेरे मनुष्य देख रहे थे; कोई कहता था कि रात थी, और कोई कहता था कि दिन था। (५) ज्यौनार हुई और सज्जित तांबूल घुमाए गए, प्रधान ब्राह्मण वेद-पाठ कर रहे थे। (६) वर बावन को लगा (लक्ष्य) कर चाँदा ने आरती उतार दी। (७) कौन-कौन सी जातियाँ और जमातें [दर्शकों की भीड़ में] थीं, यह नहीं दीख पड़ रहा था, [यथा] बुनकर थे, भूमिघर थे और बारी थे।

(४२)

'गांउं तीस भल' दइजे पाए । 'भैंस' साठि 'एक' दरबि भराए ।
घोर पचास आनि 'किए' ठाढे । टंका लाखु 'लखु' 'अहहिं' ते बांधे ।
चेरी चेर सहस 'एक पावा' । गाइ 'भइंसि' नहिं गिनतिन आवा ।
कापर जाति 'बरन गुन काहा' । हीरा 'मोंति लाग जिन्ह आहा' ।
सेज 'सउर' कर नांउं न 'जानउं' । कहां 'सेजि असि' काह बखानउं ।

'चाउर' कनिक खांड घिउ 'लोनु' तेल बिसवार ।
लादि टांड 'मोकरावा' 'बरदी भई' असंभार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५; बी० १३३-१३५ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते जहेज़ चाँदा गोयद ।

बी० में बाएँ हाशिए में इस कडवक के सामने कदाचित् किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा लिखा हुआ है : बीवाह हुवौ ।

पाठान्तर—(१) १. बी० गाव तीस ईक । २. बी० उट । ३. बी० यक । (२) १. बी० कैं । २. मै० में नहीं है। २. बी० लहहि । (३) १. बी० यक पाया । २. बी० म्हैंसि । (४) १. बी० बरंगै (बरन गुन—फ़ा०) कहा । २. बी० मोती सब लागे अहा । (५) १. बी० सैर । २. बी० जानौं । ३. बी० सेज कस । (६) १. बी० चावर । २. बी० लूंनु । (७) १. बी० मुकरावा । २. बी० बरदे भये ।

अर्थ—(१) तीस अच्छे गाँव जइत ने दायज में प्राप्त किए और उसने साठ-एक भैंसे द्रव्य से भराए । (२) पचास घोड़े ला कर खड़े किये [गये]; वे लाख-लाख टंके [हुमेल आदि के रूप में] बाँधे हुए हैं (थे)। (३) सेविकाएँ और सेवक एक सहस्र प्राप्त हुए, गायें भैंसें तो गिनती ही में नहीं आती थीं । (४) कपड़ों की जातियों और वर्णों को क्या गुना जाये, जिनमें हीरे-मोती लगे हुए थे ? (५) शैयाओं और सौरों के नाम नहीं जानता हूँ; कहाँ पर ऐसी शैयाएँ हैं और [उनका] क्या वर्णन करूँ ? (६) चावल, आटा, खाँड, घी, नमक, तेल, मसाले—(७) इनका टाँडा लाद कर मुक्त (रवाना) किया गया, तो इनकी बरदियाँ बेसँभाल हुईं ।

४. चांदा-पितृगृह-आगमन खण्ड

(४३)

'बरिख' दुवादस 'भएउ बियाहू' । 'चांदा' तिरी 'सूक' जस नाहू ।
'उनंत' जोबनु 'भइ' चांदा रानी । नांहु छोटु 'अउ अंखियउ' कांनी ।
'जाकहं सिउहर बोलइं' लोगू । 'सो लइ चांदइं दीन्हेउ' भोगू ।
हाथु पाउ मुख 'जरमि' न धोवा । औ 'तेहि' ऊपर संगि न सोवा ।
'दइया कवनि मइं कीन्हि' बुराई । 'सरई कचोरइं बूडउं' आई ।

रात दिवस मनि 'झुरवइ' 'ऊभि सांस कइ रो[व?]इ' ।
चांद 'धौराहर' ऊपरि बावन धरती 'सो[व?]इ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६; बी० १३६-१३८ ।

शीर्षक—मै० : दुवाज़ दहुम साले शुदन निकाह चाँदा बा बावन व नज़दीक न आमदने बावन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बरष । २. बी० भयो बिवाहू । ३. बी० चाँद । ४. बी० सुक्र । (२) १. बी० उमत । २. बी० भयो । ३. बी० इक अंषि है । (३) १. बी० जाकौं सहुरव बोलै । २. बी० सो लौ चांद दीन्ह अस । (४) १. बी० जनमि । २. बी० तिहि । (५) १. बी० दइ कौंन मैं कीन्ह । २. बी० सर कजैरै बूडौं । (६) १. बी० झूरवै । २. बी० उभ सांस लै रोई । (७) १. बी० धौरहर । २. बी० सोइ ।

अर्थ—(१) बारह वर्ष की अवस्था में विवाह हुआ, किन्तु चांदा स्त्री का शुक्र जैसा काना स्वामी था । (२) जिस समय चाँदा रानी उनन्त यौवन में हुई, उस समय उसका स्वामी छोटा तो था ही, उसकी एक आँख भी कानी थी । (३) जिसको लोग सिउहर कहते थे, वही ले कर चांदा को भोग के लिए दिया गया था । (४) वह [गन्दा इतना था कि] हाथ-पैर और मुख वह जन्म भर भी न धोता था, इसके अतिरिक्त वह चाँदा के साथ सोता भी न था । (५) [चाँदा कहती,] "हे दैव, मैंने कौन सी बुराई की [थी] कि शराव और कच्चोल में मैं यहाँ आकर डूब रही हूँ ?" (६) वह रात-दिन मन में सन्ताप करती और ऊँची श्वास करके रोती । (७) चाँदा धवल-गृह के ऊपर (ऊपरी खण्ड में) सोती और बाबन धरती पर (भूमि-तल के खण्ड में) सोता ।

(४४)

'बरिसु दिवस' 'भा' चांद बियाहें। सूरु न देखी 'आछिइ छाहें'।
पिउ 'अनतिइ' निसि सेज दुहेली। 'सो धनि कइसें जियइ' अकेली।
बावन 'काउ पूछ नहि' बाता। 'हउं रे न चीन्हउं' कार कि राता।
'एकउ' साधि न हिएं बुझानीं। 'मुइउं' पियास नांक 'लहि' पानीं।
'एहि' परिहंसि उठि 'मइकें जाऊं'। 'तिय सों रांध सुहागिनि नाऊं'।
ननंद बात 'सभ' सुनि 'कइ' कही महरि 'सों' जाइ।
'दीदी' जाइ मनावहु चांदा 'चली' कुहाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७; बी० १३९-१४१।

शीर्षक—मै० गिरियः व ज़ारी करदन चाँदा अज़ दूर मानदन बावन शुनीदन ननद।

मै० में (५) में 'रांड' था जिसे बाद में 'रांध' बनाया गया है।

पाठान्तर—(१) १. बी० बरसु द्यौंस। २. बी० भया। ३. बी० आछैं छाहा। (२) १. बी० अनतीइ। २. बी० सा घन कैसे जिवै। (३) १. बी० काह न पूछै। २. बी० हैं का चीन्हौ। (४) १. बी० येकौ। २. बी० मुयों। ३. बी० लिहि। (५) १. बी० यैं। २. बी० मरि करि जाउ। ३. बी० पिय स्यैं रांड सुहागनि नाउ। (६) १. बी० तस [हाशिए में है]। २. बी० कै। ३. बी० सौं। (७) १. बी० देदे (दीदी—फ़ा०)। २. मै० में यह शब्द नहीं है।

अर्थ—(१) चाँदा के ब्याह के एक वर्ष के दिन हो गए, किन्तु सूर्य (पति) ने उसे अच्छी छाया (भावना) से [कभी] न देखा। (२) [उसने कहा,] "जिसका प्रिय अन्यत्र रहता हो और जो रात्रि में शैया में दुःखित रहती हो, वह स्त्री अकेली [रह कर] कैसे जी सकती है? (३) बावन कभी मुझ से बात नहीं पूछता है और मैं नहीं पहिचानती (जानती) हूँ कि वह काला (कुरूप) है या राता (सुन्दर)। (४) [विवाहिता होते हुए भी] हृदय में (की) मेरी एक भी साध (आकांक्षा) न बुझी, [मानो] नाक के बराबर पानी होते हुए भी मैं प्यासी मर गई। (५) इस परिहास से [अच्छा तो यही होगा कि] उठ कर मैं मायके चली जाऊँ; मेरा 'स्त्री' की अपेक्षा सुहागिनी (मात्र) नाम श्रेस्ठतर होगा। (६) उसकी ननद ने सारी बातें सुनकर महरी से जाकर कहा, (७) "दीदी को जाकर मनाओ, चाँदा रूठ कर जा रही है।"

(४५)

सुनि 'कइ' महरि चांद पहिं आई। काहे बहुवरि चलिसि कुहाई।
दूध दांत 'हसि' बिटिया बारी। 'तूं का जानसि पुरुष' रिहारी।
तूं 'अचेति' पुरुषहि का जानसि। बिनु पानी सातू 'कस' सानसि।
सोन रूप भल पहिरि फिराई। दिन दिन 'पहिरहि चीर धोवाई'।
'जउ' लहि बावन 'होइ संजोगा'। पान फूल 'रस करही भोगा'।
'जउ तुम्हं' राइ महर 'कइ' बेटी 'आछहिं कुर न लजाइ'।
तात दूध 'औटहु दहु(हुं)' चांदा पियहु 'सिराइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८, बी० १४२-१४४।

शीर्षक—मै० : आमदन ख़ुशूअ व तहफ़ीम करदन चाँदा रा।

मै० में (७) का 'वह' बाद में बढ़ाया हुआ है।

पाठांतर—(१) १. बी० कै। (२) १. मै० तूं। २. बी० तू को चीन्हसि पुरुष। (३) १. बी० अचेत। २. बी० का। (४) १. बी० पहिरौ चीर स(?) वाई। (५) १. बी० परु। २. बी० होय संजोगू। ३. बी० औ करियों भोगू। (६) १. बी० जै तहु। २. बी० की। २. बी० आछैं कुरह लजाई। (७) १. बी० दुहु वोटाह। २. बी० सिरायी।

अर्थ—यह सुनकर महरी चाँद के पास आयी, [और उसने पूछा,] "ऐ बहू, तू क्यों क्रुद्ध होकर जा रही है? (२) तू, ऐ बेटी, [अभी] दूध (जन्म) के दाँतों वाली बालिका है; तू क्या जाने कि पुरुष की रेखा (कार्य-शैली?) कैसी होती है? (३) तू अभी मुग्धा है, तू पुरुष को क्या जाने? बिना पानी के सत्तू तू कैसे सान रही है? (४) सोना-चाँदी खूब पहने तथा चीर दिन-प्रतिदिन धुलाकर धारण करे। (५) जब तक कि बावन संयोग्य हो, तू पानों फूलों के रस का [ही] भोग करे। (६) यदि तू राजमहर की कन्या है, तो तू (उसके) अच्छे कुल को लज्जित न करे। (७) दूध को तप्त भले ही औटो, उसे, ऐ चाँदा, ठण्डा करके ही तो पीती हो।"

(४६)

'तुम्हं हूं सासु एतनेहि कों' आनी। राखहु दूध 'पियावहु' पानी।
दही न देहु खाउं 'जेहि' लाई। महियरि 'केहूं परें' अडाई।
सोन रूप का 'हमरें' नाहीं। 'जनां' सहस 'जेवनारिहि' खांहीं।

'तुम्हरी धिय' 'जो ससुरें' आहा । 'पीउ न पूछ त' बोलहु काहा ।
अब लहि 'मइं' कुरु आपनु घरा । 'काम लुबुधु बिरहइं' तनु जरा ।
निसि अंधियारि नीरु घन 'बरसै(सइ)' 'बीजु लवइ' भुइं लागि ।
'सेजि' अकेलि फाटु 'मोर' 'हियरा' 'जउ जउ देखउं' जागि ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६; बी० १४५-१४७ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने चांदा खुशूअ रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तुम्हि हौए सासु अंति कैं । २. बी० पिलावहु । (२) १. बी० जिहि । २. बी० करि तुह्म परैं । (३) १. बी० मोरैं । २. बी० जने । ३. बी० जिवनारैं । (४) १. बी० तुह्मरी धीय । २. बी० जु सुसरैं । ३. बी० जौ पिउ न चहैं तौ । (५) १. बी० मैं । २. बी० कम लबधू बिरहै । (६) १. मैं० में नहीं है । २. बी० बिजु लेवै । (७) १. बी० सेज । २. बी० मोरौ । ३ मैं० हिरदैं । ४. बी० ज्यैं ज्यैं देषौ ।

अर्थ—(१) [चाँदा ने उत्तर दिया,] "ऐ सास, तुम भी मुझे इतने ही के लिए लायीं कि दूध रख छोड़ो और पानी पिलाओ । (२) दही [भी] नहीं देती हो कि जिसे लगाकर मैं [जो-कुछ रूखा-सूखा मिलता है उसे] खा सकूं, मही-तल (भूमि) पर पड़े-पड़े वह कितना भी अड़ाता (गिरता) रहे ! (३) सोना-चाँदी क्या मेरे [घर पर] नहीं हैं ? एक सहस्र मनुष्य [प्रतिदिन हमारी] ज्योनार में खाते हैं । (४) तुम्हारी कन्याएँ जो अपने सासुरों (श्वसुर-गृहों) में हैं, यदि [मेरी ही भाँति] उन्हें [भी] उनके पति न पूछें, तो क्या कहोगी ? (५) अब तक मैंने अपनी कुल-मर्यादा को धारण किया है और काम-लुब्ध होकर विरह में [मेरा] शरीर जलता रहा है । (६) अंधेरी रातों में जब घना पानी बरसता होता है, और बिजली भूमि से लगकर लपलपाती है, (७) शैया में अकेली होने के कारण जब-जब मैं जाग कर यह देखती हूँ, मेरा हृदय फटता है ।"

(४७)

'तोरी आधि मइं तहिया' जानी । बात 'कहत तूं मोंहि' न 'लजानी' ।
तो 'कहुं' 'चाही कीनर' पीऊ । बिनु दहि मथें 'कि' 'निसरइ' घीऊ ।
बावन मोर दूध कर 'फोवा' । 'तिसु कत पावउं' तो संग सोवा ।
'तूं उभरैलि' नहि देखिसि काहू । बिनु 'धाठे' 'कस' नवइ 'कयाहू' ।
'जउ' लहु बावनु होइ सियानां । 'अउर बियाह कइ' तोही आनां ।

'जउ तूं जइहसि मइकें' अब हीं 'पठउ' संदेस ।
'कहां केरि' तूं बांगरि 'बिटिया' 'जारउं' सोई देसु ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०; बी० १४८-१५० ।

शीर्षक—मैं० : गुस्सः करदने खुशूअ बर चाँदा व रज़ा दादन बराय बहर रफ़्तन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तेरी आदि मैं तैंही । २. बी० कहतु तूं मुहि । ३. बी० लजांनी । (२) १. मैं० कों । २. बी० चहिये गोवर । ३. मैं० की । ४. बी० निकरैं । (३) १. मैं० पोवा । २. बी० सो कत पांउ । (४) १. बी० तू अकरी । २. बी० धाठी । ३. बी० बरु । ४. बी० किवाहू । (५) १. बी० परु । २. बी० और बियाहि कि । (६) १. बी० जइ तुम जइहहु माइकैं । २. बी पठवौहु । (७) १. बी० जाहि भई । २. बी० चिटिया (बिटिया-नागरी) । ३. बी० जारौं ।

अर्थ—(१) [सास ने कहा,] "तेरी आधि (मानसिक व्यथा) मैंने तभी जान ली जब तूने बातें कहते हुए मुझसे लज्जा नहीं की । (२) तुझको [तो] किनर [जैसा सुन्दर] पुरुष चाहिए, [किन्तु] दही को मथे बिना भी क्या घी निकलता है (बिना कुछ किए कुछ होता है) ? (३) मेरा बावन तो दूध का फाया (दूध में डुबोया हुआ रुई का फाया) है, उसे तेरे साथ में मैं कैसे सोया हुआ पाऊँ ? (४) तू ऐसी उभरैल (उठ भागने वाली) है कि तूने स्वयं किसी को (बावन को) देखा नहीं; बिना ढाठा (मुँह-बन्द) लगाए कयाह (घोड़ा) कैसे नमित हो सकता है ? (५) जब तक बावन सयाना हो, वह दूसरे को ब्याहे या तुझे ही लाए । (६) यदि तू मायके जाएगी, तो तू अभी [मायके को] सन्देश भेज । (७) तू कहाँ की वक्र (कुटिल) बेटी है ? उस देश को मैं जला दूं ।"

(४८)

'चांदहि करुव' 'भएउ' घर बारू । चेरी 'बांभनु' जाइ हंकारू ।
आइ 'सो बांभनु दीन्ह' असीसा । चांद 'बरन' मुखु 'भेंभरु' दीसा ।
परिहंसु 'कहो(हि)' संदेस 'पठावा' । बोलु 'थाक हिय' गहबरि आवा ।
नैन 'सींप' 'जस मोतिन्ह भरे' । 'रोएसि चांद आंसु तस ढरे' ।
'चोली' चीरु भीजि गा पानीं । 'जनु अभरन सउं' 'गांग नहानी' ।

बांभन कहसि महर 'सों' 'मोरे' दुख 'कइ' बात ।
भाइ कहारु सुखासनु बेगि 'पठउ' परभाति ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१, बी० १५१-१५३ ।

शीर्षक—मै० : तलबीदने चांदा ज़ुन्नारदार रा व फ़रिस्तादने अख़बार दुश्वारी बर पिदर ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदेहि करू । २. बी० भयो । ३. बी० बंभनु । (२) १. बी० सुबंभन देइ । २. मै० चंद्र बदन । ३. बी० भ्यंभरु । (३) १. बी० कहैं । २ बी० न पावा । ३. बी० थाकि मनु । (४) १. म० सीत । २. बी० अस मोत्यैंहु भरी । ३. बी० रोय सासु लै तह आसु ढरी । (५) १. बी० चोरी । २. बी० जानु अभरन सौं । ३. बी० गंगा न्हांनी । (६) १. बी० स्यौं । २. बी० मोरैं । ३. बी० की । (७) १. बी० पठवो ।

अर्थ—(१) चाँदा को घर-बार कटु हो गया; [उसने कहा,] "ऐ चेरी, जाकर ब्राह्मण को बुला ला ।" (२) ब्राह्मण ने आकर आशीर्वाद दिया, उसे दीखा कि (चाँदा का) चन्द्र-वर्ण का मुख भेंभर (तमतमाया हुआ) है । (३) [अपनी] परिहास [-पूर्ण स्थिति] कह कर [चाँदा ने] सन्देश भेजा; उसके बोल थक थे और उसका हृदय व्यथा से पूरित हो गया था । (४) उसके सीप जैसे नेत्रों में मोती [जैसे आँसू] भर गये, चाँदा रो पड़ी और इसलिए [उसके नेत्रों से] अश्रु गिरने लगे । (५) [उसके] चोली और चीर पानी (अश्रु) से [इस प्रकार] भीग गए मानो आभरणों के साथ [उसने] गंगा में स्नान किया हो । (६) [उसने कहा,] "ऐ ब्राह्मण, तुम [जाकर] महर से मेरी दुःख की वार्ता कहना, (७) और कहना—'भाई, कहार और सुखासन (डोली) [कल] प्रभात में शीघ्र ही भेजो" ।

(४६)

'बांभन' जाइ महर 'सों' कहा । हिएं लागि 'दौं' जरि तनु रहा ।
जस मंछरी 'देखिय' बिनु पानीं । तपत महर सभ 'रइनि' बिहानी ।
'भानु' मंझान न कीत 'पियारू' । 'कैसें आहि सो' चांद दुलारू ।
दीत सुखासन चले कहारा । नाती पूत भए असवारा ।
धानुक पाइक 'आगें' भए । 'जइत महर कह बाखरि' गए ।
काढ़ि चांद 'बइसारि' सुखासन तुरत बेगि 'लइ' आइ ।
'वी (वा) रने होइ महर गए' चूंबि चांद 'के' पाइ ।।

संदर्भ—मै० ३२, बी० १५४-१५६ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ नमूदने वरंभन बर महर व आरानीदने महर चांदा रा व दाश्तन दर खानः ।

बी० में बाएं हाशिए में 'चांद ने लेन गया' संकेत लिखा हुआ है, किन्तु वह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति का लिखा लगता है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बांभनि । २. बी० स्यौं । ३. बी० दैं । (२) १. बी० देषै । २. बी० रैंनि । (३) १. बी० भोर । २. बी० बियारू । ३. बी० कैसैं आहिसि । (५) १. बी० आगैं । २. बी० जैत महर कर बाखर । (६) १. बी० बैसारि । २. बी० लै । (७) १. बी० वरने महरि हौगी । २. बी० कै ।

अर्थ—(१) ब्राह्मण ने जाकर [जब चांद की दुःख वार्ता] महर से कही, तो उसके हृदय में दावाग्नि लग गई और उसका शरीर जलने लगा । (२) जैसे आप मछली को पानी के अभाव में देखते हैं, उसी प्रकार महर को तपते (संतप्त होते) समस्त रात्रि व्यतीत हो गई । (३) [उसने कहा], "मध्यान्ह (तरुणावस्था) में भानु (उसके प्रिय) ने जिसे प्यार नहीं किया, वह [मेरी] दुलारी चांद (चांदा) कैसी होगी ?" (४) उसने सुखासन दिया और कहार चल पड़े, [साथ में] उसके नाती-पुत्र [घोड़ों पर] सवार हुए । (५) धानुष्क और पदातिक आगे-आगे हुए और वे सब जैत महर की बाखर को गए । (६) चांदा को [उसके श्वसुरालय से] काढ़ (ले) कर और उसे सुखासन पर बिठाकर वे तुरंत और वेग-पूर्वक [गोवर] ले आए । (७) चांदा के पैरों को चूमकर महर उस पर वारने (न्यौछावर) हो गया ।

(५०)

कूंकूं 'मरदि चांद अन्हवाए' । 'सिंदुरी' चीरु काढ़ि 'पहिराए' ।
मांग 'चीरि' सिर सेंदुर पूरा । 'जानहु' चांद बहुरि 'औतरा' ।
सखी सहेली 'देखुन आईं' । 'हंसि हंसि चांद फेरि गियं लाईं ।
सेज पिरम रस 'पूछ' सुहागू । 'पिरिति पियार भुगुति कस' भागू ।
आंग 'पेट' देखहि चहुं पासा । 'कहु न चांद कस' कीन्ह बिलासा ।
'चांद सहेलिन पूंछहिं' 'रस धरि रहरां' लाइ ।
'सपत आहि जुन(जु न) फिरि कहु कैसें रह्यो (रहिउ) ज माइ' ।।

सन्दर्भ—मै० ३३, बी० १५७-१५९ ।

शीर्षक—आमदने चांदा दर खान-ए-मादर व पिदर व रसीदन सहेलियान चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मरदनि चांद न्हवाइ । २. बी० सेंदुर । ३. बी० पहिराइ । (२) १. बी० चीरु सिर सैंदुरी भरा । २. बी० जानौ । ३. मै० औतरी (औतरा-नागरी) । (३) १. बी० देषै आइ । २. बी० हसि कैं चांद बिहसि गैं लाइ । (४) १. बी० पूछी । २. बी० पिरति पियार भोगु कैसें । (५) १. बी० पूठि । २. बी० देषैहि । ३. बी० कहू भोगु कैसैं । (६) १. बी० चांदहि पूछ सहेलीया । २. बी० रसि धरि हियरै । (७) १. बी० अपतु आहि न फिर कहु । २. मै० कैसें रैनि बिहाइ ।

अर्थ—(१) [सेविकाओं ने] कुंकुम का मर्दन कर चांदा को स्नान कराया और [भांडार से] निकाल कर उसे सिन्दूरी चीर पहनाया । (२) उन्होंने [बालों में] मांग चीर (निकाल) कर उसे सिन्दूर से भरा, तो [ऐसा लगा] मानो चंद्र पुनः अवतरित हुआ हो । (३) सखियां-सहेलियां उसे देखने को आईं । तब उन्होंने चांदा को हँस-हँस कर गले लगाया । (४) उन्होंने शैया के प्रेम का रस तथा सुहाग पूछा; [उन्होंने कहा,] "प्रीति-प्यार और भुक्ति (भोग) तुम्हें भाग्य में कैसे मिले ?" (५) वे उसके अंगों और पेट को चारों पार्श्वों से देखने लगीं, [और कहने लगीं,] "चांदा, कहो न कि तुमने कैसा विलास किया ?" (६) चांद से उसकी सहेलियाँ [प्रश्न में] रस लेती हुई विनोद सुख के लिए पूछती हैं, (७) "तुम्हें शपथ है यदि तुम फिर भी यह न कहो कि ऐ सखी, तुम [वहां] किस प्रकार से रहीं ।"

(५१)

'जो(जउ) मोहि' पूछहु 'तौ(तउ)' 'हउं कहउं' ।
कुर 'कइ' कानि 'लजाती अहउं' ।
माह मासि 'मोएउं' धुंधुवाई । 'लागइ' सीउ न 'पिउ बिनु' जाई ।
'रइनि' छमासी 'परइ' तुसारू । हिएं 'अंगीठी बर' असरारू ।
बरसइं नैन न आगि 'बुझाई' । 'सउरि सुपेती' जाडु न जाई ।
अस 'कइ' सखी 'बिगूत्तिउं नांहां' । सेजि बही निसि जलहर मांहां ।
'जस (जइस ?) परें दह बारी हीनेंउ सहरी सुखाइ' ।
पिउ बिरहें 'मोर' जोबनु फूल जइस 'कु(कुं)बिलाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३४, बी० १६०-१६२ ।

शीर्षक—मै० जवाब दादन चांदा बा सहेलियाने खुद चहार माहे जमिस्तां ।

पाठान्तर—(१) १. मै० जस तुम्हं । २. मै० तस । ३. बी० हैं कहौं । ४. बी० की । ५. बी० लजावति रहौं । (२) १. बी० मोयौं । २. बी लागै । ३. बी० पिय बीनु । (३) १. वी० रैनि । २. बी० परै । ३. बी० अंगीठि बरै । (४) १. बी० बुझाही । २. बी० सौरि सपेती । (५) १. बी० कै । २. बी० बेगित्यौं नाहीं । ३. वी भइ सर जलहर माहीं । (६) १. बी० जस प्रपंनि दहि हीं मरै हों वत रहै सुकाइ । (७) १. बी० मोरा । २. मै० कुमिलाइ ।

अर्थ—(१) [उसने उत्तर दिया,] "क्योंकि तुम मुझसे पूँछ रही हो, इसलिए मैं कह रही हूँ, [यद्यपि मैं ऐसा करते हुए] कुल की कानि के कारण लज्जित हो रही हूं । (२) माघ मास को मैंने धुँधुँआते हुए (गीली लकड़ी के सामान धुंआ देकर धीरे-धीरे जलते हुए) मुक्त किया (बिताया); जो शीत लगता था वह प्रिय (पति) के बिना नहीं जाता था । (३) जैसे उसकी छः मासी (छः मास की जैसी लंबी) रातों में तुषार पड़ता था, मेरे हृदय की अंगीठी वैसे ही निरंतर जलती भी रहती थी । (४) नेत्र बरस रहे थे इसलिए वह अग्नि नहीं बुझती थी और सौर (गद्दे) तथा सुपेती (चादर) से शीत नहीं जाता था । (५) इस प्रकार से मैं स्वामी के द्वारा तिरस्कृत हुई कि रात्रि में [मेरी] शैया आंसुओं के जलाशय में बह निकलती । (६) जैसे ह्रद में पड़ने पर [भी] वारि (जल) के हीन होने पर मछली सूख जाती है, (७) उसी प्रकार प्रिय के विरह में (उसके द्वारा परित्यक्ता होने के कारण) मेरा यौवन फूल की भांति कुम्हलाता रहा ।

(५२)

जेठ का(क) घामु सहै(हइ) को बारा (पारा) ।
तपहि बुंजासन (बजासनि) परैंहि (रहि) अ(अं)गारा ।
पिय की(कइ) छाव न बैठौं (बइठउं) काऊ ।
जरत हि भानु धरौ(रउं) भुइ पाऊ ।
जौ(जउ) चंदनु लांउ (लावउं) थनहारा ।
अधिकी उठे (ठइ) पिरम की (कइ) झारा ।

पान फूल कस षैर सुपारी ।
भोगु न जानों (नउं) बिरहैं मारी ।
जौंनुं (जानुं ?) लुवारी तपौं (पउं) अकेली ।
नाह [न] सेज कैसैं (कइसें) सोंउ (सोवंउ) सहेली ।
सुषु तिल येकु न जानियों बूडों दुष की(कइ) गांग ।
चांद लीत है (हइ) गहनै (नइं) सुकु बैठा जौ मांग ।।

सन्दर्भ—बी० १६३-१६५ । मै० में पिछले कडवक के साथ जो चित्र है, वह बाजिर-मूर्छा प्रसंग का है और कडवक ५५ का ज्ञात होता है, इससे प्रकट है कि वह इस स्थान पर त्रुटित है । प्रसंग से भी इस तथा परवर्ती कडवक की आवश्यकता प्रकट है ।

अर्थ—(१) ज्येष्ठ मास का घाम कौन सहन कर सकता था ? जैसे ब्रजाशनि तप रहा था, और अंगारे पड़ रहे थे । (२) किन्तु प्रिय (पति) की छाया में मैं कभी न बैठ पाई, और तप्त होते हुए भानु [की ज्वाला] में ही मैं भूमि पर पैर रखती थी । (३) [अपने] भारी स्तनों में मैं चंदन लगाती थी, तो प्रेम (काम) की ज्वाला अधिकाधिक उठती थी । (४) मेरे लिए पान-फूल तथा कत्था-सुपारी कैसे थे ? विरह से मारी हुई मैं भोग जानती ही नहीं थी । (५) मैं तो मानो [जेठ की] लुवार (लू) में अकेली हो कर तपती थी; शैया में स्वामी के न होने के कारण, ऐ सखियो, मैं कैसे सो सकती थी ? (६) सुख मैंने तिल-एक भी नहीं जाना, और मैं दुःख की गंगा में डूब गई । (७) चांद को तो ग्रहण ने ले लिया था—उसका ग्रहण हो गया था, क्योंकि उसकी मांग-में सौभाग्य के स्थान पर शुक्र (काना बावन) बैठा हुआ था ।"

(५३)

भादौं (दउं) मास देव घरराइ(ई) ।
नैन नदी देउं (दीनिउं?) मु(मो)कराइ(ई) ।
बिनु करिया मोरि डोलै(लइ) नावा ।
नीगुन गारा (करिया?) कंत न आवा ।
कोइल जैस (जइस) फिरै(रइ) अति रूंखा ।
पिउ पिउ करत जीभ मोर सूषा ।

षिन तरफौं (फउं) बरसै अति वानी ।
सेज सून(नि) हौं(हउं) सरगि लुकानी ।
कत हौं कहां सु बावन बीरू ।
जस जरमीं तुसु (तसु) आहि सरीरू ।
नैनहु दीठे बोलते हिया बिरुधा(द्धा) तित्त ।
जै (जइ) नैनहु औगुणु किया हिया बिरुधा(द्धा) कित्त ।।

सन्दर्भ—बी० १६६-१६८; मै० यहाँ पर त्रुटित है (दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी) ।

बी० में किसी भिन्न व्यक्ति द्वारा राहिने हाशिए में निम्न लिखित दोहा भी दिया हुआ है :

जौ मै हौंस न देषीयौ कूर कहुं हुं काहु ।
सुपने (?) सेज न आवै मोरी कौंन बरन सौ नांहु ।।

इस दोहे के लिए अर्द्धालियों के बाद हंस पद अंकित हुआ है, किन्तु पूर्ववर्ती दोहा ज्यों का त्यों छोड़ दिया गया है, अतः यह स्पष्ट नहीं है कि यह दोहा अतिरिक्त है अथवा उसके स्थान पर है । पाठ के साथ दिया हुआ दोहा असंगत और अन्य भाषा-शैली का लगता है । उसकी अपेक्षा यह अधिक संगत और भाषा-रूप के अनुसार अधिक संभव लगता है । फिर भी अनिश्चय की स्थिति बनी रह जाती है ।

अर्थ—(१) भादों मास में दैव गड़गड़ाने लगा और उसने मेरे नेत्रों की नदी को मुक्त कर दिया । (२) बिना करिया (पतवारी) के मेरी नौका [उस अश्रु-नदी में] डाँवाडोल होने लगी, फिर भी मेरा निर्गुण करिया (?)—मेरा पति—उस अश्रु-नदी से मुझे पार करने के लिए नहीं आया । (३) कोयल जैसे अत्यधिक वृक्षों में भटकती है, मैं भी 'पिय-पिय' करती रही और [उसको रटते-रटते] मेरी जिह्वा सूख गई । (४) जब मेघ आत्यंतिकता से बरसता था, किसी-किसी क्षण मैं (विद्युत् की भाँति) तड़प उठती थी, और क्योंकि मेरी शय्या सूनी थी, मैं उस आकाश (ऊपर की मंज़िल में) छिप जाती थी । (५) मैं कहाँ थी और बावन वीर कहाँ था ? दोनों भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहते-सोते थे । फलतः मैं जैसी जन्मी थी, मेरा शरीर उसी प्रकार अछूता रह गया । (६)-(७) पाठ अनिश्चित है ।

५. बाजुर-मूर्च्छा खण्ड

(५४)

बाजुरु एकु 'कतहुं हुत' आवा। गोवर 'फिरइ' 'बिहाऊ' गावा।
घर घर भुगुति मांगि 'लइ' खाई। खिन खिन राजदुवारेहिं जाई।
दिन 'एक' चांद धौरहर ठाढी। 'झांकिसि' मांथ 'झरोखइ' काढी।
'तिहि खिन' बाजुर मूंड उचावा। 'देषी' चांद 'तवारा' आवा।
'देखतहिं' जनु 'नौहारन्ह' लीन्हां। 'बरका' चांद झरोखा 'दीन्हां'।
धर 'हुत' जीउ न 'जानिय' कित गा कया भई बिनु सास।
सीतर नीरु 'देह मुंह छिरकहिं' आए लोग चहुं पास॥

सन्दर्भ—भो० पत्र २२ (नवीन), मै० यहाँ पर त्रुटित है—देखिए पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी, बी० १६९-१७१।

शीर्षक—भो० : आमदने बाजिर दर गोवर व गुज़श्तने ज़ेर क़स्र चांदा व दीदन व आशिक़ शुदन व उफ़्तादन।

बी० : बाजुर आमद जेगी (जोगी ?); किन्तु यह शीर्षक बाएं हाशिए में लिपिकार से भिन्न व्यक्ति के द्वारा दिया हुआ लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहूं हूंते। २. बी० फिरै। ३. बी० पहाऊ। (२) १. बी० लै। (३) १. बी० यक। २. बी देयसि। ३. बी० झरोषै। (४) १. भो० ततखिन। २. भो० देषिसि। ३. बी० झरोखइं। (५) १. बी० देषि। २. बी० नौहारेहि। ३. बी० बरि गई। ४. बी० दीना। (६) १. बी० हुतै। २. बी० जानौं। (७) १. बी० देहि महु छिरकैहि।

अर्थ—(१) एक बाजिर (कोई वाद्य बजा कर मांगने-खाने वाला) कहीं से आया। वह गोवर में चक्कर लगाता और बिहाऊ (त्याग के गीत ?) जाता। (२) वह घर-घर से भुक्ति (भोजन) माँग कर उसे लेकर खाता और [इसलिए] क्षण-क्षण (बार-बार) राज-द्वार पर [भी] जाता। (३) एक दिन चांदा धवल-गृह पर खड़ी थी और उसने मस्तक को झरोखे से निकाल कर देखा। (४) उस क्षण बाजिर ने सिर उठाया और चांदा को देखा तो उसे तवारा (ताप) आ गया। (५) उसे देखते ही उसकी दशा ऐसी हो गई मानो उसे वधिकों ने [पकड़] लिया हो। चांद (चांदा) ने अपने को [उसकी दृष्टि से] बचाया और झरोखे को बन्द कर दिया। (६) [बाजिर के] धड़ से जीव न जाने कहाँ चला गया और उसकी काया बिना श्वासों की हो गई। (७) लोग उसके चारों ओर इकट्ठा हुए और वे शीतल जल उसके शरीर और मुँह पर छिड़कने लगे।

(५५)

सांप डसा जस उठैं(ठइ) न बारा।
हाथ पाउ सिरु कछु न संभारा।
कै (कइ) छरि गया कै (कइ) भया सनिपातू।
कै (कइ) इहि आइ मिरिगी(गि)या बातू।
पहर द्योस (दिवस) सूता जस जागा।
लोगु कहै(हइ) यह राषसु लागा।
आंग मूंड सब लागी षेहा।
हरद पीर (पियर) जसु हु है(हइ) देहा।
तिरि जौ (जउ) देषि लोगु जो (जउ) राधा।
उपर देषि झा(झ)रोषा बाधा।
नैन देषि भनु बेघा हिये चटपटी दाहु।
टूट करेज लोहू भा पानी कहौ (कहेउ ?) न बोलै काहु॥

सन्दर्भ—बी० १७२-१७४। मै० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु मै० पत्र ३४ के साथ अब जो चित्र है वह इसी कडवक का है, क्योंकि उसमें झरोखे में चांदा नहीं है, और वह बन्द भी है, जैसा कि इस कडवक की पांचवीं अर्द्धाली में कहा गया है।

अर्थ—(१) [वे कहने लगे,] "यह बालक जैसे कोई सांप से डसा हुआ हो, उसकी भांति नहीं उठ रहा है, और हाथ, पैर तथा सिर कुछ भी नहीं सँभाल रहा है। (२) या तो यह [किसी छल के द्वारा] छला गया है, या इसे सन्निपात हो गया है, या इसे मृगी की बात-व्याधि हो आई है।" (३) पहर-दिन सोने के जैसे पड़े रहने के उपरान्त [जब] वह जागा (चेत में आया), तो लोग कहने लगे, "इसे कोई राक्षस लग गया है। (४) इसके शरीर तथा सिर में धूल-मिट्टी लगी हुई है, और इसकी देह हल्दी जैसी पीली हो गई है। (५) यह नीचे देखता है तो उन लोगों को देखता है जो निकट [आगत] हैं, और ऊपर देखता है तो उस झरोखे को देखता है जो बंद है। (६) ऐसा जान पड़ता है कि [चांदा को] देखने के कारण ही इसके नेत्र

[उसके रूप से] विद्ध हो गए हैं, और इसके हृदय में दाह की चटपटी (विकलता) हो रही है, (७) इसका कलेजा टूट गया है, और इसका रुधिर पानी हो गया है, [इसीलिए] यह कहने पर भी किसी से [कुछ] नहीं कह रहा है।"

(५६)

कहु बाजुर 'तोहि' बेदन काहा। लोगु महाजनु पूछत आहा।
पीर कहसि 'तउ सुनहु' बिनानी। 'ओखदु' मूरि देहिं तोहि आनीं।
'कइ' जुर जाड पेट कइ पीरा। 'कइ' सिरवाहि 'गूद' महिं कीरा।
'कइ' खरि 'लागि' घाम 'कइ' झारा। 'पानि' पियत तूं गा बिसंभारा।
कइ दरसन काहू 'के' राता। पिरम भुलान कहसि नहि बाता।
'कइ तोहि' अरथ गंवावा मारि लीन्ह बटपार।
'नांउं' कहसि नहि ताकर बाजुर मुरिख गंवार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३५, बी० १७५-७७।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने खलक़ बाजिर रा अज़ हाले बेहोशी ऊ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० तोरि। (२) १. बी० तौ सुनौहु। २. बी० औषधु। (३) १. बी० कै। २. बी० की। ३. बी० गुदा। (४) १. बी० कै। २. बी० लाग। ३. बी० की। ४. बी० पानी। (५) १. बी० कै। (६) १. बी० कै तै। (७) १. बी० नाउ।

अर्थ—(१) "ऐ बाजिर," लोग (सामान्य जन) और महाजन पूछ रहे थे, "तुझे कौन सी वेदना हो गई है? (२) ऐ विज्ञानी सुन; यदि [तू] हम से अपनी पीड़ा कहे, तो हम तुझे औषधि-मूल ला कर दें। (३) तुझे जाड़े का ज्वर है, या पेट की पीड़ा है, या सिर की व्याधि है, या तेरी गुदा में कीड़े पड़े हुए हैं, (४) अथवा तुझे धूप की झार (गरमी) प्रखर रूप से लग गई है कि पानी पीते ही तू बेसंभाल हो गया है, (५) अथवा, तू किसी के दर्शनों पर अनुरक्त है, और उसके प्रेम में भूला हुआ बातें नहीं बता रहा है, (६) अथवा तूने अपना अर्थ गंवा दिया है, जिसे किसी बटपार ने तुझ से छीन लिया है? (७) ऐ मूर्ख और गंवार बाजिर, तू उसका नाम [क्यों] नहीं कह रहा है?"

(५७)

लोगु 'कहइं' यहु मुरिखु अयानां। 'कहउं' हियारी बूझि सयानां।
'बिरिख' ऊंचु 'फरु' 'लाग' अकासा। हाथ 'चढइ कइ' नांहीं आसा।

'कहु जोगित' को बांह 'पसारइ'। तरुवर डारि 'धरइ को पारइ'।
राति दिवस 'राखहिं' रखवारा। 'नैनहु देखइ' जाइ सो मारा।
'उरग डारि फरु देखेउं' रूखा। कंवल फूल 'मोर' 'हिरदा' सूखा।
'पियर' पात जस बिनु 'जीवा(उ)' 'रहेउं कोंप' 'कु(कुं)बिलाइ'।
बिरह पवन 'जउ डोलेउं' टूटि 'परेउं' खहराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३६, बी० १७८-१८०।

शीर्षक—जवाब दादन बाजिर खलक़ रा तरीक़े मुअम्मा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहै। २. बी० कहौ। (२) १. बी० बिरख। २. मैं० फलु। ३. मैं० में नहीं है। ४. बी० चरे की। (३) १. बी० कहीं जुगति। २. बी० पसारा। ३. बी० डार धरै को पारा। (४) १. बी० बहुत। २. मैं० नैन जो देषै। (५) १. बी० अरग डार फरु देष्यो। २. बी० मो। ३. मैं० हिरदै। (६) १. बी० पीर। २. मैं० जर। ३. बी० रह्यो डार। ४. मैं० कुमिलाइ। (७) १. बी० जब डोलै। २. बी० परै।

अर्थ—(१) [बाजिर ने उत्तर दिया,] "लोग कहते हैं, 'यह मूर्ख और अज्ञ है'; सयाने लोगो, मैं अपनी हियारी (हृदय की व्यथा) कह रहा हूँ, उसको समझो। (२) एक वृक्ष इतना ऊंचा है कि उसका फल आकाश में [लगा हुआ] है, और वह फल हाथ लगेगा, इसकी आशा नहीं है। (३) बताओ कि किसे ऐसी योग्यता है जो [उस फल को तोड़ते के लिए] बाहें पसारे? उस तरुवर की डालों को कौन पकड़े? (४) रात-दिन रखवाले उसकी रक्षा करते हैं, और नेत्रों से भी जो उसे देख लेता है, वह मारा जाता है। (५) [पुनः] जब उस वृक्ष की डालों और फलों पर सर्प मैंने देखे तो, कमल-पुष्प [जैसा] मेरा हृदय सूख गया। (६) पीले पत्ते-सा बिना जीव का हो मैं कोंपल [जैसा तरुण] होते हुए [भी] कुम्हला रहा। (७) [तदनंतर] विरह का पवन जो चला, मैं खरहरा ('खड़खड़' करता) टूट पड़ा।"

इस छंद में एक प्रहेलिका है जिसमें चांदा ही ऊँचा वृक्ष, चांदा के उरोज फल, उसकी बाहें डालें, उसकी लटें सर्प हैं। दोहे में पीली पत्तियां इंद्रिया हैं, कोंपल प्राण हैं, पवन विरह का है।

(५८)

'हउं मारिउं इहिं गाउं' तुम्हारे। नैन बान हनि 'गई बिसारे'।
रगत न 'आवा दीस न' घाऊ। हिएं सालु 'मोर उठइ' न पाऊ।

कत 'मइं देखि धौराहर' ठाढ़ी । हिएं 'पइसि' जिउ 'लइ' गइ काढ़ी ।
'कउनु' बनिजु 'मोहि' 'आगें' आवा । लाभ न बिसवा मूरु गंवावा ।
'हउं तुम्हं कहउं बोलु' पतियाहू । 'जेइं मारिउं तेहि कहउ(उं)' न काहू ।
पूछि देखि 'तेहि घायल' 'राति' पीर जो जाग ।
'कइसो (कइ सो)' जान जेहिं 'मेला' 'कइ सो' जान 'जेहि' लाग ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३७, बी० १८१-१८३ ।

शीर्षक—मैं० : इस्तक़हाम नमूदन बाजिर पेश ख़लक़े शहर गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौं मार्‌या इहि गाव । २. बी० काढि बसारैं । (२) १. बी० आव दीस नहि । २. बी० मोरौ उठै । (३) १. बी० मैं देष धौरहर । २. बी० पैसि । ३. बी० लै । (४) १. बी० कौन । २. मैं० मौरें । ३. बी० आगैं । (५) १. बी० हौं तुम्ह बोलु कहौं । २. बी० जिहिं मार्‌यो तिहि कहैं । (६) १. बी० तेहि घावलहि । २. बी० रत । (७) १. बी० कै सु । २. बी० जिहि मेलिहैं । ३. बी० कैसि । ४. बी० जिहि ।

अर्थ—(१) [उसने कहा,] "मैं तुम्हारे इसी गाँव में मारा गया हूँ, वह [वधिक स्त्री] मुझे अपने विषाक्त नेत्र-बाण मार गई है। (२) किन्तु न रक्त आया और न घाव ही दिखाई पड़ा, [क्योंकि] वह शल्य हृदय में है, जिसके कारण मेरे पांव नहीं उठ रहे हैं। (३) धवल-गृह पर खड़ी हुई वह स्त्री मैंने देखी ही क्यों, कि वह [मेरे] हृदय में प्रविष्ट हो कर [मेरे] जीव को निकाल ले गई ? (४) यह कौन-सा वाणिज्य मेरे आगे आया कि मैंने लाभ तो नहीं क्रय किया और मूल गंवा बैठा ? (५) मैं तुम से कह रहा हूँ और तुम मेरे वचनों की प्रतीति करो कि जिसके द्वारा मैं मारा गया हूँ, उसे मैं किसी को न बतलाऊँगा । (६) उस घायल [की व्यथा] को पूछ देखो जो रात भर पीड़ा के कारण जागता रहा है। (७) उसे या तो वह जानता है जिसने वह पीड़ा डाली (दी) है, अथवा वह जानता है जिसे वह पीड़ा लगी है ।"

(५६)

बाजुर 'कहा' 'मींचु' मोरि आई । गोवर तजि 'सैं (सइं)' जाउं पराई ।
कहा 'दीख' मोंहि नींद न 'आवइ' । 'भूख गई अन पानि' न भावइ ।
'जउ सो तिरी' बहुरि 'दिखरावइ' । 'ओहट' मीचु 'नियर' होइ'आवइ' ।

महर 'पास जउ कह को जाई' । खिन 'एक' भीतरि 'घाल मराई' ।
'बड़न्ह क कहा बिसेखइं कीजा' । 'अतियं बांचि' बरिसा 'सउ जीजा' ।
चला छाड़ि कइ बाजुर बसा 'अउर तह (हं)' जाइ ।
चांद रही मन 'भींतर' संवरि संवरि पछिताइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३८, बी० १८४-१८६ ।

शीर्षक—मैं० : गुरीख़्तने बाजिर अज़ शहर गोवर बतरसे राय महर ।

बी० के ऊपरी हाशिए में इस कडवक के पृष्ठ पर प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में यह दोहा है :

नींद न घटी तिह जिनी कह संमन कौ ना(?)ह ।
अधक सनेही त्यौ (?) हरिणी बैर षटकै ताह ॥

पृष्ठ पर आए हुए समस्त कडवकों के दोहे दिए हुए हैं, अतः यह दोहा इस कडवक की अर्द्धाली २ के उदाहरण के रूप में अन्यत्र कहीं से दिया हुआ लगता है ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० देख । २. बी० मींच । ३. मैं० हउं । (२) १. बी० देषि । २. मैं० आवा । ३. बी० भूष गइअनपांन । (३) १. बी० जइ तु स धनी । २. बी० दिखरावा । ३. बी० उहिट । ४. बी० नियरै । ५. बी० आवा । (४) १. बी० घरंहि को कहिहैं जाइ । २. बी० यक । ३. बी० घालि मराइ । (५) १. बी० गुर कर कहा विसेष जु कीया । २. बी० अनी बाचि । ३. बी० सौ जीया । (६) १. बी० और ठौ । (७) १. मैं० भीतर ।

अर्थ—(१) बाजिर ने [मन में] कहा, "मेरी मृत्यु आ गई है, [इसलिए] मैं स्वयं गोवर छोड़ कर कहीं [अन्यत्र] भाग जाऊं । (२) मुझे ऐसा क्या दीखा कि नींद नहीं आती है, भूख चली गई है और अन्न-जल नहीं भाता है ? (३) यदि वह स्त्री पुनः दिखाई पड़ी, तो दूर पर पड़ी हुई मृत्यु निकट हो आएगी । (४) और, यदि किसी ने महर के पास जाकर [यह बात] उससे कह दी, तो वह एक क्षण के भीतर मुझे मरवा डालेगा । (५) बड़ों का यह कहना विशेष रूप से करना चाहिए कि यदि अतियों से बचा जाए तो सौ वर्षों तक जीवित रहा जा सकता है ।" (६) [गोवर को] छोड़ कर बाजिर चल पड़ा, और अन्य स्थान पर जा कर उसने वास किया । (७) चांदा उसके मन में बनी रही, जिसे स्मरण कर-कर वह पछताया करता ।

६. चांदा-शृङ्गार-वर्णन खण्ड

(६०)

इक 'खंड' छाडि 'आन' खंडि जाई । 'मांस एक' बाजुरु बाट खुटाई ।
फुनि 'जउ' जाइ 'भएउ' पइसारा । 'बइठ पवंरिया नगर' दुवारा ।
बात पूछि 'सब' 'लीतेसि' नाऊं । 'भीखि मांगि खाएउं यहिं गाऊं' ।
राइ रूपचंद बांठ सरेखा । नगरु 'राजपुरु' बाजुर देखा ।
दिवसु 'गएउ' निसि 'परी' अवेरा । 'बाजुर फिरि करि' लीत बसेरा ।
'निसु हीं राति सोहावनि' बाजुर 'ठोका' तार ।
'गाई गीत चंदरावलि' नगर 'भएउ' 'चमकार' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३६, बी० १८७-१८६ ।

शीर्षक—मै० : रसीदन बाजिर दर शहरी व सुरूद करदने अन्दर शब व शुनीदन राय अज़ बाम ।

बी० में बाएं हाशिए में है : बाजुर रूपचंद के राजपुरी चाला (?), किंतु यह प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति की लिखावट में लगता है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० षंडि । २. बी० अवर । ३. बी० मासकु । (२) १. बी० जौ । २. बी० भयो । ३. बी० बैठि पौरिया पैरि । (३) १. बी० तस । २. बी० लीनसु । ३. बी० भीष मागि षौंहो यत गाउ । (४) १. मै० राज फ़िरि । (५) १. बी० गयो । २. मै० भएउ । ३. बी० बाजुरि फिरि कैं । (६) १. बी० निसह रात सहावंनी । २. बी० ठोके । (७) १. बी० गावहि गीत चंरावरि । २. बी० भयो । ३. मै० झनकार ।

अर्थ—(१) एक खंड छोड़ कर वह अन्य खंड में जाता था और [इस प्रकार] एक मास में बाजिर ने बाट समाप्त की । (२) [तदनंतर] जब वह और गया और [एक नगर में] उसका प्रवेश हुआ, [उसने देखा कि] नगर के द्वार पर एक पौरिया बैठा हुआ था । (३) उससे सारी बातें पूछ कर उसने अपना नाम लिया (बताया) [और कहा], "मैं भीख माँग कर इस गाँव (नगर) में खाता हूँ ।" (४) [इस का] राजा रूपचंद था, जिसका मंत्री एक बांठ था, जो सूझ-बूझ का था । इस राजपुर नगर को बाजिर ने देखा । (५) जब चला गया और रात्रि में [भी] देरी हो गई, बाजिर ने लौटकर [नगर-द्वार पर ?] बसेरा लिया । (६) निसु (बिल्कुल) सुहानी रात में ही बाजिर ने ताल

ठोकी (दी) । (७) जब उसने चंद्रावली का गीत गाया, नगर भर में इसका चमत्कार हो गया (इसकी ख्याति हो गई) ।

(६१)

दिन भा 'राजइं बांठु बोलावा' । आजु राति 'निसु हीं केइं' गावा ।
बांठ 'कहा इहु आंक न होई' । होइ रजाइसु 'आनउं सोई' ।
'चहुं दिसि बांठइं' जन 'दौराए' । बाजुर 'हेरि तउहि लइ आए' ।
'पूछा राउ कवन तोर' ठाऊं । 'सुसुर कंठ तोहि' दीन्ह गोसाऊं ।
आजु राति 'निसु' ही 'तइं' गावा । 'चंदरावलि' मनु 'रहरां' लावा ।
गीत नाद 'रस' कबित कहानी 'कथा कहि गावनिहार' ।
'मोर मन रइनि दिवस सुखि राखहि' 'भूंजसि गांउं कोठार' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४०, बी० १६०-१६२ ।

शीर्षक—मै० : दर रोज़ तलबीदन राव बाजिर रा व पुरसीदन कैफ़ियत सुरूदे शब ।

पाठान्तर—(१) १. बी० राजे बांठु बुलावा । २. बी० निसि हीं को । (२) १. बी० कहै यह वाक न होइ । २. बी० आनौं सोइ । (३) १. बी० बांठ चहूं दिस । २. बी० दौरावा । ३. बी० हेरक ले तोहि आवा । (४) १. बी० राजा पूछै कोन तोरौं । २. बी० सुसर कंठ तुहि । (५) १. बी० निसि । २. बी० तू । ३. बी० चांदरवरि । ४. बी० रूहरे । (६) १. मै० सुर । २. बी० किसा गावन हार । (७) १. बी० मनु मोरा सुषु राषसि । २. बी० भूचसि गांव कुठार ।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो राजा ने बांठ को बुलवाया [और पूछा,] "आज निसु (बिल्कुल) रात में ही किसने गाया ? (२) बांठ ने कहा, "इस प्रकार से पहचान न हो सकेगी; राजादेश हो तो उसे ले आऊं ।" (३) [राजादेश पा कर] बांठ ने चारों ओर जनों (सेवकों) को दौड़ाया, [तो] वे ढूंढ कर तभी (तत्काल) बाजिर को ले आए । (४) [बाजिर से] राजा ने पूछा, "तेरा कौन-सा स्थान है ? तूझे गुसाईं (ईश्वर) ने सुस्वर कंठ दिया है । (५) तूने आज निसु (बिल्कुल) रात में गाया, तो [तेरे] चंद्रावली [के गीत] ने मेरे मन को सुख-लिप्त कर दिया । (६) गीत-नाद-रसपूर्ण कवित्व, कहानी तथा कथाएं, ऐ गायक, तू [मेरे यहां रहता हुआ] कहे; (७) [उनके द्वारा] तू मेरा मन रात-दिन सुख में रक्खे और तू [मेरे दिए हुए] ग्राम तथा कोठार भोगे ।"

(६२)

'सवन क सुनां कहउं हउं काहा'। 'बोली (लि)उं' सोइ 'जो देखिउं आहा'।
'नगरु' 'उजी(जइ)नी' मोर अस्थानूं। 'बिकराजीत' राजा धरमानूं।
'चारिउं भुवन फिरत हउं' आवा। 'गोवरु देखेउं' नगरु 'सोहावा'।
'तहवां' चांद तिरी 'मइं' देखी। 'पाथर कीरि जइसि चित' लेखी।
'मन हुत कैसेहुं मेंटि' न जाई। दिनु दिनु 'होई' अधिक सेवाई।
'सहदेव' महर 'के (कइ)' 'धिय' चांदा चहूं भुवन 'उजियारि'।
मानिक जोति 'जानु' 'परजरहि (ही)' नागरि चतुरि 'अपारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४१, बी० १६३-१६५।

शीर्षक—मै० : हिकायते दीदने चांदा बयान करदन बाजिर पेश राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० श्रवनक सुन कहौं हैं कहा। २. बी० बोल्यो। ३. बी० जु देखैं अहा। (२) १. मै० में 'नगरु' का 'नग' त्रुटित है। २. मै० उजैन। ३. बी० बिक्रम राजा राव। (३) १. बी० चारि भुवन भीतरि जौं। २. बी० देख्या गोवरु। ३. बी० सुहावा। (४) १. बी० तिहि मैं। २. बी० मैं। ३. बी० पाथर की जस चित्तर। (५) १. बी० मन हते कैसैं मेंट। २. बी देषौं। (६) १. बी० सहदे। २. मै० कर। ३. बी० धी। ४. बी० उजियार। (७) १. बी० में नहीं है। २. बी० परजरिहै (परजरिही—फ़ा०)। ३. बी० अपार।

अर्थ—(१) [बाजिर ने कहा,] "कानों का सुना मैं क्या कहूं ? मैं वह कह रहा हूं जो मैं देख चुका हूं। (२) उज्जैन नगर मेरा स्थान है, विक्रमादित्य वहां के धर्मात्मा राजा हैं। (६) चारों भुवनों में चक्कर लगाता मैं [जब] आया, मैंने गोवर का सुहावना नगर देखा। (४) वहां पर मैंने चांद (चांदा) स्त्री को देखा, जो पत्थर में गड़ी हुई कील जैसी [होकर] मेरे चित्त में जान पड़ी। (५) [अब] वह [प्रतिमा] मन से किसी प्रकार मिटाई नहीं जा रही है, दिन-दिन वह अधिक और अधिक ही होगी। (६) वह चांदा सहदेव महर की कन्या है और चारों भुवनों में प्रकाशित है; (७) [वह ऐसी लगती है] मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्वलित हो रही हो; वह अपार [रूप से] नागरी तथा चतुरा है।"

(६३)

सुनि कइ चांदु राउ 'अंगिरानां'। बाजुर 'ओहट नियर धरि' आनां।
जस 'कोइ सूत' 'बइस' उठि 'जागइ'। राजा हियें चटपटी 'लागइ'।
तुरी 'देइ' बाजुर 'कहुं' आनी। पीठि घालि पाखर 'सोनवानी'।
'बाजुर' कवन 'देस' सो नारी। 'गाउं कहउ अरु ठाउं' बिचारी।
'लषन कहउ अउ करन' बिसेखी। 'कवन' रूप सो तिरिया देखी।
मारग 'कवन' 'कइस बेवहारा' 'लांबि छोटि कसि आहि'।
सहज सिंगारु 'रूप रस' 'बिदक'' पराकिरति कैं (केइं) चाह(हि)'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ४२, भो० पत्र ६० (नवीन), बी० १६६-१६८। भो० में इस कडवक की पुरानी संख्या भी प्राप्त है, जो ६२ है।

शीर्षक—मै० : आशिक़ शुदने राव बर नाम चांदा व अस्प दिहानीदन बाजुर रा।

भो० : शुनीदने राव रूपचंद नामे चांदा व पुरसीदने बाजुर रा सूरतो जेबाइए ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० अगरांना। २. बी० अहुट नीर हुइ। (२) १. मै० को सूत, बी० कसीत। २. मै० बइठ, बी० बैठि। ३. बी० जागै। ४. बी० लागै। (३) १. मै० देहि, बी० देहु। २. बी० कौहु। ३. बी० सुनवानी। (४) १. भो० बाचिर। २. बी० दीय। ३. मै० ठउर कहउ बरु तुमह, बी० ठाव कहसि औ लषिन। (५) १. बी० लषिन कहौं परत। २. मै० आछरि, बी० कौन। (६) १. बी० कौन। २. बी० कैस ब्योहारू। ३. बी० लाब छोट केस आह। (७) १. मै० भोग। २. बी० चांद कैं। ३. मै० पराकीरति (पराकिरति) कइ चाहि, भो० पराकिरति कसि ताहि।

अर्थ—(१) चांद [नाम] सुनकर राजा ने अंगड़ाई ली और बाजिर को जो ओहट (दूर पर) था, पकड़ कर अपने निकट ले गया। (२) जिस प्रकार कोई प्रसुप्त उठ कर बैठ जाए और जाग पड़े, इस प्रकार की चटपटी (उतावली) राजा के हृदय में लगने लगी। (३) सोने के वर्ण की पाखर जिसकी पीठ पर डाली हुई थी, ऐसा एक घोड़ा उसने ला कर (मंगा कर) बाजिर को दिया। (४) [उसने पूछा,] "बाजिर, वह नारी किस देश में है ? तुम उसका ग्राम तथा स्थान विचार कर कहो (बताओ)। (५) उसके लक्षण तथा विशेषता के साथ उसके करण (शरीर के अवयव) कहो; तुमने किस

रूप की वह स्त्री देखी है ? (६) [उसके देश का] मार्ग कौन-सा है और उसका व्यवहार कैसा है ? वह नारी लंबी है या छोटी—कैसी है ? (७) हे सहज शृंगार, रूप तथा रस के जानकार, उसकी प्राकृति तूने कैसी देखी है ?"

(६४)

'पहिलें मांग क कहउं सोहागू' । 'जेंहि' राता जगु 'खेलइ फागू' ।
मांग 'चीरि सिर' सेंदुर पूरा । 'रेंगि चला जनु कानकेजूरा' ।
'दीया' जोति 'रइनि जसि' बारी । कारें सीस दीस रतनारी ।
'मइं वह मांगि' चीर तर दीठी । उवत सूरु 'जनु' किरनि पईठी ।
मोंति 'पुरोइ जउ हि बइसारा' । 'सगरें देस' होइ उजियारा ।
राउ रूपचंद बोला बहुरि 'इहइ खंड' गाउ ।
मांग सुनत मनु राता बाजुर 'करबि' 'बिपाउ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४३, बी० १९९-२०१ ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते फ़रके चांदा गुफ़्तन बाजिर बर राव रूपचंद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहलि मांग का कहैं सुहागू । २. बी० जिहि । ३. बी० षलै पागू । (२) १. बी० चीर कैं । २. बी० रीगि चिला जानौ कान षिजूरा । (३) १. मैं० दिया । २. बी० रैनि जैसी । (४) १. बी० जो सिर माड । २. बी० जानौं । (५) १. बी० परोइ जहौं बैसारी । २. बी० सगरै द्योंस । (६) १. बी० यही षंडि । (७) १. बी० करौहु । २. बी० पसाउ ।

अर्थ—(१) [बाजिर ने कहा,] "पहले मैं [उसकी] मांग की सुभगता का वर्णन कर रहा हूं, जिस [की रक्तिमा] से रक्त हो कर जग फाग खेलता है । (२) मांग चीर (निकाल) कर उसने सिर में सिंदूर पूर रक्खा है, [जो ऐसा लगता है] मानो कानकेजूरा रेंग रहा हो । (३) जैसे रजनी में दीपक की ज्योति प्रज्वलित हुई हो, इस प्रकार काले सिर [के बालों] में वह रतनारी (ललछौहीं) मांग दीखती है । (४) मैंने वह मांग [उसके] चीर के नीचे देखी, [तो वह मुझे ऐसी लगी] मानो सूर्य के उदय होते समय की किरण [अन्धकार में] प्रविष्ट हुई हो । (५) जब उस [मांग] पर मोती पूर कर बिठाए जाते हैं, तब समस्त देश में प्रकाश हो जाता है ।" (६) राजा रूपचंद [इस वर्णन को सुनकर] बोला, "फिर तो [शृंगार-वर्णन का ?] यही खंड तुम गाओ । (७) उसकी मांग [के वर्णन] को सुनकर [मेरा] मन उस पर अनुरक्त हो गया है और, ऐ बाजिर, ऐसा लगता है कि तुम [यह सुना कर] मुझे बेपाय कर दोगे ।"

(६५)

भंवर बरन भइं देखे बारा । 'जनु बिसहर लुरि परे भंडारा' ।
लांब केस सिर पा 'धुरि' आए । जानु 'सेंदूरे' नाग सोहाए ।
बेनी गूंदि 'जउहि ओरमावइ' । लहरि 'चढ़हि' बिसु 'मसतगि धावइ' ।
'देखत' बिसु 'चढ़' 'मंत्रु न मानइ' । गारुरि 'तासु उतारु न' 'जानइ' ।
'जूरा छोरि झार सो' नारी । 'दिवसेहिं राति' होइ 'अंधियारी' ।
डंकु 'चढा' 'बिसु' 'राजा' 'परा लहरि मुरुझाइ' ।
बात 'सुनत' 'जेहि बिसु चढ़' गारुरि 'का सु' कराइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४४, बी० २०२-२०४ ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते मुएहा चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैसैं बिरहर लहरि परैं भडारा । (२) १. बी० धरि । २. बी० सिदूरैं । (३) १. बी० जबहि उरिवावै । २. बी० चरै । ३. बी० मस्तकि धावै । (४) १. बी० देषित । २. बी० चरि । ३. बी० मतरु न मानैं । ४. मैं० काह अनारी । ५. बी० जानौं । (५) १. बी० जूर छोडि कैं झारि सु । २. बी० द्यौंसे हि रात । ३. बी० उजियारी । (६) १. बी० चरा । २. मैं० सुनि । ३. बी० राजहि । ४. बी० अै जु लहरि मुरझाय । (७) १. मैं० कहत । २. बी० जिहि बिसु चरगा । ३. मैं० काह ।

अर्थ—(१) "उसके भ्रमरों के वर्ण के बालों को मैंने देखा [जो ऐसे लगते हैं] मानो [अमृत के] भांडार पर विषधर लोटने लग गए हों । (२) उसके लम्बे केश सिर से धुर पैरों तक आए हुए हैं, [और सिंदूरित होने के कारण ऐसे लगते हैं] मानो सुहावने नाग हों जो सिंदूरित किए गए हों । (३) अपनी [सर्पिणी जैसी] वेणी को गूंथ कर वह जभी लटकाती है, [दर्शक पर विष की] एक लहर चढ़ जाती है, और विष [उसके] मस्तक तक दौड़ जाता है । (४) उसे देखते ही विष ऐसा चढ़ता है कि वह कोई मंत्र नहीं मानता है, उस विष का उतार (उतारने का उपचार) [कोई] गारुड़ी (मंत्रादि से सर्पविष दूर करने वाला) नहीं जानता है । (५) [जब] वह नारी अपने जूड़े को खोल कर बालों को झाड़ती है, तब दिन में ही अंधेरी रात हो जाती है ।" (६) [यह सुनकर] राजा को सर्प-दंश का विष चढ़ गया और वह उसकी लहरों से मूर्छित होकर गिर पड़ा । (७) जिसकी वार्ता

सुनते ही विष चढ़ता है, [उस सर्प के दंश के लिए] गारुड़ी [भला] क्या कर सकता है ?"

(६६)

देखि लिलार बिमोहे देवा । 'लोक' कुटुंब 'तजि' 'कीतिहि' सेवा ।
'दूजि क' चांदु 'जानु परगसा' । 'कइ खर सोवन कसौटी कसा' ।
बदनु 'पसेज बुंद जो' आवहिं । चांद 'मांझ जनु नखत दिखावहिं' ।
'मनहुं दिब सउंह न देखी' जाई । सरग सूरु 'जनु' उदिनल आई ।
ससिहर रूप 'भई' अतिरेखा । 'मइं न अकेलें' सब 'जगु' देखा ।
सूरु 'चढ़ा' बिसु उतरा 'राजइं' करवट लीत ।
सुनि लिलारु उठि 'बैठा (बइठा)' 'बाजुर कंचन' दीत ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४५।१, बी० २०५-२०७ ।

शीर्षक—मैं : सिफ़ते पेशानी चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोग । २. बी० जु । ३. बी० कीन्ही । (२) १. बी० दूज का । २. बी० जानौं परगासा । ३. बी० कैं षर सौंन कसौटी कासा । (३) १. बी० पसीज बूद चुय । २. बी० मझ जस नषत दिषावैहि । (४) १. बी० मुंह दिप देखै सों भन (?) । २. बी० जानैं । (५) १. बी० भयो । २. बी० मैं न अकेलै । ३. बी० जगि । (६) १. बी० चरा । २. बी० राजा । (७) १. मैं० बइठेउ । २. बी० बाजरि कनजप ।

अर्थ—(१) "उसका ललाट देखकर देवता विमोहित हो गए, और लोक तथा कुटुम्ब को छोड़कर उन्होंने उसकी सेवा की । (२) [वह ऐसा लगता है] मानो द्वितीया का चन्द्र प्रकाशित हुआ हो, अथवा कोई खरा सोना कसौटी पर कसा गया हो । (३) उसके मुख पर जो प्रस्वेद-बिन्दु आते हैं, वे चन्द्र में मानो नक्षत्र दिखते हैं । (४) वह [ललाट] ऐसा लगता है मानो दिव्य (तप्त लौह) हो, [इसलिए] सामने से वह देखा नहीं जाता है; अथवा वह [ऐसा लगता है] मानो आकाश में उदीयमान होकर आया हुआ सूर्य हो; (५) [अथवा] वह ललाट अतिरेक के साथ शशधर (चन्द्र) के रूप का हो गया है और ऐसा अकेले मैंने नहीं, समस्त जगत् ने देखा है ।" (६) सूर्य जब [आकाश में] चढ़ा, तब राजा पर चढ़ा हुआ [चांदा के केश-सर्पों का] विष उतरा और राजा ने करवट ली । (७) ललाट [का वर्णन] सुन कर वह उठ बैठा और उसने बाजिर को [पुरस्कार में] खरा सोना दिया ।

(६७)

'भउंह धनुक जनु दुइ कर' ताने । पनच 'बान बिष षैंचि संधाने' ।
बान बिसार सान 'दइ लावइ' । पारधि 'जइस अहेरइ आवइ' ।
'अरजुन धनुक सरग मइं' देखे । चांद 'भउंह' गुन सोइ बिसेखे ।
सर तीखे 'जेंहि मारि फिरावइ' । 'ठउर परइ सो पैंग न जावइ' ।
'भौंह बांन धन (नि) अस गुन' अहा । मूंठि न डोल 'चुकाइहि' कहा ।
बंसकार 'छंडि बाजिर' 'धानुक' भई 'सो' नारि ।
सहजि मिरिगु 'भा' 'राजा' भया मोहि 'गिय सारि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४५।२, बी० २०८-२१० ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते अज़ रूए चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० भौह धनष जानौ देषि के । २. मैं० नाहि गुन खींच सयाने । (२) १. बी० दे लावै । २. बी० जैसैं अहेरै धावै । (३) १. बी० अरजन धुनष सरजि मैं । २. बी० भौह । (४) १. बी० जिह मा[र] फिरावै । २. बी० ठांव परै तिहि देष नं आवै । (५) १. मैं० चांद भउंह गुन अइसइं । २. बी० चुकाउं । (६) १. बी० छिद बाजर । २. बी० धान[क] । ३. बी० सु । (७) १. बी० भया । २. मैं० राजा राजा ३. बी० गई मारि ।

अर्थ—(१) "उसकी भौंहें [ऐसी लगती हैं] मानो [उसके] दोनों हाथों ने धनुष ताना हो, और उन्होंने पनच (प्रत्यंचा) पर विष-बाण खींच कर संधाने हों । (२) वह शान पर चढ़ाकर [अपने] विषाक्त बाण [उन धनुषों पर] लगाती है, और पार्धिक (बहेलिए) की भाँति आखेट करने के लिए आती है। (३) आकाश में मैंने अर्जुन (?) के धनुष को [निकला हुआ] देखा है, वे ही (उसी के) गुण चांदा की भौंहों में विशेषता के साथ [पाए जाते] हैं । (४) जिसे वह तीक्ष्ण [दृष्टि-] बाणों से मार कर गिराती है, वह उसी स्थान पर गिर पड़ता है, और एक पैंग (पग) भी [आगे] नहीं जा पाता है । (५) उस कन्या (चांदा) की भौंहों का गुण इस प्रकार का है कि उसकी मूंठ नहीं हिलती है, इसलिए वह [लक्ष्य-बेध] में क्या (क्यों) चूके ? (६) बाजिर कहता है, वह [वधिक] नारी बंसकार (बांसरी) [का बजाना] छोड़ कर धानुष्क हो गई है ।" (७) [यह सुनकर] उसके माया-मोह [के पाश] में गला डाल कर राजा सहज ही [वधिक का] मृग हो रहा ।

(६८)

नैन सुरूप सेत 'मकरारे' । खिन खिन बरन होहिं रतनारे ।
अंब फार 'जनु मोतिन्ह' भरे । ते 'लइ भउंहन्ह' के तरि धरे ।
'डोलहिं सहजि' 'जानु' मद पिया । 'कइ' निसि पवनि झकोरा दिया ।
उलटि 'समुंद' 'जनौ मानिक' रहे । 'राइ' थाक कर 'गांहि' न गहे ।
नैंन 'समुंद' हैं (हइं) 'अति' अवगाहा । 'बोहिथ बूडि' न पावहिं थाहा ।
'बहुतइं नैन चांद बस' 'औ (अउ) देखहु धौं (दहुं) आइ' ।
सरगि जाइ 'चढि' 'चांदा' बइसी 'राजा पूछौ (छउ) काइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।१, बी० २११-२१३ ।

शीर्षक—सिफ़ते चश्म: हाए चांदा गोयद ।

मैं० में (३) के 'मद' को 'मधु' किया गया है ।

पाठान्तर—(१) मैं० महं कारे । (२) १. बी० जानैं मोत्यों । २. बी० लै भौहनि । (३) १. मैं० सहजहि डोलहिं । २. बी० जानौ । ३. बी० कै । (४) १. बी० समदि । २. मैं० मानिक भरि । ३. बी० राय । ४. मैं० गांठि । (५) १. बी० समंद । २. मैं० अती । ३. मैं० बूडहिं राइ । (६) १. बी० भीतरि चांद नैन बीसये । २. मैं० आइ देखु धौ आहि । (७) १. बी० चरि । २. मैं० में नहीं है । ३. मैं० राजा पूछहु काहि ।

अर्थ—(१) "उसके सुरूप नेत्र जो श्वेत और मकरारे (कलछौहें) हैं, क्षणानुक्षण रतनारे (ललछौहें) होते रहते हैं । (२) [वे ऐसे लगते हैं] मानो आम की फांकें हों जो मोतियों से भरी गई हों, तथा [तदनंतर] ले कर भौहों के नीचे रख दी गई हों । (३) वे सहज ही डोलते रहते हैं, मानो उन्होंने मद-पान किया हो, अथवा [मानो वे जलते हुए दीपक हों जो] रात्रि में पवन द्वारा झकोरे गए हों; (४) [अथवा मानो] वे समुद्र से उलटे [बाहर फेंके] हुए माणिक्य हों, [उन्हें देख कर] राजा भी थक जाते हैं [क्योंकि] वे हाथों से उन्हें पकड़ने का प्रयास करके भी पकड़ नहीं पाते हैं । (५) वे नेत्र अत्यधिक गहरे समुद्र हैं, जिनमें बोहित्थ डूब जाते हैं, और फिर भी [जिन का] थाह नहीं पाते हैं । (६) चांदा के उन नेत्रों में बहुतेरे [राजे] निवास करते हैं, और तुम इसे आ (जा) कर देख सकते हो । (७) आकाश में जा कर वह चांदा बैठी हुई है, ऐ राजा, उसे तुम क्या पूछते हो ?"

(६९)

मुंह 'महं' नांक देस 'क' सिंगारू । 'जनु' अभरन 'ऊपर गियं हारू' ।
'सहज ऊंचि' पिरथमी जानां । 'अउ' सभ ताकर 'करहिं' बखानां ।
सुवा 'नांक जो लोकि' सराहा । 'तेहू' चाहि अधिकु पै (पइ) आहा ।
तिल क फूल 'जस' फूल सुहावा । 'पदुमिनि' नांक 'भाउ तस' पावा ।
नांक सरूप अइस मइं कहा । 'जानहु' खरगु सोवन कर 'अहा' ।
'बेनां परिमल' 'फूल कसतूरी' सभै (भइ) बास रसु लेइ ।
खिन मर खिन 'जिय' 'राउ' रूपचंद अरथु दरबु 'सभु' देइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।२, बी० २१४-२१६ ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते बीनीए चांदा गोयद ।

मैं० के (२) । १ के पाठ में 'पिरथमी' के आगे 'सब' बाद में बढ़ाया हुआ है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैं० । २. बी० कौ । ३. बी० जिहि । ४. बी० उपैं गैहारू । (२) १. बी० साजै उचकुच । २. बी० औ । ३. बी० करत । (३) १. बी० नांक जानु लोगि । २. मैं० तेइ । (४) १. बी० अति । २. बी० पदमनि । ३. बी० भाव तसैं । (५) १. बी० जानौं । २. बी० गहा । (६) १. बी० बीना परमल । २. मैं० सबइ । (७) १. बी० जिव । २. बी० राज । ३. मैं० सब ।

अर्थ—(१) "उसके मुख [मंडल] में नासिका-देश का शृङ्गार (सौन्दर्य) ऐसा है कि मानो आभरणों के ऊपर ग्रीवा का हार हो । (२) पृथ्वी में सब नासिका को [शरीर में] सहज ही ऊँची जानते हैं, और [इसलिए] सभी उसका बखान करते हैं । (३) लोक में शुक-नासिका की जो सराहना की जाती है, हो न हो [उसकी नाक] उससे भी अधिक (बढ़ कर) है । (४) तिल का फूल जैसा सुंदर फूल होता है, उस पद्मिनी की नासिका ने भी वैसा ही भाव (रूप-सौन्दर्य) पाया है । (५) उस नासिका के स्वरूप को मैं इस प्रकार कह सकता हूँ कि मानो वह सोने का खड्ग हो । (६) वीरण (खस) परिमल, फूल, कस्तूरी—सभी वासनाओं का रस वह ग्रहण करती है ।" (७) [यह वर्णन सुनने पर] राव रूपचंद किसी क्षण मरता तो किसी क्षण जीता और वह [बाजिर को] अर्थ, द्रव्य तथा सभी कुछ देता ।

(७०)

राजा 'अवर त' अधर 'तरासे'। 'जनु मनुसइं के' रगत पियासे।
'ईंगुर घोरि' 'दरेरइं' लिखे। रगत 'पियइ मनुसइं कर सिखे'।
सहज रात जनु सुरंग पंवारी। 'औ (अउ)' रंगि राते पांन सुपारी।
'हार डोर बहु तिन्ह' रंग राता। 'तिन्ह रंगि' बाजुरि कही 'सो' बाता।
'जानु तरासा' कुसु 'लइ' चीरा। खांड आनि 'तेहि' ऊपर बीरा।
अस 'कइ' अधर 'बरनि गए (?)' 'राजा भा' मन भोरु।
रगत धार दुहुं 'नैनन्हि' रस 'धरि' मारा चोरु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४७।१, बी० [२१७]–२२१; दो संख्याएं बी० में बीच में छूट गई हैं।

शीर्षक—सिफ़ते लबहाए चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० और ति। २. बी० निरासे। ३. बी० जनैं मनस कर। (२) १. मैं० लखे दरेरइं (देखिए बाद की शब्दावली)। २. बी० दरेरे। ३. बी० पिये मानस कर सेषे। (३) १. मैं० अउर। (४) १. बी० हाथ दोर तिह ही। २. बी० तेहि रंग बाजुरि कही। ३. बी० में नहीं है। (५) १. बी० जानैं निरासे। २. बी० लै। ३. बी० तिहि। (६) १. बी० कै। २. बी० वरंगे। ३. बी० राज भया मनु। (७) १. बी० दौहु नैनांह। २. बी० धर।

अर्थ—(१) "और, हे राजा, उसके अधर ऐसे त्रास देने वाले हैं, मानो वे मनुष्य के रक्त के प्यासे हों। (२) [वे ऐसे रक्त वर्ण के हैं मानो] हिंगुल घोल कर [उसकी] धारियां लिखी (बनाई) गई हों; उन्होंने मनुष्यों का रक्त पीना [ही] सीख रक्खा है। (३) वे सहज ही रक्त हैं, जैसे सुरंग प्रवाल हो और पान-सुपारी [के रंग] से [और भी अधिक] रक्त [वर्ण के] हो गए हैं, हारों की डोरी भी उनके रंग से बहुत रक्त हो गई है और उन्हीं के रंग में रंग कर बाजिर यह वार्ता कह रहा है। (५) मानो वे त्रस्त करने वाले कुश को लेकर चीरे हुए हैं [इसलिए रक्तवर्ण के हैं] और उन पर खांड लाकर डाली (?) हुई है।" (६) वे अधर जब इस प्रकार वर्णित किए गए, तो राजा मन में भूला (भ्रमित) हो गया। (७) उसके दोनों नेत्रों में रक्त की धारा उमड़ पड़ी, और वह ऐसा हो गया मानो [अपने] रस (अनुराग) [के कारण ही] कोई चोर पकड़ कर मारा गया हो।

(७१)

चौक भींनु 'पानन्ह' रंगि राता। 'अंतरिन्ह' लागि रहे 'जनु' चांटा।
अधर 'बिहरि' 'जउ हंसइ' गुवारी। बिजुरी लौकि 'रइनि' अंधियारी।
'मुख' भीतरि 'दीसइ' उजियारा। हीरा डसन 'करहिं' चमकारा।
सोवन 'खा(खां)ब जानु गढ़ि धरे'। जानु 'सिगरि करि कोइला' 'भरे'।
'दारिउं' दांत देखि रस आसा। भंवर 'पंखि' लागे चहुं पासा।
'मूछा' राउ रूपचंदु सुनि कइ बचन 'सुहाउ'।
भोजन 'जेंवत राजहि लाग दांत कर घाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४७।२, बी० २२२-२२४।

शीर्षक—सिफ़ते दंदान चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पानि। २. बी० अतर। ३. बी० जानौ। (२) १. बी० बिहसि। २. बी० ज्यों हसै। ३. बी० रैंनि। (३) १. बी० मुहु। २. बी० देषौ। ३. बी० करै। (४) १. बी० काप जैसि घरि धरी। २. बी० कुईरि कुईला। ३. बी० भरी (?)। (५) १. बी० दार्‌यो। २. बी० पंक। (६) १. बी० समझा। २. बी० सुहाई। (७) १. बी० जीवन मोर दिन बरौ चांद कै षाई।

अर्थ—(१) "उसके चौक (सामने के चार दांत) भीने और पानों के रंग से रंगकर लाल हैं; वे [ऐसे लगते हैं] मानो अंतड़ियों में चींटे लग (चिपक) रहे हों। (२) वह ग्वालिन अधरों को एक-दूसरे से अलग कर जब हँसती है, तब [मानो] अंधेरी रात में बिजली कौंध जाती है। (३) उसके मुख के भीतर प्रकाश दिखाई पड़ता है, [क्योंकि] हीरे [सदृश] दांत [उसमें] चमत्कार करते [रहते] हैं (४) [वे दांत ऐसे हैं] मानो सोने के खंभे (?) गढ़ कर रक्खे हुए हों, [अथवा] मानो सिगड़ी [जला] कर [उसमें] कोयले रक्खे हुए हों [जो जल रहे हों]। (५) उसके दाडिम [जैसे] दांतों को देखकर रस की आशा से भ्रमर तथा पक्षी उसके चारों ओर लगे [रहते] हैं।" (६) राजा रूपचंद्र इन सुहावने वचनों को सुनकर मूर्च्छित हो गया, (७) [जिसके कारण] भोजन करते समय राजा को दांतों का घाव लग गया।

(७२)

चांद 'जीभि मुख' 'अंबिरित' बानी। पान फूल रस 'पिरम' कहानी।
पदुमिनि बचन नींद सुनि 'आवइ'। दुख 'बिसरइ सुख रइनि बिहावइ'।

'अंबिरित' कुंड 'भएउ' मुख नारी । सहज बात रस 'बहइ सु नारी' ।
'कंवल' क फूल जीभि तेहि माहां । अधर पान 'करि आछइ' छाहां ।
पान 'कैधैं (कइ दहुं)' मुख 'जीभि' अमोला ।
फूल झरहिं 'जउ हंसि हंसि' बोला ।
'छरंगा' राउ रूपचंद 'धरहु धरहु' चिललाइ ।
पांन फूल 'अंबिरित जसि' चांदा अब हीं गइ 'दिखराइ' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४८।१, बी० २२५-२२७ ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते ज़ुबान चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बचन सुनि (तुल० पंक्ति २) । २. बी० अंबृ० (अंबिरित), मैं० अमिरित । ३. बी० पेम । (२) १. बी० आवै । २. बी० बिसरहि सुष रैंनि बिहावै । (३) १. बी० अंब्रित (अबिरित), मैं० अमिरित । २. बी० भई । ३. बी० भइ पियारी । (४) १. बी० कंवर । २. बी० कैं आछौं । (५) १. मैं० जैस । २. बी० जीभ । ३. बी० जौ हसि कै । (६) १. बी० छिरगा । २. बी० धरहर औ । (७) १. बी० अंब्रित रस । २. बी० दिखाइ ।

अर्थ—(१) "चांद (चांदा) के मुख में [उसकी] जिह्वा पत्रों-पुष्पों के रसों तथा प्रेम-कथनों के कारण अमृत-वर्ण की हो रही है । (२) उस पद्मिनी के वचन [ऐसे होते हैं कि उन्हें] सुन कर नींद आती है, दुःख विस्मृत हो जाता है और रात सुख से व्यतीत होती है । (३) उस नारी का मुख अमृत का कुंड [बना] हुआ है, जिससे सहज वार्ता-रस की अच्छी नाली बहती रहती है । (४) उसमें जो जिह्वा है, वह [मानो] कमल का पुष्प है; वह जिह्वा अधरों का पान कर उनकी छाया में रहती है; (५) अथवा उसके मुख की जिह्वा [उस नारी-लता का] पर्ण है, और जब वह हँस कर बोलती है, [उस लता के] फूल झड़ते हैं ।" (६) [इस वर्णन को सुनकर] राजा रूपचंद [जैसे किसी छलना द्वारा] छला गया, और वह चिल्लाने लगा, "पकड़ो, पकड़ो; (७) पान-फूल और अमृत जैसी चांदा अभी-अभी दिखाई पड़ कर [यहाँ से] गई है ।"

(७३)

'सवन' सीप 'चंदन घसि' भरे । कूंकूं बरन 'अतिय' 'कोंवरे' ।
'लांब न छोट थूल नहि तिए । कान कनक जनु झरकहिं दिए' ।

कंवर 'क फूल बीरिय' अति 'लोने' । कौंधा सरगि 'लवहिं दुहुं कोने' ।
'दुहुं गालन्हि घिय कै' चिकनाई । 'जानिय अरसी दुहुं दिसि' लाई ।
'अंबिरित' कुंड झबकि 'करि' भरा । 'अइस न जानउं काहि कहं' धरा ।
अमर सबदु 'भय (भये)' चांदा मुख 'अंबिरित' धनि 'नारि' ।
एत बोलु सुनि राजा फुनि उठ बइठ 'खंखारि' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४८।२, बी० २२८-२३० ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते गोशहाए चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सोन । २. बी० जनौ चंदन । ३. बी० अते । ४. बी० कूवरे । (२) १. बी० में अर्द्धाली के लिए स्थान छोड़ा हुआ था, बाद में संभवतः प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा वह इस प्रकार दी गई :

लांब न छोट थुल नहि तेइ : कान कनक जानैं झरकै देई ।

(३) १. मैं० कपोल रूप । २. बी० लूनें । ३. बी० लुवाहि जानौ कूनें । (४) १. मैं० गालह की अैसी । २. बी० कै अरसी लहि दहु दिस । (५) १. बी० अंब्रित, मैं० अमिरित । २. बी० कर । ३. बी० औस । अैसि (?) न जानौं काकौं । (६) १. मैं० सो । २. बी० अंब्रित, मैं० अमिरित । ३. बी० धन । (७) १. बी० षघारि ।

अर्थ—(१) "उसके कान उन सीपों के जैसे हैं जो घिसे हुए चंदन से भरे हुए हों; वे कुंकुम के वर्ण के और अत्यधिक कोमल हैं । (२) वे न लम्बे हैं न छोटे, न स्थूल हैं, और न पतले; वे कान कनक-दीपों के समान झलकते हैं । (३) उसके बीलक (कान के बीरे) अत्यधिक लावण्यपूर्ण कमल के पुष्प हैं; [वे ऐसे चमकते हैं मानो] आकाश के दोनों कोनों (छोरों) पर बिजली लपलपा रही हों । (४) उसके दोनों गालों पर घृत की चिकनाहट है, मानो दोनों ओर [दो] आरसियां (आदर्शिकाएँ) लगाई हुई हों । (५) वे झबक कर (मुहांमुंह ?) भरे हुए अमृत-कुंड हैं, और ऐसा मुझे ज्ञात नहीं है कि वे किसके लिए [अछूते] रक्खे हुए हैं । (६) उस के मुख में अमृत है इसलिए उस चांदा के शब्द अमर हैं, और वह नारी धन्य है ।" (७) [अमृत की चर्चा से पूर्ण] इतने वचनों को सुन कर राजा पुनः खंखार कर [और चेत में आकर] उठ बैठा ।

(७४)

नैन 'सवन' बिच तिलु इकु परा । 'जानु' बिरह मंसि बिंदुका धरा ।
मुख के 'सोहागु भएउ' तिल संगू । 'पदुम' पुहुप 'सिर' बइठ 'भुजंगू' ।

बास 'लुबुध' बइठेउ भल आई। 'काढि' रहा हरि 'जानु' उड़ाई।
तिल बिरहें 'बन' 'घुंघुची' जरी। 'आधी' 'कारि' 'आधी रतफरी'।
'बिरह दगध हौं (हउं)' मरन स (सं)नेहा।
रगत 'हीन' 'कोइला' भइ देहा।
तिल 'संजोग बाजुर सिर कीन्हेउ' ओहट भा 'परु' जाइ।
राजा 'हिएं' आगि परजारी तिल तिल 'जरि न' बुझाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।१, भो० पत्र ३ (नवीन), बी० २३१-२३३।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते खाले चांदा गोयद।

भो० : सिफ़ते खाले बेमिसाल मह पैकरे चांदा मयानः जिस्म व गोश नुक़तः स्याह उफ़तादन।

पाठान्तर—(१) बी० श्रवन। २. बी० जानौ। (२) १. बी० कौ। २. बी० सुहाग भयो। ३. बी० पिरम। ४. बी० जानौ। ५. बी० भुवंगू। (३) १. मैं० लुबुध तेहि बइठेउ आई, बी० लुबध बैठो फिहिराई। २. बी० मगडि। ३. बी० जैन। (४) १. बी० बिनु (बनु—फ़ारसी)। २. बी० घुघुच, भो० घुंगची। ३. भो० आधि। ४. बी० करि। ५. बी० अंधी रातुरी। (५) १. मैं० तेहि बिरहें तहं। २. बी० नहीं। ३. बी० कुईला। (६) १. बी० संजोगि बाजुरि सिरु कीन्हा। २. बी० परि। (७) १. बी० हिये, मैं० हिए। २. भो० जरइ न, मैं० जरइ।

अर्थ—(१) "उसके [एक ओर के] नेत्र और श्रवण (कान) के बीच एक तिल पड़ा हुआ है, [जो ऐसा लगता है] मानो विरह का मसि-बिंदु रक्खा हुआ हो। (२) यह उसके मुख का सौभाग्य था कि उसको उस तिल का संग प्राप्त हो गया; [यह ऐसा हुआ मानो] पद्म-पुष्प के ऊपर भुजंग (भ्रमर) बैठ गया हो, (३) और वह वास-लुब्ध होकर आकर भले ही बैठ गया हो किन्तु अब वह उड़ेगा, इसलिए अपनी बेड़ी (अपना बंधन) निकाल फेंक रहा हो। (४) उस तिल के विरह में बन की घुंघुची जल गई, [इसीलिए] वह आधी काली और आधी रक्त-फला [हो गई] है। (५) उसके विरह के दग्ध (दाह) के कारण मुझे भी मरने का सन्देह हो रहा है, और मेरा शरीर [भी] रक्तहीन होकर कोयला [जैसा] हो रहा है।" (६) [जब उस धानुष्का ने] बाजिर के सिर पर इस तिल के संयोग (शस्त्रास्त्र) का प्रयोग किया था, वह दूर जा पड़ा था। (७) [अब उस तिल ने] राजा के हृदय में वही अग्नि प्रज्वलित कर दी थी, जिससे वह भी तिल-तिल जल कर बुझ नहीं रहा था।

(७५)

राजा 'गियं कइ' सुनहु निकाई। 'जनु' कुंभार धरि 'चाक' फिराई।
'फूंकति नारि' 'कचोरा' लावा। पियत 'निरांतर गह' दिखरावा।
देव सराहहिं 'तेतीसउ' कोरी। 'गिय उंचारि गहिलिहेसि' अजोरी।
'असि गियं' मनुसहिं 'आथि' न काहू। ठासि 'धरा' 'जनु' 'चलइ' कियाहू।
का 'कहुं' असि 'गियं' दई संवारी। 'को तेहि लागि' देय अंकवारी।
हिय सिरान राजा कर 'सुनेसि कंठ अंकवारि'।
गोवरु मारि 'बिधांसउं' 'आनउं' चांदा नारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ४६।२, भो० पत्र ४ (नवीन), बी० २३४-२३७। बी० में बीच में एक संख्या छूटी हुई है।

भो० में इस कडवक के पत्र पर पुरानी पत्र-संख्या ७५ पड़ी हुई है।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते गुलूए चांदा गोयद।

भो० : सिफ़ते मेहरहे मह पैकरे चांदा मिस्ले औंद कुलाल गुज़ाश्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० गैं की। २. बी० जानौ। ३. बी० चाकु। (२) १. बी० फुवकत नीर। २. भो० कचेरइं। ३. बी० ल्यावा। ४. भो० निरांतर नहि, बी० नीर अन्तर। (३) १. मैं० तहतीसउ, भो० तेतीस्यो। २. भो० केउं अपछरा कैं लीन्हि, बी० गैं विचारि फुनि कहसि। (४) १. भो० असि गिय, बी० अैसग। २. मैं० मनुसहि दीखि, बी० मनसह आथि। ३. मैं० धरे। ४. भो० में नहीं है। ५. भो० चलत, बी० चलै। (५) १. बी० कौं। २. भो० गिय, बी० गै। ३. बी० कतिहि लाइ। (६) १. बी० सुनि कैं कंठ कीयाहि। (७) १. बी० बिधंसौ। २. बी० आनौ।

अर्थ—(१) "हे राजा, उसकी ग्रीवा की सुन्दरता सुनो; [वह ऐसी लगती है] मानो किसी कुम्हार के द्वारा चाक पर रख कर फिराई गई हो। (२) वह नारी [अधरों से] कच्चोल को लगा कर [पेय को] फूंकती है, और तब जब वह उसे पीती है, वह ग्रहणीय (पेय) निरंतर दिखलाई पड़ता है। (३) उसे तैंतीसों कोटि देवता सराहते हैं [और कहते हैं,] 'किससे उखाड़ कर उसने यह ग्रीवा जोड़ ली है?' ऐसी ग्रीवा मनुष्य में कभी नहीं थी। [इस ग्रीवा के साथ वह ऐसी लगती है] मानो कोई चल रहा हुआ कयाह [हो, जिसका गला] ठास (कस) कर पकड़ा गया हो। (५) ऐसी ग्रीवा विधि ने किसके लिए निर्मित की है और कौन इससे लग कर अंकपाली देगा? (६) राजा का हृदय शीतल हो गया, जब उसने कंठ को अंकपाली देने की

बात सुनी। (७) [उसने कहा,] 'मैं गोवर [के जन-समुदाय को मार कर विध्वस्त कर दूंगा और चांदा नारी को लाऊंगा'।"

(७६)

'सुनहु' भुवा 'डंड' 'केहि लइ लावउं'।
'एहिं जग जउ तस किछुव न पाएउं (पावउं)'।
'कारि का गभ (केरिक गाभ)' 'देखउं' तस नाहीं।
'जनु पउंनारि बिसेखइ बाहीं'।
'ईंगुर जइस सिलौटै(टइ) पीसा'।
'रगत अरगत' 'हथोरिन्ह' दीसा।
कर 'पालउ जनु' धरि धरि 'सारे'।
पेड़ 'सहित पालउ' सटकारे।
'जउ रे' भुआ बर 'कर' 'बउसाऊं'।
'एकउ' 'बीरु' न 'जीतइ' काऊ।
'नखन्ह भालि रावत केइं' 'धरे फेरि 'खर' सान।
'बड़' छरि 'लागि' अनियारे राजा 'दीत' परान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५०।१, बी० २३८-२४१; बी० में बीच में एक संख्या छूटी हुई है।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते दो दस्त चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुनौहु। २. बी० डंडु। ३. बी० कहि लै लाऊं। ४. बी० यह जग जो तिस कछू न पाउ। (२) १. मैं० गरुर खंभ। २. बी० देष। ३. बी० जानैं पाउनारि बिसेषै ताही। (३) १. बी० ईंगरु जैस सिलौटै। २. मैं० अरकत बिरकत। ३. बी० हथोरी। (४) १. बी० पलव जानै। २. बी० सारे। ३. बी० सहत पलव। (५) १. बी० जौ रु। २. बी० करि बैसाऊ। ३. बी० येकौ। ४. मैं० नियर। ५. बी० जीतै। (६) १. बी० नष भाल रावत कर। २. बी० बर। (७) १. बी० बरि। २. बी० लागहिगे। ३. मैं० दीन्ह।

अर्थ—"(१) अब उसके भुजदंडों को सुनो; किस पदार्थ को लेकर [उनकी तुलना के लिए] लाऊं? इस जगत में वैसा कुछ नहीं पाता हूं। (२) कदली के गर्भ को देखता हूं तो वह वैसा नहीं है; वे बाहें मानो पद्म-नालों से

विशिष्ट ही हैं। (३) [उसकी हथेलियां ऐसी रक्ताभ हैं कि] जैसे हिंगुल को सिलौटे पर पीसा गया हो, (बल्कि) उसकी हथेलियों से (के समक्ष) वह आरक्त [हिंगुल] भी अरक्त (लालिमाहीन) दीख पड़ता है। (४) उसके कर [ऐसे हैं] मानो ले-ले कर सारे हुए पल्लव हों और [मानो] वे पल्लव पेड़ (शरीर) के साथ सटकारे (कोमल या सचिक्कण किए) हुए हों। (५) यदि वह [अपनी] श्रेष्ठ भुजाओं का व्यवसाय (प्रयोग) करे, तो एक भी वीर [उससे] कदापि नहीं जीत सकता है। (६) उसके नखों के भालों पर ऐ रावत (राजपुत्र), किसने फिरा कर खर शाण रक्खी है? (७) उनके बड़े और अनियारे छल से लग कर (छले जाकर), ऐ राजा, मैंने प्राण दे दिये।"

(७७)

'सोवन थार' हिएं 'जनु धरे'। 'रतन पदारथ मानिक भरे'।
'सहज सेंद(ध)उरा' सेंदुर 'भरे'। थनहर फेरि 'कुंदेरइं धरे'।
नारिंग थनहर उठे अमोला। 'सूर न देखइ' पवनु न डोला।
समुंद भरा जनु लहरइं देई। पोइनि क रस जस भंवरइं लेई।
अंब्रित 'हिरदेउं बेल उपाए'। 'साजि कचोरा हिरदेउं लाए'।
'कुसुम (कुसुंभ ?) चीर' तरि 'देखेउं' 'फरे बेल' बहु भांति।
'राजहि घाय बिसरि गए' सुनि 'अस्थन' भइ सांति॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५०।१, बी० २४२-२४४।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते पिस्तान चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुवन थारु। २. बी० भर धरा। ३. बी० मानिक हीर पंवारी जरा। (२) १. बी० सहजि सिधौरा। २. बी० भरा। ३. बी० कंडेरा धरा। (३) १. बी० सुर नर देष न। (४) १. बी० में भिन्न पाठ की पंक्ति है—

सोवन करस जानौ दोउ गढे : सीसु दीत पय हाथि न चढे।

(५) १. बी० हिरदै बेलि उपाई। २. बी० सजि कचोराह हिरदै लाइ। (६) १. बी० कस्यौ चोरि। २. बी देष्यौं। ३. बी० फरी बेलि। (७) १. बी० हिय र सिरान राजा कर।। २. बी० अस्तन।

अर्थ—(१) "[उसके उरोज ऐसे हैं] मानो रत्नों, पदार्थों (बहुमूल्य पत्थरों) और माणिक्यों से भरे हुए सोने के थाल [उसके] हृदय पर रक्खे हुए हों। (२) वे सहज ही सिंदूर भरे हुए सिंदूर-पात्र [जैसे] हैं, [ओर वे चिकने ऐसे हैं मानो] उन भारी स्तनों को कुंदेरे ने [खराद पर] फेर कर

रक्खा हो। (३) वे भारी स्तन उठे (उभड़े) हुए अमूल्य नारंगे हैं, जिन्हें [वस्त्रों के आच्छादन के कारण] न सूर्य देख पाता है और न [जिनके निकट] पवन डोल पाता है। (४) [वे अपनी उठान में ऐसे लगते हैं] मानो भरा हुआ समुद्र लहरें दे रहा हो, और [उन पर का काला भाग ऐसा लगता है] जैसे कोई भौंरा पद्मिनी का रस ले (पी) रहा हो। (५) [पुन : वे ऐसे लगते हैं मानो] उसके हृदय ने अमृत के वेल उत्पन्न किए हों, अथवा उसने कच्चोल सजा कर रक्खे हों। (६) उसके कुसुंभी चीर के तले मैंने देखा कि वे बेल बहुत भांति से फले हुए थे। (७) [अमृत-युक्त] स्तनों [के इस वर्णन] को सुन कर राजा को [विरह के] घाव विस्मृत हो गए और उस को शांति मिली।

(७८)

पेटु 'कहउं सुनु तू जग' राजा। 'आपुइं बान कवन पर' साजा।
पूरन 'खांड' सपूरन 'पूरे'। 'जहवां दीसिहिं तहवां कूरे'।
'जानु' सोहारी 'घिरित' पकाई। देखत पान फूल पतराई।
नाभी कुंड 'जउ देखइ' 'बीरू'। 'देखतहिं बूड न पावइ' तीरू।
जानौं आंत पेट महिं नाहीं। 'अंतरिक(ख)' चांद 'दीस' परछाहीं।
अति 'अवगाह' 'पेट' अस बाजुर ता महिं सूझ न नीरु।
सुनि 'कइ' 'राउ' दौरि 'धसि लीते' 'बूडि न पावइ' तीरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५१।१, बी० २४५-२४७।

शीर्षक—सिफ़ते शिकम चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहौं सुनु भोकर। २. बी० औपन सजि कैन पै साजा। (२) १. बी० खंड। २. बी० पूरी। ३. बी० जुहुवां दैषौ तहुवां कूरी। (३) १. बी० जानौ। २. बी० घीरत। (४) १. बी० देषि जउ। २. बी० चीरु। ३. बी० देषत बूड न पावहिं। (५) १. बी० अंतरकि। २. बी० दीठ। (६) १. बी० औगाह। २. मै० बोल। (७) १. बी० कैं। २. बी० राइ। ३. बी० धस लीन्ही। ४. बी० बूड न पायो।

अर्थ—"(१) [अब मैं उसके] पेट का कथन कर रहा हूं; ऐ जगत् के राजा, तू उसे सुन। उसने किसको लक्ष्य करके अपने-आप बाण-सज्जा की है? (२) उसका पेट सम्पूर्णत: खांड से भरा हुआ पूर (पुंज या ढेर) है, जो जहां पर भी दिखाई देता है, वहां पर वही कूट ही दिखाई देता है। (३) वह

मानो घी में पकाई हुई सौहारी (पूड़ी) है और देखने में पान-फूल का (जैसा) उसका पतलापन है। (४) यदि कोई वीर [भी] उसके नाभि-कुंड को देखे, तो वह उसे देखते मात्र में उसमें डूब जाए, और तट (किनारा) न पाए। (५) [उसका पेट इतना पतला है कि] मानो उसमें आंतें नहीं हैं, [इसीलिए] अंतरिक्ष के चंद्र की उसमें से प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है। (६) और, वह पेट इतना अधिक गहरा है, बाजिर कह रहा है, कि उसमें [का] जल नहीं सूझता है।" (७) यह सुन कर राजा ने दौड़ कर उसमें धंस लिया (उसमें डुबकी लगाई) और वह उसमें ऐसा डूब गया कि वह तट नहीं पा रहा था।

(७९)

'घोटिहि घोटि' पीठि 'बइसारी'। 'कइ रे' बिनानी 'सांचइं' ढारी।
करि 'जनु हीन पाट कर' डोरा। 'पेट' ठाउं सहस 'इक' मोरा।
लंक बार 'जसि दीठि न आवइ'। चांद चीर महिं भरम 'दिखावइ'।
'बररइं' लंक 'बिसेषइ' धनां। 'अउरु लंक पातरि को' गुनां।
फूंकत टूटि 'होत दुइ' आधा। नैनि देखि मनि 'उपजइ' साधा।
मूरिखु होइ जो 'तिरइ न जानइ' 'छीलरि बोडै(डइ)' पाउ।
करि गुन 'गहे' 'बइठ भा' बूडत 'काढा' राउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ५१।२, बी० २४८-२५१; बी० में एक संख्या बीच में छूट गई है।

शीर्षक—सिफ़ते पुश्त चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० घूटि न घूटि। २. बी० बैसारी। ३. बी० कै रि। ४. बी० सांचै। (२) १. बी० जनु हीन पाट के, मै० जु रे हीर पाट कर। २. बी० हसत हसत। ३. मै० दुइ। (३) १. बी० जस दीठ ना आवै। २. बी० दिखावै। (४) १. बी० बररी। २. बी० बिसेषे। ३. बी० औरु लंक पातु कैं। (५) १. बी० होय दोय। २. बी० उपजै। (६) १. बी० तिरि ना जानै। २. मै० चाहइ पौरइ। (७) १. मै० भए। २. बी० बिधाता। ३. बी० काढै।

अर्थ—"(१) उसकी पीठ या तो घोंट-घोंट कर बिठाई हुई है, और या तो किसी विज्ञानी (कुशल कारीगर) द्वारा सांचे में ढाल कर निर्मित की हुई है। (२) उसकी कटि मानो हल्के पाट (रेशम) का डोरा (धागा) हो; पेट के स्थान पर उसमें एक सहस्र मोड़ हैं। (३) बाल के जैसी उसकी

लंक ऐसी पतली है कि वह दृष्टि में नहीं आती है, वह उसके चंद्र चीर में भ्रम [जैसी] दिखाई पड़ती है। (४) उस स्त्री की लंक (कटि) बर्र की लंक से भी अधिक वैशिष्ट्य-युक्त है; [उसकी तुलना में] दूसरी [लंकों] को कौन पतली गुन सकता है? (५) फूंक [लगने] से ही वह टूट कर दो आधों में [विभक्त] हो जाएगी; नेत्रों से देखने पर मन में [उसे प्राप्त करने की] आकांक्षा [अनायास] उत्पन्न होती है। (६) वह मूर्ख होगा जो तिरना (तैरना) न जानता हो और [फिर भी] झील के जल में अपने पैर डाले।" (७) [इस वर्णन को सुन कर] राजा [उस स्त्री-नौका की] कटि-करिया का आसरा लेकर बैठ रहा, [इसीलिए] वह राजा [उस सौन्दर्य-सरोवर में से] डूबते-डूबते निकाला जा सका।

(८०)

'गरुर खंभ' 'दुइ' चीरि फिराए। चांद 'चलन' अपुरब 'घडि' लाए।
'अउ' समतूल 'दीखि असि' धारा। 'देखि' बिमोहे सुरंग पंवारा।
'देखत मोर मनु तस कइ' लागा। सिर भुइं 'धरेउं' घालि 'गियं' पागा।
'जउ ओहि चलन' देखि 'पां लागहिं'।
पाप 'केत पुरुसन्ह कर भा(भां?)गहिं'।
रूप 'पुतरि घडि' दस नख लावा। 'तरुवन्ह' रगत फूटि 'चलि' आवा।
पाइ 'परउं' मुख 'जोवउं' 'सो धनि' उतरु न देइ।
'सुनत' राउ 'बिसंभरि' गा मरि मरि 'सांसइं' लेइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५२।१, बी० २५२-२५४।

शीर्षक—सिफ़ते रानहा व रफ़तार चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० केरि का गभ। २. बी० दोय। ३. बी० चरन। ४. बी० गढि। (२) १. बी० अै। २. बी० हेंम अस। ३. बी० नैन। (३) १. मैं० देखि खंभ मोर मन तस। २. बी० धरौं। ३. बी० गैं। (४) १. बी० जै वह चंपित (?)। २. बी० पर लागैं। ३. बी० कीन्ह बरसह (केत पुरुसन्ह—फ़ारसी) कर भागैं। (५) १. बी० पतरि घरि। २. बी० तरुवा। ३. बी० बहि। (६) १. बी० परैं। २. बी० जोवैं। ३. बी० सा धन। (७) १. बी० सुनि कै। २. बी० बिसिभरि। ३. बी० सासैं।

अर्थ—"(१) जैसे किसी गरुड-स्तंभ को दो में चीर कर उसे उलट दिया गया हो, चांदा के चरण इस प्रकार अपूर्व रीति से गढ़ कर लगाए हुए हैं। (२) [उन चरणों की] धारा (वर्ण-आकृति आदि) समतुल्यता में ऐसी

दीखी कि उन्हें देख कर सुन्दर रंगों वाले प्रवाल विमोहित हो गए। (३) उन खंभों (चरणों) को देख कर मेरा मन [उनमें] ऐसा लग गया कि मैंने गले में पाग डाल कर सिर [उनके समक्ष] भूमि पर रख दिया। (४) यदि उन चरणों को देख कर लोग उसके पैरों से लगें, तो उनके कितने ही पूर्व-पुरुषों के पाप भंग (नष्ट) हो जाएं (५) [उसके चरणों के नख ऐसे सुन्दर हैं मानो] उस रूप की पुतली को गढ़ने के अनंतर उन दस [सुंदर] नखों को [विधाता ने] लगाया हो, और उसके तलवे ऐसे [कोमल] हैं कि [मानो] रक्त उनसे फूट कर चला (निकला) आ रहा हो। (६) मैं उसके पैरों में पड़ता और उसके मुख को देखता रह गया, किन्तु वह स्त्री उत्तर नहीं दे रही थी।" (७) यह सुनते ही राजा बेसंभाल हो गया, और [मानो] मर-मर कर साँसें लेने लगा।

(८१)

हंस गवनि ठम ठमकति 'आवइ'। 'झमक झमक' धनि 'पाउ उचावइ'।
'जमक जमक पउ' धरती धरा। छनक छनक 'जनु पंगति' भरा।
'मेलि मेल्हाति' 'सो' चांदा 'आवै (वइ)'। 'जानउं गयंबरु पैग' 'उचावइ'।
सिर भुइं 'धरउं' चांद 'धर' पाऊ। 'पा तर हुतें' न 'काढउं रे' काऊ।
'पा कइ' धूरि नैन भरि 'आंजउं'। जीभ काढि 'दोइ' तरुवा 'मांजउं'।
'चलत(न) चांद चितु' लागा 'मन हुत' उतर न काउ।
पा लहुं हाथु न 'संचरै(रइ)' 'परिहसि' 'रोवइ' राउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५२।२, बी० २५५-२५७।

शीर्षक—मैं० सिफ़ते पाय व रफ़्तार चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० आवै। २. मैं० जमकि जमकि। ३. बी० पौरु उचावै। (२) १. बी० छिमक छिमक पाउ। २. बी० पाउ कत। (३) १. बी० माल्हि मल्हिति। २. बी० सु। ३. मैं० आई। ४. बी० जानौ गैंवरु पाउ। ५. बी० उचावै। (४) बी० धरौं। २. बी० धरि। ३. बी० पा हुति तरे। ४. बी० काढैं। (५) १. बी० पाव की। २. बी० आंजौं। ३. बी० दोय। ४. बी० मांजौं। (६) १. बी० चांद चरन मनु। २. बी० चित हुतेंहि। (७) १. मैं० पहुंचइ। २. मैं० हंसि हंसि। ३. बी० रोवै।

अर्थ—"(१) वह हंस-गमनी ठुमठुम करती हुई (ठुमकती हुई) आती है, और वह स्त्री झमक-झमक कर पैर उठाती है। (२) जमक-जमक कर वह धरती पर पैर रखती है, और छनक-छनक कर मानो [पग-] पंक्ति भरती है।

(३) मेल्हती-मेल्हाती (झूमती हुई) वह चांदा [इस प्रकार] आती है, मानो कोई श्रेष्ठ गज पैग उठा रहा हो। (४) [मैंने संकल्प किया कि] जहाँ पर चांदा पैर रक्खेगी, मैं भूमि पर सिर रखूंगा, और उसे उसके चरणों के नीचे से [उसे] कभी न निकालूंगा; (५) मैं उसके पैरों की धूल नेत्रों में भर कर उसका अंजन करूंगा और [अपनी] जिह्वा को निकाल कर उसके दोनों तलवों को मार्जित (साफ़) करूंगा। (६) चांदा के चरणों में मैं [मेरा] चित्त ऐसा लगा कि वे कभी भी मन से न उतरे।" (७) [यह सुनने के अनंतर] उसके पैरों तक राजा के हाथ नहीं संचर सकते थे, इसी परिहस (परिहासपूर्ण स्थिति) के कारण वह रो रहा था।

(८२)

लग 'जैसे लहरि लहरि' सटकारी। चंदन 'जइफर मेरइ संवारी'।
सरग 'पवान' लागि 'जनु' आई। 'चाहति अइसइं' जाइ उड़ाई॥
बांस 'पोर हुत जनु धरि' काढ़ी। 'आछरि' जइसि देखि 'मइं' ठाढ़ी।
'करी पुहुप तस अंग गंधाई'। रितु बसंत चहुं दिसि फिर आई।
अंग बासु नौ खंड 'गंधाने'। 'कुस(सु)म' केतकी भंवर 'लुभाने'।
'यंदु (इंदु) गोयंदु (गोइंदु)' 'चंदु अरु दिनियरु' 'बरंभा बिसुन' मुरारि।
गन 'गंधप' रिखि देवता 'देखि' बिमोहे नारि॥

सन्दर्भ—मैं० ५३।१, बी० २५८-२६०।

शीर्षक—सिफ़ते क़दो क़ामदे चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैसी लहलह। २. बी० चिरिया गढी सुनारी। (२) १. बी० बिवानि। २. बी० भुइं। ३. बी० चाहत अैसी। (३) १. बी० परि जांनौ धर हते। २. बी० अछरि। ३. बी० हम। (४) १. बी० नहु नहु करी किरलि फुलि छाई। (५) १. बी० गंधाये। २. मैं० बास। ३. बी० लुभाए। (६) १. मैं० इन्द्र गोइंद्र। २. मैं० चंदरावलि। ३. बी० ब्रह्मा बिश्नु। (७) १. बी० गंधर्व। २. मैं० रूप।

अर्थ—"(१) उसका शरीर ऐसा है, जैसे सटकारी (चिकनी या कोमल) लहर ही लहर हो, जो चंदन तथा जायफल मिला (लगा) कर संवारी गई हो। (२) वह मानो स्वर्ग (आकाश) तक आ लगती थी, और [लगता था कि] इसी प्रकार वह उड़ जाएगी। (३) वह ऐसे छरहरें बदन की थी, [मानो] बांस की पोर में से पकड़ कर निकाली गई हो और मैंने उसको

अप्सरा की जैसी खड़ी देखा। (४) पुष्प-कलिका के सदृश उसका शरीर महक रहा था, [और उससे ऐसा लगता था कि जैसे] चारों ओर बसन्त ऋतु लौट आई हो। (५) उसके अंग की सुवास से नौ खंड महक उठे थे, और उस केतकी कुसुम पर भौंरे लुब्ध थे। (६) इन्द्र, गोपेन्द्र (गोविन्द), चंद्र, दिनकर (सूर्य), ब्रह्मा, विष्णु, मुरारि, (७) गण, गंधर्व, ऋषि और देवता—[सभी] उस नारी को देख कर विमोहित हो गए हैं।"

(८३)

'सुनहु चीरु कस पहिर गोवारी। फुंदिया 'राधि सेंदुरिया' सारी।
'पहिर मेघवना' अउ 'कुसियारा'। 'जुगिया' चीर 'चौकड़िया' सारा।
मुंगिया 'पत्तलि अंग चढ़ाई'। 'मंडिला छुंदरी फिरि पहिराई।
'सांवन' चांद 'कसुंभी' राती। इक खंड छाप सो 'सोह' गुजराती।
'डोरिया' 'चंदरौटा' 'औ अबजारू'। 'साज' 'पटोरइं बहुल' सिंगारू।
'चोला चीर पहिरि जउ चाली' 'जानउं जाइ उड़ाइ'।
'देखत रूप देवता बिमोहे' कत हुतें आछरि आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५३।२, शि०, बी० २६१-२६३।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते किसवत चांदा गोयद।

शि० में शीर्षक तथा (३) तथा (६) भी (७) अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुनैहु चीरु कसि पहरि गुवारी। २. बी० राति सिदुरिया। (२) १. बी० पहरि मघौना। २. बी० कसियारा। ३. मैं० चिकवा। ४. शि० चौकड़ी, बी० जुगौटी। (३) १. बी० पहरैं अंगि फिराई। २. बी० सब लावनि कै अते सुहाई। (४) १. शि० सावन। २. बी० कसूभैं। ३. बी० सोहै। (५) १. बी० डुरिया। २. शि० चंदौटा, बी० चीरु। ३. मैं० औ बन जारू, बी० अते अबिचारू। ४. शि० सांच, बी० सांझ। ५. बी० पटोरैं सभैं। (६) १. बी० चोरा चूनरि पहरि जु चांदा। २. बी० जानौ जाय उडाय। (७) १. बी० देषि देवता सभ ही मोहे।

अर्थ—"(१) वह ग्वालिन कैसा चीर पहनती है, [अब] यह सुनो। फुंदिया से मिली हुई उसकी सिंदूरी साड़ी होती है। (२) वह मेघवना और कुसियारा पहनती है तथा जोगिया और चौकड़िया चीर सारती (पहनती?) है। (३) पतली (झीनी) मुंगिया वह अपने सिर पर चढ़ाती है, पुनः वह मंडिला तथा छुंदरी (चूंदरी) पहनती है। (४) सावन में चांदा कुसुंभी चीर

से रक्त (सुंदर) बनी रहती है। [उसके शरीर पर] एकखंडे छापे की गुजराती साड़ी शोभा देती है। (५) डोरिया, चंद्र-पट्टक, अबजारे तथा पट्टकूल से [उसका] शृंगार बहुत होता है। (६) चोला (चोली) और चीर धारण कर जब वह चलती है, तो लगता है कि वह उड़ जाएगी। (७) उसके रूप को देख कर देवता विमोहित हो उठे, [और सोचने लगे] 'कहां से यह अप्सरा आई हुई है' ?"

(८४)

कुंडर सुवन जरे 'लइ' हीरा। चहुं 'दिसि बइठ' पदारथ बीरा।
अरु दुइ खूंटि सरग जनु तारा। टूटि 'परहिं तस होइ' उजियारा।
'उवइ' अगस्ति नांक 'कइ' फूली। नखत 'वारि सूरिजु गा भूली'।
हार डोर 'अउ संकरी' पूरी। अभरन भार 'परइ जनु' चूरी।
दस 'अंगुरिन्ह' अंगूठी 'पगवाई'। कर 'कंगन' 'भर पहिर कलाई'।
चूरा 'नेवरु' 'पायर' 'पैंजनि' गोवर 'होइ' झनकार।
नखत चांद कर अभरन अभरन चांद सिंगार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५४, बी० २६४-२६७; बी० में बीच में एक संख्या छूट गई है।

शीर्षक—सिफ़ते ज़रीनहा चांदा गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लैं। २. बी० दिस रतन। (२) १. बी० परत जस होइ। (३) १. बी० उया। २. बी० की। ३. बी० सुरिजु दोय देषें। (४) १. बी० अैसै कर। २. बी० परै जैसे। (५) १. बी० अंगुरी। २. बी० बकवाई (पगवाई—फ़ा०)। ३. बी० कंकन। ४. बी० भल पहरि कराई। (६) १. मैं० में नहीं है। २. मैं० पायल। ३. बी० पैजन। ४. बी० होय।

अर्थ—"(१) उसके जो सुंदर वर्ण के कुंडल हैं, वे हीरे लेकर जड़े हुए हैं तथा उसके बीरों (कर्णाभरण-विशेष) में चारों ओर पदार्थ (बहुमूल्य पत्थर) बैठे हुए हैं। (२) [उसके कानों में] दो खूंट [भी] हैं, जो ऐसे हैं मानो आकाश के तारे हों; उनका प्रकाश ऐसा होता है मानो वे टूटे पड़ रहे हों। (३) उसकी नाक की फुल्ली उदित होता हुआ अगस्त है; नक्षत्रों को [उस पर] वार कर सूर्य [अपने को] भूला रहता है। (४) उसने [गले में] हार-डोरें और संकरियां पहन रक्खी हैं, और [उन] आभरणों का भार ऐसा है

मानो उससे वह टूटी पड़ रही हो। (५) दसो उंगलियों में उसने अंगूठियां डलवा (?) रक्खी हैं, और अपने करों में वह भारी कंगन तथा कलाइयां पहन रही (पहने हुए) है। (६) [उसके पैरों में] जो चूड़े, नूपुर, पायल तथा पैंजनियाँ हैं, उनकी झंकार गोवर भर में होती [रहती] है। (७) [ऐसा लगता है मानो] जो नक्षत्र [आकाश में] चांद के आभरण थे, वे [अब] चांदा के शृंगार के आभरण [हो रहे] हैं।"

(८५)

चांद चलन जौ पयकु (पैगु) उचावै।
पाई चमाउ(ऊ) लटकतु आवै।
जिउ अस कहै क (कि) देषत रहिये।
लागैं पाउ सीस धौं छुहिये।
काहु करौ मोहि हाथु न देई।
पाउ ठेलि अ···टी करि लेई।
अइसै कहौं कि कबही पाउं।
तेहि चरण (चलन) लै हिरदै लाउं।
देखत चरण (चलन) परै जौ पाई।
तब मो अंग·····ई।
दाउद अभरन सभ पहराइसि छाडिसि पाव उघारि।
महमद घाइ (पाइ ?) चमऔ (चमाऊ) दीती रहसि बाहुरि तब नारि॥

सन्दर्भ—बी० २६८-२६९। बी० में चौथी तथा पांचवीं पंक्तियां बाएं हाशिए में लिखी गई है और उक्त हाशिए का ऊपर का कोना चूहे के द्वारा काटा हुआ है इसलिए दोनों के कुछ अक्षर अब निकल गए हैं। मैं० यहाँ पर त्रुटित है अथवा नहीं, यह उसमें उसके ५५वें पत्र पर दिए हुए चित्र से स्पष्ट नहीं है।

अर्थ—"(१) चाँदा पैंग [भरने] के लिए जब चरण उठाती है, तब उसके [पैरों में पड़ी हुई] चमाऊ (चमड़े की) पाई (पादत्री) उनसे लटकती आती है। (२) जी ऐसा कहता है कि उन्हें देखते ही रहिए, और उसके पैरों में लग कर सिर उन्हें छूए। (३) मैं [उसके हाथों को लेकर] क्या करता ? भले ही वह [अपने] हाथ मुझे न देती; [केवल] मुझे वह पैरों से

ठेल कर अ·····टी कर लेती। (४) मैं [मन में] ऐसा कह रहा था कि कब मैं पा जाऊं, और उसके चरणों को लेकर हृदय से लगा लूं। (५) उसके चरण देखते समय यदि उसकी पादत्री पड़ जाती, तब मेरे अंग····· जाते। (६) दाऊद कहते हैं, उसने समस्त आभरण [अपने विभिन्न अंगों को] पिन्हाए थे, [केवल] पैरों को उसने खुला रक्खा था। (७) उसने, ऐ मुहम्मद, चमड़े की पाई (पादत्री) मात्र [उनमें] दे रक्खी थी और तब वह नारी हर्षपूर्वक लौट गई।"

७. गोवर-चढ़ाई खण्ड

(८६)

'सभ' सिंगारु 'बाजुर जउ' कहा। राजा नैन नीर नै (नइ) बहा।
राइ कहा 'सुनु बांठा' आई। राज कुरी फिरि देहु दुहाई।
'राउत' पाइक साहन बारी। छत्तिस 'कुरि' लइ आउ हंकारी।
जांवंत देस 'फिरइ' मोरि आनां। तांवंत 'जाइ पठउ' परधानां।
'जहं लगि बांधइ जानइ' काछा। मारि 'पबारउ' 'जउ' घरि आछा।
'राजा चरै(ड़ै ?) गोवर कहु(हुं)' 'सांभर लेइ' संजोइ।
आगें 'दइ' 'लै(लइ) चालहु' 'पाछें रहइ' न कोइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५५, बी० २७०-२७२।

शीर्षक—मैं० : तमाम करदने सिफ़ते चांदा व इस्तअ़दाद कूच करदने।

पाठान्तर—(१) १. बी० सो (सब—नागरी)। २. बी० बाजुरि जौ। (२) १. बी० बांठ सुनु। (३) १. बी० रावत। २. मैं० कुरि। (४) १. बी० फिरै। २. बी० जयहु पठवोहु। (५) १. बी० जा लगु जानौ बाधै। २. बी० बिपारौ (पबारौं—फ़ारसी)। ३. बी० जौ। (६) १. मैं० चला बरइ कहं। २. बी० सापरि लेहु। (७) १. बी० दे। २. मैं० कइ चलावहि। ३. बी० पाछै रहै।

अर्थ—(१) बाजिर ने जब सारा शृंगार [चांदा का] कह डाला, राजा [रूपचंद] के नेत्रों से आंसुओं की नदी बह चली। (२) राजा ने कहा, "बांठा, आकर सुन, राज-कुलियों में फिर कर दुहाई दे। (३) जो रावत (राजपुत्र), पदाति, साधन (सैन्य) और बारी (सेवक) हैं, छत्तीसों कुल वालों को बुला। (४) जितनी दूर तक देश में मेरी आन फिरती है, उतनी

दूर तक तू जा कर प्रधान को भेज। (५) जहाँ तक भी (जितनी आयु तक के भी) कच्छा बाँधना (धोती पहनना) जानते हैं, यदि वे घर रह जाते हैं तो मैं उन्हें मार कर फेंक दूंगा। (६) [कहना कि] राजा गोवर के लिए चढ़ाई कर रहा है, इसलिए वे शंबल और संयोग (शस्त्रास्त्र) ले लें [और उसके साथ हो जाएं]। (७) [इस प्रकार] उनको आगे दे (रख) कर तू चले, जिससे कोई पीछे न रह जाए।"

(८७)

ठोके तबल मेघ 'जनु' गाजे। घर घर सब ही 'राउत' साजे।
'अगनित बीर' 'बहुल धनुकारा'। 'सत्तरि' 'सहस चले' कुंतकारा॥
'नव्वे सहस घोर' पाखरे। 'तारूं' तरुवां 'लोहइं' जरे।
'चढ़े आएंनि' लाखु असवारा। लाखु 'कुवान अउर बड़वारा'।
एक सहस 'भेरिकार' चलावा। 'तूरां' सींगां अंतु न पावा।
राहु केतु घरि 'आठए' 'दिसा' सूरु 'भा' आइ।
सूक 'सउह उतरापंथि' जोगिनि 'बाहेर मेलइ जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५६, बी० २७३-२७५।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते दर इस्तअ़दाद गोयद।

बी० : रूपचंद बाठा आया; किन्तु यह संकेत उसमें ऊपर के हाशिए में कदाचित् अन्य व्यक्ति द्वारा दिया हुआ है।

पाठान्तर—१. बी० जानौ। २. बी० रावत। (२) १. बी० अगिनत फरी। २. बी० बहुत धनकारा। ३. मैं० सात। ४. बी० संहस संबहें। (३) १. बी० नवैं सहस यक हय। २. बी० तार्‌यो तरवा लोहे। (४) १. बी० भरे उबीने (आवइं—फ़ारसी)। २. बी० गवाने औ बरवारा। (५) १. बी० भरि कहार। २. बी० तुरिया। (६) १. बी० आठवैं। २. बी० दसा। ३. बी० भया। (७) १. बी० सनीसरु उतर पंथी। २. बी० दाहिनि दिसाई।

अर्थ—(१) तबल (बड़े ढोल) ठोके गए, जो इस प्रकार गर्ज उठे मानो मेघ हों। सभी रावतों (राजपुत्रों) ने घर-घर में सज्जा की। (२) अगणित वीर, बहुतेरे धानुष्क, तथा सत्तर सहस्र कुंतकार (भाले वाले सैनिक) चले। (३) नव्वे सहस्र घोड़े पाखरित हुए, जो तालु से लेकर तलवे तक लौह से मढ़े हुए थे। (४) एक लाख सवार चढ़े हुए आ पहुंचे, एक लाख कुवान

(हीन वर्ण के) और एक लाख बड़वार (ऊंचे वर्ण के) सैनिक भी थे। (५) एक सहस्र भेरीकार चलाए गए; तूर्य और सिंगे वालों का [तो] अन्त नहीं मिलता था। (६) [उस समय] राहु तथा केतु आठवें 'घर' में थे और दिशा-शूल आया हुआ था, (७) शुक्र सामने था और योगिनी उत्तरापथ में थी, इसी समय [रूपचंद और उसकी सेना रण-यात्रा पर] बाहर निकले।

(८८)

'अनवन' भांति दीख केकानां। 'अंगुरा दुइ दुइ तिन्ह के' कानां।
सेत कियाह कार 'जनु' रीठा। 'हरीयांत' मुख 'झमकत' दीठा।
'गाल्ह संकोचे' लोह चबांहीं। 'समुंद लांघि जनु' 'लंका' जाहीं।
नैन 'मिरिघ जिन्ह पाय' पखारे। पवन पंख देखत 'हरियारे'।
'घात चढ़िय' मुख धाठी दीजा। 'तुंग बिसार पेट' धरि लीजा।
'कइ रे' 'समुंद हुत' काढे 'कइ यह बाइ बियाने'।
'सोवन पाखर धालि कइ' आनें 'सबइ पलाने'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५७, बी० २७६-२७८।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते असबाब अरबी, ताजी राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० अन अन। २. बी० आगुर दोइ दोइ तिन्ह। (२) १. बी० जिन्हि। २. बी० हरे पाट। ३. बी० चमकत। (३) १. मैं० गाढ संकोचे, बी० गाल्ह सकोचै। २. बी० समदु लंघि जानौ। ३. मैं० लंकहन। (४) १. बी० मिरचहु पाव। २. बी० हतियारे। (५) १. बी० घाट चरे। २. बी० टंका लाषु लाषु। (६) १. बी० कै रु। २. बी० समदतहि। ३. बी० कै यह माइ बियान। (७) १. बी० घालि पीठी सोवन पाखर। २. बी० सभै पलान।

अर्थ—(१) [उसकी सेना के] कैकान (घोड़े) अद्भुत भांतियों के दीखते थे, उनके कान दो-दो अंगुलों [तक] के थे। (२) श्वेत घोड़े थे, कयाह थे, जो रीठे के समान काले (कलछौंहे) थे, हरिए (सब्ज़े) थे, जिनके मुख झमकते हुए (अस्थिर) दिखाई पड़ते थे, (३) वे गालों को सिकोड़े हुए [मुंह में दिए हुए] लौह को चबाते रहते थे और लगता था मानो समुद्र को लांघ कर लंका जाना चाहते हों, (४) जिनके नेत्र मृगों के [जैसे] और पैर प्रक्षालित [जैसे] थे, और जिन्होंने [जैसे] हवा के पंखे लगा रक्खे थे, ऐसे वे हरिए (सब्ज़े) दीखते थे, (५) घात से ही उन पर चढ़ा जाता था, और उनके

मुखों में ढाठी (मुहबंद) देनी पड़ती थी, तथा वे इतने ऊंचे तथा विशाल (बड़े) थे कि पेट के सहारे ही उन्हें लिया (उन पर चढ़ा) जा सकता था। (६) [ऐसा लगता था कि] या तो वे समुद्र से निकाले हुए थे, अथवा यह हो कि वे वायु की संतान थे। (७) सोने की पाखरें डाल कर सब [अश्व] पर्याणित करके लाए गए थे।

(८९)

'पखरे' हस्ति दांत 'बहिराए'। धानुक 'लइ ऊपर बइसाए'।
बनखंड 'जइस चले अति कारे'। उनए 'जानु मेघ अंधकारे'।
चलन 'लाग जनु चलहिं पहारा'। छांह 'परइ' जग 'भा' अंधियारा।
'झुंकरहिं जउ तिन्ह' अंकुसु 'लागइ'। 'पर दरि कोस सहस इक भागइ'।
'जउ कोपहिं' तउ राइ संघारहि'। बन 'तरुवर जरि मूरि उपारहिं'।
मैंगर 'पाइ पानि उठ' 'डरइ [कि ?] कांदव होइ।
राउ रूपचंदु कोपा 'टेकि न पारइ कोइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५८, बी० २७९-२८१।

शीर्षक—सिफ़ते पीलाने राव रूपचन्द गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पाखर। २. बी० पहराये (बहिराए—फ़ारसी)। ३. बी० गुनी आनि बैसाये। (२) १. बी० जैस चरे अति कारा। २. बी० मेघ जानौ अधियारे। (३) १. बी० लगि जानौ चलैहि। २. बी० परैंहि। ३. बी० भया। (४) १. बी० चिघरै जो तिसु। २. बी० लागै। ३. बी० परदर कोस सहंस यक भागैं। (५) १. बी० जा कौपै तौ राय सघारैहि। २. बी० तरवर जर मूल उपारैहि। (६) १. बी० पाय तपत यत। २. बी० दरमहि कादौं होय। (७) १. बी० टेक न पावै कोय।

अर्थ—(१) पाखरे हुए हाथी दाँत बाहर किए हुए थे, उन पर धानुष्कों को ले कर बिठाया गया था। (२) वे अत्यधिक काले वर्ण के [हाथी] बनखंड की भाँति चल पड़े थे; [अथवा वे ऐसे लगते थे] मानो अंधकारपूर्ण मेघ अवनमित हुए हों। (३) [उनका] चलना [ऐसा लगता था] मानो पहाड़ चल रहे हों। उनकी जो छाया पड़ती थी, उससे जगत् में अन्धकार हो जाता था। (४) उन पर जब अंकुश लगता था, तब वे झुंकरते (चीत्कार करते) थे, और पर (शत्रु) के दल में वे एक सहस्र कोस पर्यन्त भाग जाते थे। (५) वे जब कुपित होते थे, तब राजाओं का संहार करते थे, और बनों के बड़े-बड़े

तरुवरों को जड़-मूल से उखाड़ देते थे। (६) इन मदगलितों के चरणों से पानी डर कर उठ पड़ता था कि वह कर्दम हो जाएगा। (७) राजा रूपचन्द्र [इस प्रकार] कुपित हुआ था कि उसे कोई टेक नहीं सकता था (उसके आक्रमण का सामना नहीं कर सकता था)।

(९०)

'सबही गज दल (द) भएउ' पयानां। ठोके तबल 'दइउ अंगिराना'।
'एक छिति' फौज चले असवारा। 'कोस बीस लगि भएउ' पसारा।
'आगें परइ' नीरु 'खरु पावइ'। 'पाछें रहइ सो' धूरि 'बुकावइ'।
'सगरइं देस अइस डर' छावा। 'सभइ तुराइं' राउ चलि आवा।
'उठइ खेह' दर सूझ न 'बागा'। 'जानु' सुरग धरती होइ लागा।
महते साथि बांठु 'लइ' राजा 'दीत' पयान।
'तुरिय टाप बासुगि खरभरई' 'अंबरि सूरु' लुकान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ५९, बी० २८२-२८४।

शीर्षक—सिफ़ते कूच कर्दने राव बा लश्करे क़ाहिरह।

पाठान्तर—(१) १. बी० सबहे (ही—फ़ा०) गजदर भयो। २. बी० राउ अगरांना। (२) १. बी० येकहि। २. बी० तीस कोस लहि भयो। (३) १. बी० आगै परिहि सु। २. मैं० खीरु पावइ, बी० खरु पावहि। ३. बी० पाछै रहहि। ४. बी० बुकावैहि। (४) १. बी० सगरे छात अनदरि। २. बी० भइ बडाइ। (५) १. बी० ऊठि देष। २. बी० पागा (बागा—फ़ारसी)। ३. बी० जानै। (६) १. बी० ले। २. मैं० दीन्ह। (७) १. बी० धरती बासिगु षरहर्‌यो। २. मैं० सूरुज गएउ।

अर्थ—(१) समस्त गज-दल का प्रयाण हुआ; तबल (बड़े ढोल) पीटे गए तो [ऐसा लगा मानो] दैव (इन्द्र) ने अंगड़ाई ली है। (२) फौज (सेना) एक क्षिति में (एकट्ठी?) हुई और सवार चल पड़े, तो बीस कोस तक [उनका] प्रसार हो गया। (३) आगे (पहले) जो पड़ता, वह तो खरा जल पाता था, [किन्तु जो] पीछे पड़ता था, वह धूल चाबता था। (४) सारे देश में ऐसा भय छा गया कि सभी शीघ्रता करने लगे, क्योंकि राजा [रूपचन्द] चलकर आ रहा था। (५) [ऐसी] धूल उठने लगी कि दल में [घोड़ों की] लगामें नहीं सूझती थीं, [ऐसा लगता था कि] मानो आकाश धरती से मिल रहा हो। (६) महता (महामात्य?) बांठ को साथ लेकर

राजा [रूपचंद्र] ने प्रयाण दिया (किया)। (७) घोड़ों की टापों से वासुकी खलबला उठा और आकाश में सूर्य छिप गया।

(९१)

'सूके' रूंख काग 'रिरियाए'। जोगी 'आवा' भसभ 'चढ़ाए'।
'दहिनी दिसि हुत' भररा आवा। 'डंवरू बाएं हाथ बजावा'।
उवत 'सूर दिसि फेकर' सियारी। 'दर' भुइं रगत 'दीस' रतनारी।
'कुसगुन 'होहिं नजु (निजु) न चलै(लइ)' राऊ।
'नहि बहुरइ' 'न(नहि) देखेउं' काऊ।
'महतइ' जाइ राउ 'समुझावा'। कुसगुन 'भएउ कत आगें जावा'।
चांद सनेह काम 'रस बेधा' राजा 'गा बउराइ'।
'एकउ सगुन' न 'मानइ' गोवर 'छेकेसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६०, बी० २८५-२८७।

शीर्षक—मैं० : दर राह फ़ाल नजिस आमदन पेशे राव रूपचंद व मनअ करदन महतः।

पाठान्तर—(१) १. बी० सूकैं। २. बी० कुरराये। ३. बी० आया। ४. बी० चराये। (२) १. बी० दाहिनि दिस तेहि। २. बी० मंत्रु बोलि औ डाक बजावा (बिसहर खंड में यही शब्दावली गारुडी के विषय में प्रयुक्त है)। (३) १. बी० सूरु दिस फिरंक। २. बी० डर। ३. मैं० दीख। (४) १. मैं० भए न बहुरहि। २. बी० षाडै जैति। ३. बी० न देषों। (५) १. बी० महतें। २. बी० समुझाये। ३. बी० होहिं न आगे जाये। (६) १. बी० गुन बीघा। २. बी० गौ बौराई। (७) १. बी० येको सुगनु। २. मैं० माइन राजा। ३. बी० छेकिस।

अर्थ—(१) [इसी समय] सूखे वृक्षों पर काग रिरियाने (शब्द करने) लगे, एक योगी भस्म लगाए हुए आ उपस्थित हुआ। (२) दाहिनी दिशा से एक भरड़ा (शैव साधु-विशेष) आया, जो बाएं हाथ में [लेकर] एक डमरू बजा रहा था। (३) उदय के समय सूर्य की ओर मुख कर एक शृगाली फिकर (चिल्ला) रही थी, दल (सेना) की भूमि रक्त से लाल दिख रही थी। (४) "इन अपशकुनों के होने पर हे राजा, नहीं चला जाता है" [लोगों ने कहा,] "और कोई न लौटता हो, ऐसा हमने कभी नहीं देखा है। (५) महता (महामात्य?) ने जा कर राजा को समझाया, "जब [अप-]

शकुन हुआ है, तो क्यों आगे जाया जाए ?" (६) [किन्तु] चांदा के स्नेह में काम-रस से विद्ध राजा बावला हो गया था। (७) एक भी [अप-] शकुन वह नहीं मान रहा था, और जाकर उसने गोवर को छेंक (घेर) लिया।

(९२)

चहुं दिसि छेंका 'गाढ' फिरावा। 'खूंटहि खूंटहि' जोरि 'गर लावा'।
'तोरियहि' पान बेलि पनवारीं। 'कटियहि खेत रूंख फुलवारीं'।
'ढहियहि' मढ देवर अंबराई। 'पटियहि' तारा पोखर बाई।
काटे चहूं पास 'अंबराऊं'। तार खिजूरि 'जामु लखराऊं'।
काटी बारी 'महर कइ' लाई। 'नरियर' गूवा अउ फुलवाई।
'महर' मंदिर 'चढ़ि' देखा बहुल हस्ति असवार।
'ओडन' फरी न 'सूझइ' 'खांडहि' होइ चमकार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६१, बी० २८८-२९०।

शीर्षक—मैं० : गिर्द करदन राव रूपचंद शहर गोवर रा व दर हिसार मानदन महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० करा। २. बी० षूटैं षूटा। ३. बी० गमावा। (२) १. बी० तोरियेहि। २. बी० काटियेहि उष षेत कसियारी। (३) १. बी० ढहियेंहि। २. बी० पटियेंहि। (४) १. बी० अंबराई। २. बी० जामनि लघवाई। (५) १. बी० रायकी। २. बी० नारिंग। (६) १. बी० महरि। २. बी० चरि। (७) १. बी० वोडन। २. बी० सूझै। ३. बी० खाडे।

अर्थ—गोवर के चारों ओर [राजा रूपचंद्र ने] प्रगाढ़ छेका (घेरा) फिराया (डाल दिया) और खूंट से खूंट (एक छोर से दूसरे छोर) को जोड़ कर उसने गरगच (?) लगाया। (२) [सैनिक] पनवारियों में पानों की बेलों को तोड़ने लगे, तथा खेतों और फुलवाडियों के वृक्षों को काटने लगे। (३) उन्होंने मठों, देवालयों और अमराइयों को ढहाना और तडागों, पुष्करों और वापियों को पाटना शुरू किया। (४) उन्होंने चारों ओर के आम्राराम काट डाले और ताड़, खजूर, तथा जामुन के लक्षाराम [काट डाले]। (५) उन्होंने उस बाटिका को काट डाला जो महर की लगाई हुई थी, और उन्होंने [उसमें लगे हुए] नारियल, गूवा और पुष्पों के वृक्षों को काट डाला। (६) महर ने मंदिर (धवलगृह) पर चढ़कर देखा कि बहुतेरे हाथी-सवार थे।

(७) ओडनों और फरियों की संख्या सूझ न पड़ती थी और खड्गों की चमक हो रही थी।

(९३)

बांधी 'पंवरि' भई हटतारा। 'बापहि' पूत न 'कोउ' संभारा।
'महर' लोगु सबु झारि 'हंकारे'। 'मांझे जेत' मतें 'बइसारे'।
'गाइ भंइसि' बांधी 'रिरियाईं'। रांधा भातु न 'कोऊ' खाई।
'रोवन' 'होहिं' करि[अ]'अब' 'काहा'। गब्भ निगाभु 'सरापत आहा'।
'छेंकि गांउं अंबराउं कटावहिं'। 'पठइ बसीठ' उतरु 'कस' पावहिं।
'पठइ' 'बसीठु' तुरी 'दइ' 'राजा कह दहुं' काह।
'केहिं औगुन' हम छेंके 'कवनु रजाएसु आहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६२, बी० २९१-२९३।

शीर्षक—मैं० : हैबत उफ़्तादन दर शहर व फ़िरिस्तादने महर रसूलान रा बर राइ रूपचंद।

पाठान्तर—(१) बी० पौरि। २. बी० मायेंहि। ३. बी० कोइ। (२) १. बी० महरि। २. बी० हकारा। ३. बी० माझी जैत। ४. बी० बैसारा। (३) १. बी० म्हैसि। २. बी० डिडियाई। ३. बी० कोइ। (४) १. बी० रोवना। २. मैं० होहिं। ३. मैं० ब। ४. बी० कहा। ५. बी० सखती अहा। (५) १. बी० छोकि राय अवराय कटावैहि। २. मैं० पठइ बसीट, बी० पठवो बसीठ। ३. बी० कहा। (६) १. बी० पठय। २. मैं० बसीट। ३. बी० दे। ३. बी० उतरु कह धौं। (७) १. बी० किहि औगन। २. बी० कौनु राजयसु आह।

अर्थ—(१) नगर की पौरी बांध दी गई (बंद कर दी गई) और हड़ताल हो गई (काम-काज बंद हो गया), कोई पिता-पुत्र [एक-दूसरे को] नहीं संभाल रहे थे। (२) महर ने समस्त लोक को सम्पूर्ण रूप से बुलाया और जो भी मांझे (मध्य वयस्क ?) थे, उन्हें उसने मंत्रणा करने के लिए बिठाया। (३) [उन्होंने कहा,] "गाएं-भैंसें बंधी हुई रें-रें कर रही हैं; पकाया हुआ भात (भोजन) कोई नहीं खा रहा है। (४) लोग रो रहे हैं और कहते हैं, अब क्या किया जाए; गब्भ-निगब्भ (?) शाप दे रहे हैं (कोस रहे हैं)। (५) [शत्रु के सैनिक] गांव को घेर कर आम्रारामों को कटा रहे हैं, [अतः] बसीठ भेजिए और देखिए कि कैसा उत्तर पाते हैं। (६) घोड़े देकर

बसीठों को भेजिए; पता नहीं कि राजा क्या कहता है, (७) कि किस अवगुण (अपराध) के कारण उसने हमें छेंका (घेरा) है और उसका कौन-सा राजादेश है।

(९४)

'बसीठ' 'जाइ' कटक 'नियरावा'। 'रां कर' बांठा 'आगें' आवा।
राइ 'कें' पायं 'बसीठ' लइ लाए। तुरी भेट 'आगें लइ आए'।
फुनि 'बसिठेहिं' सिरु भुइं 'लइ' लावा। 'कउनि रीसि' राजा चलि आवा।
जो मनि होइ सो ऊतरु 'दीजा'। 'जो तुम्हं चहियइ अब हीं लीजा'।
दरब 'कहउ' तउ भैंस भरावहिं। घोर 'कहहु' अब हीं 'लइ आवहिं'।
राजा 'देहु रजाएसु' माथे 'परि हम' लेहिं।
'इन्ह महं जो तुम्हं चाहिय' आजु 'कालि कइ' देहिं॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६३, बी० २९४-२९६।

शीर्षक—रफ़्तन रसूलान पेश राव रूपचंद व बाज़ नमूदन सुख़नी राव महर।

पाठान्तर—(१) १. मै० बशिट। २. बी० जाय। ३. बी० नेरावा। ४. राइ कर। ५. बी० आगैं। (२) १. बी० के। २. मै० बशिट। ३. बी० लै आगैं जाये। (३) १. मै० बशिटहि। २. बी० ले। ३. बी० कौन रीस। (४) १. बी० दीजै। २. बी० जो रु वस्तु चहिये सो लीजै। (५) १. बी० कहौ। २. बी० कहौ। ३. बी० लै आवह। (६) १. बी० देह रजाइसि। २. मै० चर चढि। (७) १. बी० यह मह जो कछु चाहौहु। २. बी० काल्हि करि।

अर्थ—(१) बसीठ जाकर कटक के निकट पहुँचे, तो राजा का बांठा आगे आया। (२) राजा [रूपचंद] के पैरों को लेकर बसीठों ने [सिर से ?] लगा लिया और घोड़ों की भेंट उन्होंने आगे ला कर प्रस्तुत की। (३) बसीठों ने पुनः अपने सिर भूमि से लगाए, [और कहा,] "किस रोष के कारण, हे राजा, तुम चलकर यहाँ आए हो ? (४) जो मन में हो, वह उत्तर दो और जो तुम्हें चाहिए हो, वह [हम से] अभी लो। (५) यदि द्रव्य कहो तो भैंसे भरा दें, घोड़े कहो तो उन्हें अभी ले आएं। (६) हे राजा, राजादेश दो और हमारे मस्तक पर चढ़ कर [उसे करा] लो। (७) इनमें से जो भी तुम्हें चाहिए, आज अथवा कल हम उसे कर के दें।"

(९५)

सुनु परधान बोलु तूं मोरा। 'कहसि तउ छाड़ि जाउं' गढ़ु तोरा।
डंडु तोर 'हउं लइहउं' नाहीं। घोर लाख 'दुइ' 'मोहि' तुलाहीं।
'जाइ कहहु तुम्हं अरथ' दिवांऊं। 'नौ कइ' गोवरु आजु बसाऊं।
हम 'तुम जरम करहिं' 'हो' राजू। चांद 'बियाहि' देहु मोहिं आजू।
जउ' सुखु देहु 'तउ' पाटु 'बइठांऊं'। 'बरु कइ' लेउं 'तउ' पानी भराऊं।
'जउ' तुम्हं 'दुइ दर' राखहु चांद बियाहें देहु।
जो 'रुचि राही' मांगौ(ग)हु, 'सो' 'तुम्हं' अब हीं लेहु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ६४, बी० २९७-२९९।

शीर्षक—मै० : जवाब दादन राव बर रसूलान रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कह त जाउ छडि। (२) १. बी० मै लेउन। २. बी० दोय। ३. बी० मोरि। (३) १. बी० कहसि त तोकहु दरबु। २. बी० नव करि। (४) १. बी० तुम्ह जरमि करी। २. मै० जग। ३. बी० बिवाहि। (५) १. बी० जौ। २. बी० तौ। ३. बी० बंधाऊं। ४. बी० बैरु के। ५. बी० तौ। (६) १. बी० जो। २. बी० दोय कुर। (७) १. बी० रुच रांये। २. मै० मांग। ३. बी० तुम।

अर्थ—(१) [राजा रूपचंद ने उत्तर दिया,] "ऐ प्रधान, तू मेरा बोल (वचन) सुन; यदि तू कहे तो तेरा गढ़ छोड़ कर मैं चला जाऊं। (२) तेरे [बताए हुए] दंड मैं नहीं लूंगा; दो लाख घोड़े मेरे [आदेश पर] तैयार हो जाते हैं। (३) [महर से] जा कर [मेरी ओर से] कहो, 'तुम्हें अर्थ-द्रव्य दिला दूं, गोवर को नया (नवनिर्मित) कर आज ही बसा दूं, (४) हम और तुम जीवन भर राज्य करें, [केवल] तुम मुझे चांदा को आज ब्याह दो। (५) यदि तुम [यह वचन] सुखपूर्वक दे दो, तो मैं तुम्हें सिंहासन पर बिठा दूं, [किन्तु] यदि मैं बलपूर्वक उसे लूंगा तो तुम से पानी भराऊंगा। (६) यदि तुम दोनों (अपने और मेरे) दलों को [सुरक्षित] रक्खो (रखना चाहो), तो चांदा को विवाह में दे दो, (७) और जो कुछ तुम्हें [अपनी] रुचि से अभीप्सित हो, वह तुम [मुझसे] अभी मांग लो।"

(९६)

तूं नरिंद देस 'कर' राजा। 'अइस' बोल तोहि 'कहत' न 'छाजा'।
'जेहि धिय होइ सो नाउं न लेई। पर पुत्रिहि अस गारि न देई'।

'जो पर पुत्रिहि' माइ 'बोलावा'। सो राजा 'गारी कस पावा'।
'जउ रे' महरु गारी सुनि 'पावइ'। आगि लाइ पानीं कहुं 'धावइ'।
चांद 'अउर कहुं दीत' बियाही। 'कवन' उतरु अब 'दीजइ' ताही।
'बरु' हम मारि 'पबारहु' पुनि उठि 'जारहु गाउं'।
चांदहि धूरि न 'सपरै(रइ)' लेइ पार 'को' नाउं॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६५, बी० ३००-३०२।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन रसूलान बर राव रूपचंद रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौ। २. बी० अैसे। ३. बी० कहि। ४. बी० साजा। (२) १. बी० जो घीय होय सु गारि न देई : पर पुत्री कर नाउ न लेइं। (३) १. बी० जौ पुत्रीयहि। २. बी० बुलावै। ३. बी० कैसे गारी पावै। (४) १. बी० जो रु। २. बी० पावै। ३. बी० धावै। (५) १. बी० औ कहू दीन्ह। २. बी० कौन। ३. बी० दीजै। (६) १. बी० बरि। २. बी० पियारौहु (पबारहु—फ़ारसी)। ३. बी० जारौहु गांव। (७) १. मैं० लागइ। २. बी० कौ।

अर्थ—(१) [बसीठों ने कहा,] "तू, हे नरेन्द्र, देश का राजा है, [इसलिए] ऐसा वचन कहते हुए तुझे शोभा नहीं देता है। (२) जिसके [घर में] कन्या होती है, वह [ऐसी बातों का] नाम नहीं लेता है और दूसरे की पुत्री को ऐसी गाली नहीं देता है। (३) जो पराई पुत्रियों को माता कह कर बुलाता है, वह, हे राजा, ऐसी गाली कैसे (क्यों) पा रहा है? (४) यदि महर [यह] गाली सुन पाए, तो वह आग लगा कर पानी के लिए दौड़ने लगे (तहस-नहस करने लगे)। (५) चांदा को अन्य-कहीं ब्याह दिया गया है, अब (ऐसा कार्य करने पर) उस व्यक्ति को कौन-सा उत्तर दिया जाएगा? (६) भले ही हमें मार कर फेंक दो, और तदनन्तर उठ कर गांव (नगर) को जला दो, (७) चांदा को धूल नहीं लगेगी। कौन उसका नाम ले सकता है?"

(९७)

अबहिं धीठ तोहि मारि 'पबारउं'। खिन 'इक' भीतरि गोवरु 'जारउं'।
मूंड काटि 'कइ' कुवइ भरांवउं। खाल काढि 'कइ' रूंखि 'टंगांवउं'।
'चील्हनि कहउं मांस 'लइ' जांहीं। 'कुकुरन्ह कहउं रगतु सबु खांहीं।
'तोहि का जोगित' करसि धिठाई। जस 'हउं कहउं तइस कहु' जाई।
जाइ बेगि चांदा 'लइ आवहु'। मोखु दुवारु 'तउहि पै पावहु'।

'करिबउं' तस 'जस बोलेउं' नाउं 'बसीठ' 'कर आहु'।
बेगि चांद 'लइ' आवहु 'तउ इहवां हुत' जाहु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६६, बी० ३०३-३०५।

शीर्षक—मैं० : बर ग़ुस्सह शुदन राव रूपचंद बर रसूलान व ख़ामोश मानदने ईशां।

मैं० में पत्र-संख्या ६७ नहीं है, पुनः ६८ से लेकर ८७ तक के उसके पन्ने बहुत अस्त-व्यस्त हैं, बहुत कम कडवकों के सामने मिलने वाले चित्र उनके अपने हैं। इससे ज्ञात होता है कि मैं० में वर्तमान पत्र-संख्या उस समय डाली गई जब वह त्रुटित हो गई थी और उसके इस अंश के पन्ने अस्त-व्यस्त हो गए थे।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिपारौं (पबारौं—फ़ारसी)। २. बी० यक। ३. बी० जारौ। (२) १. बी० कै। २. बी० कुवा भराऊ। ३. बी० कै। बी० टंगाऊ। (३) १. बी० चील्हह कहौ। २. बी० लै। ३. बी० कुकरंह कहौ। (४) १. बी० तुम्ह का जिगति। २. बी० हौ कहौ करौहु तैसै। (५) १. बी० लै आवोहु। २. बी० तबैहि तुम [पा] वौहु। (६) १. बी० करत्यें। २. बी० ज्यों बोल्यों पर। ३. मैं० बशिट। ४. बी० कौ आहु। (७) १. बी० लै। २. बी० तौ इयहां तेंहि।

अर्थ—(१) [रूपचन्द ने कहा,] "ऐ धृष्ठ [बसीठ], तुझे मैं अभी मार कर फेंक देता हूं और एक क्षण के भीतर गोवर को जला देता हूँ। (२) तेरा सिर काट कर मैं कुएं में भरा (डलवा) देता हूँ और तेरी खाल निकलवा कर वृक्ष में लटकवा देता हूँ। (३) चील्हों को कह देता हूँ कि वे तेरा मांस ले जाएं और कुत्तों से कह देता हूँ कि वे तेरा समस्त रक्त खा (पी) जाएं। (४) तुझमें इस प्रकार की कौन-सी योग्यता है कि तू धृष्ठता करता है? जैसा मैं तुझसे कह रहा हूँ, वैसा ही तू जाकर [वहाँ] कहे। (५) तू जाकर शीघ्र ही चांदा को ले आ, तभी तू मुक्ति का द्वार पाएगा। (६) जैसा मैंने कहा है, तुझे वैसा ही करना चाहिए, क्योंकि तेरा नाम ही 'बसीठ' का है। (७) चांदा को शीघ्र ले आ और तब तू यहाँ से जा।"

(९८)

राजा 'पुलकि करि' देहु 'रजाएसु'। सुनि 'कइ' 'मारिसु कइ रे छंडाइसु'।
'अस तूं राजा केउं बउराएहु'। चांद सबदु सुनि गोवर 'धाएहु'।
गोवरु 'समुंद अतिय अवगाहा'। बूडहि 'राइ' न पावहिं थाहा।

राजा 'जउ र(रे) सरग चढ़ि' धावहु । तउ न धूरि चांदा 'कइ' पावहु ।
राजा नखत 'जो' सरगि भवांहीं । चांद 'निहारइ सभ निसि' जांहीं ।
गगन 'चढे' 'जउ देखिय' 'जानिय इहवां' आहि ।
थाह न 'पइयहुं' राजा बूडि 'मरहु औ(अव)गाहि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७५, बी० ३०६-३०८ ।

शीर्षक—मै० : रज़ा तलबीदने रसूलयान बराए बाज़ गुज़श्तन खुद अज़ राय ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बोलकी । २. बी० रजाईसि । ३. बी० कैं । ४. बी० मारसि कौन छुडायसि । (२) १. बी० असकैं राकैं राह बोरायहु । २. बी० धायहु । (३) १. बी० समदु अते औगाहा । २. बी० राव । (४) १. बी० जौ रु सरगेहि चरि धावौहु । २. बी० की । ३. बी० पावौहु । (५) १. बी० जु । २. बी० पहर निसि जागत । (६) १. बी० चरें । २. बी० जौ देषौ । ३. बी० जाने अहन । (७) १. बी० पावहु । २. मै० मरियहु काहि (गाहि) ।

अर्थ—(१) [बसीठों ने कहा,] "ऐ राजा [रूपचंद], तू पुलकित होकर राजाज्ञा दे, हमारी बातें सुन कर हमको [चाहे] मारे (मरवाए) या छुड़ाए (छुड़वाए) । (२) तुझे, ऐ राजा, इस प्रकार किसने बावला किया कि 'चांद' का शब्द (नाम) सुन कर तू गोवर के लिए दौड़ पड़ा ? (३) गोवर एक अत्यधिक गहरा समुद्र है, इसमें राजे डूब जाते हैं और इसकी थाह नहीं पाते हैं । (४) हे राजा, यदि तू आकाश पर चढ़ कर दौड़े, तो भी चांदा की धूल नहीं पाएगा । (५) हे राजा, जो नक्षत्र आकाश में चक्कर लगाते रहते हैं, वे सारी रात चांद को निहारते रहते हैं जब वे जाते (चक्कर लगाते) हैं । (६) आकाश पर चढ़ कर यदि तुम देखो और यह जानो (समझो) कि [वह] यहाँ है, (७) तो भी, हे राजा, तुम्हें थाह न मिलेगी, भले ही तुम [चांदा की] थाह लेते हुए डूब मरो ।"

(९९)

बात संजोगु 'बसीठैं (ठइं)' कहा । 'नाइ मूंड सुनि' राजा रहा ।
'बसीठ' बचन बिस भरे 'सुनाए' । 'राजइं' ठग के 'लाडू' 'खाए' ।
गा 'असरौ मन हुत जो संजोवा' । भा निरासु चित भीतरि रोवा ।
सरगि चांद 'मकु पाइय' नांही । 'बसिठन्हि' उतरु 'देउं' 'उठि' जाहीं' ।
आजु सांझ 'जउ' चांद न 'पावउं' । पहर राति तुम्हं सरगि 'चलांवउं' ।

जीउदानु 'जउ चाहहु' 'पठवहु' चांद दिवाइ ।
'नत' सूर उवत गढु 'तोरउं' 'कहहु' महर 'सेउं जाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७६, का० बी० ३०९-३११ ।

शीर्षक—मै० : नाउम्मीद शुदन राव अज़ सुखने रसूलान व गदानीदने ईशां रा ।

का० : जवाब दादन राव रूपचंद भोलान रा ।

पाठान्तर—(१) १. मै० बशिट (बसिट) जउ, का० बसीठ जउ । २. बी० नैन मूंदि सो । (२) १. मै० बशिट (बसिट) । २. का० सुनावा । ३. बी० राजा । ४. का० जनु ठग लाडू । ५. का० खावा । (३) १. बी० असूरु मनौ हुति जु सोवा । (४) १. मै० मइं पाइय, बी० मोकौ पइये । २. मै० बसिटउं, बी० बसीठा । ३. बी० दै । ४. का० चलि । (५) १. बी० जौ । २. बी० पाऊ । ३. बी० चलाऊ । (६) १. बी० जौ चाहौहु । २. मै० पठवउ, बी० पठवोहु । (७) १. मै० नतरु, बी० में नहीं है । २. बी० तोरा । ३. मै० कहु, बी० कहौहु । ४. मै० सों जाइ, बी० स्यौं जाय ।

अर्थ—(१) जब संयोग (रण-सज्जा) की ये बातें बसीठ ने कहीं, तो सिर नमित कर राजा ने इन्हें सुन लिया । (२) बसीठों ने जब ये विषपूरित वचन [राजा को] सुनाए, तो [ऐसा लगा कि] मानो राजा ने किसी ठग के [दिए हुए] लड्डू खा लिए हों । (३) मन में जो आसरा संजोया रक्खा था, वह चला गया, वह निराश हो गया और चित्त के भीतर रोने लगा । (४) [उसने मन में कहा,] "चन्द्रमा आकाश में है, संभव है उसे मैं प्राप्त न कर पाऊँ, बसीठों को उत्तर दे दूं कि वे उठ कर जाएं ।" (५) [उसने प्रकट कहा,] "यदि आज संध्या को चांद को न पाऊंगा तो एक पहर रात गए ही तुम्हारे स्वर्ग [तुल्य राज-प्रासाद] पर सेना को चला दूंगा । (६) यदि तुम जीवन-दान चाहते हो, तो चांदा को [अपने स्वामी से] दिला कर भेजो । (७) नहीं तो, सूर्य के उदय होते-होते गढ़ को तोड़ दूंगा, ऐसा महर से जा कर कह दो ।"

(१००)

'बसीठ' 'बहुरि' गोवर महिं आए । महर देखि 'जनु' आगे धाए ।
'पूछा' महर 'कुसर सों आएहु' । 'काह कहिहु' कस ऊतरु पाएहु ।
जस 'पूछा तस' 'बसीठैं(ठइं)' कहा । सुनइ न राजा 'कोह' कइ रहा ।

हस्ति घोर धनु दरबु न' मानइ' । चांद मांग 'जिहि' सूरु न 'जानइ' ।
'जउ जउ' चांदा बीचहि दीन्हां । 'तउ तउ राउ' चाह जिउ लीन्हां ।
'कइ मंति जसि तुम्हं उपजइ' राजा 'कीजइ' सोइ ।
उवत सूर 'गढ़ु तोरें' फुनि 'पछितावा' होइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७७, बी० ३१२-३१४ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ आमदन रसूलान बर महर व बाज़ नमूदने अरज़े राव रूपचंद ।

पाठान्तर—(१) १. मै० बशिट (बसिट) । २. बी० फिरे । ३. बी० जनौ आगै । (२) १. बी० पूछहि । २. बी० सकोसर (सकूसर—फ़ारसी) आयहु । ३. बी० कहहु कहा । (३) १. बी० पूछै तसैं । २. मै० बशिटउं । ३. बी० गहु । (४) १. बी० मानै । २. मै० जनु । ३. बी० जानै । (५) १. बी० ज्यों ज्यों चाद नई छांह । २. बी० त्यों त्यों राइ । (६) १. बी० कै जस मति तुम्ह अनतें (उपनइ ?—फ़ारसी) । २. बी० कीजै । (७) १. बी० गरु तोरिवि । २. बी० पछितावो ।

अर्थ—बसीठ लौट कर गोवर में आ गए तो महर उन जनों को देख कर आगे दौड़ कर गया । (२) महर ने पूछा, "कुशलपूर्वक तो आ रहे हो ? तुमने क्या कहा और कैसा उत्तर पाया ?" (३) राजा ने जैसा कुछ पूछा, बसीठों ने वैसा बताया; [उन्होंने कहा,] "राजा [रूपचन्द] सुन नहीं रहा है, उसने क्रोध कर रक्खा है । (४) वह हाथी-घोड़ा, धन-द्रव्य नहीं मान (स्वीकार कर) रहा है, वह तो चांद ही को मांग रहा है, जिसको सूर्य [तक] नहीं जानता है (जो असूर्यम्पश्या है) । (५) जब-जब भी हमने चांदा [की प्राप्ति] में अंतर किया (बाधा बताई), तब तब ही उस राजा ने [हमारे] जीवों (प्राणों) को लेना चाहा । (६) अथवा जैसी मति तुम्हें उत्पन्न हो, हे राजा, वही (वैसा ही) तुम करो; (७) [अन्यथा] सूर्य के उदित होते-होते उसके गढ़ तोड़ने पर तुम्हें पछतावा हो ।"

(१०१)

'महरइं मुख कुंवरन्ह कर चाहा' । 'छतिस कुरी दहुं बोलिय काहा' ।
'बहुतन्ह' कहा चांद 'जउ' दीजइ । 'इक मुखु' होइ राज फुनि 'कीजइ' ।
'अउर कहा बरु निकरि पराइय' । 'दिवस' चारि 'बाहेर गै आइय' ।
'कुंवरू धंवरू दीते' गारी । 'जेइं जरमेन्हिं' सो 'माइ' सियारी ।
'भूंजहि' 'सासन' 'पाटन' गाऊं । अब जिउ देहिं चांद 'के' ठाऊं ।

'जउ' लहि सांस पेट महिं 'तउ' लहि 'करिहइं मारि' ।
पुनि 'सर रचि सभ बरिहहिं' 'जइस' होइ 'उजियारि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७०, बी० ३१५-३१७ ।

शीर्षक—मै० : मशावरत करदने महर बा लश्कर मान मक़रब खुद ।

पाठान्तर—(१) बी० महरि मुषक अवरा का चहा । २. बी० छतीसौ कुरिधौं कौं कहा ।। (२) १. बी० बहुते । २. बी० जै । ३. बी० इकु सुखु । ४. बी० कीजै । (३) १. बी० और करहि बर नगर पराये । २. बी० द्योंस । ३. बी० बाहरि गैं आये । (४) १. बी० कवरू धंवरू दी उठि । २. बी० जे जनमे । ३. बी० मा माय । (५) १. बी० भूचहि । २. मै० बइठे । ३. बी० पटियहि । ४. बी० कर । (६) १. बी० जब । २. बी० तौ । ३. बी० करिस्योंह मार । (७) १. बी० रु उठि जौहरि जरहि । २. बी० जैस । ३. बी० उजियार ।

अर्थ—महर ने कुमारों (कुमारभुक्तों—गुज़ारेदारों) का मुख देखा—[और पूछा,] "छत्तीस-कुली [सामंत गण], आप क्या कहते हैं ?" (२) बहुतों ने कहा, "यदि चांदा को दे दीजिए, तो एक मुख होकर राज्य कीजिए ।" (३) औरों ने कहा, "इससे अच्छा यह होगा कि निकल भागिए, और चार दिन बाहर हो आइए ।" (४) कुँवरू और धँवरू ने [यह सब कहने वालों को] गाली दी । [उन्होंने कहा,]" [इन में से] जिन्होंने भी जन्म लिया है, [वस्तुतः] स्यारनी के पेट से जन्म लिया है—इनकी माता स्यारनी होगी । (५) हम शासनादेश से प्राप्त पत्तन (महानगर) और ग्रामों का भोग कर रहे हैं, तो अब चांदा के स्थान पर अपने प्राण [भी] देंगे । (६) जब तक हमारे पेट में श्वास है, तब तक हम मार (युद्ध) करेंगे । (७) तदनंतर हम सभी शर (चिता) रच कर जलेंगे, जिससे [हमारी कीर्त्ति में] उज्वलता हो ।

८. गोवर-युद्ध खण्ड

(१०२)

'राइ' रूपचंदु 'गढ़ होइ' 'बाजा' । 'राउ' 'महर दर आपन' साजा ।
'पहिरि संजोइ' बांठु हथवासा । कुंवरू 'आगे' 'पाउ हुलासा' ।
'बांठ कहा अरे तूं' को आही । बिथा 'मरेसि उट्ठि' घर जाही ।
'कुंवरू तरपि' खांड 'लइ' 'काढे' । छतीस कुरी 'सभ' 'देखइ ठाढ़े' ।
'बांठइं ताकि' 'खरग गै' 'मारा' । फरी 'लागि' धर 'किएउ अपारा' ।

'दीठि भुलानि खरगु जउ' 'चमका' 'फरि लै(गै) हाथ हुत' छटि।
लाग 'खांड' 'बांठा' कर 'कुंवरू गा' भुइं 'टूटि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ७१, भो० पत्र ६३ (नवीन), बी० ३१८-३२०।

शीर्षक—मै० : नमूदार शुदने हर दू फ़ौज हा व जंग करदन कुंवरू बा बांठा व गुश्तः शुदने ऊ।

भो० : रोज़ दुवम राव रूपचंद क़स्दे हिसार करदन व बेरूं आमदने महरा जंग करदन उफ़्तादन।

मै० में इस कडवक के सामने जो चित्र है, वह इसका नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि इस स्थल पर उसमें पत्रे अस्त-व्यस्त हैं। यह बी० से उसकी कडवकों की क्रम-भिन्नता से भी प्रकट है।

भो० में इस कडवक के पत्र पर जो संख्या है वह फिर से बनाई हुई है, एक १०२ है, दूसरी ११२; कहा नहीं जा सकता है कि पहले कौन-सी है।

पाठान्तर—(१) १. भो राव, बी० राय। २. बी० गिरवै। ३. मै० में शब्द नहीं है। ४. भो०, बी० राइ। ५. बी० महरि घरि आपनु। (२) १. बी० पहरि सजोउ। २. बी० कंवरू, भो० धंवरू। ३. बी० आइ तुलासा। (३) १. बी० बांठा कहै अरत। २. बी० मैरे सो उठि। (४) १. बी० कंवरू तरप। २. बी० लै, भो० गै। ३. बी० काढी। ४. बी० सभि, मै० सब। ५. बी० देषै ठाढ़ी। (५) १. बी० खांड उभारै, भो० बाठइं हिये। २. बी० मारै। ३. बी० पारी। ४. भो० मांदि, बी० काट। ५. बी० आपु उबारी। (६) १. बी० दिठि भुलान परगु जौ। २. भो० चमंका। ३. भो० हाथहि बहुरइ, बी० हाहू तेहिं। (७) १. मै० खांड गै रे। २. बी० बाड। ३. बी० कंवरु गया। ४. भो० लूटि।

अर्थ—(१) राजा रूपचंद गढ़ पर हो पड़ा, तो राजमहर ने अपना दल सज्जित किया। (२) [कवच] पहन कर हाथों में बांठ ने संयोग (शस्त्रास्त्र) लिए और उसने कुंवरू को [अपने] आगे उल्लसित पाया। (३) बांठ ने कहा, "अरे, तू कौन है? व्यर्थ ही मरेगा, उठ कर घर जा।" (४) कुंवरू ने [यह सुनकर] तड़प कर खड्ग निकाल लिया, समस्त छत्तीस कुली खड़े हुए देख रहे थे। (५) बांठा ने लक्ष्य कर और जा कर उस पर खड्ग चलाया, तो उसने फरी लेकर अपार धरा की (युद्ध किया)। (६) किन्तु उसकी दृष्टि भ्रमित हो गई जब [बांठा का] खड्ग चमका और फरी उसके हाथ से छूट पड़ी। (७) बांठा का खड्ग लगा और कुंवरू भूमि पर टूट पड़ा।

(१०३)

धंवरू 'देखा' 'कुंवरू' परा। रोहितासु 'जैसें' परजरा।
हाथि सांगि 'मारेसि तस' आई। फरी लागि धर 'गएउ' चुकाई।
फुनि काढिसि 'बिजुली' 'करवारा'। डाक 'देइ गै हनेसि' कटारा।
टूटि खांड टाटर महिं आवा। बांठ कहा 'हउं एहिं पइ' खावा।
फुनि 'लीन्हति' काढिसि 'तरुवाई'। 'तउ हति' बांठा चला पराई।
'खेदत अढुका धंवरू' परा 'दाबि' संहराइ।
'पलटि' बांठ 'जउ देखा' 'तउ' फिर 'मारेसि' आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८०, बी० ३२१-३२३।

शीर्षक—मै० जंग करदने धंवरू व बांठा गुश्तः शुदने धंवरू।

पाठान्तर—(१) १. बी० देष्या। २. बी० कंवरू। ३. बी० अैसे। (२) १. बी० ले मारिसि। २. बी० गयो। (३) १. बी० बिजुरी। २. मै० तरवारा। ३. बी० देयकै हनसि। (४) १. बी० हैं इहै पैं। (५) १. बी० लीन्हसि। २. बी० ताराई। ३. बी० तौ लहि। (६) १. बी० देषत देषत अधिका (अढुका—फ़ारसी)। २. बी० दाउ। (७) १. बी० लवटि। २. बी० जो देषौ। ३. बी० तौ। ४. बी० मारसि।

अर्थ—(१)—धंवरू ने देखा कि कुंवरू [रण-क्षेत्र में] गिर गया, तो वह [इस प्रकार क्रुद्ध हुआ] जैसे रोहिताश्व (अग्नि) प्रज्वलित हुआ हो। (२) उसी समय उसने हाथ में सांग [लिए हुए आकर बांठ पर] चलाया, किन्तु वह उसकी फरी पर पड़ी और चूक कर धरा में जा लगी। (३) तब उसने बिजली तलवार निकाली, और डाक (डंका) देकर और जाकर वह कटार [बांठ पर] चलाई। (४) वह खड्ग टूट गया जब वह टाटर में आया, और बांठ ने कहा, "मैं, हो न हो, इसके द्वारा [अब] खाया गया। (५) धंवरू ने तदनंतर ले कर तरुवाई निकाली, तो बांठ उसे मार कर (आहत कर) भाग चला। (६) उसका पीछा करते हुए धंवरू अढुका और [विपक्षियों को नीचे] दबाते हुए तथा [उनका] संहार करते हुए गिर पड़ा। (७) बांठ ने लौट कर यह देखा, ती उसने आकर उसे मार दिया।

(१०४)

'बाजे तार' दुवउ जन मारे। 'अउर कुंवर' 'महरइं' के हारे।
'दूवउ आने पाधर घिसियाई'। पायक 'बइठे करहिं बड़ाई'।

रगत दुहूं 'के' सरवरु भरा। 'एकउ कुंवर' न 'आगें' सरा।
'जिन्ह देखा' 'तिन्ह गएउ परानां'। दर महिं 'कोउ न करइ पयानां'।
जे 'महरइं' 'जेवनारि' जिवाए। संकरी बार 'निकाजइं' आए।

'भाट कहा महर सेउं' 'तउ पैं पावहिं' तीरु।
बेगि हंकारि 'पठावहिं' लोरिकु बावनु बीरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८१, बी० ३२४-३२६।

शीर्षक—मै० : शादमान जदन दर लश्करे राव रूपचंद अज़ हिरवते फ़ौज।

पाठान्तर—(१) १. बी० बीजे (बाजे—नागरी) तार दोऊ। २. बी० और कवर। ३. बी० महरन्हि। (२) १. बी० दोउ अनी (आने—फ़ा०) पाधरि षिसिआई (षिसिआई—फ़ा०)। २. बी० बैठे घरह पराइ। (३) १. बी० कै। २. बी० येको बीरु। ३. बी० आगै। (४) १. बी० जिहि देषे। २. बी० तिह गये पराना। ३. बी० रहै न कोय न जाना। (५) १. बी० महरें जिवनार। २. मै० बीर। ३. बी० काजि नहि। (६) १. बी० भाटि कहा तब राइ स्यो। २. बी० तो पहि पांउ। (७) १. बी० पठावहु।

अर्थ—(१) [शत्रु-दल में] ताली बज गई जब [महर के] वे दोनों ही जन (कुंवरू और धंवरू) मारे गए, तथा [महर के] अन्य कुमार (कुमार-भुक्त, गुज़ारेदार) भी हार गए। (२) वे दोनों पाधरों (रण में अप्रवृत्त लोगों) द्वारा घसीटते हुए लाए गए; [महर के] पदाति बैठे हुए उनकी बड़ाई कर रहे थे। (३) दोनों के रक्त से सरोवर भर गया और एक भी कुमार (कुमारभुक्त) [तदनंतर] आगे न बढ़ा। (४) जिन्होंने भी यह देखा, उनके प्राण निकल गए और [महर के] दल में कोई भी [आगे] प्रयाण नहीं कर रहा था। (५) जिन्हें महर [अपनी] रसोई में जिमाया करता था, [इस] संकट के समय में वे भी काम न आए। (६) भाट ने महर से कहा, "[संकट-सरिता से] तू तब तीर (तट) पाएगा (७) [जब] तू तुरत लोरिक तथा बावन वीरों को बुला कर [रण में] भेजेगा।"

(१०५)

भाट गोसाईं 'तुम ही धावहु'। आगें 'दइ' लोरिक 'लइ' 'आवो(व)हु'।
'चढि' तुरंग भाटु 'दउरावा'। लोरिक जाइ जुवा 'फर' पावा।
'कहवां भाट घोर दउराएहु। काकर पठए कहा तुम्हं आएहु'।

ओर 'महर' तुम्हं बेगि 'हंकारे'। 'कुंवरू धवरू बांठइं मारे'।
जा 'रबि' गोवरु लागि गुहारी। 'लइ (लेइ) अब' चांद 'होइ' अंधियारी।

उठा लोरु सुनि 'नांखा परलै' 'महर' भया अवसान।
आजु बांठु 'रन' 'मारउं' 'देखउं राइ' परान॥

सन्दर्भ—मै० ८२, बी० ३२७-३२९।

शीर्षक—मै० : आमदन भट बर लोरिक अज़ फ़िरिस्तादन महर।

पाठान्तर—(१) १. मै० तुम्हं गढ़ धावसि। २. बी० दै। ३. बी० लै। ४. मै० आवसि। (२) १. बी० चरि। २. बी० दौरावा। ३. बी० महि। (३) १. बी० में यह पंक्ति छूटी हुई है। (४) १. बी० जाहु। २. बी० हकारै। ३. बी० कवरू धवरू बाठैहि मारै। (५) १. बी० रिबि। २. बी० ली (लइ—फ़ारसी) ब। ३. बी० होयहैं। (६) १. बी० पायक मारे। २. बी० महरि। (७) १. बी० सिर। २. बी० मारे। ३. बी० देषौ राषि।

अर्थ—(१) [महर ने कहा,] "ऐ भाट गुसाईं, तुम (तुम्हीं) गढ़ में जाओ, और आगे [स्थान] देकर लोरिक को ले आओ।" (२) भाट ने घोड़े पर चढ़ कर उसे दौड़ाया, और उसने जाकर लोरिक को जुए के फड़ पर [जुआ खेलते हुए] पाया। (३) [लोरिक ने पूछा,] "ऐ भाट, तुमने कहाँ (किसलिए) घोड़ा दौड़ाया है? तुम किसके भेजे हुए हो और क्या (क्यों) आए हो?" (४) [उसने उत्तर दिया,] "हे लोर, महर ने तुम्हें वेगपूर्वक (शीघ्र) बुलाया है, [क्योंकि] कुंवरू और धंवरू बांठ द्वारा मारे जा चुके हैं। (५) ऐ सूर्य, जा और गोवर की गुहार लग; [शत्रु] अब चाँद को लेने ही वाला है, [जिससे] अंधियारी (अंधेरी रात) होने [ही] वाली है।" (६) लोर यह सुनकर उठ खड़ा हुआ कि [बैरी ने] प्रलय नांख (डाल) दिया है और महर अवसन्न (अवसाद-ग्रस्त) हो गया है। (७) [उसने कहा,] "आज ही मैं रण में बांठ को मारूंगा और राजा [रूपचंद] को पलायित देखूंगा।"

(१०६)

घर गा लोरिक डांग संभारी। 'ओडन खांड लीन्ह' पटतारी।
बांधि 'रगाउलि' 'कसि' सिरि 'पागा'। 'पहिरेसि' सार तार का आंगा।
'घन सहरी' करि खैंचि बंधावा। 'पेट रु' 'गात' सनाहु मढ़ावा।
टाटर चहुं 'जन' लीन्ह उचाई। लोरिक मूंड दीन्ह औंधाई।
सारंग एकु 'जुगुति' कर चढ़ा। 'जनु' 'अरजुन कहं रावनु गढ़ा'।

'फरसा कुंत' 'कटारी लीतेहिं' बांधि चला तरवारि ।
रगत 'पिपासु' खांड 'लोर' कर दौरा जीभ पसारि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६८, भो० पत्र १३ (नवीन), बी० ३३०-३३२ ।

मैं० में इस कडवक के साथ का चित्र 'खोलिन और लोर के संवाद का' है, जो बाद में आता है, अतः प्रति यहाँ पर अस्त-व्यस्त है ।

शीर्षक—मैं० : दुरूने ख़ानः रफ़तने लोरिक व मुस्तइद शुदन बर जंग ।

भो० : आमदने लोरिक दर ख़ानः व साख्तः शुदन बराय जंग व बोसीदन अस्लहा व बस्तने अस्लहा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० वोडन षाड लीन । (२) १. बी० रगावरि । २. मैं० किहेसि, बी० औ । ३. भो० बांगा, बी० षागा (पागा-नागरी) । ४. बी० पहरि । (३) १. बी० षाड फरी । २. मैं० पेट, बी० पीतरि (पेट रु—फ़ारसी) । ३. बी० काटि (गात—फ़ारसी) । (४) १. बी० जनि । (५) १. बी० जुगति । २. बी० जानौ । ३. भो० अरजुन कौरौ कहं कढा, बी० रांवनु अरजन हुते गढा । (६) १. भो० फरसा कूंडि, मैं० फिरि संजोइ । २. मैं० कटार लीन्ह, बी० कटारी लीन्ही । (७) १. बी० पियास । २. बी० लोरिक ।

अर्थ—(१) लोरिक घर गया, उसने डांग (यष्टि) संभाली और पड़ताल कर (देख-भाल कर) उसने ओडन और खांडा (खड्ग) लिया । (२) [पैरों में] रगाउली बांध कर और सिर पर पाग कस कर उसने सार (लौह) के तारों का आंगा (अंगरखा) पहना । (३) उसने घनसहरी हाथों में खींच कर बंधाई तथा पेट और गात्र को सन्नाह से मढ़ाया । (४) टाटर को चार जनों ने उठा लिया और लोरिक के सिर पर उसे औंधा करके रख दिया । (५) एक शार्ङ्ग (सींगों का धनुष) युक्तिपूर्वक उसके हाथों में चढ़ गया; [वह ऐसा लगा] मानो जैसे अर्जुन के लिए उसका रावन (प्रिय) [धनुष—गांडीव] गढ़ा हुआ हो । (६) फरसा, कुंत तथा कटारी लेकर और तलवार बांध कर वह चल पड़ा । (७) [अब] लोरिक का रक्त-पिपासु खांडा (खड्ग) जिह्वा पसार (फैला या निकाल) कर दौड़ पड़ा ।

(१०७)

षौलनि लोरहि चलन न देई ।
अबहि राउ किन चांदा लेई ।

मैं (मइं) का उ(ओ)कर जीव रषावा ।
जूझे(झइ) कौ (कहं ?) कस महरि बुलावा ।
गा(गां)व जि बाटैहि (बांटहिं) जीव रषाहीं ।
ते कस आजु न जुझें(जूझइं) जाही(हीं) ।
जिव घरबात जीव धन मोरा ।
बारु न देषें(षइ) देहौ(हउं) तोरा ।
तुझ कछु होई तौ हौ(हौं) कौं(केउं) जीवौ(वौं) ।
काहु(उ) षाइ (उं?) कैं पानी पीवौ(वौं) ।
गाढ काजु मरें (मरइ) कर कैसैं जीउ लुकाऊ (ऊं) ।
माता देहु असीस मुझु मारि बांठु घरि आऊ (ऊं) ॥

सन्दर्भ—बी० ३३३-३३५ । मैं० का वह पत्र, जिस पर यह कडवक रहा होगा, अब नहीं है, किन्तु उसके वर्तमान पत्र ६८ पर जो चित्र है, वह इसी कडवक का है, क्योंकि उसमें संवाद करते हुए खोलिनि और लोरिक अंकित हैं । आगे के कडवक में मैनां को संबोधित करते हुए लोरिक कहता भी है : देहु असीस दोउ जनि (१०८.६), जिससे यह स्पष्ट है कि माता से भी वह विदा लेने गया था ।

अर्थ—(१) [लोरिक की माता] खोलिन लोर को चलने नहीं दे रही थी, और कह रही थी, "क्यों न राजा [रूपचंद] अभी चाँदा को ले ले ? (२) मैंने क्या उसके जीव की रखवाली [अपने ज़िम्मे] ली है ? फिर [तुम्हें] महर [उसकी रक्षा के लिए] युद्ध करने को क्यों बुला रहा है ? (३) जो गांव बाँटते हैं (राजा से शासन-ग्राम लेते हैं), वे ही [उसके तथा उसके परिवार के लोगों के] जीव की रक्षा करते हैं; वे आज क्यों नहीं युद्ध करने जा रहे हैं ? (४) [अपना] जीव ही मेरे घर की संपत्ति है, वही मेरा धन है, मैं तेरा बाल [भी] किसी को न देखने दूंगी । (५) कहीं तुझे कुछ हो गया तो मैं कैसे जीऊंगी ? मैं क्या खाऊंगी अथवा पानी पीऊंगी ?" (६) [लोरिक ने कहा,] "[इस समय] मरने (प्राण देने) का कठिन कार्य (प्रयोजन) है, फिर मैं कैसे उससे अपना जीव (अपने प्राण) छिपाऊं ? (७) हे माता, [इस समय] मुझे आशीर्वाद दो कि मैं बांठ को मार कर घर आऊं ।"

(१०८)

'आगें' आइ 'ठाढ़ि धनि' मैनां । नीर 'समुंद जस उलथइ' नैनां ।
चुइ चुइ बुंद 'परहिं' थनहारा । 'जनु टूटहिं गज मोतिन्ह' हारा ।
'जउ तुम्हं हइ झूझइ कइ' साधा । मोहिं 'तउ' मारि करहु 'दुइ' आधा ।
'तउ पीछें उठि झूझइ जाएहु' । 'मोरि' असीस जीति घर 'आएहु' ।
जाकरि नारि 'सो झूझ' न जाई । बावनु बनखंडि 'रहा' लुकाई ।
देहु असीस दोउ जनि मारि बांठ घरि 'आवउं' ।
'सोनहि पइरि' 'कराउ(उं) मैना(नां)' 'मोतिन्ह मांग भरावउं' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६९, बी० ३३६-३३८ ।

मैं० में इस कडवक के साथ जो चित्र अब है वह कदाचित् महर की सेवा में बसीठों के लौट कर जाने का है, इसलिए इस अंश में प्रति अस्त-व्यस्त है ।

शीर्षक—आमदने मैनां पेश लोरिक व गिरियः आग़ाज़ करदन ऊ ।

पाठान्तर—(१) बी० आगे । २. बी० ठाढ धन । ३. बी० समद जानौ उझले । (२) १. बी० परैहि । २. बी० जानु टुटैहि गजमोती । (३) १. बी० जौ तुम्ह जूझे की है । २. बी० तुह्म । ३. बी० दोइ । (४) १. बी० तौ पीछैं उठि जूझें जइहौहु । २. बी० मोंर । ३. बी० अईहौहु । (५) १. बी० सु जूझ । २. बी० रह्यो । (६) १. बी० आऊ । (७) १. बी० सोनै पीर (पइरि—फ़ारसी) । २. मैं० कराइ । ३. बी० मोत्यों मांग भराऊ ।

अर्थ—(१) [उसकी] स्त्री मैनां [उसके] आगे आकर खड़ी हो गई; जैसे समुद्र का जल [उल्लस्त होता है], वैसे ही उसके नेत्र उल्लस्त हो रहे थे । (२) जब उसके बूंद चू-चूकर उसके भारी स्तनों पर पड़ते थे, [तो ऐसा लगता था] मानो गज-मुक्ताओं के हार टूट रहे हों । (३) [उसने कहा,] "यदि तुम्हें युद्ध करने की साध (आकाङ्क्षा) है, तो मुझे मार कर तुम दो आधे (टुकड़े) कर दो, (४) तब उसके बाद उठ कर युद्ध करने जाना और मेरा आशीर्वाद है (होगा) कि [शत्रु को] जीत कर घर लौटो । (५) [चांदा] जिसकी नारी है, वह [तो] युद्ध में जा नहीं रहा है; वह बावन बनखंड में छिप रहा है !" (६) [लोरिक ने कहा,] "तुम दोनों जनी (मैनां और खोइलिन) मुझे आशीर्वाद दो कि बांठा को मार कर घर लौटूं, (७) और [तदनन्तर], हे मैनां, मैं [तुम्हारे लिए] सोने के पायल [निर्मित] कराऊं और मोतियों से [तुम्हारी] मांग भराऊं ।"

(१०९)

माता बहुरि दीन असीसा ।
जीवहु लोरिक बरि कोटि बरीसा ।
करता दोउ (दहुं ?) अैस परवाना ।
अरज (जु ?) न भीव भोज बरि जाना ।
षांड जैत (जेति?)सतराह(सतुरह)सिरि सालू ।
तुह्म(म्ह) समरे त होइ धर पालू ।
जस रामहिं बांध्यो सर सेतू ।
सतुराह (सतुरह) मरि (मारि) किया कुरषेतू ।
नैन नीर भरि अंचरु पसारा ।
बोल्या(ला) बचनु जननि धन बारा ।
अमरु सबदु के राषा तुह्मरै (तुम्हरे) सिरजनु हारु ।
जस बरु दीन्ह भीम अरज(जु ?)न कौहु(कहुं)तस तुह्म(म्ह)धौं करतारु॥

सन्दर्भ—बी० ३३९-३४१ ।

मैं० यहां त्रुटित है (दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी) । किंतु पिछले कडवक में लोरिक मैनां के साथ माता को भी संबोधित करता है, जब वह कहता है "देहु असीस दोउ जनि" (१०८.६), इससे इस कडवक की प्रामाणिकता निश्चित है ।

अर्थ—(१) तदनन्तर माता ने आशीर्वाद दिया, "ऐ लोरिक, अच्छा यह हो (यह मेरी शुभ कामना है) कि तुम कोटि वर्षों तक जीवो । (२) कर्त्तार (सृष्टिकर्ता) तुम्हें ऐसा प्रमाणे कि वह तुम्हें अर्जुन, भीम, भोज की भांति जाने (जैसे उसने उन पर कृपा की, तुम पर भी करे) ! (३) तुम्हारा षांडा जितने भी शुत्र हों उनके सिर के लिए शल्य (प्रमाणित) हो, और तुम्हारे स्मरण से धरा का पालन हो (उसकी रक्षा हो) ! (४) जैसे राम ने सर (समुद्र ?) पर सेतु बांधा था, और शत्रुओं को मार कर कुरुक्षेत्र (युद्ध) किया था [वैसे ही तुम भी करो !]" (५) नेत्रों में अश्रु भर कर उसने अंचल पसारा और जननी ने कहा, "ऐ [मेरे] बालक, तुम धन्य हो । (६) सृष्टिकर्त्ता तुम्हारा शब्द (वचन) अमर कर रक्खे ! (७) जैसे उसने भीम और अर्जुन को बल दिया, वैसे ही वह तुम्हें भी दे !"

(११०)

'जइस असीस दीत तस पाएहु'। लोरिक 'राइ' जीति घरि 'आएहु'।
लोरिकु गा अजई के बारा। भीतर 'हुतें' 'जो' 'आइ' हंकारा।
'पहिलेहिं अजई दोख' 'उपावा'। मिसु 'कइ' परि गा दांत कंपावा।
'घात' काटि 'घसि' गेरू भरी। खपरी लइ 'पूंदी' तर धरी।
आंग 'मूंदि' 'असि करइ' पुकारा। 'कवनि' मींचु 'दीन्हीं' करतारा।
लाज 'लागि' 'महरइं मुंह' 'अबहीं' 'राउ कह आउ'।
'खांडइं' मींचु न 'पाइउं' दई 'बहुल' पछिताउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८६, भो० पत्र ७ (नवीन), बी० ३४२-३४४।

शीर्षक—मै० : रफ़्तन लोरिक दर ख़ान: अजई व बहाना ए मर्ज़ करदन ऊ।

भो : राज़ी शुदन खेलन व इजाज़त दादन मैनां विदाअ् करदन लोरिक जानिब ख़ान: राव रफ़्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० जस असीस देह तसै पायुहु। २. मै० राउ। ३. बी० आयुहु। (२) १. भो० हिएं। २. बी० में नहीं है। ३. बी० आय। (३) १. बी० पहिलें अजई देष। २. मै० अनावा। ३. बी० कैं। (४) १. बी० षाट। २. बी० कैं। ३. भो० यूंदी, बी० पूंदह। (५) १. बी० मूंड (मूंदि—फ़ारसी)। २. बी० अस करहि। ३. बी० कौनु। ४. बी० दीनी। (६) १. बी० जाइ। २. भो० महरइ मुह, बी० महर महि। ३. भो० इहवइ, बी० औ अब। ४. बी० होइ कुराव। (७) १. मै० खांडइ, बी० षाडै। २. बी० पायो। ३. बी० बहुत भएउ।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "जैसा [मैंने] आशीर्वाद दिया, [समझो कि] वैसा तुम ने पाया; ऐ लोरिक, तुम राजा [रूपचन्द] को जीत कर घर आना।" (२) लोरिक अजई के द्वार पर गया, तो भीतर से हँकारी आई। (३) पहले ही [से] अजई ने दोष (दु:ख) उत्पन्न कर रक्खा था, बहाना करके वह पड़ गया था तथा दांत कंपाने लगा था। (४) [स्वयं] घात (घाव) काट कर उसमें उसने घिसे हुए गैरू को भर रक्खा था और एक खपड़ी लेकर पूंदी (?) के नीचे रख लिया था। (५) अंग (शरीर) को मूंद कर वह पुकार लगा रहा था, "हे सृष्टिकर्ता, तूने मुझे कौन-सी मृत्यु दी? (६) महर के मुंह में लज्जा लग रही है, इसलिए अभी राव [महर] कहेगा कि 'आओ [तथा युद्ध करो]।' (७) खांडे से मैंने मृत्यु न पाई, इसका, हे दैव, बड़ा पछतावा हुआ।"

(१११)

अजई 'गुरु परि कइ' 'बतलावउं'।
'इहइ बहुत' तुम्हं 'सेउं' सिधि 'पावउं'।
'मइं लोरिक' 'तहिया' सिधि 'दीती'।
हाथि फरी 'तुम्हं' 'जहियां' 'लीती'।
अब बुधि 'देउं' 'सुनसि तूं' मोरी। ओडन देह न 'देखइ' तोरी।
'बा(पा)ट जोरि धरि' 'पाउ उचाएहु'। बांह लुकाइ 'खरग चमकाएहु'।
'पाट गहत' 'जनि भूलइ दीठी'। 'पाव न देखइ उघरिहिं पीठी'।
घालि 'अखारें' 'खेदसि' 'सांस' भरे 'जउ' जाइ।
'देय(इ) फरहरा' 'मारसु' जइसें 'पर अरराइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ८७, भो० पत्र ८ (नवीन), बी० ३४५-३४७।

शीर्षक—मै० : नमूदने लोरिक रा अजई तरीक़:-ए-जंग।

भो० : विदाअ् करदन लोर बर रजई रा व हुनरहा जंग आमोख्तन अजई बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० बरु गुरु कौनु, भो० गुरु पकरहिं। २. बी० बुलाऊ। ३. बी० यहै बचन। ४. बी० पै, मै० हुत। ५. बी० में नहीं है। (२) १. बी० मै लोकसि। २. मै० तहां, बी० तिहुवा। ३. मै० दीतिहुं, बी० दीन्ही। ४. बी० तुह्म। ५. बी० जहिवा। ६. मै० लीतिहुं, बी० लीन्हा। (३) १. बी० देहु। २. भो० सुनहु तुम, बी० सुनहु धौं। ३. बी० देषौ। (४) १. मै० फरी टेकि भुइं, भो० पाट धरइ भुइं। २. बी० बाह उचावोहु ३. बी० षगु चमकावहु। (५) १. बी० बात कहत (पाट गहत—फ़ारसी) २. बी० मत भूलहु दीठें। ३. बी० पावा देषि उषरि न बैठें। (६) १. भो० उखारत, बी० उषारै। २. भो० खेदसि, बी० तस विधि षेदहु। ३. बी० मै० सास। ४. बी० जस। (७) १. भो० देइ फराहर, मै० खरग फरहरा, बी० देय फरहारा। २. बी० मारहु। ३. भो० जइसें बन अरराइ, बी० जइस परै खहराइ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "हे अजई गुरू, तुम पड़कर (पड़े ही पड़े) बताओ; यही बहुत है कि तुमसे मैं सिद्धि पाऊं।" (२) [उसने उत्तर दिया,] "मैंने, ऐ लोरिक, उसी समय [तुम्हें] सिद्ध दे दी थी जब तुमने हाथ में फरी ग्रहण की थी। (३) अब मैं तुम्हें बुद्धि (युक्ति) दे रहा हूँ; और उस

बुद्धि (युक्ति) को सुनो। ओडन [इस प्रकार लिया हुआ] हो कि [उसकी ओट में से] तुम्हारी देह न दिखे। (४) पाट (?) जोड़ कर तुम भूमि पर पांव उठाना और अपनी बाहों को छिपा कर खड्ग को चमकाना। (५) पाट (?) पकड़ते समय दृष्टि न भूले (भ्रमित हो) और उघड़ी हुई पीठ के साथ तुम्हें [शत्रु] न देख सके। (६) तुम यदि भरी हुई श्वास के साथ जा कर और अखाड़े (युद्ध-भूमि) में डालकर [शत्रु को] खेदोगे (उसका पीछा करोगे), (७) और फरहरा (लंबी उछाल ?) देकर तुम खड्ग मारोगे, [शत्रु] जैसे अररा कर पड़ेगा (गिरेगा)।"

(११२)

'पहिलें' जाइ महर 'उ(ओ)रिगायुहु। तउ 'पाछें तुम्हं' झूझइं जाएहु'।
लोरिक जाइ महर 'ओरगावा'। 'पैग' बीस चलि 'आगें' आवा।
अबलहिं 'लोरहिं भए बर जाई'। 'सगरइं' होइ 'मइं देखेउं आई'।
'लोरिक सूरु भइसि' तूं मोरा। 'मारु बांठ' मुखु 'देखउं' तोरा।
हउं तुम्हें हुतें तीर जउ 'पांवउं'। आधे गोवरि राजु 'करांवउं'।
तीस पान कर बीरा 'महरइं' लोरहि दीन्ह हंकारि।
घोर 'देउं' 'स्यौं (सेउं)' 'आखर' पाखर 'जौआवो(व)हु' 'रन' मारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७२, बी० ३४८-३५०।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तन लोरिक बर महर व बर्ग दिहानीदने महर लोरिक रा।

बी० : बाएं हाशिए में संकेत है 'लोरिक महर की भीर लडन आया'। किंतु यह अन्य हाथ की लिखावट में लगता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहलै। २. मैं० ओरगावा। ३. बी० पीछै उठि। (४). बी० जूझन आयुहु। (२) १. बी० उरिगावा। २. बी० पईक (पैग—फ़ारसी) ३. बी० आगै। (३) १. बी० लोरन भई पछांनीं। २. बी० सफरी। ३. बी० मै देष्यैं आंनी। (४) १. बी० लोर सूरु भाई। २. बी० छेकि बांठु। ३. बी० देषौ। (५) १. बी० पाऊ। २. बी० कराऊ। (६) १. बी० महरैं। (७) १. बी० दीन्ह। २. मैं० सउ (उं)। ३. बी० अंषर। ४. मैं० जउ आइहु। ५. बी० रिन।

अर्थ—(१) [अजई ने फिर कहा,] "तुम पहले जाकर महर की सेवा [में निवेदन] करना, तब पीछे तुम युद्ध करने जाना।" (२) [तदनुसार] लोरिक ने जाकर महर की सेवा [में प्रार्थना] की, तो महर बीस पग आगे चल कर आया। (३) [महर ने कहा,] "अबलों के लिए, हे लोरिक, तुम्हीं जाकर बल हुए (होते रहे) हो, मैंने यह [बात] सर्वत्र हो कर देखी है। (४) ऐ लोरिक, तुम मेरे शूर हुए हो, तुम बांठ को मारो, मैं तुम्हारा मुख (आसरा) देख रहा हूं। (५) यदि, हे वीर, मैं तुम्हारे द्वारा [संकट-सरिता से] तीर (किनारा) पा जाऊंगा, तो आधे गोवर पर [तुम्हारा] राज करा दूंगा।" (६) [यह कह कर] तीस पानों का बीड़ा महर ने लोरिक को बुला कर दिया, (७) [और कहा,] "मैं तुम्हें आखर-पाखर के साथ घोड़ा दे रहा हूँ कि तुम [शत्रु को] रण में मार कर आओ।"

(११३)

चला लोरु 'लइ' आपन साथी। 'जहवां पखरे' मैमंत हाथी।
लोह 'नदी' 'जनु दइ बुडकाए'। 'तारूं' तरवां 'कइ' अन्हवाए।
झरक लोहु 'जनु' उदिनिल भांनूं। दर महिं दूसर सूझ न आंनूं।
देखि बांठु राजा पहिं धावा। चांद 'गोहारि' 'सुरुज चलि' आवा।
उठा झार दरि 'रही' न जाई। हाथि घोर सब 'चले' पराई।
'झूझु' बांठ तइं 'जीतब' 'अब कोई' छंदु लाइ।
सूर बीर तइं 'मारब' तोहिं पहिं एकु न जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७३, बी० ३५१-३५३।

शीर्षक—मैं० : रवां करदने लोरिक बायाराने खुद दर मैदाने जंग।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै। २. बी० जहाँ पखरिया। (२) १. बी० दीन। २. बी० जानौ लै डुबकाई। ३. बी० तार्यौं। ४. बी० कै। (३) १. बी० जानौ। (४) १. बी० गुहरि। २. बी० लोरु चरि। (५) १. बी० रह्या। २. मैं० चला। (६) १. बी० जूझु। २. बी० जीता। ३. मैं० आइ लोर। (७) १. बी० मारे।

अर्थ—(१) लोर अपने साथियों को लेकर [वहाँ के लिए] चल पड़ा जहाँ पर मदमत्त हाथी पाखरे हुए [तैयार] थे। (२) [वे ऐसे लगते थे] मानो लौह की नदी में बुड़की (डुबकी) दिए हुए हों और तालु से लेकर तलवे तक [उसमें] नहलाए हुए हों। (३) उनके लौह ऐसे झलकते थे मानो उदय होते हुए सूर्य हों, दल में दूसरा (अन्य कुछ) नहीं सूझ रहा था। (४) [लोर को आता] देख कर बांठ राजा [रूपचंद] के पास दौड़ता-दौड़ता

गया। [उसने कहा,] "[अब तो] चांदा की गुहार (पुकार पर—उसको बचाने के लिए) सूर्य (लोर) चला आया है। (५) [युद्ध की] ज्वाला उठ पड़ी है और दल में रहा (रुका) नहीं जा रहा है, हाथी-घोड़े सभी भाग चले हैं।" (६) [रूपचंद ने कहा,] "ऐ बांठा, तू युद्ध कर, तू ही जीतेगा, [भले ही] अब कोई छद्म (युक्ति) लगा, (७) उस सूर्य को, ऐ बीर, तू मारेगा, तुझसे [बच कर] एक भी नहीं जा सकता है।"

(११४)

'निसरत' लोर 'सबइं' नीसरे। 'एक एक जनु परखहिं' आगरे।
लौकहिं खरग 'दानहिं लइ फिरे'। 'बांधे पाट जउ रे धर धरें'।
'झलकहिं ओडन' तांबे 'तुरी'। बांधे 'पवंरी लोहें जरी'।
पटवर 'सार तार' 'कइ' भई। 'भई अतिय बज्जर कइ मई'।
'सबहि सिंदूर' 'दरेरइं' धरे। 'भांगहिं' देखि 'घोर' पाखरे।
'नियरे नियरा' 'पाइक' 'चढा सहस बर' राउ।
अचल 'चलाएं न बिचलइं' 'रहे' रोपि धर पाउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७४, बी० ३५४-३५६।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते मुस्तअदीए फ़ौज लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० नीरत। २. बी० सभहि। ३. बी० येक जानौ बुधि औ। (२) १. बी० दांत की फरी। २. बी० बाटह बाट जोरि भरि धरी। (३) १. बी० चमकहिं वोडन। २. बी० तरे। ३. बी० पैरहि लोहहि जरे। (४) १. मैं० तार सार। २. बी० की। ३. बी० भइ पअरिनि बंजर की भई। (५) १. बी० सीह उरेरहि। २. बी० दरेरै। ३. मैं० भाजहिं। ४. बी० हस्ति। (६) १. बी० नेराह नेराह। २. बी० पाइक बैठे। ३. बी० चरा सीस परि। (७) १. बी० चलायो ना चलैहि। २. बी० बैठ।

अर्थ—(१) [युद्ध के लिए] लोरिक के निकलते ही सब [सैनिक] निकल पड़े, मानो एक-एक [सैनिक] पहले से ही उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। (२) खड्ग लौकने (लपलपाने) लगे, [क्योंकि] योद्धा उनका दान देने के लिए उनको लेकर लौट पड़े थे, जब पाट (पटका) बांधे हुए उन्होंने [रण-] धरा को धारण किया था। (३) घोड़ों पर उनके ओडनों का तांबा झलक रहा था, वे पांवरियों को बांधे हुए थे जो लोहे से जटित थीं। (४) उनकी पटवरें फौलाद के तारों की बनी हुई थीं, [इसलिए] वे अत्यधिक वज्रमयी हो गई

थीं। (५) सभी [योद्धा] सिंदूर की दरेरें (धारियां) धारण किए हुए (लगाए हुए) थे [जिसके कारण] उन्हें देख कर पाखरित घोड़े भाग रहे थे। (६) पदाति निकट ही निकट थे, [इस प्रकार] सहस्र [-गुणित] बल के साथ राजा [महर] ने चढ़ाई की। (७) [अब सैनिक] अचल थे, चलाने पर वे विचलित नहीं हो रहे थे, और उन्होंने पैरों को रण-धरा में आरोपित कर दिया था।

(११५)

'तहं तुरि' बैसि 'गए' धनुकारा। 'जेहिं पंथ पउलत' नहीं उबारा।
'साजि बडवा तस कइ कढ़े'। दीत 'टकोरा' 'घूरहिं चढ़े'।
'अपरइं नर तहं संकरी मूठिहिं। पनच धरे सर तुरियन पूठिहिं।'
बान 'सारि कइ' 'आंग' उचाए। पांखहिं 'गरुर' काटि रचि लाए।
'दीते फुंक (पुंख)' सर 'मूंठि संभारहिं'। 'बोलत' बोलु मांझ' 'मुषि' मारहिं।
जन्त्र लखउरीं 'काढ़े' [ब]हुत 'दाप भनकार'।
भरि भरि भाथा बांधे तिन्ह 'पहिं' कहां 'उबार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८३। बी० ३५७-३५९।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते तीरंदाज़ान गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० तिह तौ। २. बी० गहे। ३. बी० जिहि बिनु बोलत। (२) १. बी० सजि बिनानी की अस गढ़ी (गढे—फ़ारसी)। २. बी० टकौरा। ३. बी० धूमर चढ़ी (चढ़े—फ़ारसी)। (३) १. बी० बिसरी परतेहि सकरी मूठी : पेटते दूसरी रुतुरी पूठी। (४) १. बी० सान दे। २. बी० आन। ३. बी० गुवर। (५) १. बी० दे भुवंग (फुंक—फ़ारसी)। २. बी० संभारैहि। ३. बी० बोलित। ४. मैं० मुंह। (६) १. बी० काढ़ी। २. बी० हस्ति दोत (दांत ?) फुनकार। (७) १. बी० महि। २. मैं० उपार।

अर्थ—(१) वहाँ (रणक्षेत्र में) घोड़ों पर धनुकार (धानुष्क) बैठ गए। जिस पथ से भी वे पैर रखते थे, उस पथ पर उनसे बचना असंभव था। (२) घोड़ियां सजा कर वे इसी प्रकार निकल पड़े थे और वे उन्हें टकोर देकर चढ़े हुए घूम रहे थे। (३) घोड़ों की पीठ पर अपर नर (योद्धा) वहाँ पर अपनी मुट्ठियों में, जो संकीर्ण की हुई (सिकोड़ी हुई—बाँधी हुई) थीं, प्रत्यंचा पर शरों को रक्खे हुए थे। (४) वे बाने धारण कर अंग उठाए हुए ऐसे लगते थे मानो गरुड़ के दोनों पंखों को काट कर युक्ति-पूर्वक उन्हें लगा

दिया गया हो। (५) पुंखों (बाण के अग्रभाग) में शर (सरकंडा) दिए (लगाए) हुए वे अपनी मुट्ठियों को संभाल रहे थे और [विपक्ष के योद्धाओं के] बोल उठते ही उनके मुख में [बाण] मारते थे। (६) जो लखौरी यंत्रों को निकाले हुए थे और बहुत दर्प के साथ उनकी ध्वनि कर रहे थे, (७) तरकशों को [शरों से] भर कर जिन्होंने बांध रक्खा था, उनसे बचना कहां [संभव] था ?

(११६)

साजे सुरथ 'बिनानिहि गढे'। 'सउ सउ धानुक एक एक चढ़े'।
ढूके 'आए आनें तेहि खिनइं'। तीनि चारि सै ऊभे 'कनइं'।
जोयन बीस करि लाइ चलावहिं'। खिन 'इक' मांझ बहुरि 'तहं' आवहिं।
'ठौर ठौर कइ' 'रन' महि धरे। जनु 'बोहिथ' सायर महि परे।
'रथ केहि अरथ झूझ कहं' कीन्हां। पर दर 'मुख लइ' खूंटा दीन्हां।
देखि 'झुझार राइ के' 'कुरधर' रहे तंवाइ।
'फूटि चले राइ अउ राउत बूड लौकि सो आइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८४। बी० ३६०-३६२।

शीर्षक—मैं० सिफ़ते रथ जंगी गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिनांनहू घरे। २. बी० सै सै धानुक यक यक चरे। (२) १. बी० आइ अनी महि घने। २. बी० गने (कने—फ़ारसी)। (३) १. बी० कर राय चलावैहि। २. बी० यक। ३. बी० तहां। (४) १. बी० ठाव ठाव के। २. बी० रिण। ३. मैं० बोहित। (५) १. बी० अरथ रथैं जूझ कौं। २. बी० लौ औ। (६) १. बी० जूझार राय के। २. बी० कर धरि। (७) १. बी० फूट चले जस बनियो बूडि बूडि लोगु मराइ।

अर्थ—(१) विज्ञानियों (कुशल कारीगरों) के द्वारा गढ़े हुए सुन्दर रथ सजाए गए और सौ-सौ धानुष्क एक-एक पर सवार हुए। (२) उसी क्षण ले आए गए वे आ ढुके, और पास-पास ही तीन-चार सौ खड़े हो गए। (३) बीस बीस योजनों तक हाथियों को लगा कर उन्हें चलाया जाता था और वे क्षण भर में ही वहाँ पुनः आ जाते थे। (४) वे रण-क्षेत्र में स्थान-स्थान पर लाकर इस प्रकार रक्खे गए थे मानो सागर में बोहित्थ [रख] पड़े हों। (५) युद्ध के लिए इन रथों को किस अर्थ (प्रयोजन) से किया (बनाया) गया था ? इसलिए कि इनके द्वारा [जैसे] पर दल (शत्रु-दल) के मुख को लेकर उसमें खूंटा दे

दिया जाए। (६) राजा के इन योद्धा सैनिकों को देखकर [विपक्ष के] कुलधर [योद्धा] तप्त हो रहे। (७) और उसके बहुतेरे राव और रावत फूट चले (तितर-बितर हो गए) और जो [अब तक रण सरिता में] डूब रहे थे, वे ऊपर आते [और भागते] दिखाई पड़े।

(११७)

गज गवनें 'दरि सांसौ भएऊ'। बासुगि 'नासि पतारहिं गएऊ'।
'झुकरत इंद्रासन डर' होई। 'कांपहिं पाउ' न अंगवइ कोई।
'चढे महाउत कसें' अंबारी। दांत पितरि मढ़ि सूंडि सिंगारी।
'जोतहिं महाउत' अंकुस 'गहइं'। 'बिनु गज रैन' दर राखि न 'रहइं'।
सावनि मेघ 'ओनइ जनु रहे'। पखरे गैंवर 'परखहिं चढे'।
'बज्र मांथ' घन पसरे परी छांह 'रनि' आइ।
उठी खेह दर 'पउदरि' 'सूरिजु गएउ' लुकाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८५, बी० ३६३-३६५।

मैं० में इस छंद के सामने चित्र मैनां से लोरिक के बिदा लेने के प्रसंग का है, जो कि बहुत बाद में आता है। इससे ज्ञात होता है कि इस स्थान पर मैं० के पत्र अस्त-व्यस्त हैं।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते फ़ीलाने महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० दरि सौ सौ भेये। २. बी० कैपि पतारैहि गये। (२) १. बी० छिधरति यंद्र सरौ वड। २. बी० कंपैहि राइ। (३) १. बी० चढै छतनिया करसि। (४) १. बी० जैन महावतु। २. बी० षुहाई। ३. बी० बन कजी (बिन गज—फ़ारसी)। ४. बी० रहाही। (५) १. बी० उनये जानौ अहे। २. बी० राषे न रहे। (६) १. बी० मै जु मात। २. बी० रिनि। (७) १. बी० पयाह दर। २. बी० सूरज गयो।

अर्थ—(१) गजों के गमन करने से [शत्रु-] दल में संशय (डर) हुआ, और वासुकि भाग कर पाताल को चला गया। (२) [हाथियों के] चीखने से इंद्रलोक में डर होने लगा, [देवताओं के] पैर काँपने लगे, क्योंकि [इनका भार] कोई अंगों पर नहीं ले सकता था। (३) अंबारी कसकर [हाथियों पर] महावत चढ़ गए, उनके दांतों को उन्होंने पीतल से मढ़ कर उनके सूँड़ों को शृंगारित किया था। (४) जब महावत उन्हें जोतते थे, वे अंकुश ग्रहण करते थे, क्योंकि बिना गजरैन (अंकुश ?) के वे [हाथी] दल (सेना) में रोकने से रुकते नहीं थे। (५) श्रावंण में मेघ मानो अवनमित हो गए हों, इस प्रकार

वे पाखरित गजेन्द्र [युद्ध में प्रवृत्त होने की] प्रतीक्षा कर रहे थे। (६) जिनके मस्तकों पर वज्र (फौलाद) [के तवे] थे, ऐसे वे घन [सदृश हाथी] जब वहाँ पर फैल गए, रण-क्षेत्र में छाया आ पड़ी। (७) दल तथा पद-दल में धूल उठी और सूर्य छिप गया।

(११८)

'महरइं' काढि 'केकान' पलानें। दहुं 'दिसि' धरे लोर पहं आने।
'हंस हांसुले' भंवर सुहाए। 'जनु' बग घन 'कारी' महिं आए।
उद(दि)र समंद भुइं' पाउ न धरहीं'। 'सावकरन जस' नांचत 'रहई(हीं)'।
'महू तुरंग' तीनि पा ठाढ़े। 'टेइं हराह' 'पक्खरन्हि गाढे'।
बोर करिया 'अउ सुरराहा'। 'दहुं दस रूप जोति ते आहा'।
पवन पाइ परबत सम 'देहीं' देखि तरास उडाहिं।
बहुल 'धाप धर धावहिं थामे हिरि' न रहाहिं॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७८, बी० ३६६-३६८।

शीर्षक—मैं० : सिफ़त असपान राव महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० महरि। २. मैं० तोखार। ३. बी० दिस। (२) १. बी० हांस हंसौला। २. बी० जानौ। ३. बी० कार। (३) १. बी० पाव धराहीं। २. मैं० भाउ गरब ते। ३. बी० नचत रहाहीं। (४) बी० मुहये तुरंज। २. बी० तीनि हजार। ३. बी० पखरिया काढ़े। (५) १. बी० औ सुरवाहा। २. बी० जिहि की घाप सराहौं काहा। (६) १. बी० में नहीं है। (७) १. बी० घांघर थोरे ठोक हरि न।

अर्थ—(१) महर ने निकाल (निकलवा) कर केकानों (घोड़ों) को पर्याण से सज्जित किया (कराया) और उन्हें लोरिक के पास ला कर दस ओर रख दिया। (१) हंस जैसे हांसुले थे ओर सुहावने भंवर थे, जो ऐसे लगते थे मानो किसी बादल की कालिमा में बकुले आए हुए हों। (३) उदिर और समंद भूमि पर पैर नहीं रख रहे थे, और श्यामकर्ण जैसे नाचते ही रहते थे। (४) महुए घोड़े ऐसे थे जो तीन पैरों पर खड़े होते थे [चौथा पैर रखते ही दौड़ने लगते थे?]। टेई और हराह गाढ़े पाखरों में [सन्नद्ध] थे। (५) [इनके अतिरिक्त] बोर, करिया (गुर्रः?) और सरराह (सेराह) थे, ये [दस जातियों के घोड़े] मानो दस रूपों और ज्योतियों के थे। (६) वायु में ये पैर इस प्रकार देते (चलाते) थे मानो पर्वतों पर चढ़ रहे

हों और चाबुक देख कर ही ये उड़ने लगते थे। (७) बहुतेरे धाप (=½ कोस) तो ये धरा पर [थामते-थामते] दौड़ जाते थे और थामने पर लज्जित होकर रुकते नहीं थे।

(११९)

कसि कसि चढे 'सबहि' असवारा। 'जियत न देखउं जिन्हकर' मारा।
बिसहिं बुझाए 'सानइं' धरे। 'बेलक' सौ सौ तरकस भरे।
'खरगन्हि बसइ' 'बीजु कइ कया'। रगत 'पियासी कर नहि मया'।
बीर 'अस्सु रन' 'पखरी(रि)न्ह चढे'। 'तारू तरवां लोहइं जरे'।
टाटर पहुंचिउ 'रागइं' कसें। 'झरकहिं लवकइं सोनइं रसें'।
'जिन्ह कें' हाक 'परहिं' नर औ गज लेहिं तरास।
'मरहिं' सींह 'हिए डरि' सुनि 'कइ' रहे 'निवास'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ७९। बी० ३६९-३७१।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते सवाराने जंगी।

पाठांतर—(१) १. बी० सभै। २. बी० जैति (जियत—फ़ारसी) न देषो जिह कर। (२) १. बी० सानहि। २. बी० बोलक। (३) १. बी० खरगैंहि। २. बी० बीज की काया। ३. बी० पियासे (पियासी—फ़ारसी) करहिं न दया। (४) १. मैं० आरनर। २. बी० रखरहू चरे। ३. बी० तारौ (तारू—फ़ारसी) तरवा लोहहि जरे। (५) १. बी० बहुजू रागैं। २. बी० झरकैहि लवकैहि सोनै कसे। (६) १. बी० जिहकी। २. बी० परैंहि। (७) १. बी० मरौह। २. बी० हिय डरि कैं। ३. बी० कै। ४. मैं० न पास।

अर्थ—(१) [घोड़ों पर ज़ीनें] कस-कस कर सभी सवार चढ़े, जिनके मारे हुओं को मैंने जीते हुए नहीं देखा। (२) विष में बुझाए हुए और शान पर रक्खे हुए बेलक (बाण) तरकशों में सौ-सौ रक्खे हुए थे। (३) [उनके] खड्गों में विद्युत् की काया निवास करती थी, जो रक्त से प्यासी थी और [किसी पर] मया (ममता) नहीं करती थी। (४) [ऐसे] वीर अश्वों पर रण में पाखरित होकर चढ़े थे और तालु से तलवे तक वे लौह से जड़े (मढ़े) हुए थे। (५) वे टाटर, पहुंची तथा रागों (क्रमशः भुजाओं तथा पैरों के कवच) कसे हुए थे, जो सोने से रसे हुए [होने के कारण] झलक और लपलपा रहे थे। (६) [वे ऐसे थे] जिनकी हांक पर मनुष्य गिर पड़ते थे, हाथी त्रास करते थे, (७) तथा सिंह हृदय में डर कर मर जाते थे, और इसलिए अपने निवासों में ही बने रहते थे।

(१२०)

'गीधन्ह नेउता कुटुंब हंकारा' । 'आनि' रसोइ 'आगि' 'परजारा' ।
आजु बांठ सेतीं खंड तारा । 'लोरिक' 'पसाएं' 'करउं जेवनारा' ।
'नौता काल देस कर' आवा । 'चील्हन गै दर मांडव' छावा ।
सरगि 'ऊड़ तेहि फरहरि खीनी' । 'गारि' 'करोर' भांति 'रस भीनीं' ।
सुनां 'सियार' पितर 'पख' आवा । 'रइनि' पासि 'सब जाति बोलावा' ।

'गूद मांसु धरि तोरबि' रगत भरबि 'नइ' कुंड ।
आठ मांस धर 'जेवहिं' सात मांस लहि मुंड ॥

संदर्भ—मैं० पत्र ८८, शि०, बी० ३७२-३७४ ।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जानवरां मुरदार ख्वार ।

शि० : आमदन जमअ़दारान मुरदार ख्वारान हुमः अज़ ····· ।

शि० में अर्द्धालियों के प्रथम चरण तथा दोहे के दोनों चरण अपाठ्य हैं ।

पाठान्तर—(१) १. बी० गिदुव निवता कुटबा हकारी । २. मैं० कीत । ३. मैं० अगिनि । ४. बी० परजारी । (२) १. मैं० लोर । २. बी० साय । ३. बी० करहि जिवनारा । (३) १. बी० निवता फाग देस कैं । २. बी० चील्हह कौ घरि मंडपु । (४) १. बी० गुवरि फरहरहि घनी । २. मैं० गालि, बी० कारि (गारि—फ़ारसी) । ३. मैं० गरोहि । ४. मैं० रस कीनी, बी० दस तनी । (५) १. बी० सियारि । २. मैं० मख (पख—नागरी) । ३. बी० रैनि । ४. बी० सभ जाति बुलावा । (६) १. बी० गोड (गूद—फ़ारसी) मास घर जीवन । २. बी० नैं । (७) १. बी० पूरब ।

अर्थ—(१) गिद्धों ने निमंत्रण भेजा और कुटुंबियों को बुला भेजा; [उन्होंने कहलवाया,] "हमने आ कर रसोई की है और [उसके लिए] अग्नि प्रज्वलित की है । (२) आज बांठ से [लोरिक ने] इस [भू-] खंड को [समझना चाहिए कि] तार दिया, अतः लोर के प्रसाद से हम यह ज्यौनार कर रहे हैं ।" (३) जब स्वदेश का यह निमंत्रण-काल आया, चीलों ने जाकर दल में मंडप छाया । (४) वे आकाश में इसीलिए क्षीण पताकाओं जैसी उड़ने लगीं, [उनकी] बातें करोड़ों भांति की और रस-सिक्त थीं । (५) स्यारों ने सुना कि पितृ-पक्ष आया हुआ है, इसलिए उन्होंने [उस संहार-क्षेत्र में] रात्रि के समय समस्त जाति को पास बुला लिया । (६) [उन्होंने कहा,] "गूदा

और मांस हम पकड़ कर तोड़ेंगे और रक्त से कुंड भरेंगे । (७) आठ मास तक हम धड़ों का भोजन करेंगे, और सात मास तक मुंडों का ।"

(१२१)

चहुं दिसि 'देख राउ' दरु आवा । रहा अचलु होइ चल न चलावा ।
'जउ रे' 'चलावहिं' 'जाइय' कहां । कवनु उतरु अब 'दीजइ' तहां ।
'ओछे दर हम बाजे आई' । 'आएं पवरि अब जाइ न जाई' ।
देस मंडर महिं लागी लाजा । 'बूडि सिराउ' 'ओछहिं सहुं' भाजा ।
काहू सों मंतु 'करइ न पारे' । 'जेइं रे सुनां सो आगें हारे' ।

राइ भाट कहिं 'पठए' 'महर करहु अब' काउ ।
एक एक 'सहुं झूझइं' दूसर 'नियर' न आउ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ८९, बी० ३७५-३७७ ।

शीर्षक—मैं : हैबत ख़ुरदन रूपचंद व फ़रिस्तादने भट ।

पाठान्तर—(१) १. बी० देषि राय । (२) १. बी० जौ रु । २. बी० चलावैहि । ३. बी० जाहिहैं । ४. बी० दीजै । (३) १. बी० वोछै दर महि पाछै आये । २. बी० पूर अनी यहि जान न जाये । (४) १. बी० पूर (बूड़ि—फ़ा०) । २. बी० वोछै सौ । (५) १. बी० परै न पारै । २. बी० जिहि सुना सु येको नहि हारै । (६) १. बी० पठवा । २. बी० कहहु महर अस । (७) १. बी० सौं जूझै । २. बी० नेर ।

अर्थ—(१) राजा [रूपचन्द] ने देखा कि चारों ओर से [महर का] दल आ रहा था, वह दल अचल हो रहा था तथा चलाने (हटाने) से चलता (हटता) [भी] नहीं था । (२) [वह सोचने लगा,] यदि वे चलाए गए तो हम [भाग कर] कहां जाएँगे और अब वहां (अपने यहां) क्या उत्तर देंगे ? (३) [अपने से] तुच्छ दल से आकर हम भिड़ गए और [उसकी] पौरी पर आकर अब [वापस] जाया नहीं जा रहा है । (४) देश और मंडल में हमें लज्जा लग गई; जो ओछे से [परास्त होकर] भाग निकलता है, वह डूब कर ही शीतल होता है (शांति लाभ करता है) । (५) किसी से हम मत न कर सके, और जिन्हें भी मैंने सुना है, वे आगे हार [ही] चुके हैं ।" (६) राजा [रूपचन्द] ने [अपने] भाट को यह [कहने को] कह कर भेजा, "हे महर, अब क्या करोगे ? (७) [यदि स्वीकार हो तो] एक-एक योद्धा एक-से ही झूझे और दूसरा नर (योद्धा) उनके निकट न आए (जाए) ।"

(१२२)

बहुरे भाट दिवाए पानां। महर बोलु राजा 'कर' मानां।
'बांठु' झुझारु फेरी(रि) 'लइ' आवा। 'पाछे परे तिन्ह झगर बसावा'।
सींह 'सिंगार' बीर 'दुइ' आए। राय मया करि पान दिवाए।
ओडन सींह 'झकोरि ऊतरा'। 'हिलतहिं' खरगु खिसि धरती परा।
'चढ़त अनीं कुसगुन' अस 'भए'। 'सींह सिंगार लौटि रन' 'गए'।

सीह लाग 'रन बरिसइ' 'कांपि त' 'उठइ पतार'।
सुनहां 'भयो चेर कं(कुं)वरू कर' 'काटेसि खेदि' सियार॥

सन्दर्भ—मैं० ६०, बी० ३७८-३८०।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तने भट व जंग करदने सींह व गुश्तः शुदन ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० का। (२) बी० बीरु। २. बी० लै। ३. बी० पाछै सरहि न जिन्ह का पावा। (३) १. बी० सिगा। २. बी दोइ। (४) १. बी० झकोरा तरा (झकोरि उतरा—फ़ा०)। २. बी० हाथि। (५) १. बी० चरत अनी कुसुगुन। २. मैं० भएऊ। ३. बी० सीगार रूपि रिन। ४. बी० गये। (६) १. बी० रिन रासै। २. बी० कांपत (कांपि त—फ़ा०)। ३. बी० उठै न पार (पतार—फ़ा०)। (७) १. मैं० भएउ चर कुंवरू। २. बी० काटसि देखि।

अर्थ—(१) पान दिलाए जाने पर भाट वापस गए, क्योंकि महर ने राजा [रूपचंद] के वचनों को मान लिया था। (२) [अब] योद्धाओं को बांठ फिरा कर ले आया और जो [सैनिक] पीछे जा पड़े थे, उन्हें उसने झगड़े (युद्ध) में ला बसाया (स्थित किया)। (३) सींह और सिंगार [नाम के] दो वीर आएं और राजा [रूपचंद] ने उन्हें मया (ममता) कर पान के बीड़े दिलाए। (४) ओडन को झकोले देकर सींह [युद्ध में] उतरा किन्तु उसका खड्ग [युद्ध में] हिलते ही (प्रविष्ट होते ही) धरती पर गिर पड़ा। (५) सेना के चढ़ाई करते ही ऐसा अपशकुन हुआ, इसलिए सींह और सिंगार [एक बार] लौट कर युद्ध में गए। (६) रण-क्षेत्र में जब सींह बरसने (शस्त्रास्त्र चलाने) लगा तब पाताल भी कांप उठा। (७) किन्तु वहां [उसके लिए] कुंवरू का चेर (पुत्र) श्वान हुआ, जिसने उस स्यार को खदेड़ कर काटा।

(१२३)

देखि 'सिंगार' कोह 'परजरा'। बांधि फरहरा 'आगें' सरा।
दौरि 'किहेसि' सिर 'खांडइ' घाऊ। टाटर टूटि 'काढ़ि' गा पाऊ।
दूसर खांड 'लिहेसि' पटतारी। फरी फाट धर 'गएउ' उबारी।
'दापि' सिंगार चेर तस मारा। 'बिचला' खांड टूटि गइ धारा।
पुनि 'जमदाढ़' 'पानि' कर गही। बजर चोट सिर 'चेरइं' सही।

'बिनु' हथियार भा 'राउत' परि गा 'थाकि' सिंगार।
एक चोट 'दुइ कीतिसि' धर 'सेउं' फाट कपार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ६१. बी० ३८१-३८३।

शीर्षक—मैं० जंग करदन सिंगार बा बांठा व गुश्तः शुदने सिंगार।

पाठान्तर—(१) १. बी० सिगा। २. मैं० परचरा। ३. बी० आगै। (२) १. बी० दिहेसि। २. बी० षाडैं। ३. बी० गाडि। (३) १. बी० लिहसि। २. बी० गयो। (४) १. बी० दाबि। २. बी० बिचरा। (५) १. मैं० जमधर। २. बी० सपानि। ३. बी० चेरें। (६) १. बी० बिन। २. बी० रावत। ३. बी० थाक (थाकि—फ़ा०)। (७) १. बी० दोइ कीन्हसि। २. बी० स्यौं।

अर्थ—(१) यह देखकर सिंगार क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और फरहरा (पताका) बांध कर आगे बढ़ा। (२) उसने दौड़ कर [कुंवरू के चेर—पुत्र के] सिर पर खांडे का घाव किया, जिससे [उसका] टाटर टूट गया और वह [घाव] उस का पाउअ (वस्त्र) निकाल गया। (३) दूसरा खड्ग उसने जांच-भाल कर लिया; [इस बार के आघात से कुंवरू के चेर—पुत्र की] फरी फट गई यद्यपि धड़ उबर (बच) गया। (४) अब सिंगार ने दर्प में आकर [कुंवरू के] चेर (पुत्र) पर [पुनः] आघात किया, किन्तु उसका खांडा विचलित हो गया और उसकी धार टूट गई। (५) तदनंतर उसने हाथ में जमदाढ़ (यमदंष्ट्रा) ग्रहण की और [उस की] वज्र (फौलाद) की चोट [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने सहन की। (६) किन्तु जब वह बिना हथियारों का हो गया, वह राजपुत्र सिंगार थक कर गिर पड़ा। (७) [विपक्षी की] एक चोट ने उसके दो [टुकड़े] कर डाले और धड़ के साथ उसका कपाल फट गया।

(१२४)

'बरम' दास धरमूं 'दुइ' आए। राइ 'मया करि' पान दिवाए।
आजु 'सो' दिनु 'जा कहं पतिपारे'। 'गांउं ठाउं' कापरु 'मइं' सारे।

ओडन चंवर लाग घूंघरा। बरमदास 'पउ' 'आगें' धरा।
छांडि फरी घन(नु)हर कर गहा। बान 'फुंक (पुंख)' धरि 'चेरइं' रहा॥
बरमदास तुम्हं 'नियर न आवहु'। कौने लाभ कहुं जीउ 'गंवावहु'।
बरमदास मन कोपा काटि 'मूंड' 'लइ' जाउं।
'बिछूटा पान निकरि गा बरमदास पर ठाउं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९२, बी० ३८४-३८६।

शीर्षक—मै० : आमदने बरमदास व धरमूं अज़ तरफ़े राव रूपचंद व गुश्तः शुदने बरमदास।

पाठान्तर—(१) १. मै० ब्रह्म। २. बी० दोइ। ३. बी० बिचारे। (२) १. बी० सु। २. बी० जाकौ प्रतिपारे। ३. बी० गाव ठाव। ४. बी० मैं। (३) १. बी० पगु। २. बी० आगैं। (४) १. मै० धानुक। २. बी० भुवंग। ३. बी० चेरैं। (५) १. बी० नेर न आयुहु। २. बी० गवायहु। (६) १. बी० माथ। २. बी० लै। (७) १. बी० निछुटा बान बिरथ गा परा न छडिसि ठाऊ।

अर्थ—(१) [तदनंतर] ब्रह्मदास और धरमूं—ये दो [योद्धा] आए, राय [रूपचंद] ने इन्हें मया• (ममता) करके पान [के बीड़े] दिलाए। (२) [राजा ने कहा,] "आज वह दिन है जिसके लिए तुम प्रतिपाले गए थे, जिसके लिए तुम्हें गांव, स्थान और कपड़े मैंने दिए थे।" (३) [यह कहकर] घूंघर लगे हुए ओडन और चामर उसने ब्रह्मदास के पैरों के आगे रख दिए। (४) [ब्रह्मदास ने] फरी छोड़ कर हाथ में धनुष पकड़ा तो [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने बाण (शर) पर पुंख (अग्रभाग) रक्खा। [उसने कहा,] "ब्रह्मदास, तुम निकट न आओ। किस लाभ के लिए तुम अपने प्राण गवां रहे हो?" (६) ब्रह्मदास [यह सुनकर] मन में कुपित हुआ [और उसने कहा,] "मैं [तुम्हारा] सिर काट कर ले जाऊंगा।" (७) [तब तक उस चेर (पुत्र) बाण] छूट पड़ा, उसके प्राण निकल गए और ब्रह्मदास उसी स्थान पर गिर पड़ा।

(१२५)

फुनि धरमूं 'गुन' मेलिसि तानी। 'नांध टूट अउ' पनच गंवानी।
'जौ ले(ल)हि चेर संभरे भाली। 'तौ लहि' धरमूं 'चांपइ' 'घाली'।
'धरमूं कोपि पीठि लइ फिरइ'। 'चेरइं कर धरमूं के धरइ'।

'गा' परान धरमूं घर 'पार(रे)सि'। काढि कटार 'हिएं' महिं मारेसि।
'देइ पाउ तोरेसि भुअडंडा'। 'काटेसि' 'चेरु' 'सुनेसि' नव खंडा।
'रनमल पइठ खरग लइ' मारेसि कुंवरू क पूत।
'रहइ' न टेका 'नर पइ' 'जूझ राइ' जम जूत॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९३, बी० ३८७-३८९।

शीर्षक—मै० : जंग करदन धरमूं व गुश्तः शुदन धरमूं।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौ (गुन—फ़ा०)। २. बी० नाह टूटि औ। (२) १. मै० चला बजाइ भेरि औ तूरा (तुल०—अगले कडवक के (२)।१ से)। २. बी० तौ लेहि। ३. बी० चांपा। ४. मै० घाला। (३) १. बी० कंवरू क पूत बैठि (पीठि—फ़ा०) लै फरी। २. बी० मिलताह करि धरमूं की धरी। (४) १. बी० गए। २. मै० मारेसि (पारेसि—नागरी)। ३. बी० कंठ। (५) १. बी० दोउ पाव तोरसि भुव दंडा। २. बी० कांटा। ३. बी० किया। (६) १. बी० रणमल हाथि फरी लै। २. बी० मारसि कंवरू का। (७) १. बी० रहे। २. बी० मरिये। ३. बी० ज्यो रु आये।

अर्थ—(१) पुनः (तदनंतर) धरमूं ने [धनुष की] डोरी तान (खींच) कर लगाई, किंतु उसका नांध (बंद) टूट गया और उसकी प्रत्यंचा जाती रही। (२) किन्तु जब तक [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने भाला संभाला, तब तक धरमूं ने धनुष में [प्रत्यंचा को] डाल लिया। (३) जब धरमूं कुपित होकर उसकी पीठ पर घूम पड़ा, तो [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने धरमूं के हाथ पकड़ लिए। (४) जब उसने धरमूं को धरा पर गिरा दिया, उसके प्राण निकल गए, तदनंतर उसने कटार निकाल कर उसके हृदय में घुसा दी। (५) पैरों को देकर [कुंवरू के] चेर (पुत्र) ने उसके भुजदंडों को तोड़ डाला, और [फिर] उन्हें काट डाला। इसे नवखंड [पृथ्वी] ने सुना। (६) तब रणमल खड्ग ले कर रण में प्रविष्ट हुआ, और उसने कुंवरू के पुत्र (चेर) को मारा। (७) किन्तु वह योद्धा [युद्ध करने से] रोका न जा सका, और वह यमराज का युक्त (जोड़) जूझ गया।

(१२६)

'रनपति' 'महर' दीन्ह 'अगुसारी'। 'चाह बियाहि आनइं कुंवारी।
चला बजाइ भेरि अउ 'तूरा'। खरग मूंठि 'भरि लिहेसि सेंधउरा'।
दौरि खांड 'रनमल' सिर दीन्हां। रकत धार 'सभ' सेंदुर कीन्हां।

'रनमल' परत सिरीचंदु 'आवा'। 'रनपति' पाखर घालि गंजावा।
अजैराज 'सींगिनि' कर गही। 'मारेसि बेलकु' पाखर रही।
छाड़ि सिरीचंदु पाखर भागा जिउ 'लइ गएउ' पराइ।
राइ देखि बांठा 'कहु (कह)' तुम्हं 'किन जूझौ (झूझउ?)' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९४, बी० ३९०-३९२।

शीर्षक—मै० : ऐज़न कैफ़ियत जंग रनपति गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० रेवत। २. बी० महरि। ३. बी० यकतारी। ४. बी० जाइ बिवाहौ थैनि। (२) १. मै० तुरा (तूरा—नागरी)। २. बी० घसि जरे सिदूरा। (३) १. बी० रणमल। २. बी० सब। (४) १. बी० रणमल। २. बी० धावा। ३. बी० रैपति। (५) १. बी० सांगनि। २. बी० मारसि बेलुक। (६) १. बी० ले गया। (७) १. मै० में नहीं है, २. मै० कस झूझि न।

अर्थ—(१) [यह देख कर] महर ने रणपति को आगे बढ़ाया, जो चाहता था कि ब्याह कर [चांदा ?] कुमारी को ले जाए। (२) वह भेरी और तूर्य बजाकर चला, उसने खड्ग को मुट्ठी में कस कर पकड़ा [जैसे उसने हाथ में] सिन्दूर-पात्र लिया [हो]। (३) उसने दौड़ कर रणमल के सिर पर खड्ग का आघात किया और रक्त की धारा से उसके सब (कवच-वस्त्रादि) को सिन्दूर [-पूरित जैसा] कर दिया। (४) रणमल के गिरते ही श्रीचंद आया, तो रणपति ने [उसके] पाखर पर आघात कर उस गंजित किया। (५) [तब] अभयराज ने हाथ में सिंगिनी पकड़ी, और उससे उसने मारा (आघात किया), किन्तु उसकी बेलक पाखर में ही [लग कर] रह गई। (६) श्रीचंद पाखर को छोड़ कर भाग निकला और अपना जीव लेकर पलायित हो गया। (७) राजा [रूपचंद] ने यह देख कर बांठ से कहा, ["ऐ बांठ,] तुम क्यों नहीं जाकर युद्ध करते हो ?"

(१२७)

बीरपालु गिरपति 'लइ आवउं'। 'भुजबीर हमीर सींगन बुलावउं'।
करमदास 'सतराज' दिवानंद। 'बिजैसेन' महिराज बिजैचंद।
गनपति द्यौसू (दिवसू)' निकरू नागू। 'हिरदैं घबरू सरदेव जागू'।
देवराज 'हरराज' सरूपा। अजै सिंघु हरिपार 'निरूपा'।
'धीरधर' हरखू गनपति 'आनउं'। 'सीउराज मदनूं भल जानउं'।
तीस पखरिया 'आनउं' 'सभु' दरु 'मारउं' आजु।
'हाथि घोर' धन चांदा 'लीजइ' गोवर 'कीजइ' राजु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९५, बी० ३९३-३९५।

शीर्षक—मै० आमदने बांठा बा फ़ौज खुद दर मैदाने जंग।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै आऊ। २. बी० भीजर सुगनु हमीर बुलाऊ। (२) १. बी० दिवराज। २. बी० बिजय सेन। ३. मै० अउ महिराज। (३) १. मै० देसूं। २. बी० सहदे षरगू औ फुनि गाजू। (४) १. बी० महिराज। २. बी० नरूपा। (५) १. बी० धीरू। २. बी० आनू। ३. बी० स्योंराज मनू औवलू सुजानू। (६) १. बी० आने। २. बी० सबु। ३. बी० मारौं। (७) १. बी० हस्ती घर। २. बी० लीजै। ३. बी० कीजै।

अर्थ—(१) [बांठा ने कहा,] "मैं वीरपाल और गिरपति को ला रहा हूं, भुजवीर, हमीर तथा सींगन को बुला रहा हूं; (२) करमदास, सतराज, देवानंद, विजयसेन, महिराज, विजयचंद, (३) गनपति, निकरू, देवसेन, नागू, हिरदै, घबरू, सरदेव, जागू, (४) देवराज, हरराज़, सरूपा, अजयसिंह, हरपाल, निरूपा, (५) धीरधर, हरखू और गनपति को ला रहा हूं, मैं शिवराज और मदन को भी भली भांति जानता हूं। (६) [इन] तीस पाखरित योद्धाओं को लाऊंगा, और समस्त [शत्रु-] दल को मार गिराऊंगा। (७) हाथी, घोड़े, धन तथा चांदा को आप लीजिए और गोवर पर राज्य कीजिए।

(१२८)

अनीं पूरि बांठा 'लइ' आवा। 'महर दीख अउ' लोरु बुलावा।
लोरिक बीर पखरिया 'पारहु'। 'भींव' 'डांगवइ तइस' 'हुंकारहु'।
पांच 'बैस पांच' चौहानां। खत्री पांच देस 'चहुं' जानां।
नाउ एक तीनइं 'सहनांनी'। पाखर 'नेक' रूड 'की बानी'।
'गहरवारा अउ रोड दसाने'। पाखर 'कूंडि तुला सेउं जाने'।
अनीं आइ 'दुइ' 'ओनई' 'जैसें अखाड के' मेह।
'लोह पहिरि' 'सभ' ठाढे तिल 'इक' सूझ न देह॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९६, बी० ३९६-३९८।

शीर्षक—फ़िरिस्तादने महर लोरिक बा मुक़ाबले बांठा।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै। २. बी० महरि देषि। (२) १. बी० पारौहु। २. मै० भीय। ३. बी० डागव तीस (तइस—फ़ारसी)। ४. बी०

हकारहु । (३) १. बी० बैसि माझी । २. बी० बहु (चहुं—नागरी) । (४) १. मै० साहीने । २. बी० जैऔ । ३. मै० केकीने । (५) १. बी० अगरवार औरा दरसाई । २. बी० लूड (कूंडि—फ़ारसी) तुलाने आई । (६) १. बी० दोय । २. बी० उनई । ३. बी० जस उषारि (असाड़—फ़ारसी) गह । (७) १. बी० लो पर । २. मै० सब । ३. बी० यक ।

अर्थ—(१) सेना पूरी कर बांठा लाया है, महर ने यह देखा और लोरिक को बुलाया । (२) [उससे कहा,] "ऐ पाखरिया लोरिक वीर, तुम्हीं [हमें बचा] सकते हो; भीम ने डंगवै के लिए [जैसे हुंकार (गर्जना) की थी], वैसे ही तुम भी मेरे लिए हुंकार (गर्जना) कर उठो । (३) पांच बैस हैं, पांच चौहान हैं, और खत्री पांच हैं, यह चारों [ओर] जगत् जानता है । (४) नाम एक है, केवल साभिज्ञान (रूप-रंग आदि) तीन हैं, [जैसे] एक ही रूड (?) की वर्णिका के अनेक पाखर किए हुए हों । (५) गहरवार, रोड तथा दसाने पाखर, कूंडि और तुला के साथ तुम्हारे जाने हुए हैं । (६) दोनों सेनाएं आ कर अवनमित हो गई हैं, जैसे आषाढ़ के मेघ होते हैं । (७) [सैनिक] इस प्रकार लौह-मंडित खड़े हैं कि तिल भर भी [किसी का] शरीर नहीं दिखाई पड़ रहा है ।"

(१२९)

उभरे खरग 'कुंत तरवारी' । 'घरी एक लहि होइ रन मारी' ।
'टूटहिं' रुंड मुंड धर 'परहीं' । जिय 'कर' लोभु न चित महि 'धरहीं' ।
'खरग' 'डंडाहर बाजहिं' तारा । 'भई' फाग दर 'भा' रतनारा ।
'जस फागुन' 'फूलहिं बन' टेसू । 'तस रन रगत' 'रात भए भेसू' ।
बाजहिं भेरि 'सींग अउ' तूरा । दर भा चाचर रगत सिंदूरा ।
'परे पखरिया चहुं दिसि' कंठ राज सरु लाग ।
महर बीर कछु उबरे बांठा जिउ 'लइ' भाग ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९७, बी० ३९९-४०१ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते जंग करदने बांठा बा लोरिक व हजीमते खुरदने ऊ ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कंठ (कुंत—फ़ारसी) तरवारि । २. बी० खतरी येकि कुरैहि रिन मारि । (२) १. बी० टूटेहि । २. बी० परैहि । ३. बी० का । ४. बी० धरैहि । (३) १. मै० खरल । २. बी० डंडाहर बाजैहि । ३. बी० भये । ४. मै० रन । (४) १. बी० जैसे बसंत । २. बी० बन फूलैह । ३. बी० तैसे रिनगर । ४. बी० रावैं भैसू । (५) १. बी० संख अव । (६) १. बी० दोइ दर जूझत रावतह । (७) १. बी० लै ।

अर्थ—(१) खड्ग, कुंत (बर्छे) और तलवारें उभड़ (उठ) पड़े और एक घड़ी तक रण-क्षेत्र में मार होती रही । (२) रुंड (धड़) टूटने तथा मुंड धरा पर गिरने लगे, [सैनिक] जीव का मोह चित्त में नहीं रख रहे थे । (३) खड्गों के भारी दंड तथा ताल बज रहे थे, [दोनों] दलों में फाग [सी] हुई थी और रण [-क्षेत्र] लाल हो रहा था । (४) जैसे फाल्गुन में वन में किंशुक फूलते हैं, वैसे ही रण [-क्षेत्र] में [योद्धाओं के] वेष रक्त से लाल हो रहे थे । (५) भेरियां, सिंगे और तूर्य बज रहे थे, दोनों दलों में [जैसे] चाचर हुई थी और वे रक्त से सिन्दूरित हो रहे थे । (६) पाखरे हुए सैनिक चारों ओर पड़े हुए थे [जब] राजा [रूपचंद] के कंठ में [लोरिक का ?] शर लगा । (७) महर के ही कुछ वीर बच रहे थे, और बांठा जीव लेकर रण-क्षेत्र से भाग गया था ।

(१३०)

'राइ' कहा बांठा कस 'कीजइ' । सभ दरु चांपि नगर 'किन' लीजइ ।
'जउ तहं राइ आपुन पंछवाइय' । चांद 'सईहि झूझेहि' बिन 'पाइय' ।
'भर लइ खांड आए तस ज़ोरी । देखहिं देव तैंतिसउ कोरी' ।
'पैकहिं पैकहिं भएउ' अभेरा । चला भाजि राजा' कर 'खेरा' ।
'चांदा कारन झूझ बनि आई (आवा)' । रावतहं रगत 'भएउ पैरावा' ।
'लेइ' पखरिया 'राजा' 'सिमटा' 'सुनहु बांठ' कस कीज ।
'कइ चांदा लइ' 'जाइय राजा' 'कै(कइ) गोवरि' 'सिरु' दीज ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ९८, बी० ४०२-४०४ ।

शीर्षक—मै० : मशावरत करदने राव रूपचंद बा बांठा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० राय । २. बी० कीजै । ३. बी० कौ । (२) १. बी० जै न राय आपुन मंडि आये । २. बी० कमी तु जूझ । ३. बी० पाये । (३) १. बी० में पंक्ति छूटी हुई है । (४) १. बी० बीखन बीखन (पैकहिं पैकहिं—फ़ारसी) भयो । २. बी० गढ़ु केरा । (५) १. बी० अरथाह जैति लई चलि आवा । २. बी० भयो परावा । (६) १. मै० लेइ जउ । २. मै० में नहीं है । ३. बी० समटौ । ४. बी० सुनु बाठा । (७) १. बी० कै रु चांद लै । २. बी० जाइये । ३. मै० कै गोवरां । ४. मै० जिउ ।

अर्थ—(१) राजा [रूपचंद] ने कहा, "बांठा [अब] कैसे किया जाए। [एकौझा युद्ध त्याग कर और] समस्त सेना को [युद्ध में] धकेल कर नगर को क्यों न ले लिया जाए?" (२) [बांठा ने कहा,] "यदि हे राजा, आप [अपने को सेना के] पीछे रखिए, तो आप चांदा को अपने-आप बिना युद्ध किए पा जाइएगा।" (३) भट खड्ग लेकर इस प्रकार जुड़ आए कि तैंतीसौं कोटि देवता [उन्हें] देखने लगे। (४) पायक (पदाति) से पायक (पदाति) की भिडंत हुई और राजा [रूपचंद] का खेड़ा (दल) भाग चला। (५) [राजा ने कहा,] "चांदा के लिए ऐसा युद्ध बन आया है कि वहाँ पर रावतों के रक्त का तैराव हो गया है। (६) जो पाखरित योद्धा थे, वे जीव (प्राण) लेकर सिमट आए हैं; हे बांठ, [अब] कैसे किया जाए?" (७) [बांठ ने उत्तर दिया,] "अब, ऐ राजा, या तो चांदा को ले जाइएगा और या तो गोबर में प्राण दीजिएगा।"

(१३१)

राइ पखरिया 'सौ' मोहि देहू। औ सै तीनि चारि तुम्हं लेहू।
'लइ अभिरउं हउं राउत' जहां। 'पाछें मोरि न छाडहुं तहां।
चला महरु 'गहें रई' मथानी। 'बांठइं पटुवइं तोहि केइं' आनी।
दरु 'लइ' बांठा तेहिं 'भुइं गएऊ'। जहां 'अभेरु' महर 'सेउं अहेऊ'।
दूध पियावत 'भरहिं' न कोई। 'अस कैं' मंथे 'गाल कित' होई।
परे पखरिया 'नौ दस' बहुल पाइं होइ भाग।
महर सनाहु टूटिगा 'अउ(उं)छि' खांड धर लाग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ९९, बी० ४०५-४०७।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन बांठा बर राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० सो। (२) १. बी० उभरौ हौं रावत। २. बी० पाछौ। भोर न छाडौं। (३) १. बी० कै परी। २. बीं० बाठै नबी कौन कौंहु (४) १. बी० लै। २. बी० तहा भी गयो। ३. बी० अभीरु (अभेरु—फ़ारसी)। ४. बी० स्यौं भयो। (५) १. बी० बहु। २. बी० अति कै मथै। ३. बी० काकतू। (६) १. बी० नव दसैं। (७) १. बी० वोछ।

अर्थ—[बांठ ने कहा,] "हे राजा, मुझे सौ पाखरित योद्धा दो, और तीन-चार सौ तुम [साथ रख] लो; (२) उन्हें लेकर मैं वहाँ भिड़ रहा हूँ जहाँ पर [शत्रु-पक्ष के] रावत हैं, उन्हें मैं पीछे मोड़ कर भी छोड़ूँगा नहीं।"

(३) [तदनंतरं बांठा ने महर के पास पहुँच कर कहा,] "ऐ महर, तू [भी] रई-मथानी लेकर चल पड़ा है!" [उसने उत्तर दिया,] "ऐ बांठ बुनकर, तुझे कौन [नासमझ] ले आया?" (४) दल लेकर [तदनंतर] बांठ उस भूमि में गया जहाँ महर से भिड़ंत [होनी] थी। (५) उसने [महर से] कहा, "भटों को कोई दूध नहीं पिलाता है; इस प्रकार के मथने से कहाँ तक बात होगी (बनेगी)?" (६) नौ-दस पाखरित योद्धा वहाँ धराशायी हुए, और बहुतेरे पैदल हो कर भाग निकले। (७) महर का सन्नाह टूट गया [जब बांठ ने प्रहार किया], किन्तु [बांठ की] तलवार सिमट कर धरा से जा लगी।

(१३२)

पलटा लोरु 'सिंघ' 'जस' गाजा। 'पहिल खांड राजा' सिरि बाजा।
खरग 'तारि लोरिक कइ बाजी'। पाखर काटि राउ 'गा भाजी'।
बिजली अनी 'धरेसि' महिराजू। 'मारेसि' सिरीचंद अउ 'भुइंराजू'।
बीरराज 'मारेसि ऊभरी'। बजर आगि 'खांडइं' परजरी।
मारि सींगनि 'नइ' रगत बहाई। खरग झार 'लोहुइं' न बुझाई।
'आगे' देइ 'लिहेसि' दरु आपनु हाकि चलाए 'तस टांड'।
'लौटा' बांठु लोर 'सों [सोउ?]' 'उभारेसि' खांड॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १००, बी० ४०८-४१०।

शीर्षक—मैं० : जंग करदने लोरिक बा राव व हज़ीमत खुरदने राव।

पाठान्तर—(१) १. मैं० सिंग। २. बी० कैसैं। ३. बी० पहली षांड राउ। (२) १. बी० तार लोरिक के बाजे (तारि लोरिक कैं बाजी—फ़ा०)। २. बी० गया भाजे (भाजी—फ़ा०)। (३) १. बी० धरसि। २. बी० मरि। ३. बी० भौराजू। (४) १. बी० मारसि औ फरी। २. बी० षां। (५) १. बी० नैं। २. बी० लोहू। (६) १. बी० आगैं। २. बी० लहसि। ३. बी० जैसैं डांड। (७) १. बी० लवटा। २. बी० सोन, मैं० में शब्द नहीं है। ३. बी० उभारसि।

अर्थ—(१) [तब तक] लोरिक लौट पड़ा और उसने सिंह के समान गर्जन किया और राजा [रूपचंद] के सिर पर [उसका] पहला खड्ग बजा। (२) लोरिक का तीक्ष्ण खड्ग जब इस प्रकार बजा, उसने [रूपचंद] का पाखर काट दिया और राजा भाग गया। (३) [राजा की] सेना विचलित हो गई, [तब] उसने महाराज को पकड़ा और श्रीचद तथा भुइंराज को

मारा। (४) [पुनः जब] उसने उभड़ कर वीरराज को मारा, खड्ग से वज्र (फौलाद) की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। (५) उसने सिंगिनी मार-मार (चला-चला) कर रक्त की नदी बहा दी; [उसके] खड्ग की ज्वाला लहू से नहीं बुझ रही थी। (६) आगे करने के लिए उसने अपने दल को लिया और उसे टांडे (सार्थ) के समान हांक कर [युद्ध के लिए] चलाया। (७) [यह देख कर] बांठा लौट पड़ा और लोर से [लड़ने के लिए] उसने भी खांडा उठा लिया।

(१३३)

'उभरा' बांठु 'लोरिक तस' मारा। 'राघव सुर नर दिए' उबारा।
दूसर खांड 'जउ बइठ' 'सनाहां'। 'पहुंचिउ टूटि उतरि' गई बाहां।
उठा लोर सींगिनि कर गही। 'मारेसि' 'बेलक' पाखर रही।
'अभिरे' बीर 'दुवउ' बरिवंडा। 'अगिनि बरी' बरु बाजत खंडा।
'करह संजोइ' बांठु खिसि परा। हिएं पाउ 'दइ' लोरिक धरा।
'धरेसि तारि' तरवारि कंठ 'महि' काटि चला 'लइ' मुंड।
भाजि चला 'दर' राउ रूपचंदु देखि परा धर 'रुंड'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०१, बी० ४११-४१३।

शीर्षक—मैं० : उफ़्तादने बांठा दर मैदान व हज़ीमत ख़ुरदने राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. मैं० उभर। २. बी० लोरु तसैं। ३. बी० परा घोर नरु दई। (२) १. बी० जौ बैंठ। २. बी० बहजू टूटि उबरि। (३) १. बी० मारसि। २. बी० बेलुक (४) १. बी० उभरे। २. बी० दोऊ। ३. बी० आगि परी। (५) १. बी० करि संजोउ। २. बी० लोरिक दे। (६) १. बी० देहिसि ता। २. मैं० हति। ३. बी० ये। (७) १. बी० तव। २. बी० मुंड (प्रथम चरण में भी तुक यही है)।

अर्थ—(१) जैसे ही बांठ उभड़ा (उठा), लोरिक ने उसे वैसे ही मार दिया, मानो राघव ने [रावण को मार कर] सुर-नर को उससे बचाया हो (त्राण दिया हो)। (२) उसका दूसरा खड्ग जब [उसके] सन्नाह पर बैठा, उसकी पहुँची टूट गई और उसकी [एक] बाँह उतर गई (जाती रही)। (३) लोरिक उठा और उसने हाथ में सिंगिनी पकड़ी; किन्तु उसने जो बेलक मारी, वह उसके पार में ही रह गई। (४) दोनों बलवान् वीर परस्पर भिड़ गए और [दोनों के] खड्गों के बजने से आग जल उठी। (५) [इस

प्रकार] युद्ध का संयोजन कर बांठ गिर पड़ा तो उसके हृदय पर पैर रखकर लोरिक ने उसे धर दबाया। (६) उसने तीक्ष्ण तलवार उसके कंठ में (पर) रक्खी और उसका मुंड काट कर वह ले चला। (७) राजा रूपचंद का दल भाग निकला जब उसने धरा पर [बांठ का] रुंड (धड़) पड़ा हुआ देखा।

(१३४)

लोरिक कहा जान जिनि 'पावहिं'। 'तस मारउं जस बहुरि न आवहिं'।
मारियंहि पाइक 'लीजहिं' फरी। रावतहं रगत पूरि नइ भरी।
मारि महावत हाथी धरे। 'धरियहिं' ठाढ घोर पाखरे।
बहुतें बीर जियत धरि आनें। बहुते 'जिउ लइ' निसरि पराने।
मारत खरग मूंठि 'असि' लागी। परी सांझ राजा 'गा' भागी।
'मरेहिं' न 'सूझइ' धरती रगत 'भएउ' पैराउ।
चला गंवाइ राउ दरु 'आपनु' बहुरि न 'आवइ' काउ॥

सन्दर्भ—मैं० १०२, बी० ४१४-४१६।

शीर्षक—मैं : दुम्बाल करदने लोरिक अज़ लश्करे राव रूपचंद।

पाठान्तर—(१) १. बी० पावसि। २. बी० तैसैं मरौहु जैसैं बहुरि न आयसि। (२) १. बी० लीजैहि। (३) १. बी० धरियेहि। (४) १. बी० जिय ले। (५) १. बी० कैं। २. बी० गया। (६) १. बी० महरि। २. बी० सूझै। ३. बी० भयो। (७) १. बी० आपुनु। २. बी० आवै।

अर्थ—(१) लोरिक ने कहा, "ये जाने न पाएँ, मैं इन्हें ऐसा मारूंगा कि ये पुनः न आएंगे।" (२) [विपक्ष के योद्धाओं को महर-पक्ष के] पदाति फरी लेकर मारने लगे, तो रावतों के रक्त से पूरित हो कर नदी भर गई। (३) उन्होंने महावतों को मार कर हाथियों को पकड़ लिया और पाखरित घोड़ों को खड़े हुए पकड़ लिया। (४) बहुत से वीरों को वे जीवित ही पकड़ लाए, [किन्तु] बहुतेरे प्राण लेकर भाग निकले। (५) खड्ग मारते समय [लोरिक की] तलवार [राजा की] मूँठ पर लगी क्योंकि संध्या आ पड़ी थी [और इसलिए सूझ कम रहा था], राजा रूपचंद भाग निकला। (६) मृतों से [ढकने के कारण] धरती नहीं सूझ रही थी और रक्त [इतना इकट्ठा हो गया था कि उस] में तैराव हो गया था। (७) राजा [रूपचंद] अपना दल [इस प्रकार] गंवा चला, [और उसने सोच लिया कि] वह पुनः कभी न आता।

९. चांदा-लोर प्रथम दर्शन खण्ड

(१३५)

'रनु' 'जिनि' 'गोवर' महरु सिधारा । लोरिकु खत्री बीरु हंकारा ।
'दइ कइ' पान महर 'गियं' लावा । 'अउ' गज मैंमति आनि 'चढ़ावा' ।
'चंवर धारि' 'दुइ चंवर डुलावहिं' । 'अउ राउत आगें भए' आवहिं ।
'ऊपरि राति पिछउरी' तानी । 'चढ़ी (ढ़ि)' धौराहरि 'देखहिं' रानी ।
चलि गोवरु 'सभु' 'देखइ' आवा । 'रन' लोरिक 'खांडइं' जसु पावा ।
मुनिवर देहिं 'असीसा' 'गोवर होइ' बधाउ ।
धनु 'धनु' बीर 'भुवाह' बर पूजा लोगु 'चढ़ाउ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०३, बी० ४१७-४१९ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ गश्तन महर बा फ़तह व नवाख्तने लोरिक राव बर फ़ील सवार करदन व दीदने खल्क़हा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० रिनु । २. मै० जीति । ३. बी० गोवरु । (२) १. बी० दे कें । २. बी० गैं (गियं—फ़ा०) ३. बी० औ । ४. बी० चरावा । (३) १. बी० चौर ढार । २. बी० दोइ चौर ढुरावहि । ३. बी० औ रावत सभि आगैं । (४) १. बी० उपर रात पछौरी । २. बी० चरि । ३. मै० देखइ । (५) १. मै० सब । २. बी० देषन । ३. बी० रिन । ४. बी० षांडैं । (६) १. बी० असीस । २. बी० गोवर होउ, मै० गोवरां होइ । (७) १. बी० धन । २. मै० भुवा । ३. बी० चराउ ।

अर्थ—(१) युद्ध जीतकर महर गोवर गया, और क्षत्रिय (योद्धा) वीर लोरिक को उसने बुलाया । (२) पान देकर उसे महर ने गले लगाया, और मदमत्त गज लाकर [उस पर] चढ़ाया । (३) दो चामर-धारी चामर डुला रहे थे, और रावत आगे-आगे [चलते] हुए आ रहे थे । (४) ऊपर लाल चादर (चांदनी) तनी हुई थी । रानियाँ धवल-गृहों (प्रासादों) पर चढ़ी हुई [उसे] देख रही थीं । (५) गोवर का समस्त जन-समुदाय चल कर उसे देखने आया था, [क्योंकि] रण में लोरिक के खांडे ने यश प्राप्त किया था । (३) मुनिवर आशीर्वाद दे रहे थे और गोवर में बधावा हो रहा था । (७) "लोरिक वीर की भुजाओं का बल धन्य है, धन्य है," कह कर लोग उन पर पूजा (चढ़ावा) चढ़ा रहे थे ।

(१३६)

चांद 'धौराहर ऊपरि' गई । चेरि बिरसपति 'गोहनि' लई ।
परी सांझ जगि भा अंधियारा । चांद मंदिर 'चढ़ि किय' उजियारा ।
सो कस आहि 'जेइं' गोवरु उबारा । 'कवनु बीरु जेंहि कटकु 'संघारा' ।
'कवनु सिंघु जेंहि' गैंवरु हनां । धनु 'सो जननि अइस जेइं' जनां ।
'पूछे(छ)उं' धाइ बचनु सुनि मोरा । एहिं दरि 'कवनु सो' कूंकूं लोरा ।
'कवनु' रूपु 'कहं' मंदिर 'आछै (छइ)' 'आखउं' बिरसपति तोहि ।
'साधि मरति हउं बीरनि' लोरु 'दिखावहि' मोहि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १०४, बी० ४२०-४२२ ।

शीर्षक—मै० : आमदने चांदा बर बालाए क़स्र व दीदन तमाशा लोरिक व बुरदने बिरस्पति रा बा खुद ।

बी० में हाशिए में किसी अन्य हाथ का लिखा हुआ है : चांदा लेरीक दीठ·····(अपाठ्य) ।

पाठान्तर—(१) बी० धौरहर उपर । २. बी० गौहनि । (२) १. बी० चिर कैं । (३) १. बी० जु । २. बी० कौनु बीरु जैं । ३. बी० फु (?) संघारा । (४) १. बी० कौनु सिंघु जैं । २. बी० सु जननी जिनि वोहु । (५) १. बी० पूछै । २. बी० कौनु सु । (६) १. बी० कौनु । २. बी० किह । ३. मै० में नहीं है । ४. बी० कहौ । (७) १. बी० साध मरत हौ बैरनि (बीरनि—फ़ा०) । २. बी० दिखावहु ।

अर्थ—(१) चांदा [इस समय] धवल-गृह (प्रासाद) के ऊपर गई; साथ में उसने बृहस्पति [नाम की] दासी को ले लिया । (२) संध्या हुई और जगत् में अंधेरा हुआ, उस समय चांद (चांदा) ने उस मंदिर पर चढ़कर प्रकाश किया । (३) [बृहस्पति से उसने कहा,] "वह कैसा है जिसने गोवर को बचाया है और वह कौन-सा वीर है जिसने [शत्रु के] कटक का संहार किया है ? (४) वह कौन-सा [पुरुष-] सिंह है जिसने उस गजेन्द्र को मारा है ? वह जननी धन्य है जिसने ऐसा [पुरुष-सिंह] उत्पन्न किया है । (५) ऐ धाय, मेरी बात सुन, मैं [एक बात] पूछ रही हूं; इस दल में कूंकूं (कुंकुम) लोरिक कौन है ? (६) वह किस रूप का है और कहां उसका मंदिर (भवन) है ? तुझसे, ऐ बृहस्पति, मैं यह कह (पूछ) रही हूं । (७) मैं लोरिक की साध में, ऐ बहिन, मर रही हूं; तू मुझे लोरिक को दिखा !"

(१३७)

'लोरहि' चांद 'सुरुज' कइ जोती। कुंडल सोवन 'दिपहिं' गजमोती।
'चंद्रु' 'लिलार' धरा 'जनु' लाई। चमंक 'बतीसी' अतिइ सोहाई।
'खोंपा' केस 'पीठि' 'लहराए'। लंक 'झीनि' 'हरि गही न जाए'।
नैन कचोरा 'दूधइं' भरे। जनु 'छपया तिन्ह' भीतरि 'धरे'।
कनक बरन झरकति 'हइ' देहा। मदन मुरति उडि 'लागि न' खेहा।
तानी 'राति पिछउरी' हस्ति 'चढा' दिखराउ।
करि सिर 'पाग' 'सलोनी' 'तिरिछ कटार सोहाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०५, का०, बी० ४२३-४२५।

शीर्षक—मैं० : निशानी नमूदने बिरस्पति चांदा रा अज़ जमाल सूरते लोरिक।

का० : नमूदने बिरस्पति लोरिक रा बा चांद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिक। २. बी० सुरिज। ३. बी० दिपति। (२) १. बी० चंदु। २. का० लिलाट। ३. बी० जानौ। ४. का० बतीसिउ। (३) १. बी० खूंप। २. मैं० लटकि। ३. बी० करि आये। ४. बी० झीन। ५. मैं० कौनउ पचि माए, बी० हरि कहे (गही—फ़ा०) न जाये। (४) १. का० रूपइं, बी० मोत्योंहु। २. मैं० छतया तिन्ह, बी० सींप दोइ। ३. मैं० परे। (५) १. बी० है। २. बी० लागैं। (६) १. बी० रात पिछौरी। २. बी० चरा। (७) १. मैं० मांग। २. बी० सलूनी। ३. बी० करेहि कटार सुहाव।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ चांदा, लोरिक की ज्योति सूर्य की है। [उसके कानों में] जो स्वर्ण-कुंडल हैं, उनमें गजमुक्ता चमकते हैं। (२) [उसके] ललाट पर मानो चंद्रमा लगा कर रक्खा हुआ है, और [उसकी] बत्तीसी (दंत-पंक्ति) भी चमक कर अत्यधिक शोभित होती है। (३) उसके खोंपे के केश पीठ पर लहराते रहते हैं, केसरी के सदृश उसकी कटि क्षीण है, जो पकड़ी नहीं जा सकती है। (४) उसके नेत्र दूध से भरे कच्चोलों के सदृश हैं, [जिनमें उसकी कनीनिकाएं ऐसी हैं] मानो उनके भीतर षट्पद (भ्रमर) रक्खे हुए हों। (५) [उसका] कंचन वर्ण का शरीर झलक रहा है, उसकी मदन मूर्ति को धूल उड़ कर नहीं लगी है। (६) [उसके आसन के ऊपर] लाल पिछौरी (चांदनी) तनी हुई है, और वह हाथी पर

चढ़ा हुआ दिखाई पड़ रहा है। (७) वह सिर पर सलोनी पाग करता है और उसकी तिर्यक् कटार शोभा दे रही है।

(१३८)

'चांदहि' लोरिकु निरखि निहारा। देखि बिमोही गई 'बेकरारा'।
नैन झुरहिं मुखु गा कुंबिलाई। अन न 'रूच' 'पानी न' सुहाई।
सुरिज सनेह चांद 'कुंबिलानी'। 'आइ बिरसपति छिरका' पानी।
घरु आंगनु सुखसेज न 'भावइ'। चांद उमाही सुरिजु 'बोलावइ'।
'पूनिउं चंद्र जइस' मुखु अहा। गई 'सो' जोति गहन 'होइ' रहा।
सहस करां 'सूरिज कइ' रही चांद 'चित' छाइ।
'सोरह' करां चांद 'कइ' 'भई अमावसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०६, बी० ४२६-४२८।

का० के प्राप्त अंशों में यह कडवक नहीं है किन्तु पिछले छंद के नीचे उसमें इस छंद का तर्क 'चांदइं' दिया हुआ है।

शीर्षक—मैं० : दीदने चांदा जमाल व कमाल लोरिक व बेहोश शुदने ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदेहि। २. बी० बिकारा। (२) १. बी० रूचै। २. मैं० अउ पानि। (३) १. मैं० कुंमिलानी। २. बी० बदनु चेरि छिरकहि लै पानी। (४) १. बी० भावै। २. बी० बुलावै। (५) १. बी० पून्यो चंद जैस। २. बी० स। ३. बी० खीन होय। (६) १. बी० सूरज की। २. बी० चितु। (७) १. बी० सोराह। २. बी० की। ३. बी० रही अमावस।

अर्थ—(१) चांदा ने लोरिक को निरीक्षण करके देखा, तो उसको देख कर वह विमुग्ध हो गई और बेचैन [हो] गई। (२) उसके नेत्र संतप्त हो रहे थे, उसका मुख कुंमला गया था, उसे अन्न नहीं रुच रहा था और [न] पानी अच्छा लग रहा था। (३) सूर्य (लोरिक) के स्नेह में चांद (चांदा) कुंमला गई; बृहस्पति ने [उसकी ऐसी दशा देखी तो] आ कर [उस पर] पानी छिड़का। (४) घर, आंगन तथा सुख-शैया उसे नहीं भा रहे थे, उमंग में आई हुई (अचेत) चांद (चांदा) सूर्य (लोरिक) को बुला रही थी। (५) उसका पूनों के चन्द्र जैसा मुख था, [किन्तु इस समय] उसकी वह ज्योति चली गई थी, और उसे ग्रहण [जैसा] हो रहा था। (६) सूर्य (लोरिक) की सहस्र कलाएं चांद (चांदा) के चित्त पर छा गई थीं, (७) [इसलिए]

चांद (चांदा) की षोडस कलाएं जा कर (परिवर्तित होकर) अमावास्या की हो गई थीं।

(१३९)

'कहइ' बिरस्पति चांद संभारू। सुरिज लागि कस करसि 'खभारू'।
हाथ 'पाउ' 'संभरसि' न बारी। 'बांधि केस ओढि लइ' सारी।
'जउ' तोहि लागि सुरिज 'कै' झारा। 'कइ खंडवानि पियांवउं' बारा।
राज कुंवरि तूं कानि न करई। 'हउं सो धाइ' 'मोरि' लाज न 'धरई'।
'आनउं पानि बइसि' मुख 'धोवहि'। 'उल्हरि' सेज सुख निंद्रा 'सोवहि'।

'जो' चिति 'हइ' तुम्हं मनसा भोर 'कहउ' सो मोहि।
'रइनि जाइ दिन उगवइ' 'उतर देब' मइं तोहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०७, बी० ४२९-४३१।

शीर्षक—मैं० तफ़हीम करदने बिरस्पति चांदा रा कि होशियार बाश।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहै। २. मैं० खभा। (२) १. बी० पाव। २. मैं० समरसि। ३. बी० बाधिक कटि समिलै उठि। (३) १. बी० जौ। २. की। ३. बी० कै षडवानि पिलाऊं। (४) १. बी० हौं धाई। २. बी० मोरी। ३. बी० धरसी। (५) १. बी० आनौ पांनी बैसि। २. बी० धोवहु। ३. बी० उलरि। ४. बी० सोवहु। (६) १. बी० जै। २. बी० है। ३. बी० कहौ। (७) १. बी० रैनि जाइ रबि उवत। २. बी० चांद दीब (देब—फ़ा०)।

अर्थ—(१) बृहस्पति कह रही थी, "ऐ चांद (चांदा), तू [अपने को] संभाल; सूर्य (लोरिक) के लिए तू क्या (क्यों) खंभार (अशांति, बेचैनी) कर रही है? (२) हाथों और पैरों को तू, ऐ बालिका, नहीं संभाल रही है, केशों को बांध और साड़ी लेकर ओढ़। (३) यदि तुझे सूर्य की झार (ज्वाला) लग गई है, तो मैं, हे बाला, खंडवानी करके तुझे पिलाऊं। (४) ऐ राज-कुमारी, तू कानि (लज्जा) न कर; मैं तो [तेरी] धाय हूं; मेरी लाज न धर। (५) मैं पानी ला रही हूं, तू बैठ कर मुख धो, और शैया पर लेट कर ऐ सुंदरी, तू सुख की निद्रा सो। (६) तैंने चित्त में जो कुछ चाहा है, तू यदि मुझ से सवेरे कहेगी, (७) तो रात्रि [व्यतीत हो] जाएगी और दिन उग आएगा [तब] मैं [दौड़-धूप करके] तुझे उत्तर दूंगी।

(१४०)

गई 'सो' खेलि 'रइनि' अंधियारी। उठा 'सुरिजु' जगि किरनि पसारी।
दिन 'गएं' घरीं बिरसपति आई। चांद करां 'बिनु' जाइ 'जगाई'।
कहु 'सो' बात जिहि तूं 'असि' भई। काहि लागि भरि 'आंकुर' गई।
चांद बिरसपति कैं पां परी। काल्हि सुरिजु 'देखिउं एक' घरी।
'कइ ओहि मोरें घरें बोलावहि'। 'कइ' मोहि 'लइ ओकें डंड लावहि'।

चांद 'कंत सइं देखिय' सुरिजु मंदिर 'जहि' आउ।
'करहि महर सेउं बिनती' गोवरु 'नौति जेंवाउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०८, बी० ४३२-४३५—आने वाले कडवक की प्रथम दो पंक्तियों के इस कडवक में भी भूल से आ जाने के कारण एक संख्या बढ़ गई है।

शीर्षक—मैं० : पंद दादन बिरस्पति चांदा रा अज़ आमदन लोरिक दर खानः।

पाठान्तर—(१) १. बी० सु। २. बी० रैनि। ३. बी० सूर। (२) १. बी० की (गए—फ़ा०)। २. मैं० में नहीं है। ३. बी० उचाई। (३) १. बी० सु। २. बी० अस। ३. बी० आकुरि। (४) १. बी० देष्यैं इक। (५) १. बी० कै वोहु मेरे घरहि बुलावोहु। २. बी० कै। ३. बी० लै ओहि डीलि लगावोहु। (६) १. बी० गिनत (कंत—फ़ा०), मैं० (सइं—फ़ा०) देषा। २. बी० जिहि। (७) १. बी० कहौ महर स्यों बीनती। २. बी० न्यौति जिमाउ।

अर्थ—(१) वह अंधेरी रात खेल कर चली गई, सूर्य उठा और उसने जगत् में [अपनी] किरणें प्रसारित कीं। (२) एक घड़ी दिन जाने पर बृहस्पति आई और उसने उस कला-विहीन चंद्र (चांदा) को जगाया। (३) [उसने कहा,] "वह बात तू बता जिससे तू ऐसी हो गई है। किसके लिए तू अंकुर (रोमांच) से भर गई है?" (४) चांदा बृहस्पति के पैरों में गिर पड़ी [और उसने कहा,] "कल मैंने सूर्य (लोरिक) को एक घड़ी भर [ही] देखा है। (५) या तो उसे मेरे घर पर बुलाओ, और या तो मुझे ले [चल] कर उसके दण्ड (मार्ग) पर लगा दो।" (६) [बृहस्पति ने कहा] "ऐ चांदा, [अपने] कान्त को तब तुम स्वयं देखोगी जब वह सूर्य (लोरिक) [तुम्हारे] मंदिर (भवन) में आएगा। (७) किन्तु [इसके लिए] महर से तुम विनती

करो कि वह गोवर [के जन-समुदाय] को नियन्त्रण देकर जिमाए (भोजन कराए)।"

(१४१)

बिरसपति बचन चांद चित धरा। 'हियंउर पूरि' खांड 'घिउ' भरा।
सुनतइं बचनु 'महर' पहिं गई। जाइ 'ठाढ़ि आगें' होइ भई।
एक ईछ ईछीं 'मइं' पिता। 'तउ तुम्ह' राउ रूपचंदु जिता।
देवहिं 'पूजा फूलु चढाएउं'। 'पायं' लागि कर जोरि 'मनाएउं'।
पिता मोरु 'जउ रन जीति आइहि'। 'देस लोकु सभु नौति जेंवाइहि'।
'पुरवहु' बाच जो 'कीन्हेउं' 'अरघ' होइ 'सो' नारि।
'राइ' 'रूपचंदु' 'रन' जीति 'आएहु' कटकु संघारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १०६, बी० ४३६-४३८।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तने चांदा बर महर व अरज़ दाश्तन महमानिए खलक़ करदन।

पाठान्तर—बी० में इस कडवक की प्रथभ दो पंक्तियां पिछले कडवक के दोहे के पूर्व भी आई हुई हैं। (१) १. बी० हैवर पुरषु। २. बी० घीव। (२) १. बी० पिता। २. बी० ठाढ आगै। (३) १. बी० मैं०। २. बी० तौ तैं। (४) १. बी० पूज्यैं फूरु चरांयौं। २. बी० पाइ। ३. बी० मनायों। (५) १. बी० रिनु जीतैं आवै। २. बी० देव लोगु सबु न्योंति जिमावै। (६) १. बी० पुरवोहु। २. बी० कीन्ही। ३. बी० अरकहु (अरघो—फ़ा०)। ४. बी० सु। (७) १. बी० राव। २. मैं० खरग। ३. बी० में नहीं है। ४. बी० आयो।

अर्थ—(१) बृहस्पति के [इस] वचन को चांदा ने चित्त में धारण किया, और अपने हृदय (उर) को उसने [इस मधुर परामर्श के] खांड तथा घी से भरपूर भरा। (२) [बृहस्पति का] वचन सुनते ही चांदा महर के पास गई, और [उसके] आगे (सामने) जाकर खड़ी हो रही। (३) [उसने कहा,] "हे पिता, मैंने एक इच्छा इच्छी (मानी) थी, तब तुमने राव रूपचंद को जीता है। (४) देवता पर मैंने पूजा का फूल चढ़ाया था, और [उसके] पैरों से लग कर तथा [उससे] हाथ जोड़ कर मनाया था कि (५) 'मेरा पिता जब रण जीत कर आएगा, वह समस्त देश तथा लोक (जन-समुदाय) को न्योता देकर जिमाएगा (भोजन कराएगा)।' (६) [अब] वह वाच (संकल्प), जो मैंने किया था, पूरा करो; नारी का वह अर्घ्य (पूजा का आयोजन) पूरा होना

चाहिए, (७) [क्योंकि,] ऐ राजा, तुम खड्ग से रण जीत कर और [शत्रु के] कटक का संहार कर आ गए हो।"

(१४२)

चांद वचन 'हउं कहवां बांवउं'। 'सब गोवरु अउ देस जिंवावउं'।
'महरइं नाउंन्ह कहा बोलाई'। घर घर गोवरु 'नौतहु' जाई।
'कालिह' महर 'घरइं' 'हइ' 'जेंवनारा'। बार 'बूढ' सब झारि हंकारा।
सुनि 'कइ' नाऊ दहां 'दिसि गए'। 'तइतीसउ बार(न)सब नौता लिए'।
खूंट खूंट सभ 'नौता' झारी। 'अंथवा' सुरिजु परी अंधियारी।
पारधि 'पठए अहेरइं' 'अउ' बारी पनवारि।
'पछिली राति आए फिरि नाऊ सहदेव महर' 'दुवारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११०, बी० ४३६-४४१।

शीर्षक—मैं० : क़ुबूल करदन महर सुखुने चांदा व इश्तअंदाद दादने हुमः खल्क़ रा।

बी० में बाएं हाशिए में अन्य व्यक्ति द्वारा संकेत दिया गया है : जै (ज्यौ ?) नार।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ कांहौ पाऊ। २. बी० का गोवरु सबु न्योंति जिमांऊ। (२) १. बी० महरे नावा कहा बुलाई। २. बी० न्योंतौ। (३) १. बी० कालि। २. बी० कैं। मैं० में नहीं है। ४. बी० जिवनारा। ५. मैं० बूड। (४) १. बी० कैं। २. बी० दिस गयो। ३. बी० छतीसौ बरन न्यौंतिवै लये। (५) १. बी० न्योंते। २. बी० अथव। (६) १. बी० बैठि अहेरिया। २. बी० औ। (७) १. बी० पिछली ओ नाऊ आयियोहु महरि। २. मैं० में नहीं है।

अर्थ—(१) [महर ने कहा,] "चांद (चांदा) के वचन को मैं कैसे बांया दे सकता हूँ (कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता हूँ)? समस्त गोवर तथा देश को मैं भोजन कराऊँगा।" (२) महर ने [तदनंतर] नाइयों को बुला कर कहा, "तुम सब जाकर गोवर में घर-घर को निमंत्रण दे आओ, (३) (कहना,) "कल महर के यहाँ ज्यौनार है, बालक और वृद्ध निरपवाद सब को बुलाया है।" (४) यह सुन कर नाई दसों दिशाओं में गए, तो समस्त तैंतीसों वर्णों ने निमंत्रण लिया। (५) खूँट-खूँट (खंड-खंड) में सब को निरपवाद निमंत्रण दिया गया। सूर्य अस्त हुआ और अन्धकार पड़ गया। (६) [तब]

बहेलिए आखेट के लिए भेजे गए और [पक्षों के लिए] बारी पनवारियों में। (७) [न्यौतने वाले] नाई पिछली रात (रात्रि के पिछले प्रहर) में लौट कर सहदेव महर के द्वार पर आए।

(१४३)

दिन भा पारधि आइ तुलाने। अगनित 'मिरिघ जियत' धरि आने।
'बहुते रोझ गयंड अति घने'। चीतर 'झांख' जाहिं नहि गने।
'गौन मंझारे अउ' लोखरा। ससा 'लेंगुना' घर इकु 'भरा'।
'मेंढा' सहस मारि कइ टांगे। 'तीनि चारि सै' बकरा मांगे।
'अउ साउज बहु' 'बनइल' मारे। 'सिंधुरबार को गनइ बिरारे'।
'साउज' देस न उबरा आनें 'सबइ धराइ'।
जांवत 'पंखि' 'संगौने' 'कहइ सरस सबु गाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १११-११२ (दो संख्याएँ पड़ी हुई है), बी० ४४२-४४४।

शीर्षक—आवर्दने सैयादाने हैवानाते हर जिन्सी।

पाठान्तर—(१) १. बी० मिरग जिवत। (२) १. बी० बहुत रोझ औ गांडर घने। २. बी० झाषि। (३) १. बी० गोवन मझरी औ। २. बी० लवकना। ३. मैं० में नहीं है। (४) १. बी० मीढा (मेढा—फ़ा०)। २. मैं० चारि पांच सै। (५) १. बी० औ स्यावज सभ। २. बी० पनियल (बनइल—फ़ा०)। ३. बी० स्यंघ अरीयर को गम जारे। (६) १. बी० सावज। २. बी० समै धराय। (७) १. बी० पंष। २. बी० सगौतैं (संगौनें—फ़ा०)। ३. बी० कह्यौ सरस सभु गाय।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो बहेलिए आ पहुँचे, वे अगणित मृग जीवित पकड़ लाए थे। (२) बहुतेरे नीलगाय थे और गैंडे [भी] अत्यधिक थे, चीतल और झांख गिने नहीं जा रहे थे। (३) गौनों, मंझारों, लोखड़ों (लोमड़ों), शशकों तथा लेंगुनों से एक घर भर गया था। (४) एक सहस्र मेंढे मार कर टांगे हुए थे, तीन चार सै बकरे मांगे (मंगाए) हुए थे। (५) और भी बनैले श्वापदों (जंतुओं) को मारा गया था, सिंधुरबार और [जंगली] बिडालों को कौन गिन सकता था? (६) देश का कोई श्वापद (जंतु) न बचा था, सभी पकड़वा कर लाए गए थे। (७) जितने पक्षी वहाँ गए (?), [अब] उन सबको सरस रूप में गाकर [कवि] कह रहा है।

(१४४)

'बटई' तीतर 'लावा' धरे। गुडरूं कनवां(केंवां)'खंचियन' भरे।
'बहुल बगेरिया अउ' चरियारा। 'उसर तिलौरा अउ भुनजारा'।
'बरुवा' सीतल कार तिलोरा। 'रयन टिटिहरे धरे टिटोरा'।
'बन कुकुरा' 'खर मोरउ घनें'। 'कूंज महोक' जाहिं नहि गिनें।
'धरें को बरनइं उनके बनां। पंखि(खी) बहुल नांउं को सुना।'
जे 'कबि आइ समानें' सरसि 'बरनि गए तेहिं'।
'अउर' पंखि जे मारे 'तिन्हकर' नांउं को लेहिं॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ११३, बी० ४४५-४४७।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते जानवरां दर ज़ियाफ़ते महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० बडटई। २. बी० लवटी। ३. बी० कुंजिहि(?)। (२) १. बी० भरी बकेरी औ। २. बी० औसर तलवा और भूजारा। (३) १. बी० बरवा। २. बी० रेनि टटीहरि करहि टटेरा। (४) १. बी० चौंकदरु। (२) बी० षर मोरा। ३. बी० कुंज महौक। (५) १. बी० धकूर औ कहु वापाना : मछरी बहुत नाव को जाना। (६) १. बी० के आइ तुलाने। २. बी० बरंगे (बरनि गए—फ़ा०) तेई। (७) १. बी० और। २. मैं० ता कर, बी० तिन्ह कौ।

अर्थ—(१) बटई, तीतर और लावे रक्खे हुए थे, गुडरूं और कनवां (केंवां) खांचियों (टोकरियों) में भरे हुए थे, (२) बहुतेरे बगरिए तथा चरियारे थे, उसर-तिलौरे और भुनजारे (?) भी थे, (३) बरुवे, सीतल, और काले तलोर थे, रत्न-टिट्टिभ रक्खे हुए टटोर (टें-टें कर) रहे थे, वन-कुक्कुट और खर-मोर भी घने थे, क्रौंच तथा महोख गिने नहीं जा रहे थे। (५) जो [पक्षी] पकड़ कर लाए गए थे, कौन उनके वर्णों को गिन सकता है? बहुतेरे पक्षी थे, उनके नाम किसने सुने होंगे? (६) जो काव्यों में आ समाए हैं, वे ही सरस पक्षी [ऊपर] वर्णित हुए हैं। (७) और (अन्य) पक्षी जो मारे गए थे, उनके नाम कौन ले?

(१४५)

तीनि चारि सै बइठ 'सुवारा'। 'बइसंदरु' आनि 'रसोइ परजारा'।
'मांस मसउरा कटवां' कीन्हां। 'लइ धुंगार बटियां करि' दीन्हां।
बेगर बेगर पंखि पकाए। 'घिरित' बघारे 'मिरिच भराए'।

बिरचन 'अंबिरचन बटवा' परा । 'रस रतनाकर सेंधव गरा' ।
कूंकूं 'मेलि किएउ' बिसवारू । 'दारचों' 'करवंद' अंबिली चारू ।
'कटुक तराकत लखवर लोन तेल बिसवार' ।
'खटरस होइ महारस' 'तिलकुट किएउ' अहारु ॥

सन्दर्भ—मै० ११४, बी० ४४८-४५० ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते पुजानीदने ता आम दर मतबख़ ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सिवारा (सुवारा—फ़ा०) । २. बी० बैसांदरु । ३. बी० रसोइ जारा । (२) १. बी० मास मसौरा कुटवा । २. बी० ले जुगारु पानि कर । (३) १. बी० घृत । २. बी० मिरच फिराये (भराए—फ़ा०) । (४) १. बी० ईचनवा । २. बी० सरसत नागर सींधै करा । (५) १. बी० पीसि कियो । २. मै० दरवंद । ३. बी० करौंदा । (६) १. बी० कटु करकर मिठें रे लूनु आहि औ षार । (७) १. बी० घिरत भिरी अस मिरई । २. बी० तिलक महि कियो ।

अर्थ—(१) तीन-चार सै रसोइए बैठे, और आग ला कर उन्होंने उसे रसोइयों में जलाया । (२) मांस, मंसौरे, और कटवां [तैयार] किए गए, तथा धुंगार लगा कर बटवां [तैयार] कर दिए गए । (३) अलग-अलग पक्षी पकाए गए और घी में बघारे हुए मिर्च से भराए गए । (४) बिरचन (?) तथा अबिरचन (?) बटवा (पीस कर) रक्खे हुए थे, रत्नाकर (?) का रस तथा सेंधा लवण गल रहा था । (५) कुंकुम (केसर) डाल कर मसाला [तैयार] किया गया था, जिसमें दाडिम (अनार के दाने), करौंदें और चारु (अच्छी) इमली भी [पड़े] थे । (६) कटुक (?), तराकत (?), लखवर (?), लवण, तेल तथा मसाले थे । (७) षट् रसों [के रूप] में महारस [तैयार] हो रहा था, और तिलकुट [के रूप] में आहार [तैयार] किया गया [था] ।

(१४६)

'जाजर पापर भूंजि उचाए' । 'भांटा' टींडस 'सोंधि तराए' ।
'करुएं' तेल करैला तरे । 'कुम्हड़ा भूंजि' साठि 'इक' धरे ।
'खिखसा परवर' 'कुंदुरीं अहीं' । 'घिए तरोई अरुई गहीं' ।
'बोटी बोटिहि धोइ' पकाए । चूका 'पालक अउ चौंलाए' ।
'लौआ चिंचिंडा बहु' तोरई । 'सीता सेंब भार दस' भई ।

'कंकोल जीवंती' 'सौंफ औ' 'सोई मेथि पकानि' ।
'रांधी कुसुंभ कुंदुरियां' काढ़े बहुल संधान' ॥

सन्दर्भ—मै० ११५, बी० ४५१-४५३ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते ख़ज़रियात हर जिन्सी गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० काचर पापर भूंजि उचाई । २. बी० बाटा । ३. बी० सुध तराई । (२) १. बी० करये । २. बी० कुमछा मूठ । ३. बी० यक । (३) १. बी० पूवस बरवर (परवर—फ़ा०) । २. बी० कंदुरी आही । ३. बी० घने बास तेहि उपर काही । (४) १. बी० पुई सपूवत धोय । २. बी० पालिक आ चालाइ । (५) १. बी० कंदू चचीड औ । २. बी० सीवा सीव भारद । (६) १. बी० गुगल चौटि । २. बी० सौंप लौ । ३. बी० सोवा मेथी पान्ह । (७) १. बी० राध कसूभ कडूरिया । २. बी० काढि भरै सैंधान ।

अर्थ—(१) जर्जर (खस्तः) पापड़ भूंज कर उठाए गए थे, भांटे और टींडसे सोंधे करके तलाए गए थे । (२) कडुए तेल (सरसौं के तेल) में करैले तले गए थे, और साठ-एक कुम्हड़े भून कर रक्खे हुए थे । (३) खिखसे, परवल, कुंदुरियां थीं, घिए (नैनुए), तरोइयां तथा अरवियों को लिया गया था । (४) चूक (खट्टा) पालक तथा चौलाई बोटी-बोटी (टुकड़े-टुकड़े) धो कर पकाए गए थे । (५) लौकी, चिचिंडा, बहुतेरी तरोई, सीता (?) सेम की दस भारें हुई थीं । (६) कंकोल, जीवंती, सौंफ, सोया और मेंथी पके थे, (७) कुसंभी रंग की कुंदुरियां रांधी गई थीं और बहुतेरे संधान (चटनी-अचार) निकाले गए थे ।

(१४७)

बरा मुंगौरा 'बरियइं' कीन्हीं । 'खंडुई काटि घिरित' महिं दीन्हीं ।
बनी 'मेथौरी छिरकुलि' वारी । 'अउ डुबुकी जेहि मिरचइं' पारी ।
'भूंजी' कीन्ह 'गुरेठ' पकावा । 'पान अडाकर गुंझियइं' लावा ।
'रौता (?) कसवंद' 'किई मिर्चवानी' । अउर 'उभारि राई कर पानी' ।
तुरसी घालि कढी 'अउटाई' । लपसी 'सोंठि' बहुत 'कइ' लाई ।
दूधु फारि 'कइ' खिरसा 'बांधा' 'राषा' दही 'संजाउ' ।
अवर 'कठहंडी' को 'कह' जाकर नांउं न 'आउ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११६, बी० ४५४-४५६ ।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते पकवान दर हर जिन्सी गोयद ।

पाठान्तर—(१) बी० बरई। २. बी० खडई काटि घिरत। (२) १. बी० बई मठौरी छिलकल। २. बी० औ डभकी जैहि मिरचैं। (३) १. बी० भूंज। २. बी० करठ (गुरेठ—फ़ा०)। ३. बी० डागा पातु रंग जिहि। (४) १. बी० रीठ कसौडी। २. बी० की मिरचानी। ३. बी० भांति राई की बांनी। (५) १. बी० औटाई। २. बी० सूठि। ३. बी० कैं। (६) १. बी० कै। २. बी० षरस। ३. मै० में नहीं है। ४. बी० सजाई। (७) १. बी० षटहरी। २. बी० कहै। ३. बी० आई।

अर्थ—(१) बड़े, मुंगौड़े, और बरियां [तैयार] किए गए थे, खंडुई को काट कर घी में दिया गया था। (१) छिलकुल वाली मेथौरी बनी थी, और डुबुकी [बनी] थी जिसमें मिर्चें पड़ी थीं। (३) भूंजी की गई थी और गुरेठा पकाया गया था, गुझियों में समूचे पर्ण (पत्ते) लगाए गए थे। (४) रौते तथा कसौंदे का मिर्चवानी (मिर्च का पानी) किया गया था और उभाड़ कर राई का पानी किया (बनाया) गया था। (५) खटाई डाल कर कढ़ी औटाई गई थी तथा लपसी में सोंठ आधिक्य के साथ लगाई (डाली) गई थी। (६) दूध फाड़ कर खिरसा बांधा गया था, और संजाया हुआ दही रक्खा गया था। (७) अन्य कठहंडियों (व्यंजनों) को कौन बखाने जिनके नाम [मुझे] नहीं आते हैं ?

(१४८)

'कपुर सारि' 'रतसारि' 'बिकोई'। 'कररा धनिया' मधुकर तोई।
'सिंगना झाली अउ चौधरा'। 'कक्कर खंडर कांडर' भरा।
'अगर सारि रतनां मुतिसिरी'। 'राजनेत मूढी सौखिरी'।
'करंगी करंगा' साठी 'किए'। 'सुरमा बिहंसा' महसर लिए।
'गजधर कुंडर आगर 'धनी'। रूप 'पसाढी सोंधी' 'तनी'।
'कइ दोझा' अति धोए काढे 'सबइ पसाइ'।
जस बसंत बन 'फूलन्ह' चहुं 'दिसि' बासु 'खंधाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११७, बी० ४५७-४५९।

शीर्षक—मै० : सिफ़ते बिरंजहाए हर जिन्सी गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० कपूर सार। २. बी० रतसर। ३. बी० बरकोइं। ४. बी० गररा दभिया। (२) १. बी० स्यंगना झारी औ जोधरा। ३. बी० कलिक षेडची महकर। (३) १. बी० अगरवास राता मुतसरी।

२. बी० राज नीति मूढी सूकरी। (४) १. बी० करकी करका। २. बी० कये (किये—फ़ा०), मै० लिए (दूसरा तुक भी यही है)। ३. बी० सर बाभनि। (५) १. बी० बकीसीर कडियाकर। २. मै० धेनी। ३. बी० सरूपैं सूधैं। ४. मै० में नहीं है। (६) १. बी० कें दूझारि। २. बी० सभैं पकाई। (७) १. बी० फूलौ। २. बी० गति। ३. बी० गंधाई।

अर्थ—(१) कर्पूरशालि, रक्त शालि, बिकोई, कररा, धनियां, मधुकर तथा तोई [चावल] थे। (२) सिंगना, झाली, चौधरा, कक्कर, खंडर और कांडर भरे गए थे। (३) अगुरु शालि, रतनां, मौक्तिकश्री, राजनेत्र, मूढी, सौखिरी, (४) करंगी, करंगा तथा साठी [तैयार] किए गए थे, तथा सुरमा, बिहंसा और महसर लिए गए थे। (५) गजधर, कुंडर, आगर, धेनी थे तथा रूप, पसाढी, सोंधी तथा तनी थे। (६) दोझा (दो बार बीन) करके वे अत्यधिक धोए गए थे और सभी [मांड] पसा कर काढ़े (निकाले) गए थे। (७) जैसे वसंत में वन में फूलों से [उसी प्रकार इन चावलों से] चारों दिशाओं में सुवासों की गन्ध खंधा (महक) रही थी।

(१४९)

'हांसा गोहूं' 'धोइ' पिसाए। 'कपर छान कइ' 'झार' 'बनवाए'।
अति 'बडवड ते' 'बड़ भर तोला'। सेतु 'सुहाव' 'कूंज जनु भोला'।
टूट न 'तानां' दुहुं कर तोरा। नैनूं मांझ हाथ 'जनु' बोरा।
'जउ रे' साठि 'एक गासु' तुलाई। मुख मेलत 'खिन जाहि' 'बिलाई'।
'सगर देस (दिवस) 'जेवंहि' 'चित' लाई। 'भरइ' न पेटु न भूखि 'बुताई'।
'केवर' बास परि 'महकहिं' फूंकत जाहिं उडाइ।
भार सहंस 'दुइ' 'तिलकुट' 'महरइं धरे बनवाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११८, भो० पत्र १४ (नवीन), शि०, बी० ४६०-४६२।

शीर्षक—मै : सिफ़ते गंदुम व नाने मैदा खालिस।
भो० : सिफ़ते गंदुम व नान तुनक।
शि० में शीर्षक, (३)।१ तथा (७)।२ अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. शि० हंसा गोहूं, मै० बी० हांसा गेहूं (गहूं—मै०)। २. बी० घोय। ३. बी० कापर छानि कै। ४. भो० झाल, बी० झारि। ५. बी० पुवाये। (२) १. भो० बडवर ते, शि० बडवद सम, बी० बड। २. बी० बदिरवर कूली। ३. भो० सुहाए। ४. भो० खूज जनु भोला, बी केतु

जानै फूली। (३) १. भो० तानें। २. बी० महि हाथु जानौ। (४) १. बी० जूरी (जो रे—फ़ा०)। २. मै० करि गास, बी० क गासु, भो० एक काटि। २. बी० षिन जाइ, भो० जनु जाइ। ३. शि० अपाठ्य है। (५) १. भो० सब दिन जेंव जउ, बी० सभ दिन जीयेहि जौ, शि० हर दीन (दिन) जेइहि। २. बी० भरैं। ३. बी० भूष। ४. भो० बी० बुझाई। (६) १. भो० कर, मै० केर, बी० कपूर। २. बी० महकैं। (७) १. बी० इक, शि० दस (?)। २. बी० तिलि यक। ३. बी० महरी धरे पकाइ।

अर्थ—(१) हंसा गेहूं को [उन्होंने] धो कर पिसाया था और उसे कपड़े से छान कर उसके झाल बनवाए थे। (२) वे [झाल] अत्यधिक बड़े-बड़े थे, तो भी [वजन में] वे एक-एक तोला भर के थे, और [श्वेत ऐसे थे] मानो वे भोले-भाले श्वेत क्रौंच हों। (३) वे ऐसे [लसदार] थे कि दोनों हाथों से [पकड़ कर] तानने पर भी वे टूटते नहीं थे, और [उनको हाथों में लेने पर ऐसा लगता था] मानो हाथ नवनीत में डुबाए गए हों। (४) यदि साठ-एक भी ग्रास उनके उठाइए, तो मुख में डालते ही वे क्षण मात्र में विलीन हो जाते थे। (५) सारे दिन उन्हें चित लगा कर भी खाया जाता, तो भी न पेट भरता और न भूख बुझती। (६) वे केवड़े की सुवास जैसे महक रहे थे और [हल्के इतने थे कि] फूंकते ही उड़ जाते थे। (७) [इस प्रकार के झालों के] दो सहस्र भार तिलकुट महर ने बनवा कर रख छोड़े थे।

(१५०)

'पतरिन्ह कहं' तोरियहि बन पाता। 'झारि' न उबरा 'कीत निखाता'।
महुवा आंब 'लीन्ह' घरि 'बारी'। बर पीपर 'कइ' 'बांधी' खारीं।
कटहर बडहर 'औंलउ' लिए। 'जामुनि करहार' नांग 'सभ' भए।
'कठ ऊंबरि' 'पाकरि बहु' तोरी। 'मुहली' 'करवंद' दाख कंकोरी।
तेंदू 'बुगुची' रीठा घनां। 'पुरइनि' पात 'कर रे' को गनां।
'बिनवइ' आइ बनासपति पाइं लागि कर जोरि।
नांग कीन्ह 'हम' 'बारिन्ह' पात लीन्ह 'सभ' तोरि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ११६, भो० पत्र १७ (नवीन), बी० ४६३-४६५।
शीर्षक—मै० : सिफ़त आवरदने बर्गहाय दरख़्तान।
भो० : आवरदन बर्गहाय दरख़्तान रा बराय दोंद रह।
पाठान्तर—(१) १. बी० पातरि कौहु। २. मै० झूरि। ३. मै० कीन्ह

निखाता, बी० कोई छाता। (२) १. बी० बेलि। २. भो० बी० बारी। ३. बी० की। ४. भो० बांधहि। (३) १. मै० औलउ कर, बी० उबरे। २. भो० जाम गंभार, बी० जाम मषार। ३. मै० सब। (४) १. बी० केतिन उबरे। २. भो० बर पाकरि, बी० पाकुरि। ३. भो० महुव [किन्तु 'महुवा' (२) में आ चुका है]। ४ बी० करमजु। (५) १. बी० इंगज। २. बी० परिय। ३. भो० करि रहि, बी० करर। (६) १. बी० बिनइ। (७) १. मै० हउं। २. बी० बारि जेहि। ३. मै० सब।

अर्थ—(१) पत्तलों को बनाने के लिए वन के [वृक्षों के] पत्तों को तोड़ा गया था। निरपवाद [कोई भी] न बचे, ऐसा निहत उन्हें कर दिया गया। (२) बाटिकाओं से महुए और आम [की पत्तियां] रख ली गई थीं, वट और पीपल [की पत्तियों] की खारियां (जालियों की बनाई हुई झालें) बांध ली गई थीं। (३) कटहल, बड़हल, और आंवलों [की पत्तियों] को भी हाथ में कर लिया गया था, जामुन और करहार सभी नग्न (पत्र-हीन) हो गए थे। (४) कठ-ऊंबर और पाकर (की पत्तियों) को बहुतायत से तोड़ा गया था, मुहली (?), करौंदा, द्राक्षा (अंगूर की बेल) और कंकोली [की पत्तियों] को भी [तोड़ा गया था]। (५) तेंदू, बुगुची तथा रीठा [के पत्ते] भी बहुत से लिए गए थे, पुटकिनी (कमलिनी लता) के पत्तों की गणना कौन करे? (६) पैरों से लग कर और हाथ जोड़ कर वनस्पतियां आकर बिनती कर रही थीं, (७) "हमें बारियों ने नग्न कर दिया है, क्योंकि हमारे सभी पत्ते उन्होंने तोड़ लिए हैं।"

(१५१)

'महर' मंदिर 'सभ' नेत बिछाए। कइ 'खंड बानी' कुंड भराए।
गोवरु 'नौता' 'हुत' 'सो' बुलावा। 'तइंतीसउ' 'बान' 'सभइ चलि' आवा।
'कतहुं' न 'सूझइ' 'सरहि जनु' चली। 'उपटा देस मंदिर गा भरी'।
'बइसि कुंवर गए पांतिहि' पांती। 'परजा पवनि सो भांतिहि' भांती।
लोरिकु 'महरइं' पाटि 'बइसारा'। गहनु मारि 'जेइं' चांदु उबारा।
'बरन चारि भरि बइठे' 'अगनित कहि नहि जाइ'।
खेत साठि 'लहि' आंगनु तउ 'हु' लोग न समाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२०, भो० पत्र ११ (नवीन), बी० ४६६-४६८।
शीर्षक—मै० : आमदने ख़ल्क़ गोवर दर ख़ानः महर व नश्तने ईशां।
भो० : फ़राज़ करदन कंदूरी दर ख़ानः राव महर।

पाठान्तर—(१) १. भो० महरहं, बी० महरि। २ मै० सब, बी० बहु। ३. मै० भो० खंड वानि (वानी—ना०)। (२) १. बी० न्यौंतौ। २. भो० हुंत, बी० हुता। ३. मै० सोइ, बी० सु। ४. मै० तहतीसउ, बी० छ तीसे। ५. भो० पान, बी० बरन। ६. बी० सभै को। (३) १. बी० कहति। २. भो० सूझहिं, बी० सूझ न। ३. बी० सब जन। ४. बी० इक इक चाहि स ईक भिले। (४) १. बी० बैसि कवर गए पातोहु। २. बी० परज पौनि सु भातेहि। (५) १. बी० महरि। २. बी० बैसारा। ३. बी० जैं। (६) १. बी० बार बार चरि फिरि बैठे। २. बी० अगिनत गने न जाहि। (७) १. बी० लौहु। २. बी० में नहीं है।

अर्थ—(१) महर के समस्त मंदिर (भवन) में नेत्र बिछाए गए थे, और खंडवानी करके कुंड भराए गए थे। (२) गोवर [नगर] को जो निमंत्रण दिया गया था, उसका बुलावा कराया गया। तैंतीसों बानों के समस्त लोग चल कर आए। (३) कहीं [कुछ] सूझ नहीं रहा था, मानो शरह (सेना की पंक्ति) चल पड़ी हो; देश ही उमड़ आया था [जिससे] मंदिर भर गया था। (४) कुमार (कुमारभुक्त—गुज़ारेदार) पंक्तियों-पंक्तियों में बैठ गए, प्रजा और पावने (हर्षोत्साह के अवसर पर पुरस्कारादि पाने वाले) [अपनी-अपनी] भांति के अनुसार बैठे थे। (५) लोरिक को महर ने पाट (पीढ़े) पर बिठाया, जिसने ग्रहण को मार कर चांदा को बचाया था। (६) [भोजन के लिए] चारों वर्णों के लोग [ऐसी] अगणित संख्या में भर बैठे थे कि वह [बात] कही नहीं जा रही है। (७) साठ खेतों [के क्षेत्रफल] का [महर का] आंगन था, तब भी लोग उसमें नहीं समा (अट) रहे थे।

(१५२)

'बइठइ बार पसरे' पनवारा। भातु परोसहिं 'झारि सुवारा'।
पतरी भरहिं 'पहूंचहिं खानां'। 'बतीसउ' 'भांति लोर पहं आनां'।
मांस मसौरां 'कटवां भरे'। 'दोना' सौ सौ 'जनइत' धरे।
'लइ' मुतिसारु तुलानें नाऊ। घिरित खांड 'कीन्ह' पैराऊ।
'धरे' पकवान 'जेत' 'हुत' कहे। 'भल संधान' लाख इक अहे।
'गनि चौरासी' हांडी 'नाऊं' 'परस संभारि'।
'परे' 'खजहजा बहत्तर' होइ 'लागि जेवनारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२१, भो० पत्र १२ (नवीन), बी० ४६६-४७१।

शीर्षक—मै० : तआम खुरानीदने महर बर खल्क़ रा अज़ अलवाने नेअ़मतहा।

भो० : आवरदने तआम दर मजलिस हर जिन्स।

पाठान्तर—(१) १. मै० बइठ बारी पसर, बी० बैठ बार पसरी (पसरे—फ़ा०)। २. मै० होइ जेवनारा, बी० झारि सवारा। (२) १. भो० पहुंचहिं बरुतानां, बी० पूछ परवाना। २. भो० भांतिहि, बी० बहुती वनु। ३. बी० बहु भातेंहि जाना। (३) १. भो० खरवां भर बरे, बी० कुटवा भरे। २. बी० दूना (दोना—फ़ा०) ३. भो० चंपत, बी० जनयति। (४) बी० ले। २. बी० कैन्ह (कीन्ह—फ़ा०)। (५) १. बी० धरि। २. बी० जियत (जेत—फ़ा०)। ३. भो० हुंत। ४. बी० फुनि संघियान। (६) १. भो० गनि चौरासी सै, बी० गिन चौरासी। २. भो० में नहीं है, बी० बावन (नाऊं—फ़ा०) ३. बी० पुर सैंभारा। (७) १. बी० मधुर। २. मो० बहुल खजहजा, बी० खजहजा भीतरि (बहत्तर—फ़ा०)। ३. बी० लाग ज्योंनार।

अर्थ—(१) लोगों के बैठने की वेला में पनवारे (पत्तल) फैलाए गए। समस्त को सूपकार (रसोइए) भात (उबाला चावल) परस रहे थे। (२) [व्यंजनों से] पत्तलें भर रही थीं और खाद्य पहुंच रहे थे। लोर के पास बत्तीसों [प्रकार के व्यंजन] लाए गए थे। (३) मांस के मसौरे और कटवां भरे हुए सौ-सौ दोने जनइतों (भृत्यों) ने [लाकर] रक्खे। (४) मोती-सार (?) लेकर नाई आ पहुंचे थे, उसमें घी तथा खांड (व्यंजनों में) पैराऊ (तैरने के योग्य) किए (डले) हुए थे। (५) जितने कहे गए थे वे सभी पकवान [लाकर] रक्खे गए, अच्छे संधान (अंचार) तो लाख-एक (?) थे। (६) गिन-गिन कर चौरासी हांडियां (पात्र) संभाल-संभाल कर नाई परस रहे थे। (७) बहत्तर प्रकार के खाद्य और भ्रज्य रक्खे गए और ज्यौनार होने लगी।

(१५३)

'पहिरि' चांद खीरोदक सारी। 'सोरह करां' सिंगार सिंगारी।
'चढ़ि घौराहरि किहेसि' परगासू। 'देखि लोरिकहिं बिसर गरासू'।
लोरु 'जान' 'आछरि' दिखरावा। इहिं कबिलासि 'अउर' को आवा।
'अमिरितु जेंवंन तेहिं' 'माहुर भएऊ'। जीउ 'काढि' हरि 'चांदइं लएऊ'।
मुक्ख न जोति कया अति रूखी। 'चांद सनेह' सुरिजु गा सूखी।
'जेइं भूंजि अमिरित गइ' झारि उठी 'जेंवनार'।
लोरु लीन्ह 'कइ' डांडी 'बिसंभर' कछु न संभार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२२, बी० ४७२-४७४।

शीर्षक—मै० आमदने चांदा बर क़स्र व दीदने लोरिक व बेहोश शुदन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० पहरि। २. बी० सोराह करा। (२) १. बी० चरि धौरहरि कियसि। २. बी० देषहि लोग बिसरि गयो गासू। (३) १. बी० जानै। २. मै० अछरिहि। ३. बी० और। (४) १. बी० अंबृतु जीवनु। २. बी० माहरु भयो। ३. मै० सो। ४. बी० चांदा लये। (५) १. बी० चंदु न आहि। (६) १. बी० जिय भूंचि अंबृत रस। २. बी० ज्योनार। (७) १. बी० कै। २. बी० बेसंभर।

अर्थ—(१) चांदा खीरोदक की साड़ी पहन कर शृंगार की सोलह कलाओं से शृंगारित हुई। (२) [तदनंतर] उसने धवल-गृह (प्रासाद) पर चढ़ कर प्रकाश किया तो उसको देखकर लोरिक को [भोजन का] ग्रास विस्मृत हो गया। (३) लोर ने जाना कि किसी अप्सरा ने दर्शन दिए, [उसने कहा,] "इस कैलास (धवल-गृह) में और कौन आ सकता है?" (४) [जीमते ही] अमृत [जैसा] भोजन उसके लिए विष हो गया, [क्योंकि] उसका जीव जो था, उसे चांदा ने निकाल कर हर लिया था। (५) मुख पर ज्योति [शेष] न रही, काया अत्यधिक रुक्ष हो गई, और चांद (चांदा) के स्नेह में सूर्य (लोरिक) सूख गया। (६) अमृत [की वह ज्यौनार जब] जीमी और भूंजी गई, और पूरी ज्यौनार (भोजन करने वालों की पंक्ति) उठ गई, (७) लोरिक को लोगों ने डांडी पर चढ़ा लिया, [क्योंकि] वह बेसंभाल था, और [तन-बदन का] कुछ भी संभाल उसे न था।

१०. चांदा-लोर पुनर्दर्शन खण्ड

(१५४)

'लइ लोरिक घर सेजि' 'ओल्लारा'। बहहि 'नैन गांगही(हि)'असरारा।
'खोलिनि रोवइ काह' यहु भया। मोरु बारु 'केइं हंडा दिया'।
लोगु 'कुटुंबु बंधू' जन 'आए'। पंडित 'बैद सयान 'बोलाए'।
'धरि' नाटिका बैद अस कहहीं। चांद सुरिज 'दुइ' निरमल 'अहहीं'।
बात न पित 'रगत' 'नहि सीऊ'। 'ताप' न जूडी 'चित्त संजीऊ'।
देव न 'दानव' छरंगा 'होय(इ) न सीयार' 'बिरार'।
'मलिन' काम 'रस' बेधा 'तउ' यह 'ररइ' मरार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२३, बी० ४७५-४७७।

शीर्षक—मै० : दर खानः आवरदने लोरिक राव गिरियः करदने खोलिन।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै लोरिक औ सेज। २. बी० उलारा। ३. बी० नीर गंगा। (२) १. बी० खौलनि रौवै का। २. बी० कौं छिरगैं दया (दिया—फ़ा०)। (३) १. मै० कुटुंब बंदू, बी० कुटंबु बंधू। २. बी० आवा। ३. बी० बैदु। ४. बी० बुलावा। (४) १. मै० धनि (धरि—ना०)। २. बी० दोय। ३. मै० अ···। (५) १. बी० रग। २. बी० नाही सूती। ३. बी० ताव। ४. बी० चितह संजूती। (६) १. बी० दानौ। २. मै० नहि यह सीयर ('सीऊ' पूर्ववर्ती पंक्ति में आ चुका है)। ३. बी० बरारा। (७) १. बी० मदन (मलिन—फ़ा०)। २. मै० कर। ३. बी० तौ। ४. बी० रुरै।

अर्थ—(१) लोरिक को [उसके] घर ले जाकर शैया पर लिटा दिया गया। [उसके] नेत्र गंगा [के समान] लगातार बह रहे थे। (२) खोलिन रो रही थी, "यह क्या हुआ? मेरे बालक को किसने हंडा (भाण्डों द्वारा किया जाने वाला एक प्रकार का टोटका) [कर] दिया?" (३) लोक, कुटुंबी और बांधव जन आए, पंडित, वैद्य और सयाने बुलाए गए। (४) नाड़ी पकड़ कर वैद्य ऐसा कह रहे थे, "चांद और सूर्य (दक्षिण और वाम नाड़ियां) निर्मल हैं। (५) न वात है, न पित है, न रक्त है और न शीत है, न ताप है, न जूड़ी है; चित्त संजीव (सचेत) है। (६) न किसी देव ने और न किसी दानव ने इसे छला है, न स्यार या बिडाल [ने इसे कुछ कर दिया] है। (७) यह मलिन काम-रस द्वारा विद्ध है, इसीलिए यह मराल रर (रट) रहा है।

(१५५)

सुरिजु 'रइनि' महिं 'गएउ' लुकाई। 'चंद्र' जोति निसि आगें आई।
खोलिनि नीरु वारि 'सिर पिया'। 'मकु मोहीं महं' लोरिकु 'जिया'।
'हउं आपन' जिउ 'चिहुं दह' देऊं। लोरिक केर मांगि 'कइ' लेऊं।
'बरु मोंहि बूड़ी(ढ़ी) दुख लइ' जाई। 'जिनि बूड़ी(ढ़ी)कर दिया' बुझाई।
'बहु' संताप 'कइ कहइ' कहानी। 'कारि' राति दुख रोइ बिहानी।
भोर 'सूरु' परगासा दिनकर भएउ अजोर।
'खोलिनि रोइ' 'डफारा' बारु 'जियावहु' मोरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२४, बी० ४७८-४८० ।

शीर्षक—मै० : अै ज़न लहू दर गिरियः खोलिन गोयद ।

पाठांतर—(१) १. बी० रैनि । २. बी० गयो । ३. बी० चंद । (२) १. बी० सिरु पीया । २. बी० मोकौ मारि जीय । ३. बी० जीया । (३) १. बी० हौं अपना जिउ । २. बी० जोरहि (चौदह—फ़ा०) । ३. बी० कै । (४) १. बी० बरि मरि बूड रोगु लै । २. बी० जिन बारिक । (५) १. बी० यह । २. बी० दुष कथा । ३. बी० कारी । (६) १. बी० सुरिजु । (७) १. बी० षौलनि नगरु । २. बी० डभारा (डफारा—फ़ा०) । ३. बी० जिवावहु ।

अर्थ—सूर्य रजनी में छिप गया और रात्रि में चंद्रमा की ज्योति आगे आई, (२) तो खोलिन ने [लोरिक के] सिर पर पानी वार कर [इस अभिप्राय से] पिया कि लोरिक उसके जीवन में जीता (उसका जीवन लेकर जीता)। (३) [उसने कहा,] "मैं अपने चौदह जीवन (जन्म) दे दूंगी और [उसके बदले में] लोरिक का [यह एक] मांग कर लूंगी। (४) भले ही मुझ बूढ़ी को दुःख ले जाए, किन्तु मुझ बूढ़ी का [यह] दीपक न बुझे।" (५) वह बहुतेरा संताप कर [ऐसा] कथन कर रही थी, और काली रात [उसे] दुःख में रोते-रोते बीती। (६) पुनः (तदनंतर) सूर्य प्रकाशित हुआ (लोरिक उठा) दिन का उजाला हुआ। (७) खोलिन ने रोकर डकारा (चिल्लाया), "मेरे बालक को [ऐ लोगो,] जिलाओ।"

(१५६)

'राजि' बिरसपति 'हाटहि' गई। 'कींन बान' कछु 'बेसहन' लई।
'कारुन' सबद 'सवन' 'दहुं' परा। मुख 'फिराइ' 'पउ भीतरि' धरा।
'तिरियहि कर हिय होइ' मयारू। जाइ बिरसपति 'झांखा' बारू।
'खोलिनि' देखी महर भंडारी। कर गहि 'पाट' आनि 'बइसारी'।
'काहे तुम्हं रोवहु परधानां'। 'हियं उर' मोर सुनत चररानां।
मोर बार 'जस भुलवा' घरीं 'घरीं' बिहसात।
अब 'न खाइ अन' पानीं 'दिनहि' जाइ 'कुंबिलात' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२५, भो० पत्र १५ (नवीन), बी० ४८१-४८३ ।

शीर्षक—मै० : रफ़्तने बिरस्पति बे बहानःकारी दर ख़ानः लोरिक व दीदने खोलिन ।

भो० : रफ़्तन बिरस्पति दर ख़ानः लोरिक ।

पाठान्तर—(१) भो० धाइ, बी० राय (रायिःराजि—ना०) । २. बी० हाटा । ३. भो० कींन बार, बी० पाट पटोर । ४. बी० बिसहन । (२) १. मै० करुना । २. भो० सुवन, बी० श्रवन । ३. बी० घन । ४. बी० फिराय । ५. भो० पउ आगें, बी० पगु भींतरि । (३) १. भो० तिरियहि कर हियं काह (?), बी० तिरिया कर जिउ होय । २. बी० झाकसि । (४) १. बी० खौलनि । २. बी० बांह । ३. बी० बैसारी । (५) १. बी० काहै कै पररोहु वधाना । २. मै० हिरदें, बी० हियरा । (६) १. बी० अस फुलवा (भुलवा—फ़ा०), मै० भुलवा परि । (७) १. बी० खाइ सो अनु न । २. भो० दिन दिन, बी० खिनरितन । ३. मै० कुमिलात ।

अर्थ—(१) बृहस्पति सज्जा कर हाट को गई, क्योंकि उसे कुछ कीन-बाने (क्रयार्थ पदार्थ) खरीदने थे । (२) उसे ऐसा लगा कि उसके कानों में कोई कारुण्य का शब्द पड़ा था, [इसलिए] उसने मुख को घुमा कर पग भीतर रक्खे । (३) स्त्री का हृदय मयालु (ममतालु) होता है, इसलिए बृहस्पति ने जा कर द्वार झांका । (४) खोलिन ने महर की उस भंडारी को देखा, तो उस का हाथ पकड़ कर उसे वह ले आई और उसने फलक (पीढ़े) पर उसे बिठाया । (५) [वह खोलिन से पूछने लगी,] "ऐ प्रधान, तुम क्यों रो रही हो ? मेरा हृदय-उर [तुम्हारे रुदन को] सुन कर फटने लगा है।" (६) [खोलिन ने उत्तर दिया,] "मेरा बालक [किसी के द्वारा] भुलाया-जैसा हो रहा है, घड़ी-घड़ी वह बिहँसता है । (७) अब वह अन्न-पानी नहीं खा रहा है और अनुदिन कुम्हलाता जा रहा है।"

(१५७)

चलु 'खोलिनि तोर कहां रोगी'। 'मकु ओखदु जानउं ओहि' जोगी।
'लइ गइ खोलिनि' लोरिकठाऊ(ऊं)। देखिसिकयासीस 'घर'पाऊ(ऊं)।
सूरिज 'घरहिं' बिरसपति आई। नैन उघारि चंद्र बिहसाई।
'गनि गुनि देख' 'आंकि कइ' पीरा। कवन गरह'की(कइ)आहि अभीरा'।
बहु गुन 'गुनी' तिरी 'परधानां'। बहु बियाधि बहु 'ओखद' जानां।
महर भंडार 'भंडारी' 'अउ चांदा कइ धाइ'।
नैन 'उघारि' बात कहु 'लोरिक' 'आइउं आहि बुलाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२४, बी० ४८४-४८६ ।

शीर्षक—मै० : बुरदने खोलिन बिरस्पति रा दर महल व दीदने बिरस्पति लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० खौलनि तौरौ कहां सु। २. बी० मुकु औषधु जानौ उहि। (२) १. बी० ले गइ षौलनि। २. बी० धरि। (३) १. बी० घराह। (४) १. बी० गिगुन देखि। २. बी० दुषा की। ३. मै० करि हइ तुम्हं पीरा। (५) १. बी० गनै (गुनी—फ़ा०)। २. मै० बरहानां। ३. बी० औषधु। (६) १. बी० भंडारनि। २. बी० अै चांदा की धाय। (७) १. बी० पसारि। २. मै० में नहीं है। ३. बी० मै आनी अबहि बुलाई।

अर्थ—(१) "ऐ खोलिन, चल" [बृहस्पति ने कहा,] "[देखूं] तेरा रोगी कहां है ? संभव है उसके योग्य ओषधि मैं जानती होऊं।" (२) खोलिन उसे लोरिक के स्थान पर ले गई और [बृहस्पति ने] उसकी काया, उसके सिर, धड़ और पांव देखे। (३) [खोलिन ने कहा,] "ऐ सूर्य (लोरिक), तेरे घर में बृहस्पति आई हुई है, तू नेत्र खोल, चांद विहस रही है। (४) हे वीर, यह आंक कर और विचार कर देखे तो कि किस ग्रह की तुझे पीड़ा है। (५) यह बहुत से गुणों में गुणी और स्त्रियों में प्रधान है। यह बहुतेरी व्याधियां और [उनकी] बहुतेरी ओषधियां जानती है। (६) यह महर के भांडार की भांडारी है और चांदा की धाय है। (७) ऐ लोरिक, नेत्र खोल कर बातें कह, मैं इसे बुला कर लाई हूं।"

(१५८)

'जननि जउ चांद कहि' बोलु 'उभासा'। सहस करां सूरिजु परगासा।
'कहेसि' जननि यहु बेदन 'कहउं'। 'तोरीं' लाज 'लजात सु अहउं'।
'खोलिनि' जाइ 'अवर तह (हं)' ठाढ़ी। लोरिक पीर 'हियइं कइ' काढ़ी।
'जेहिं दिन हउं जेवनारि' बुलावा। महर मंदिर काहू दिखरावा।
सो जिउ 'लइ गइ' 'कहीं' न जाई। बिनु 'जिउ भएउं परेउं' घहराई।
सोरह 'करां' सपूरन चांद जोति परगास।
बीजु चमक परि 'चमकी' 'ओहिं' धौराहर पास॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२७, बी० ४८७-४८९।

शीर्षक—मै० : दूर शुदन खोलिन व गुफ़्तन लोरिक हिक़ायत दीदन चांदा बा बिरस्पति।

पाठान्तर—(१) बी० ज्यौं ज्यौं चांद। २. मै० उभा। (२) १. बी० कहसि। २. बी० कहौं। ३. बी० तेरी। ४. बी० लजावत अहौं। (३) १. बी० षौलनि। २. बी० और तहा। ३. बी० हियें की। (४) १. बी० जिह दिन जीवन हुतें। (५) १. बी० ले गई। २. बी० कह्यौं। ३. बी० जिय भयो पर्‌यो। (६) १. बी० करा। (७) १. बी० चमकै। २. बी० उहि।

अर्थ—(१) जननी ने जब 'चांद' कह कर बोल उद्‌भासित किया, तब सूर्य (लोरिक) ने [अपनी] सहस्र कलाओं के साथ प्रकाश किया। (२) उसने कहा, "जननी, मैं इससे [अपनी] वेदना तो कहूंगा, [किन्तु] तेरी लाज से मैं लजा रहा हूं।" (३) [यह सुन कर] खोलिन अन्यत्र कहीं जाकर खड़ी हो गई, और लोरिक वीर ने हृदय की पीड़ा निकाली (व्यक्त करनी प्रारंभ की)। (४) [उसने कहा,] "जिस दिन मैं ज्यौनार में बुलाया गया था, महर के मंदिर (भवन) में कोई दिखाई पड़ी थी। (५) वही मेरे जीव को लेकर चली गई और वह कही नहीं जा रही है। मैं बिना जीव का हो गया और घहरा कर [भूमि] पर गिर पड़ा। (६) सोलह कलाओं से वह संपूर्ण थी और चन्द्र की ज्योति से प्रकाशित थी। (७) उस धवलगृह (प्रासाद) के पास (पार्श्व में) वह बिजली की चमक की भांति चमक गई।"

(१५९)

'सुनि लोरिक असि' बात न 'कहियइ'। 'जउ कहियइ एहिं' 'देसि न' रहियइ'।
'वह तउ' आहि महर 'कइ धिया'। 'सरगि चांद' 'धौराहर दिया'।
'तरइन्ह जा करि सेज बिछावहिं'। 'नवइ' नखत 'निसि पहरे' आवहिं।
सो तइं देखि बीजु परबारी। 'गहन होति जिय' गई 'न' मारी।
'मन कइ सोग हिएं हुत धोवहु'। 'जेइं' भूंजि सुख निंद्रा 'सोवहु'।
अत राजा 'के दुअरि[आ]' 'अउ निसु' सरग 'बसेरु'।
'जेहिं का' राजु पिरिथिमीं 'तेंहि तूं गरब न हेरु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १२८, बी० ४९०-४९२।

शीर्षक—मै० : मना करदने बिरस्पति लोरिक रा कि ई हिक़ायत न गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिक हौं यह। २. बी० कहिये। ३. बी० जै कहिये इहि। ४. बी० रहिये। (२) १. बी० वाह तौ। २. बी० की धीया। ३. मै० चांद नाउं। ४. बी० धौराहरि दीया। (३) १. बी०

तारायनु जाकै सेज बिछावैहि । २. बी० नौव नषित । ३. बी० पहरै । (४) १. बी० लह तोर जिउ । २. बी० जु । (५) १. बी० मन की सूग (सोग—फ़ा०) हियेहि तैं जोवहु । २. बी० जीय (जेंइ—फ़ा०) । ३. बी० सोवोहु । (६) १. बी० की दुलहिनि । २. बी० औनि । ३. बी० बसेर । (७) १. बी० जिहि कर । २. बी० तिह कर करिब (गरब—फ़ा०) न हेर ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ लोरिक सुनो, ऐसी बात न कही जानी चाहिए, क्योंकि यदि कही जाए तो इस देश में न रहा जाए । (२) वह तो महर की कन्या है; वह आकाश का चांद (चंद्र) है, और धवलगृह (प्रासाद) का दीपक है । (३) [वह ऐसी है कि] जिसकी शैया तारिकाएं बिछाती हैं और जिसके पहरे के लिए नवो नक्षत्र आते हैं । (४) उसी ने तुझे देख कर बिजली फेंकी (गिराई), और वही तेरे लिए ग्रहण होती हुई [बस] तेरे जीव को मार न गई । (५) अपने मन का शोक हृदय से धो डाल, भोजन जीम कर और सुखों का भोग कर सुख की नींद सो । (६) जिस राजा के इतने [अधिक] दौवारिक हैं और बिलकुल आकाश में (अत्यधिक ऊंचाई पर) जिसका बसेरा (निवास) है, (७) और जिसका राज्य पृथ्वी पर है, उसको (उसकी ओर) तू गर्व से न देख ।"

(१६०)

'चांद क' उतरु बिरसपति कहा । सूरिजु दूहूं 'पायं परि' रहा ।
आजु बिरसपति सुदिनु 'हमारा' । मुखा कंवलु 'जो दीख' तुम्हारा ।
कहु 'सो बात' जिहि 'होइ मेरावा' । भल 'जो करइ' सो भलाई पावा ।
'कइ बिसु मोहिंलइआनि खियावहि' । 'कइ सोमंत्र बिधि आजु जियावहि' ।
कर पालउ 'दस नख मुंह मेलइ' । पायंन 'परइ' बिरसपति 'ठेलइ' ।
'पाय' न ठेलि बिरसपति 'हउं तउ' चेर तुम्हार ।
बचन तोर 'मोहि ओखद' 'कहसि' न जीवनु 'जिवनु' हमार ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १२६, भो० पत्र १६ (नवीन), बी० ४६३-४६५ ।

शीर्षक—मै० : पाए बिरस्पति उफ़्तादने लोरिक व अलहाज बिसियार नमूदने ऊ ।

भो० : मिन्नत करदन लोरिख पेश बिरस्पति ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदा का । २. बी० पाव ले । (२) १. मै० अम्हारा । २. भो० जेहिं दीख, बी० जौ देष । (३) १. बी० सु मोहि । २. बी० होय मिलावा । ३. बी० जु करैं । (४) १. बी० कै मोहि बिसु लै अबहि षवावोहु । २. बी० कैरु मतरु पढि आजु जिवावोहु । (५) १. भो० दस नख मुख मेला, बी० दस मुहि नष मेलै । २. भो० पायन परत, बी० पाव परत । ३. भो० ठेला, बी० ठेलै । (६) १. बी० पाव । २. बी० औ हैं (हौं—ना०) । (७) १. बी० औषध पर । २. बी० कहस । ३. मै० जीवनु ।

अर्थ—(१) जब चांद [के संबंध] का यह उत्तर बृहस्पति ने कहा, सूर्य (लोरिक) उसके दोनों पैरों पर गिर रहा । (२) उसने कहा, "ऐ बृहस्पति, आज मेरा शुभ दिन है कि तुम्हारा मुख-कमल दीख पड़ा है । (३) तुम मुझसे वह बात कहो जिससे मिलाप हो, क्योंकि जो भला (भलाई) करे, उसे भलाई मिलनी [भी] चाहिए । (४) या तो ला कर मुझे विष खिलाओ अथवा वह मंत्र [दो] कि विधाता आज जिला दे ।" (५) [यह कहकर लोरिक] कर-पल्लव के दस नख मुख में डालने लगा* और जब वह उसके पैरों पर पड़ने लगा, बृहस्पति उसे पैरों से ठेलने (हटाने) लगी । (६) [लोरिक ने कहा,] "बृहस्पति, तू पैरों से मुझे न ठेल (हटा), मैं तो तेरा चेर (पुत्र ?) हूं । (७) तेरा वचन मेरे लिए ओषधि है, मेरे जीवन [का वह वचन] तू कह न !"

(१६१)

बिरखपति देख 'लोरिक कइ कया' । 'मरन सनेह' 'उठी मन मया' ।
पाइ छाडि 'लोरिक पिइ' पानी । 'ओषद करउं' पीर तोरि जानी ।
लोरिक तोर कहा 'मइं' मानां । 'कइ हउं कइ' तूं 'अउर' न जानां ।
'जउ लोरिक इहिं' बात 'उभारा' । 'मोहि क्रिपिना धरि छौंकइ पारा' ।
सुनि 'बुधि' 'देउं' जाइ मढु 'सेवहि' । 'मइं लइ जाबि पुजावइ' '[देवहि?]' ।
तपां रूप होइ 'बइठउ' 'कया' बिभूति 'चढ़ाइ' ।
'दरसन निकट जउ' 'बिगतहि' देखहु नैन 'अघाइ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १३०, बी० ४६६-४६८ ।

शीर्षक—मै० : हील: आमोख्तने बिरस्पति बर लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिका कीया । २. बी० मेरे मनेह (सनेह—ना०) । ३. बी० उठि मनु दीया (दया—फ़ा०) । (२) १. बी० लोरि

*लोरिक से जीव-दान की याचना करते हुए आगे के एक प्रसंग में बुदिया दानी ने भी इसी प्रकार मुख में उंगलियां डाली हैं ।

पिउ। २. बी० औषधु करौ। (३) १. बी० मैं। २. बी० कै हौं कै। ३. बी० और। (४) १. बी० जै लौरिक यह। २. बी० उभारी। ३. बी० स्यौं कुनुबा धरि येहि सब सारी। (५) १. बी० बु। २. मै० मोरी (मोरि—ना०)। ३. बी० सेऊ। ४. बी० मिलै चांद पूजायसि। ५. बी० देऊ, मै० त्रुटित है। (६) १. बी० बैसहु। २. बी० कियइ। ३. बी० चराई। (७) १. बी० बिसन बगते जि। २. बी० बगतौहू। ३. बी० अघाई।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने लोरिक की काया देखी तो [उसके] मरण का सन्देह (भय) होने के कारण उसके मन में ममता उठ (जाग) पड़ी। (२) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तू मेरे पैर छोड़ और पानी पी; मैं औषधि कर रही हूँ, तेरी पीड़ा मेरी जानी हुई है। (३) ऐ लोरिक, मैंने तेरा कथन मान लिया, किन्तु उसे या तो मैं जानूँ और या तो तू जाने, उसे और कोई न जाने। (४) यदि, ऐ लोरिक तूने इस बात को उभाड़ा (प्रकट किया), तो तू मुझ कृपिणा (दीना) को पकड़ (पकड़वा) कर [तप्त कड़ाह में] छौंकवा सकता है। (५) तू सुने, मैं तुझे बुद्धि (युक्ति) दे रही हूँ, तू जाकर मढ़ (मंदिर) को सेए, मैं [उसे] देवता की पूजा कराने ले जाऊंगी। (६) तपस्वी के रूप में होकर तू वहाँ पर काया पर विभूति (राख) चढ़ाकर बैठ, (७) और उसका दर्शन (रूप) जब निकट से व्यक्त हो, तू उसे नेत्रों से तृप्त होकर देख।"

(१६२)

कहि 'जु(जो)' बिरसपति 'बाहेर' भई। 'खोलिनि' खेह पाय 'कइ' लई।
सीस 'चढ़ाइसि पा कइ' धूरी। आस मोरि 'जनि लीजिय चूरी'।
खोलिनि 'चंद्रु' मेष घरि आवा। सूरिजु गहनु 'हुत सोइ' छुडावा।
भा सुखु 'भरम जियहिं जनि' धरहू। न्हाइ धोइ कुछु 'औषध' करहू।
'लोरहिं' घरी 'जियइ कहं' पाई। 'जागा' सुरिजु 'चंदु' बिहसाई।
'भरम न करहू खोलिनि जिय महं लोरिक लइ अन्हवावहु'।
'अरु किछु अरथ दरब वारहुं बा(बां)भन देइ पठावहु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३१, बी० ४९९-५०१।

शीर्षक—मै० बेरून आमदने बिरस्पति अज़ महल लोरिक व पाय उफ़्तादने खोलिन।

पाठान्तर—(१) १. मै० में नहीं है। २. बी० बाहरि। ३. बी० षौलनि। ४. बी० क। (२) १. बी० चराइसि पाव कि। २. बी० तै अब ही पूरी। (३) १. मै० चंद्र। २. बी० होय तस। (४) १. बी० चितह भरम जिन। २. मै० अरघ। (५) १. बी० लोरिक। २. बी० जियन की। ३. बी० जाग। ४. मै० चंद्र। (६) १. बी० पिरम हंस जौ कुररहि कुरहि नवासु सुहाई। (७) १. बी० में इस चरण के स्थान पर अगले कडवक की प्रथम पंक्ति है (पाठ वहाँ पर देखिए)।

अर्थ—(१) बृहस्पति [यह] कह कर जो बाहर हुई, [तो] खोलिन ने उसके पैरों की धूल ली। (२) [बृहस्पति के] पैरों की धूल को उसने सिर पर चढ़ाया [और कहा,] "तुम मेरी आशा को तोड़ मत लेना।" (३) [उसने उत्तर दिया,] "खोलिन, चंद्र मेष के घर में आएगा तभी वह सूर्य को [इस] ग्रहण से छुड़ाएगा। (४) सुख हो गया, अब जी में भ्रम (भय) न धारण करो, नहा धोकर कुछ ओषध (उपाय) करो। (५) लोरिक ने जीने की घड़ी प्राप्त कर ली है, सूर्य जाग गया है और चन्द्र विहसित हो रहा है। (६) ऐ खोलिन, जी में भ्रम (भय) न करो, लोरिक को ले [जा] कर स्नान कराओ, (७) और कुछ अर्थ-द्रव्य [उस पर] वारो तथा उसे किसी ब्राह्मण को देने के लिए भेज दो।"

(१६३)

'जेहिं दिन लोरिक उठइ नहाई। लोक कुटुंब मइं करबि बधाई।
तोहि पहिरावउं 'चीरु अमोला'। 'जउ मुख आइ लोर' कहुं बोला।
गई बिरसपति 'जहं सब' तारा। अउ निसि चांद 'करइ' उजियारा।
गई 'सो' मेटि सुरिज 'कइ' 'पीरा'। चांद 'तराइनि सेउं किइ भीरा।
'अरघ' 'बइस' निसि चांदा रानी। नखत 'तराइनि कहहिं' कहानी।
चांद नखत 'लइ' तारा 'बइठ' धौराहर जाइ।
लोर लागि 'मोहि' चिंता कहि 'जउ' बिरसपति आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३२, बी० ५०२-५०४।

शीर्षक—मै० : ·····(अपाठ्य) क़बूल करदने खोलिन बिरस्पति रा अज़ सेहते लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० में यह पंक्ति पिछले कडवक के दोहे की दूसरी पंक्ति के रूप में इस प्रकार है :

"जिहि दिन लोरिकु उठि बैठै : लोगु न्यौति मैं करौं बधाई।

(२) १. बी० तुहि पहिराऊ। २. बी० जिहि सुषु आइ लोरिक।

(३) १. बी० जहा सवि। २. बी० करै। (४) १. बी० सु। २. बी० की। ३. मै० में नहीं है। ४. बी० तरायनि स्यौं गै। (५) १. मै० पाट। २. बी० बैसि। ३. बी० तरायनि कहैं। (६) १. बी० लै०। २. बी० बैठ। (७) १. बी० लोरिक। २. बी० तिहिं। ३. बी० जु।

अर्थ—(१) [खोलिन ने कहा,] "जिस दिन लोरिक उठेगा और स्नान करेगा, लोक (लोगों) और कुटुंबियों में मैं बधावा करूंगी।(२) तुझे अमूल्य चीर पहनाऊंगी, जब लोरिक के मुख में बोल आएगा।" (३) बृहस्पति [अब] वहाँ गई जहाँ समस्त तारिकाएं (दासियां) थीं और रात्रि में [जहाँ पर] वह चांद (चांदा) प्रकाश कर रही थी। (४) वह सूर्य (लोरिक) की पीड़ा मिटा कर [वहाँ] गई [जहाँ पर] चांद (चांदा) तारिकाओं (दासियों-सखियों) के साथ भीड़ (समाज) किए हुई थी। (५) चांदा रानी रात्रि में चुप बैठी हुई थी, नक्षत्र और तारिकाएं (दासियां-सखियां) कहानी कह रही थीं। (६) चांद (चांदा) नक्षत्रों और तारिकाओं (दासियों-सखियों) को लेकर धवलगृह (प्रासाद) में जा बैठी, (७) [और उसने कहा,] "लोर के लिए मुझे चिन्ता है; बता यदि तू बृहस्पति [वहाँ से] आई हो।"

(१६४)

'सवन' फटिक मुंद्रा सिर सेली। कंठ जाप 'रुदराखइं' मेली।
चकरु 'जोगौटा कोथी कंथा'। पाइं पावरी 'गोरख' पंथा।
मुख बिभूति कर गही अधारी। छाला 'बइसि क (कइ)' आसन मारी।
डंडा 'खप्पर' सींगी 'पूरइ'। नेंह 'चारचा' गावइ 'झूरइ'।
गुन किंगिरी 'तेहिं' बार 'बजावइ'। 'चितहि चांदा' मुख 'चित्र उपावइ'।
सिद्ध पुरुख मढ 'बइठेउ' 'धरि' तिरसूर दुवारि।
'भुगुति' मोरि बनखंड 'कइ' चांद नाम 'तात (तत ?) सार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३३, बी० ५०५-५०७।

शीर्षक—मै० : जोगी शुदने लोरिक व नशिस्तने दर बुतखानः बुत।

पाठान्तर—(१) १. बी० सोवन (सवन—फ़ा०)। २. बी० जाप्प रुद्रागैं (रुद्राखैं—फ़ा०)।(२) १. बी० जुगौटा काठी कैंथा। २. मै० गोरक। (३) १. बी० बैसक। (४) १. बी० खपर जु। २. बी० पूरै। ३. बी० चारिज। ४. बी० झूरै। (५) १. बी० तिह। २. बी० बजावै। ३. बी० जिहिं। ४. बी० जात्रा पावै (चित्र उपावै—फ़ा०)। (६) १. बी० बैठ।

२. बी० घर। (७) १. बी० भुगति। २. बी० की। ३. बी० सैंसार (ततसार—फ़ा०)।

अर्थ—(१) कानों में [लोरिक ने] स्फटिक-मुद्राएं, सिर में सेली, कंठ में जप-रुद्राक्ष की मालाएं डाल लीं। (२) उसने चक्र, योगपट्ट (योगियों का वस्त्र), कोथली (थैली), तथा कंथा (गूदड़ों का वस्त्र) [ले लिया] और पैरों में पादत्री (खड़ाऊं) डाल कर वह गोरख-पंथ में [हो गया]। (३) उसने मुख में विभूति (राख) [लगाई], हाथ में अधारी ग्रहण की और छाला (मृगचर्म) पर बैठ कर आसन मार लिया। (४) वह दंड और खप्पर [ले कर] सिंगी पूरता (सिंगी में श्वास भरता), स्नेह-चर्चा के गीत गाता तथा संतप्त होता। (५) उस वेला में वह गुण-किन्नरी (एक प्रकार की सारंगी) बजाता, और चित्त में चांदा के मुख का चित्र उत्पादित करता। (६) मढ़ी में वह सिद्ध पुरुष उसके द्वार पर त्रिशूल रख कर बैठ गया। (७) [वह कहता,] "मेरी भुक्ति वनखंड की है (मेरा भोजन कंद-मूल-फलादि का है) और चांद (चांदा) का नाम ही [मेरे लिए] सार तत्व है।"

(१६५)

एक बरिस लोरिक मढु सेवा। चांद सनेह 'मनाएसि' देवा।
कातिग परब दिवारी आई। डार परी 'रितु खेलिय' गाई।
चांद बिरसपति लीन्ह हंकारी। 'आवइ' खेलन 'जाहिं' 'दिवारी'।
सखीं साठि इक गोहनि लागीं। रूप सरूप 'सभागइं भागीं'।
'अक्खत' चांद 'चली लइ' तहां। 'गाइ' दिवारी 'खेलइ' जहां।
'सून फूल' चांदा 'लइ' 'अक्खत मेला' जाइ।
'बिहरत' हारु टूटि गा 'मोतिहु' गए 'छिरियाइ'॥

सन्दर्भ—मै० १३४, बी० ५०८-५१०।

शीर्षक—मै० : यक साल परस्तीदने लोरिक बुत रा व आमदने चांदा बा सहेलियान दर आं।

पाठान्तर—(१) १. बी० मनायसि। (२) १. बी० रुति षेलहि। (३) १. बी० आवोहु। २. मै० देखइं। ३. बी० जाह।(४) १. बी० सभाग सभागीं। (५) १. बी० आखत। २. बी० लिये लै। ३. बी० गई। ४. बी० षेलहि। (६) १. बी० षेल गउ चांद। २. बी० लै। ३. बी० अषित मेले। (७) १. बी० फिरताह। २. बी० मोती। ३. बी० छिराइ।

अर्थ—(१) एक वर्ष तक लोरिक ने मढ़ (मंदिर) का सेवन किया और चांदा के स्नेह में देवता को मनाया। (२) कार्त्तिक में दीवाली का पर्व आया और यह डार (?) पड़ी कि गाँव में ऋतु के खेल खेले जाएं। (३) चांदा ने बृहस्पति को बुला लिया और कहा, "आओ, दीवाली खेलने के लिए जाएं।" (४) साठ के लगभग सखियां साथ लग गईं, रूप में वे सुरूपा और भाग्य में वे भाग्यशालिनी थीं। (५) चांदा अक्षत लेकर वहाँ के लिए चल पड़ी जहाँ पर गांव में दीवाली खेली जाती थी। (६) प्रसून तथा फूल लेकर चांदा ने [देवता पर] अक्षत जा डाले, (७) [किन्तु वहाँ पर] विहार करते समय उसका हार टूट गया और उसके मोती भी [निकल कर] छिटक गए।

(१६६)

'सही' मोंति 'लइ धोवइ' पानी। चांद 'कानि कइ(?)चितहि' 'सकानी'।
जननि 'जउ पूछिहि तउ' कस 'कहऊं'। 'कवन' उतरु अनु उत्तर 'देऊं'।
'बोला सखिन्ह छाहं मढि लीजइ'। हार 'पिरोइ' चांद 'तुम्ह' दीजइ।
आइ बिरसपति 'बहुरि' हुंकारी। चांद बचन सुनि मढी सिधारी।
मढु सुहाव 'अउ' छांह 'सुहाई'। चांद सखी लइ बइठी जाई।
'मानिक मोंति पिरोवहिं रचि रचि बारी हार'।
'बइठी चांद बिरसपति' सूरिजु मढी दुवारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३५, बी० ५११-५१३।

शीर्षक—मै० शिकस्तने हार मुरवादीद चांदा दर बुतखानः व जमअ करदने सहेलियान।

पाठान्तर—(१) १. बी० संवरि। २. बी० घाइ लै। ३. बी० कुमति भइ पिता। ४. मै० लजानी। (२) १. बी० मदिर पूछै। २. बी० कहौं। ३. बी० कौन। ४. बी० सहौं। (३) १. बी० बोली सषी छाव मठि लीजै। २. बी० परोइ। ३. मै० कहं। (४) १. बी० भई। (५) १. बी० अति। २. बी० हीं आई। (६) १. बी० रचि रचि बारि परोवहिं मानिक मोती हार। (७) १. बी० चांद बैठ परछाहीं।

अर्थ—(१) सखियां मोतियों को ले-लेकर पानी से धो रही थीं, [इस बीच] चांदा [माता-पिता की] कानि कर चित्त में शंकित हुई। (२) [उसने कहा,] "जननी यदि पूछेगी, तब मैं कैसे कहूंगी और कौन-सा उत्तर तथा अनु-उत्तर दूंगी?" (३) सखियों ने कहा, "मढ़ (मंदिर) में छाया ली जाए

और [वहीं पर] हार को [पुनः] गूंथ कर, ऐ चांद, तुम को दिया जाए।" (४) फिर (तदनंतर) बृहस्पति ने आकर [इस प्रस्ताव का] समर्थन किया और चांदा [उसके] वचन को सुनकर मढ़ी के लिए चल पड़ी। (५) वह मढ़ सुहावना था, और [उसमें] छाया [भी] सुहावनी थी, चांदा सखियों को ले कर जा बैठी। (६) वे बालिकाएं रच-रच कर [हार के] माणिक्य और मुक्ता पिरोने लगीं, (७) और चांदा तथा बृहस्पति [उस मढ़ी में] बैठ गईं, [जबकि] सूर्य (लोरिक) उस मढ़ी के द्वार पर [बैठा हुआ] था।

(१६७)

'झांखि सहेलिन्ह' चांदहि कहा। 'एहिं मढ महं एक आएसु' अहा।
अति रूपवंतु राजपुतु 'आही'। सुरिजु मदन 'कत लाएं जाही'।
'कुर क ऊंच' आहि बडवारू। सुंदर खतरी बीर अपारू।
कवनि जननि 'जरमेउं' अस बारा। सहस करां 'भएउ' उजियारा।
नागर 'छइल सभागइं' भरा। करम जोति मनि 'माथें बरा'।
'चांदहि' 'कहा' 'तराइन' सूरिजु 'देखउ' 'आइ'।
अस भगिवंतु 'जउ देखिय' 'दिस्टि पापु' झरि 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३६, बी० ५१४-५१६।

शीर्षक—मै० खबर जोगी करदने सहेलियान बर चांदा रा।

ऊपर निर्धारित (४)।२ मै० में (५)।२ है और (५)।२ मै० में (४)।२ है।

पाठान्तर—(१) १. बी० झारि सहेल्योंहु। २. बी० इसु मढ महि कोउ आसनु। (२) १. बी० अहै। २. बी० गति लाए रहै। (३) १. बी० कुवरु कर उच। (४) १. बी० जनमा (?)। २. बी० होइ। (५) १. बी० चतुर सभागैं। २. बी० माथैं परा। (६) १. मै० चांद। २. बी० कहसि। ३. बी० तरायनि। ४. बी० देखहु। ५. बी० आई। (७) १. बी० जु देषैं। २. बी० द्रिष्टि पाषु (पापु—नागरी)। ३. बी० जाई।

अर्थ—(१) [इधर-उधर] झांक कर [चांदा की] सहेलियों ने कहा, "इस मढ़ में एक आदेश (योगी) है। (२) वह अत्यधिक रूपवान् राजपुत्र है, सूर्य तथा मदन जिसके (जिसकी तुलना में) किस योग्य हैं? (३) वह कुल का ऊंचा और बड़ा है, वह सुंदर क्षत्रिय और अपार वीर है। (४) किस जननी ने ऐसी वीर बालक को जन्म दिया है, जिसकी सहस्र कलाओं से वहां प्रकाश हो

रहा है? (५) वह नागर और छैला है, सद् भाग्य से पूरित है, और कर्म की ज्योति-मणि उसके मस्तक पर झलक रही है। (६) चांदा से तारिकाओं (सखियों) ने कहा, "उस सूर्य (पुरुष) को आ कर देखो; (७) ऐसे भाग्यवान् को यदि देखिए तो दृष्टि के [समस्त] पाप झड़ जाएं।"

(१६८)

चांद सीसु 'भगवंतहि' नावा। भा अचेतु 'मन' चेतु गंवावा।
मुनिवर 'मन' देखन 'गुन गएऊ'। पीत बरन मुख 'भेंमरु भएऊ'।
नैन झुरहिं अति कया सुखानी। 'धनि' धानुक चखि हना बिनानी।
नैन दिस्टि चांदा 'मुख' लाइसि। रहा घाइ 'न सो देखइ पाएसि'।
'भउंह फिराइ' चांद गुन तानी। नैन बान मुनि 'हनां सयानी'।
काटि दीन्ह जस 'बकर देवारीं' रगत 'कीन्ह घर बार'।
देखि गई 'धर धरती' मुनिवर 'देउ' दुवार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३७, बी० ५१७-५१६।

शीर्षक—मै० : सलाम करदने चांदा व बेहोश शुदने जोगी।

पाठान्तर—(१) १. बी० भगवंत कौ। २. बी० मनि। (२) १. बी० मुषु। २. बी० कौ गयों। ३. मै० बिख। ४. बी० भ्यंभरु भयों। (३) १. बी० धन। (४) १. मै० में नहीं है। २. बी० तहा देषि न आइसि। (५) १. बी० भौह फिराई। २. बी० हन्यों बिनानी। (६) १. बी० बकरा देहुरे। २. बी० षेह षुरमार। (७) १. बी० धन उधोनत। २. बी० मुनियर देव।

अर्थ—(१) चांदा ने उस भाग्यवान् [अथवा भागवत] को सिर नमित किया, [तो] वह अचेत हो गया और उसने मन की चेतना गंवा दी। (२) उस मुनिवर का मन [चांदा को] देखने के लिए चला गया था, [अतः] उसका मुख भेंभर तथा पीत वर्ण का हो गया था। (३) उसके नेत्र अत्यधिक संतप्त हो रहे थे और उसकी काया सूख गई थी; वह धानुष्का धन्य थी जिसने चक्षुओं से उस विज्ञानी को आहत कर दिया था। (४) नेत्रों की दृष्टि उसने चांदा के मुख पर लगाई, [तो] वह ऐसा आहत हो रहा कि उसे देख भी न पाया। (५) भौहों [के धनुष] को घुमा कर चांदा ने प्रत्यंचा तान ली और उस सयानी ने नेत्र-बाणों से मुनि को आहत कर दिया। (६) जैसे दीवाली पर बकरा काट दिया गया हो और घर का द्वार [उसके रक्त से] लाल कर दिया गया हो, (७) [ऐसे] देव-द्वार पर धरती पर मुनिवर का धड़ [पड़ा हुआ] देख कर वह चली गई।

(१६९)

बाहुरि मंडप चांद 'जउ' आई। 'सूरिज' दिस्टि मुख गा 'कुंबिलाई'।
'पूछइ' चांद बिरसपति धाई। काह 'कहउं कछु कही' न जाई।
'जउहि' सीसु 'मइं' सिध कहुं नावा। मुरछि परा मुख 'बकति' आवा।
हाथ 'पाउ सिरु हिर न संभारइ'। 'धरि धरि' सीसु मंडप 'सेउं मारइ'।
हारु 'पिरोइ' 'सहेलिन्हु' दीन्हां। हंसि कइ चांद 'पहिरि गियं' कीन्हा।
'कहा' बिरसपति 'चांदा' चलहु बेगि 'घर' जाहिं।
चांद सूरिज 'हइ अंथवत' महरी खरी डराहिं॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १३८, बी० ५२०-५२२।

शीर्षक—मै० : बाज़ गश्तने चांदा अज़ बुतखानः व आमदन बेखानए खुद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जै। २. बी० सुरिजु। ३. मै० कुंमिलाई। (२) १. बी० पूछैं। २. बी० कहौं कुछु कहन। (३) १. बी० जबहि। २. बी० मैं। ३. बी० बगत। (४) १. बी० पाव कछु सिरु न संभारै। २. मै० धुनि धुनि। ३. बी० स्यौं मारै। (५) १. बी० परोय। २. बी० सहेलेंहु (सहेलींहु—फ़ा०)। ३. बी० बिगसि गैं। (६) १. बी० कहसि। २. बी० चांदहि। ३. बी० घरि। (७) १. बी० है अथवा।

अर्थ—(१) जब चांदा मंडप से वापस हुई, सूर्य (लोरिक) की दृष्टि [लगने] से उसका मुख कुम्हला गया था। (२) चांद धाय बृहस्पति से पूछने (कहने) लगी, "मैं क्या कहूं? कुछ कहा नहीं जा रहा है। (३) जभी मैंने सिद्ध को सिर नवाया, वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा और उसके मुख से वक्ति (वाक्य) न निकला। (४) उसके हाथ-पैर और सिर हिल रहे थे, उन्हें वह संभाल नहीं रहा था और [अपने] सिर को पकड़-पकड़ कर मंडप से मार (टकरा) रहा था।" (५) [उसकी] सहेलियों ने उसे हार [पुनः] पिरो (गूँथ) कर दिया, तो हँस कर उसे चांदा ने ग्रीवा में [धारण] किया। (६) बृहस्पति ने कहा, "चांदा, चलो, हम शीघ्र घर जाएं। (७) ऐ चांदा, सूर्य अस्त हो रहा है, हम महरी को खरी (बहुत) डरती हैं।"

(१७०)

'माता' पिता बंधु नहि 'भाई'। संगु न साथी मीतु न 'धाई'।
'एहिं' बनखंड 'कोइ' पास न 'आवइ'। 'को रे' मरत मुखि नीर 'चुवावइ'।

'को रे' 'उठाइ बइसार संभारी'। 'एहिं' 'कंथा गुन' 'देइ' हंकारी।
दई पेटि जीउ बहुरि संचारा। 'बांधेसि' सीसु झारि 'कइ' बारा।
'सपनें सउतुक मइं' कछु देखा। चित न 'संभारउं' मरन बिसेखा।

'देवहि पूछहु(हुं) तूं जउ आहा 'हउं कस' गा बिसंभार।
कया सूक मुख 'भैंमर' 'मोरें' जियं कछु 'न संभार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १३६, भो० पत्र ६ (नवीन), बी० ५२३-५२५।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत दर तनहाइए लोरिक गोयद।

भो० : गुफ़्त लोरिक गुरबत खुद व पुरसीदन बुत रा।

पाठान्तर—(१) १. भो० मांता। २. बी० धाई। ३. बी० सहाई। (२) १. बी० यह। २. बी० को। ३. भो० आवा। ४. भो० कोइ, बी० कोपि। ५. भो० चुवावा। (३) १. मैं० कोइ, बी० को। २. बी० उठारि बैसार न संभारी। ३. बी० नेह, भो० आनि, किंतु बाद में पाठ 'एहिं' दिया गया है। ४. बी० घूटि कोउ। ५. भो० कहइ। गहइ। (४) १. बी० बाधि। २. मैं० करि, बी० कैं। (५) १. बी० सपन क सूतकैं मैं। २. भो० संभार, बी० संभारैं। (६) १. बी० देवेहि पूछि जीउ अहा। २. बी० हौं किन। (७) १. बी० मनि भीभर। २. बी० मोर।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "माता, पिता, बंधु, भाई, संगी, साथी मित्र तथा धाय नहीं हैं। (२) इस बनखंड में कोई पास नहीं आता है, [अतः] कौन मुझ मरते हुए के मुख में पानी चुवाए? (३) कौन मुझे उठा कर और संभाल कर बिठाए और बुला कर इस कंथे में गुण दे—इस कंथे (चीथड़ों) जैसी काया में सूत्र जैसे प्राण पिरोए?" (४) तब तक दैव ने उसके पेट में जीव का संचार किया तो उसने बालों को झाड़ कर सिर बांधा। (५) [वह कहने लगा,] "स्वप्न में अथवा संप्रत्यक्ष मैंने कुछ देखा, [जिसे] चित्त में स्मरण नहीं कर रहा हूँ, [मानो] मरण का विसेख (वैशिष्ट्य—प्रभाव) था। (६) देवता से पूंछू कि 'तू जब [उपस्थित] था, मैं कैसे बेसंभाल हो गया, (७) [कैसे] मेरी काया में शुष्क गई, मेरा मुख भेंभर हो गया और मेरे जी में कुछ भी संभाल (चेत) न रहा?'"

(१७१)

एकु 'अचंभा' 'सुनहि तूं' लोरा। 'सउतुक सपनइं भएउ जेहि' तोरा।
'अछरिन्ह केर झुंड' एकु आवा। 'सो' अछरीं 'तइं' 'देखि' न पावा।

तूं तिन्ह देखि परा मुरझाई। 'हौं(हउं) ब' 'लोन परि गएउं' बिलाई।
भा झनकारु 'जउहि तिन्ह गवनां'। 'अउ रितु उठा फूटि कनै सोनां'।
खिन इक 'रहीं कोड' तिन्ह कीन्हां। 'बहुरि' पयानु उतर मुख कीन्हां।

सीसु उचाइ 'जउ देखिउं' मंडपु चहुं 'दिसि' सून।
'लहन मोर जइं उतरइ' लोर 'तुम्हारेइ पून'॥

सन्दर्भ—मैं० १४०, बी० ५२६-५२८।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने बुत बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० अचंभौ। २. बी० सुनसि न। ३. बी० सूतक सुपन भयो जिउ तोर। (२) १. बी० अछिराह केर झूरु। २. बी० सा। ३. बी० तैं। ४. बी० देख (देखि), मैं० देखन। (३) १. मैं० हंउ रे। २. बी० तून पर गयों। (४) १. बी० चहू दिस कूना (गवना—फ़ा०)। २. बी० औहट उठे फटि गयैं सौना। (५) १. मैं० हंस गवन। २. बी० फुनि रु। (६) १. बी० नैन जो देखौं। २. बी० दिस। (७) १. बी कया मुरछि जिउ उवरा। २. बी० तुम्हारें पुन।

अर्थ—(१) "ऐ लोरिक", [देवता ने कहा,] "तू एक अचंभा सुन, जिससे तेरा (तुझे) स्वप्न में संप्रत्यक्ष हुआ। (२) अप्सराओं का एक झुंड आया, और उन अप्सराओं को तू देख न पाया। (३) तू उन्हें देख कर मूर्च्छित हो पड़ा और अब (उसी समय) मैं लवण की रीति से [उनके सौन्दर्य-सागर में] विलीन हो गया। (४) जब उन्होंने गमन किया, एक झंकार हुआ और ऋतु (प्रकृति) में कनक और सोना (स्वर्णिम प्रकाश) फूट उठा। (५) एक क्षण तक वे रहीं और उन्होंने कोड (खेल-खिलवाड़) किया, पुनः उन्होंने उत्तर-मुख प्रयाण किया। (६) मैंने सिर उठा कर जब देखा, चारों ओर मंडप सूना था। (७) मेरा लहना (प्राप्य) जभी उतरेगा (प्राप्त होगा), ऐ लोरिक, वह तुम्हारे पुण्यों से होगा।"

(१७२)

'चांद बिरसपति पास बुलाई। पिरम कहानी 'कहु मोहि' आई।
'जेहिं' रस मन कर बिरसु बिसारउं। 'रस दिवरा हिरदैं थरि जारउं'।
रस अहारु मोहिं देहि अघाई। बिरह झार बिनु रस न बुझाई।
बहुल 'रसायन' देखेउं' चाखी। 'सरस' कहानी कहु मोहिं भाखी।
'रस किएं' राति सपूरनभावै(वइ)। 'अउ' रस सुनि 'सुख' निंद्रा 'आवइ'।

'कहु रस बचन' 'बिरसपति' 'जेहि चित करुव' मिठाइ ।
रस 'कइ' घरी 'बहुरावहि' दुख संताप 'षु(षो)भ' जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४१, बी० ५२९-५३१ ।

शीर्षक—मै : तलबीदने चांदा बिरस्पति रा व पुरसीदन हिकायते लोरिक ।

मै० : में निर्धारित (५)।१ का अंतिम शब्द छूटा हुआ है ।

निर्धारित (४), (६) तथा (७) बी० में ऊपरी हाशिए में भिन्न व्यक्ति द्वारा दिए हुए हैं ।

पाठांतर—(१) १. बी० कहौ निसि । (२) १. बी० जिह । २. बी० रस दियरा हिरदै परजारौ । (४) १. बी० रसइन । २. बी० देषौ । ३. बी० प्रिम । (५) १. बी० सरस स । २. मै० में नहीं है । ३. बी० औ । ४. बी० सखि । ५. बी० आवै । (६) १. बी० इहै कह रस बचन बिरसपत । २. बी० जि चित कटु (७)१ । १. बी० की । २. बी० उचावहु । ३. मै० तेहि ।

अर्थ—(१) चांदा ने बृहस्पति को पास बुलाया [और कहा,] "तू आकर मुझे [कोई] प्रेम-कहानी सुना, (२) जिसके रस से मैं अपने मन की विरसता को विस्मृत कर दूं और हृदय के स्थल में रस का दीपक जलाऊं । (३) रस का आहार मुझे अघा कर (भर-पेट) दे, [क्योंकि] विरह की ज्वाला बिना रस के बुझती नहीं है । (४) बहुतेरे रसायनों को मैंने चख कर देखा, [उनसे कोई लाभ नहीं हुआ,] अतः कोई रस कहानी तू मुझसे भाष कर कह । (५) रस के द्वारा सम्पूर्ण रात्रि भाएगी और रस (रस की वार्त्ता) सुन कर ही सुख-निद्रा आएगी । (६) ऐ बृहस्पति, तू वह रस-वचन कह जिससे चित्त की कड़ुवाहट मीठी हो जाए । (७) तू रस की घड़ी वापस ला, जिससे [मेरे] दुःख, संताप और क्षोभ जाएँ ।"

(१७३)

तूं रसु बिरसु चांद का जानसि । 'हउं रस कहउं घिरित जउ' सानसि ।
'घिरित खांड सों करउं मेरावा' । 'चांद जइस' अंबिरितु तुम्हं पावा ।
रस 'बरजहि कइं बरइ' अहारू । 'रसहि बूड़ि आछहिं सयंसारू' ।
रस 'के दाध' अनपानि न 'भावा' । रस 'जउ आन ओखद बरु लावा' ।
रस 'कइ बात चितहिं जउ' धरसी । रस 'कइ घरिय बिरसु जिनि' करसी ।
रस 'के' कुंडि परा 'मरहि' मुनिवरु 'गन(गहन ?)' गहीरु ।
रस क बूड 'धरि बाहइं' चांदा 'लावहि' तीर ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४२, बी० ५३१-५३३ ।

शीर्षक—मै० जवाब दादने बिरस्पति चांदा रा ।

पाठांतर—(१) १. बी० हौं रस कहौं घिरत स्यों । (२) १. बी० घिरत षांड सौ होई मिरावा । २. बी० अैसे चांद । २. बी० अमिरतु । (३) १. बी० परिजाव तस वै । २. बी० रसह अछ बूडै सैंसारू । (४) १. बी० लागें । २. बी० भावै । ३. बी० जु षाइ औषध पै लावै । (५) १. बी० की बात चिताह जै । २. बी० की घरी बिरसु जिन । (६) १. बी० कैं । २. बी० मढि (मरहि—फ़ा०) । ३. बी० अति रुति गगन । (७) १. बी० घर बाहां । २. बी० लावोहु ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने उत्तर दिया,] "ऐ चांदा, तू रस और विरस को क्या जाने ? मैं रस तो तब कहूँ जब तू उसे घृत (स्नेह) से साने । (२) घृत (स्नेह) का खांड (रस) से मिलान करे तो जैसे, ऐ चांद, तूने अमृत पा लिया । (३) रस का चाहे वर्जन कर, चाहे उसके आहार का वरण कर, रस में डूब कर ही संसार स्थित है । (४) [किन्तु] रस से दग्ध होने पर अन्न-पानी नहीं भाता है, [अतः] यदि रस को कोई लाए तो अच्छा यह हो कि [इसके साथ ही] इसकी औषधि भी लाए । (५) रस की बात यदि तू चित्त में धारण करती है तो तू रस की घड़ी को विरस न करे । (६) गहन-गंभीर रस के कुंड में जो मुनिवर गिर कर मर रहा है, (७) उस रस में डूबे हुए को बांह से पकड़ कर, ऐ चांदा, तू तीर पर लगा ।

(१७४)

निलज बिरसपति लाज न 'धरसी' ।
मोहि भिखारि 'सेउं' सरभरि करसी ।
बिरसपति 'तोरें' मन अस आवा ।
'जउ तइं' मढ़ि मुनिवरु दिखरावा ।
'जेहि' खिन चांद सुरिजु दिखरावा ।
'तेहि' 'खिन हुतें' मोहि 'अउरु' न भावा ।
नैन 'पइसि' चित 'कीतेसि' ठाऊं । 'बाजु' कीन्ह 'हउं' अनत न जाऊं ।
'तइं जो देखाइ' बिरसपति 'कहा' । सो 'मइं जेउं' लागि 'चित' रहा ।
लोरु सुरिजु 'बहु' 'निरमर' चहूं 'भुवन' 'उजियार' ।
चांद आहि धनि 'ताकरि' 'सो रबि' नांहु हमार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४३, बी० ५३४-५३६ ।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने चांदा बर बिरस्पति रा बा गुस्सः ।

(५)।२ में 'जेउं' मै० में बाद बढ़ाया हुआ है ।

पाठांतर—(१) १. बी० मरसी । २. बी० स्यों । (२) १. बी० तोरें । २. बी० जौ तें । (३) १. बी० जिह । २. बी० तिह । ३. मै० दिन हुत । ४. बी० औरु । (४) १. बी० पैसि । २. बी० कीतसि । ३. बी० बाच (बाज—फ़ा०) । ४ बी० मैं । (५) १. बी० तैं जु दिषाव । २. बी० अहा । ३. बी० तौ हिये लागि । ४. मै० चित (चित्त—ना०) । (६) १. बी० पर । २. मै० निरमल । ३. बी० भवन । (७) १. बी० ताकर । २. मै० सूरिज ।

अर्थ—(१) "ऐ निर्लज्ज बृहस्पति," [चांदा ने कहा,] "तू लाज नहीं धारण करती है, [और] तू एक भिखारी के साथ मेरी बराबरी करती है ! (२) बृहस्पति, तेरे मन में ऐसा आया [होगा], जभी (तभी) तूने मढ़ में [मुझे ले जा कर उस] मुनिवर को दिखाया । (३) जिस क्षण तूने चांद को सूर्य (लोरिक) का दर्शन कराया, उस क्षण से मुझे अपर (अन्य) कोई नहीं भाया है । (४) [मेरे] नेत्रों से प्रविष्ट होकर उसने [मेरे] चित्त में स्थान कर लिया है, और मुझे वंजित कर दिया है, मैं [इसी कारण] अन्यत्र नहीं जाती हूँ । (५) तूने जब [उसको] दिखा कर, ऐ बृहस्पति, कहा [तभी से] वह जैसे मेरे चित्त में लग रहा है । (६) मेरा लोरिक बहुत निर्मल (निष्कलंक) सूर्य है और वह चारों भुवनों में प्रकाश-पूर्ण है । (७) चांदा उसी की धन्या (स्त्री) है, और वह सूर्य (लोरिक) मेरा नाथ (स्वामी) है ।"

(१७५)

वह 'सो' महर धिय तोर भिखारी । भीखि 'लेसि' जउ 'देसि' हंकारी ।
दरसन 'रात' 'भएउ तेहि' जोगी । भीख न मांग 'पुरुख हइ' भोगी ।
'तेहि' कारनि मुखि भसम 'चढ़ावा' । सुबचनु देहि 'तउहि सिधि पावा' ।
तोरें रस कर 'आहि' पियासा । 'निससत रहै लेय(इ)' मरि सासा ।
चांद बचनु एकु 'सुनसि न' मोरा । तूं 'ओखद वहु रोगिया' तोरा ।
हस्ति 'चढ़ा दिखराएउं' फुनि 'आएउं जेवनार' ।
सोई लोरु 'मढ़ि मुनिवरु' देषत 'गा' बिसंभार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४४, बी० ५३७-५३९ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ नमूदने हिकायत लोरिक पेशे चांदा ।

पाठांतर—(१) १. बी० सु । २. मै० लेइ । ३. बी० देहु । (२) १. मै० राता । २. बी० भयो तोहि । ३. बी० पुरषु है । (३) १. बी० तुहि । २. बी० चरावैं । ३. बी० तबहि सुषु पावै । (४) १. मै० आस । २. मै० नित तोहि आछे लइ । (५) १. मै० सुनहु तुम्हं । २. बी० औषध वोहु रोगी । (६) १. बी० चरा दिखरायों । २. बी० आयो जिवनार । (७) १. मै० मढ़ महं । २. बी० भयो ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ महर-कन्या, वह तेरा भिक्षुक है, और वह भिक्षा [तभी] लेगा जब तू बुला कर उसे देगी । (२) तेरे दर्शनों पर अनुरुक्त हो गया, तभी वह योगी हुआ; वह भीख नहीं माँगता है, वह पुरुष तो भोगी (भोग-प्रिय) है । (३) इसी कारण उसने मुख पर भस्म चढ़ा ली है, तू अपना वचन देगी, तभी वह सिद्धि पाएगा । (४) वह तेरे रस का पिपासु है, वह निःश्वास लेता और मर-मरकर साँसें लेता रहता है । (५) ऐ चांदा, तू मेरा एक वचन सुन, तू औषधि है और वह तेरा रोगी है । (६) वही हाथी पर चढ़ा हुआ दिखाई पड़ा था, और वही पुनः [उस दिन] ज्योनार में आया था, (७) वही लोरिक मढ़ (मंडप) में मुनिवर [के वेष में] था, जो तुझे देखते-देखते बेंसभाल हो गया था ।"

(१७६)

मढ़ि मुनिवरु 'जउ' लोरिकु अहा ।
'तइं' न बिरसपति 'मोसिउं' कहा ।
भुगुति 'जुगुति तेहि जोग' 'दिवउतिउं' ।
'धिरित मेरए' 'रस' बचन 'सुनइतिउं' ।
अबहिं जाइ धरि बाहं 'उचावहि' ।
बिरह 'बिभूत मुनि पानि पियावहि' ।
अस जिनि 'कहहि कि' चांद 'पठाइउं' ।
पूछत 'कहिसु' 'सही' चलि 'आइउं' ।
'गूवा' पान नगरखंड लेहू । 'कइ' खंडवानि बिरसपति देहू ।
मुखि बिभूति 'अउ' कंथा अस कहि धरहु उतारि ।
'देई भएउ तुम्हं' परसनां 'पूजिहि' आस तुम्हारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १४५, बी० ५४०-५४२ ।

शीर्षक—मै० : अफ़सोस करदने चांदा अज़ बेहोशी दर बुतखानः ।

पाठांतर—(१) १. बी० जो। २. बी० तें। ३. बी० मो सौ। (२) १. बी० जोग कछु जुगति। २. बी० दिवौत्यौ, मैं० देतिउं। ३. बी० घिरत भरे। ४. मैं० में यह नहीं है। ५. बी० सुन्यैंत्यैं। (३) १. बी० उचावोहु। २. बी० भूंजि मुष पानी प्यावेहु। (४) १. बी० कहहु कि, मैं० कहहि। २. बी० पठायौ। ३. बी० कही। ४. मैं० में नहीं है। ५. बी० आयो। (५) १. बी० गोवा (गूवा—फ़ा०)। २. बी० ले (कै—फ़ा०)। (६) १. बी० औ। (७) १. बी० देउ भया। २. बी० पूजी।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "यदि उस मढ़ में मुनिवर [के वेश में] लोरिक था, तो तूने, ऐ बृहस्पति, मुझसे बताया नहीं। (२) उसके योग्य मैं भुक्ति (भोजन) और युक्ति दिलाती और उसे घृत मिलाए हुए (स्नेह-मिश्रित) वचन सुनाती। (३) तू अभी जाकर और उसकी बाँहें पकड़ कर उसे उठा और उस विरहाभिभूत (?) मुनि को पानी पिला। (४) ऐसा मत कह कि तू चांदा की भेजी हुई है; पूछते समय यही कह, "मैं स्वयं ही चली आई हूँ।" (५) गूवा (सुपारी) पान और नगर-खंड (श्वेत-शर्करा—चीनी) ले ले और, ऐ बृहस्पति, खंडवानी (खांड का रस) बना कर उसको दे। (६) [पुनः] उससे ऐसा कहे, 'मुख की विभूति और कंथा उतार कर रख दो, (७) दैव तुमसे प्रसन्न हुआ है, तुम्हारी आशा पूरी होगी।' "

(१७७)

चांद 'खांडि दिई' पान 'सोपारी'। सरगि बिरसपति मढिइं सिधारी।
'गौनि' बिरसपति 'मढ़िइ' पईठी। 'जहवां' चांद सुरिजु भई दीठी।
बिरसपति डसन बीजु चमकाए। मुनिवर नैन रगत झरु लाए।
बिरसपति 'पाय' सुरिजु 'लइ' रहा। 'तुम्हं जो' चांद मढ़ि 'आवन' कहा।
जागत 'रहउं' 'जो' नींद गंवानी। अन न रूच 'अउ भाइ' न पानी।
'हउं जउ' चांद 'लइ आइउं' 'कीएउं मढ़' परगास।
सुभर नींद 'बरु सूते' गई ढंढोरि चहुं पास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४६, बी० ५४४-५४६।

शीर्षक—मैं० : शकर व बरग दादह फ़िरिस्तादने चांदा बिरस्पति रा बर लोरिक दर बुतखानः।

पाठान्तर—(१) १. बी० षाड दैं। २. बी० सुपारी। (२) १. बी० जाइ। २. बी० मढ़ी। ३. बी० जहुवां। ४. मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०)।

५. बी० भा। (४) १. बी० पाव। २. बी० लै। ३. बी० तैं जु। ४. बी० आनैं। (५) १. बी० रहौं। २. बी० जु। ३. बी० भावै नहि। (६) १. बी० हौं जु। २. बी० लै आयों। ३. बी० कियसि मढी। (७) १. बी० भरि सोवोहु।

अर्थ—(१) चांदा ने खंड (काट) कर पान-सुपारी दी तो आकाश (धवलगृह) से बृहस्पति मढ़ी गई। (२) जा कर बृहस्पति उस मढ़ी में प्रविष्ट हो गई जहां पर चांद (चांदा) और सूर्य (लोरिक) की [परस्पर] दृष्टि हुई थी। (३) बृहस्पति ने दांतों की बिजली चमकाई, तो मुनिवर के नेत्रों ने रक्त की झड़ी लगा दी। (४) बृहस्पति के पैर सूर्य (लोरिक) ने पकड़ लिए, [और वह बोला,] "तुमने जो चांदा की मढ़ में आने की [बात] कही थी [उसको स्मरण करो]। (५) [उससे] क्योंकि मेरी निद्रा गुम हो गई है, मैं जागता ही रहता हूँ; अन्न मुझे नहीं रुचता है और पानी नहीं भाता है।" (६) [बृहस्पति ने कहा,] "मैं जब चांदा को [यहां] लाई और इस मढ़ मैंने [उसका] प्रकाश किया, (७) तुम भरपूर नींद में सो गए और वह [तुम्हारे] चारों ओर ढूंढ-ढांढ कर चली गई।"

(१७८)

'जउ हर सेइ नरायन धा(ध्या)वइ'।
'चांद' सुरिजु 'बिनु और न भावै(वइ)'॥
सुबचन सुनि 'लोरिक' 'गहबरा'।
दोऊ 'पायं (इं) सीस लै(लइ) धरा'॥
अबहिं 'सुरिजु' मन राखि 'रहावहु'। बिहसति चांद सरद 'रितु पावहु'।
'तजहु' 'लोर दरसनु अउ' मढ़ी। 'सरगि चांद बुधि बहु गुन' गढ़ी।
बिरसपति बचन लोर 'जउ' मानें। 'कइ खंडवानि पियाएसि आनें।
परथमि देव 'मनाएउं' फुनि 'रे' बिरसपति तोहि।
पाइ 'परउं लइ तारा' चांद 'मेरावहि' मोहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४७, बी० ५४७-५४९।

शीर्षक—मैं० : पन्द दादने बिरस्पति चांदा लोरिक रा कि दूर कुन लिबासे जोग।

मैं० में (७) का प्रथम अक्षर पन्ने के फटने से निकला हुआ है।

पाठान्तर—(१) १. मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०)। २. बी० रवावोहु।

३. बी० रुति पावोहु। (२) १. मैं० तजु। २. बी० सुरिजु दरसनु औ। ३. बी० चांद सुरगि बिधाता कैं। (३) १. बी० जो हरि सबै तरायनु धावै। २. बी० चंद। ३. मैं० कहं ओर निभावइ। (४) १. बी० लोर। २. मैं० हेरा। ३ मैं० पांयनि सीस धरेरा। (५) १. बी० जौ। २. बी० दे षंडवानी पान सुवाने। (६) १. बी० मनायो। २. बी० रु। (७) १. बी० परौं अब तोरों। २. बी० मिरावोहु।

अर्थ—(१) "ऐ सूर्य (लोरिक)," बृहस्पति ने कहा, "अभी मन को रोक कर रहो, तुम चांदा को शरद ऋतु में हंसती हुई पाओगे। (२) ऐ लोरिक, [अब] इस दर्शन (वेष) और मढ़ी को छोड़ो। चांद आकाश में (धवलगृह के ऊपरी खंड में) है और वह बहुतेरी बुद्धि और गुणों से गढ़ी हुई (निर्मित) है। (३) यदि तुम शिव की सेवा और नारायण का ध्यान करोगे, तो चांद (चांदा) को सूर्य (लोरिक) के अतिरिक्त और कोई न भाएगा।" (४) इन सुवचनों को सुन कर लोरिक गद्-गद् हो गया और उसने [उसके] दोनों पैरों पर सिर रख दिया। (५) जब बृहस्पति के वचनों को लोर ने मान लिया, बृहस्पति ने खंडवानी की और उसे लाकर लोरिक को पिलाया। (६) [लोरिक ने कहा,] "पहले मैंने देवता को मनाया और पुनः (तदनंतर) तुझे [मनाया]; (७) ऐ [चांद की] तारिका (दासी), मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ, तू मुझे लेकर चांद से मिला दे।"

(१७९)

मुनिवरु दरसन जोगु उतारा। मढ़ु तजि खतरी 'मंदिर' सिधारा।
चली बिरसपति 'सू(सु)रिजु पठाई'। चांद 'नारि' 'कहं' बात जनाई।
चांद बिरसपति 'सेउं' अस कहा। कहि मढ़ मुनिवरु 'कैसें' अहा।
नैन रगत 'झर दिन' असरारू। 'भुगुति न जानइ नींद' अहारू।
'मलिन' काम बेधा न 'संभारइ'। चांइ चांद निसि ठाढ 'पुकारइ'।
सीसु धुनति तिंहि 'देवरइं' 'जनहुं नावित अभुवाइं'।
'कहब तंत अब ही हुंत' 'आइउं' मंदिर पठाइ॥

सन्दर्भ—मैं० १४८, बी० ५५०-५५२।

शीर्षक—मैं० : फ़ुरूद आवरदन लोरिक लिबासे जोग व बख़ानः ख़ीश रफ़्तने लोरिक व बिरस्पति।

पाठान्तर—(१) १. मंडपि। (२) १. बी० सरगेहि आई। २. बी० बारि। ३. बी० निसि। (३) १. बी० सौ। २. बी० कैसे। (४) १. बी० दिनु झुरैं। २. बी० भुगति न जानैं पवनु। (५) १. बी० मदन। २. बी० सभारैं। ३ बी० पुकारैं। (६) १. बी० देहुरैं। २. बी० जानौ नावट उभवाई (नावित अभुवाइ—फ़ा०)। (७) १. बी० बगत सुनाय बहुत कौ। २. बी० आयौ।

अर्थ—(१) उस मुनिवर (लोरिक ने) योग का दर्शन (वेष) उतार डाला और मढ़ को छोड़ कर वह क्षत्रिय [अपने] घर गया। (२) [उधर] सूर्य (लोरिक) को [घर] भेज कर बृहस्पति गई और उसने चांदा नारी को वे बातें बताईं। (३) चांदा ने बृहस्पति से इस प्रकार कहा (पूछा), "बता कि मढ़ में वह मुनिवर कैसा है।" (४) [बृहस्पति ने कहा,] "उसके नेत्रों से दिन भर निरंतर रक्त [के आंसू] झड़ते रहते हैं; न वह भुक्ति (भोजन) जानता है और नींद और आहार जानता है। (५) मलिन [प्रकृति वाले] कामदेव के वेध को वह नहीं संभाल पा रहा है, इसलिए वह रात्रि भर खड़े-खड़े 'चांद' 'चांद' पुकारता रहता है। (६) वह [उस] देवल (देवालय) में सिर पीटता रहता है, मानो कोई नावित (दरसनिया) अभुवाता हो। (७) मैं [उससे] तंत्र (युक्ति) कहूँगी, किन्तु अभी तो मैं उसे वहाँ से मंदिर (घर) भेज कर आई हूँ।"

११. लोर धवलगृह-आरोहण खण्ड

(१८०)

'दिवस दहां दिसि' 'भैइ(भइं) भेइ(भइं?)' 'आवइ'।
चांद लागि निसि रोइ 'बिहावइ'।
'खिन एक' संग साथ 'नहि बइसइ'। कया अमर बिनु मंदिरि न 'पइसइ'।
मैनां आइ पाइ 'लइ' परी। लोरिक 'मंदिरि बइसु' इक घरी।
न्हाइ धोइ बस्तर 'पहिरावउं'। 'अउ' घसि 'अगरु सीतरु तनिलाऊं(वउं)'।
सेज बिछाइ फूल 'बरु दासउं'। पिरम लागि मनि 'सांति करासउं'।
उतरु न देहि 'पिरम' 'झल फूटा' मुई नारि 'बिललाइ'।
'सवन' 'न' 'सुनइ चंद्र परि' चिंता रहा नैन 'दुइ लाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १४९, बी० ५५३-५५५।

शीर्षक—मै० : अज़ सहरा बखानए आमदने लोरिक व पाय उफ़्तादने मैना ।

पाठान्तर—(१) १. बी० द्यौसदह दिस । २. मै० फिरि फिरि । ३. बी० आवै । ४. बी० बिहावै । (२) १. बी० कहन (खिन—फ़ारसी) वगत । २. बी० न बैसै । ३. बी० पैसै । (३) १. बी० लै । २. मै० बइसु कहूं । (४) १. बी० पहिराऊ । २. बी० औ । ३. मै० चंदन सीप भरावउं । (५) १. बी० भरि बासौ । २. बी० साति करासौ । (६) १. मै० पेम । २. बी० जानौ भूता । ३. बी० चिललाई । (७) १. बी० श्रवन । २. बी० में नहीं है । ३. बी० सुनै चंद । ४. बी० दोइ लाई ।

अर्थ—(१) [लोरिक] दिन में दसों दिशाओं में चक्कर लगा-लगाकर आता और रातें चांद के लिए रो-रो कर बिताता । (२) एक क्षण भी [किसी के] संग-साथ न बैठता और अमर (जीव) के बिना [हुई] उसकी काया मंदिर (भवन) में प्रवेश न करती । (३) मैनां आकर और [उसके] पैरों को पकड़ कर गिर पड़ी । [उसने कहा,] "लोरिक, घर में एक घड़ी [भर को] बैठो । (४) नहाओ, धोओ, तुम्हें वस्त्र पिन्हाऊं, और शीतल अगुरु घिस कर तुम्हारे शरीर में लगाऊं । (५) शैया बिछा कर उस पर भला फूल बिछाऊं तथा तुम्हारे प्रेम में लग कर मन को शांति प्राप्त कराऊं ।" (६) [फिर भी] वह उत्तर न दे रहा था और प्रेम की ज्वाला फूट पड़ी थी, [यह देख कर] नारी (मैनां) बिललाती मर गई (चिल्लाती रह गई) । (७) लोरिक कानों से सुन नहीं रहा था, [क्योंकि] वह, हो न हो, चंद्र (चांदा) का चिन्तन कर रहा था और [उसी के ध्यान में अपने] दोनों नेत्र लगाए हुए था ।

(१८१)

'मरउं मरउं कइ' दिवसु 'तुलांना' । रइनि 'चांद जउ दिएउ पयानां' ।
चला बीरु बनखंड 'हइ' जहां । सिंघ 'संदूर' चिघारहिं' तहां ।
सगर दिवस 'तिन्ह सेती भवै(वइ)' । 'रइनि' आइ गोवर महिं 'गवइ' ।
'मकु' चांदा खिन 'इकु दिखरावइ' । 'तेहिं असरें' निसि 'गोवरां आवइ' ।
सरगपंथ 'दै(दइ)' लोचन 'लावइ' । 'पाउ धरत मकु' चांद दिषावै(वइ) ।

इन परि 'रइनि परावइ' 'दिन फुनि इनहीं' भांति ।
'चांद' सनेह 'बउरावा' तिल इक 'होइ' न सांति ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १५०, बी० ५५६-५५८ ।

शीर्षक—मै० : सहरा गिरफ़्तने लोरिक अज़ कमाल फ़िराक़ चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० रैनि चांद जौ दिहौ पयाना । २. बी० मरौं मरौं कै । ३. मै० तुलाना । (२) १. बी० है । २. बी० सिधौर । ३. मै० झकारहिं । (३) १. मै० तिन सेती भवै । २. बी० रैनि । ३. बी० गमै । (४) १. बी० मुकु । २. बी० दिखरावा । ३. बी० तिहि असिरैं । ४. बी० गोवर आवा । (५) १. मै० दोइ । २. बी० लावै । ३. बी० पाव धरत मुष । ४. मै० चांदा आवइ । (५) १. बी० रैन बौरावै । २. मै० अउ दिन फुनि इहि । (७) १. मै० चांदा । २. बी० बौरायो । ३. बी० होय ।

अर्थ—(१) [उस दिन] रात्रि में [मढ़ी से] जब चांद (चांदा) ने प्रयाण दिया (किया), तब से 'मर रहा हूं', 'मर रहा हूं' करते-करते दिन हो आया । (२) और वह वीर वहां के लिए चल पड़ा जहां बनखंड था; वहां सिंह तथा शार्दूल (शरभ) चीत्कार कर रहे थे । (३) सारे दिन वह उनके साथ भ्रमण करता रहता और रात्रि में गोवर में आकर विचरण करता । (४) चांदा एक क्षण के लिए दिखाई पड़ती, इसी आसरे से वह रात में गोवर आता । (५) नेत्रों को वह आकाश के मार्ग में देकर लगाए रखता और [वह इस आशा से] पैर रखता कि [किसी झरोखे में] चांदा दिखाई पड़ जाती । (६) इसी रीति से वह रातों को भगाता (बिताता) और पुनः दिनों को भी इसी भांति से [भगाता-बिताता] । (७) चांदा के स्नेह ने उसे बावता कर दिया था, [जिसके कारण] एक तिल भी शांति उसे नहीं होती थी ।

(१८२)

परी 'केवच्छ' सेज न[हि] 'भावइ' ।
'रइनि'चांद 'बिहफइ जो बोलावइ' ।
'कह तेहिं सू(सु)रिजु कवन' घर बसा ।
'बिख' सिर चढ़ा 'चेतु मोर' डसा ।
'जहं कहुं होइ तेहिं जाइ बोलावहि' ।
सूरिजु आनि सेज 'बइसावहि' ।
चांद 'मरति लइ' सू(सु)रिजु 'जियावइ' ।
'तउ का करबि मरें हुत' 'आवइ' ।
आनि बिरसपति 'तो' पा सरनां । रै(रइ)नि दिवस आहि मोहिं मरनां ।

'आंगि दाह' मनि चटपटी घरु बाहरु न सुहाइ ।
चांद 'न जीयइ भानु बिनु' आनि बिरसपति जाइ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५१, बी० ५५९-५६१ ।

शीर्षक—मैं० : बेक़रार शुदने चांदा अज़ कमाल इश्क़ लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कवीछ । २. बी० सुहाई । ३. बी० रैनि । ४. बी० दिवि पैं जु बुलाई । (२) १. बी० सुरिजु कहौ कौन । २. बी० पष (बिख—फ़ारसी) । ३. बी० चित्तु मोर । (३) १. बी० जौ कहीं परि-क(का)रि बुलावौहु । २. बी० बैसावहु । (४) १. बी० मरत पैं (लइ—फ़ा०) । २. बी० जिवावैं । ३. बी० तो को करिबि मुये हितु । ४. बी० आवै । (५) १. मैं० सो । २. मैं० राति । (६) १. बी० आंग दौह । (७) १. बी० भांन बिनु न जीवै ।

अर्थ—(१) [उधर] चांदा को शैया न भाती, [जैसे] उस पर केवांच पड़ी हो, और रात्रि में वह बृहस्पति को बुलाती । (२) उससे वह कहती (पूछती), "सूर्य (लोरिक) किस घर में बस रहा है ? [उसके विरह का] विष मेरे सिर पर चढ़ा हुआ है और मेरी चेतना को डस रहा है । (३) वह जहाँ-कहीं भी हो, जाकर उसे बुला दे और उस सूर्य (लोरिक) को लाकर [मेरी] शैया पर बिठा दे । (४) सूर्य (लोरिक) को ला कर मरती हुई चांद (चांदा) को जीवित कर, [अन्यथा] तब मैं [उसे] क्या करूंगी जब वह [मेरे] मरने पर आएगा ? (५) ऐ बृहस्पति, तू उसे लाए, मुझे तेरे पैरों की शरण है, [अन्यथा] मुझे रात-दिन मरना ही है । (६) [मेरे] अंगों में दाह रहता है और मन में विकलता रहती है, घर और बाहर [कुछ] सुहाता नहीं है । (७) चांद (चांदा) भानु (लोरिक) के बिना नहीं जी सकती है, [इसलिए] ऐ बृहस्पति, तू जा कर उसे ला ।"

(१८३)

'हउं' निसि चांद सुरिज कब 'पावउं' ।
दिवसु होइ 'चढि' सरगि' बोलावउं' ।
बांधी 'पंवरि पंवरिया' जागहिं । तसकर 'बैरि' देखि 'डरि भागहिं' ।
'तिवइहि' 'कहां एत बउसाऊं' । 'रइनि कांप हिय उठइ' न पाऊं ।
पावस राति देखि अंधियारी । 'कितु हुत सू(सु)रिजु हंकारउं' बारी ।
जो' मन' रूच 'सो मिलइ' न बारा । 'भूष कि पावै(व)हि अंब सहारा' ।

दिवस चारि तुम्हं 'साधन' 'एहि' जोबन कइ 'आस' ।
चांद 'सुरिजु' 'मइं मेरउब' 'मानिहु भोग बिलास' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५२, बी० ५६२-५६४ ।

शीर्षक—मैं० : अैज़न दर बेक़रारी चांदा गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ । २. बी० पाऊ । ३. बी० चरि । ४. बी० सरगि बुलाऊ । (२) १. बी० पौर पौरिया । २. बी० बीर (बैरि—फ़ारसी) । ३. बी० डर भागैहि । (३) १. बी० तिवइ । २. बी० येत कहा बौसाऊ । ३. बी० रैनि कांपैहि उठै । (४) १. बी० कत हुतैं सुरिजु बुलाऊ । (५) १. बी० मनु । २. बी० सि मिलै । ३. मैं० भूषौं आंत कि पाग संवारा । (६) १. बी० साधैहु । २. बी० इहि । ३. बी० तास । (७) १. मैं० सूरिजु (सुरिजु—ना०) । २. बी० मै मिरऊ । ३. बी० मानहु भोग बिरास ।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "ऐ चांदा, मैं रात में सूर्य (लोरिक) को कब पा सकती हूँ ? दिन हो तो आकाश पर चढ़ कर उसको बुलाऊं भी । (२) पौरियों को बंद कर पौरिए जागते हैं, और तस्कर (चोर-डाकू) तथा बैरी [भी] उन्हें देख कर भाग निकलते हैं । (३) इतना व्यवसाय (पौरुष) [मुझ] स्त्री में कहा है ? रात्रि में हृदय कांपता है और पैर नहीं उठते हैं । (४) वर्षा की अंधेरी रात को देख कर मैं, हे बालिका, कहाँ से सूर्य (लोरिक) को हँकारूं (बुलाऊं) । (५) मन को जो रुचता है, हे बाला, वह नहीं मिलता भूखा क्या सहकार आम्र पाता है ? (६) हे भली स्त्री, चार दिनों तक ही है । तुम्हें इस प्रकार यौवन की आशा करनी है (उसका आसरा देखना है) । (७) [उसके बाद] मैं, हे चांद, सूर्य (लोरिक) को [तुम से] मिलाऊंगी, [और] तुम भोग-विलास मानना ।"

(१८४)

उतरी चांद 'बइठि' पटसारा । उदिनल भानु 'किएसि' उजियारा ।
चली बिरसपति 'झमके पाहां' ।
'डंडकारन (डंडक अरन)' 'ब्यंझ (बिंझ)' बन माहां ।
जाइ तुलानि बीर 'कें बासा' । 'सींह संदूर' फिरहिं चहुं पासा ।
देखा लोर बिरसपति आई । नैन रगत भरि नदी बहाई ।
बिरसपति तोर पंथ 'हउं जोंवउं' । खिन इकु राति 'दिवस' 'नहिं' 'सोंवउं' ।

'काहि' संदेसु 'कहि पठऊ(वउं)' 'को रि(रे) जनावै(वइ)' बात।
कारि राति 'बन अंधिया(य)र' 'अउ हउं' 'चांद' चांद चिललात ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५३, बी० ५६५-५६७।

शीर्षक—मैं० : फ़ुरूद आमदने चांदा अज़ क़स्र व फ़रिस्तादने बिरस्पति रा बर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बैसि। २. बी० द्योसु। (२) १. बी० झबकी बाहां (पाहां—फ़ारसी)। २. बी० डंडाकार। ३. मैं० बीच। (३) १. बी० कैं पासा ('पासा' दूसरे चरण का भी तुक है)। २. बी० सिंघ सिधौर। (५) १. बी० मैं जोऊ। २. बी० दिवसु। ३. मैं० न। ४. बी० सोऊ। (६) १. मैं० कहि। २. मैं० जेहिं पठई। ३. मैं० कवन जनाए। (७) १. बी० मोहि दूभर। २. बी० में नहीं है। ३. बी० संवरि।

अर्थ—(१) चांद [भवन के ऊपरी खंड से] उतरी और पटशाला में जा बैठी [तब] उदीयमान भानु ने प्रकाश किया। (२) बृहस्पति झमकते हुए पैरों से (तेजी से) विंध्य वन के दण्डकारण्य में चल कर गई। (३) वह [लोरिक] बीर के निवास पर जा पहुँची, सिंह तथा शार्दूल (शरभ) उसके चारों ओर फिर रहे थे। (४) लोरिक ने देखा कि बृहस्पति आई हुई थी, तो उसने नेत्रों में रक्त भर कर उसकी नदी बहा दी। (५) [उसने कहा,] "ऐ बृहस्पति, मैं तेरा मार्ग देख रहा हूँ, और रात-दिन में एक क्षण भी नहीं सो रहा हूं। (६) मैं किससे सन्देश कह कर भेजूं और कौन [मेरी] बात (वार्ता) जनाए (सूचित करे)? (७) काली रात [जैसा] अंधकारपूर्ण वन है, और मैं [उसमें] 'चांद' 'चांद' चिल्लाता हूं।"

(१८५)

'तोरिइं पीर लोर हउं' पीरी। पान न 'खांडौं(डउं)' 'एकउ' बीरी।
अब 'मइं तो कहं' गुनु उपराजा। 'हिरदइं मंतु रइनि एक' साजा।
'पवंरि' पंथु 'तोहि' जाइ न जाई। बारकु 'होइ तउ' लेउं लुकाई।
'उटउ' बीर 'जउ' 'उटवइ' पारसि। सरग पंथ 'जउ चढ़त' संभारसि।
'कइ' कारन 'हनिवन' बरु बांधसि। 'कइ' कर लाइ 'पुंख' सर सांधसि।
'कइ रे' फांस 'बरु मेलसु' 'जउ' 'रे' सरगि 'चढ़ि' जासु।
'कइ रे' चांद 'रवि(रबि)' 'भूंजसु' 'दुहुं तस सरग निबा(वा)सु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १५४, बी० ५६८-५७०।

शीर्षक—मैं० गुफ़्तन बिरस्पति बर [?]।

पाठान्तर—(१) १. बी० तोरि पीर लोरिक हौं। २. मैं० खाडउं (खांडउं—ना०)। ३. बी० येकै। (२) १. बी० मैं तो कौ। २. बी० हिरदै मंतरु रैनि कौ। (३) १. बी० पैरि। २. बी० तुहि। ३. बी० होउ तौ। (४) १. बी० उटै। २. बी० जै। ३. बी० उटवैं। ४. बी० जौ चरे। (५) १. बी० कै। २. बी० हनवंत। ३. बी० पांख। (६) १. बी० कै रु। २. बी० बर मेल्हसि। ३. बी० तौ। ४. बी० रु। ५. बी० चरि। (७) १. बी० तौर। २. 'रवि' पाठ दोनों प्रतियों में है। ३. बी० भूजसि। ४. बी० बैठि सरग कैं पासि।

अर्थ—(१) [बृहस्पति ने कहा,] "तेरी ही पीड़ा से, ऐ लोरिक, मैं [भी] पीड़िता हूं: [एक] बीड़ा भी पान मैं नहीं खंडित कर रही हूं। (२) अब मैंने तेरे लिए [एक] गुण (उपाय) उत्पादित किया है, हृदय में मैंने रात में एक मंत्र साजा है। (३) पौरी के मार्ग से तुझसे जाया न जाएगा, यदि कोई बालक हो तो मैं उसे छिपा भी लूं। (४) ऐ बीर, तू पुरुषार्थ कर, यदि तू पुरुषार्थ कर सके, यदि तू आकाश के मार्ग पर चढ़ते समय अपने को संभाल सके। (५) या तो [उसके ?] कारण तू हनुमान का बल बांधे, और या तो तू हाथों से लगा कर पुंख (बाण के अग्रभाग) में शर (सरकंडा) लगाए। (६) यदि तू आकाश (धवलगृह के ऊपरी भाग) पर [किसी युक्ति से] चढ़ कर जा सके तो या तो तू [अपने गले में] फांसी लगाएगा, (७) और या तो तू, ऐ सूर्य, चांद (चंद्र) का भोग करेगा; दोनों ही प्रकारों से तुझे स्वर्ग का निवास [प्राप्त] होगा।"

(१८६)

'जउ सो' बचन बिरसपति कहा। 'लोरिक बीरु' 'हियइं' 'गहगहा'।
मन रहंसा कह आजु 'मेरावा'। 'जेहि लगि' 'सुरिजु रैनि दिन' धावा।
बिरह झार आछत 'कुंबिलानां'। रहंसा 'कुवरु(कंवरु)' भांति 'बिगसानां'।
सो मोहि बाट आइ दिखराऊ। 'जेंहि चढ़ि' जांउं चांद कर ठाऊ।
धनसो राति जेहि सजन 'मिलाईहि'। चांद सुरिजु 'दुइ' 'कोड' 'कराईहि'।
चली बिरसपति सरगेहि सूरिजु 'गोहनि' लाइ।
जहां चांद निसि 'बिसवइ' गई 'सो' पंथ 'दिखाइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५५, बी० ५७१-५७३ ।

शीर्षक—मै० : बुरदने बिरस्पति लोरिक रा व नमूदन राहे क़स्र चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जौ ये । २. मै० लोर । ३. बी० हिये । ४. मै० कै गहा । (२) १. बी० मिलावा । २. बी० जिहि लगु । ३. मै० सूर सरग चढि । (३) १. मै० कुंमिलाना । २. मै० कंवल । ३. मै० बिहसाना । (४) १. बी० जिहि कर । (५) १. बी० मिराहीं । २. बी० दोइ । ३. मै० गवन । ४. बी० कराहीं । (६) १. बी० गौहनि । (७) १. बी० बिसई । २. बी० जु । ३. मै० दिखराइ ।

अर्थ—(१) जब बृहस्पति ने यह वचन कहा, लोरिक वीर हृदय में गद्‌गद हो गया । (२) वह मन में हर्षित हुआ और उसने कहा, "आज मिलाप होगा, जिसके लिए सूर्य (लोरिक) रात-दिन दौड़ रहा था ।" (३) विरह-ज्वाला से वह कुम्हलाया हुआ था, [अब] वह हर्षित हो गया और कमल की भांति विकसित हो गया । (४) उसने कहा, "तू आकर मुझे वह बाट दिखा, जिस पर चढ़कर मैं चांद के स्थान पर जा सकं । (५) वह रात धन्य होगी जिस रात में स्वजन मिलेंगे और चांद (चांदा) तथा सूर्य (लोरिक) दोनों क्रीड़ा करेंगे ।" (६) बृहस्पति सूर्य (लोरिक) को साथ लगाकर आकाश (धवलगृह) की ओर चली, (७) और जहां पर चांदा रात में विश्राम करती थी, वह (उसका) मार्ग [लोरिक को] दिखा गई ।

(१८७)

पाट 'पढीनां' लोर बिसाहा । 'बरति' साठि गुन कीत बराहा ।
मयन मांजि लोरिक तस तानां । 'जानु' सरंग 'कहं रचे' बिवानां ।
मुख भुवंग 'जनु धर हुत' काढ़ा । हाथ तीस 'एक आछइ' ठाढ़ा ।
अंकुरी सार'करी'तेंहि लाई । जिहि'परी(रि)परइ' तेहि निछुटि न जाई ।
खंड खंड लाग फांद 'सै चारी' । बीर पाउ जहं 'धरइ' संभारी ।
देखि पूछ अस मैनां बरहा 'करियहु' काह ।
'परइ' भइंसि अति' मारग 'बांधइ 'चाहत' 'आहि' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १५६, बी० ५७४-५७६ ।

शीर्षक—मै० ख़रीदने लोरिक अफ़रेशम ख़ाम बराए साख़्तने कमंद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बुढनिया । २. बी० बरत । (२) १. बी० जानौ । २. बी० कौ रचे । (३) १. मै० हुत जनु धर, बी० जानौ धर तें । २. बी० यक आछै । (४) १. बी० गढी । २. बी० रु (५) १. मै० संचारी । २. बी० जहां धरै । (६) १. बी० करिहौ । (७) १. बी० बुरी (परइ—फ़ा०) । २. बी० मारनि । ३. बी० बांधी । ४. बी० आह ।

अर्थ—(१) लोरिक ने पढीना (?) पाट (पटसन) मोल लिया और उसको साठ गुण बट कर उसने एक बरहा (रस्सा) बनाया (तैयार किया) । (२) मोम से मांज कर उसे उसने इस प्रकार ताना (तान कर खड़ा किया) कि मानो आकाश के लिए उसने विमान रचा हो, (३) अथवा मानो वह किसी भुजंग (सर्प) का मुख हो जो धड़ [अथवा धरा] से निकाला हुआ और तीस हाथ की ऊंचाई तक खड़ा हो । (४) उससे लगा कर फौलाद की एक आंकड़ी उसने की, कि जो जिस प्रकार से भी पड़े उसी प्रकार से वह छूट कर न जाए । (५) खंड-खंड पर [उसमें] चार सौ फंदे लगे हुए थे, जिन्हें पकड़ कर वह वीर संभाल कर पैर रखता । (६) उस [बरहे को] देखकर मैनां पूछने लगी, "यह बरहा क्या करोगे ? (७) [लोरिक ने कहा,] "[मेरी] भैंस मार्ग में अत्यधिक [इधर-उधर] पड़ती रहती है, इससे उसी को बांधना चाहता हूं ।"

(१८८)

छठि भादवं निसि भइ अंधियारी । नैन न 'सूझइ' बांह पसारी ।
चला बीरु बरहा कर लावा । जिय 'के परें' दूसर न बोलावा ।
घन 'गरजइ' भरि 'दइउ' बरीसा । 'खोरि भरी जनु' बाट न दीसा ।
दादुर 'ररहिं' बीजु 'चमकाई' । 'अइस न जान कवनि दिसि जाई' ।
'मसियरु' देखि 'झरोंखइं' पासा । 'लोरिक जान' 'नखत परगासा' ।
'चित (चित्त)' भुलान 'न संभारा' मंदिर 'कवनि दिसि आहि' ।
दिवसु होत तौ(तउ) 'चित(चित्त)धरउं' 'इतरु गहउं तउ' काह ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १५७, बी० ५७७-५७९ ।

शीर्षक—मै० रवां शुदने लोरिक दर शबे तारीक····· (अपाठ्य) सूए क़स्र चांदा ।

बी० : फासा मेला—जो प्रतिलिपिकार से भिन्न व्यक्ति द्वारा दिया हुआ ज्ञात होता है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सूझै ।(२) १. बी० क बरीति ।(३) १. बी० गरजै । २. बी० देव । ३. बी० खोर भरे जानौ । (४) १. बी० रढै । २. बी० चमकाही । ३. बी० अैस न जानै कै दिस जाहीं । (५) १. बी०

मसिहरु । २. बी० झरोषै । ३. बी० लोरिक जानै, मै० लोर जान । ४. बी० निषतु परकासा । (६) १. बी० चित । २. बी० न सभारै । ३. बी० कौहु दिस आह । (७) १. बी० जिउ धरिये । २. बी० उतरु (इतरु—फ़ा०) करौ तौ ।

अर्थ—(१) भादों की छठी तिथि को [जब] अंधेरी रात हुई और बाँहें फैलाइए तो वे [अपने ही] नेत्रों से नहीं सूझती थीं, (२) वह वीर चल पड़ा । हाथ में वह उसने बरहा लगा लिया और अपने जीव के अतिरिक्त किसी दूसरे को उसने न बुलाया । (३) घन गरज रहे थे और दैव भरपूर बरस रहा था, खोरियां (गलियां) भरी हुई थीं, मानो मार्ग नहीं दिखता था । (४) दादुर चिल्ला रहे थे और बिजली चमक रही थी, ऐसा नहीं जान पड़ रहा था कि किस दिशा में जाइए । (५) झरोखे के पास [जल रहे] मशालों को देख कर लोर ने समझा कि नक्षत्रों का प्रकाश था । (६) [उसने कहा,] "चित्त भ्रमित हो गया है, इसलिए वह यह नहीं स्मरण कर रहा है कि [चांदा का] मंदिर (भवन) किस दिशा में है । (७) दिन होता तो चित्त में [उसके मंदिर को] धारण करता; यदि इतर [मंदिर] पकड़ूं तो क्या [लाभ] होगा ? ।"

(१८९)

'कौंधा लौकें भा' उजियारा । 'चरचा' लोरु मंदिर मंसियारा ।
'संवरेसि' 'भीम केर बउसाऊ' । 'मेलेसि' बरह रोपि धर पाऊ ।
परा बरहु 'तउ' चांदा जागी । 'अंकुरी देख' चौखंडी लागी ।
'झांखा' चांद लोरु तरि आवा । अंकुरी काढ़ि बरहु छिटकावा ।
'जेउं जेउं' मेलि मंदिर पर जाई । हंसि हंसि चांदा देइ छिटकाई ।
'एक बार' बर 'आनउं मेलउं' 'बरह' फिराइ ।
'काटउं ठौर' तीस 'एक' 'जउ' न मंदिर पर जाइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५८, बी० ५८०-५८२ ।

शीर्षक—मै० : दर फ़र्सीदन बर्क़ व शिनाख्तन लोरिक ख़ान: चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कवधा लवकै भया । २. मै० चरचिया । (२) १. बी० सवरसि । २. बी० भीव केर बैसाऊ । ३. बी० मेलसि । (३) १. बी० तब । २. बी० अंकुर देषि । (४) १. बी० झाका । (५) १. बी० ज्यैं ज्यैं । (६) १. बी० ये । २. बी० नैं मिलिवो । ३. बी० बहुरि । (७) १. बी० काटौ ठाव । २. बी० यक । ३. बी० जो ।

अर्थ—(१) [जब] बिजली के चमकने से प्रकाश हुआ, तब लोर ने [चांदा के] मंदिर के मशाल को जान लिया । (२) उसने भीम के पौरुष का स्मरण किया, और धरा पर पांव रोप (स्थित) कर उसने बरहा डाला (फेंका) । (३) बरहा पड़ा, तब चांदा जाग गई, और उसने देखा कि [बरहे की] आंकड़ी चौखंडी में लगी हुई थी । (४) चांदा ने झांका तो देखा कि लोर नीचे आया हुआ था, तो उसने आंकडी निकाल कर बरहे को छिटका दिया । (५) जैसे-जैसे (जब जब) वह बरहा मंदिर पर मेला (फेंका) जाता, चांदा हंस-हंस कर उसे छिटका देता । (६) [लोरिक ने कहा,] "एक बार [और] बल लाऊं (एकत्रित करूं) और बरहे को फिरा कर डालूं (फेंकूं) । (७) यदि यह मंदिर पर [फिर भी] न जाए, तो इसे तीस-एक स्थानों पर काट डालूं ।"

(१९०)

चांद कहा अब लोरिकु 'जाइहि' । मन उतरें 'फुनि फिरि नहि आइहि' ।
'हउं असि बोलिउं' चतुरि सयानी । बरहा 'छाडिउं कवनि' अयानी ।
हाथ क मानिकु 'समंदियहिं राई' । 'मुइय' 'सो' हाथ 'न चढई' आई ।
'कइ औगुन' 'भयं मइं गुनु' तोरा । परा 'बरहु' 'बुधि' 'हीनिइं' छोरा ।
'दइय' ठाउं जउ मांगा 'पावउं' । 'मेल बरहु खांभहि' 'लइ लावउं' ।
'दइय बिधाता बिनवउं' सीसु नाइ कर जोरि ।
परा 'फांद पुनि मोरें' 'जाइ बरहु जिनि तोरि' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १५९, का०, बी० ५८३-५८५ ।

शीर्षक—मै० : अफ़सोस करदन चांद बाज़ गुज़ाश्तने कमंद ।

का० : अफ़सोस करदन चांदा गुज़ाश्तने कमंद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैहै । २. बी० फिरि बहुरि न अैहै । (२) १. बी० हौं कस बोलियों । २. बी० छाड्यैं कौंन । (३) १. का० समदि बडाई, बी० समदिया राई, मै० समदियहिं राई । २. मै० बहुरि, का० मुएहु । ३. बी० स । ४. बी० न चरई । (४) १. बी० कै ओगन । २. मै० मयं बाएं कइ, बी० मैं सो गुनु । ३. बी० फंधु । ४. का० में नहीं है । ५. बी० हीनी । (५) १. बी० दई । २. बी० पाऊ । ३. का० मेली (मेलि) बरह खांभ (खांभहि), बी० मेलैं बरहु षंभि । ४. बी० लै लाऊ । (६) १. बी० दई बिधात बीनऊ । (७) १. बी० फासु बसि मेरैं । २. का० अपाठ्य है, बी० जाय बरहु जिन तोरि ।

अर्थ—(१) चांद (चांदा) ने [मन में] कहा, "अब लोरिक [चला] जाएगा, और मन के उतर जाने पर वह पुनः न आएगा। (२) मैं ऐसी चतुरा और सयानी कहलाती रही हूं, तब मैंने [उसके द्वारा फेंके हुए] बरहे को किस अज्ञान के कारण छोड़ दिया? (३) हाथ का माणिक्य यदि राजा को समंद (भेंट कर) दीजिए, तो वह पुनः हाथ नहीं चढ़ता (आता) है। (४) अवगुण (अपवाद) का भय करके मैंने [लोरिक का] गुण (फंदा) तोड़ दिया (छिटका) और पड़े (लगे) हुए बरहे को मुझ बुद्धिहीना ने खोल दिया। (५) [अब तो] यदि दैव के स्थान (दरबार) में मांगा हुआ पाऊं और वह बरहे को मेले (फेंके), तो मैं उसे लेकर खंभे से लगा दूं। (६) दैव और विधाता से मैं सिर नमित कर और हाथ जोड़ कर विनय करती हूँ (७) कि [अब] फंदा [मेरे मन में] पड़ गया है, इसलिए ऐसा न हो कि वह (लोरिक) बरहे को तोड़ कर चला जाए।"

(१९१)

'बीर भुआ बर' बरहु फिरावा। 'तस मेलेसि जस निछुटि' न आवा।
परा बरहु 'तउ' चांदा धाई। 'अंकुरी' मंदिर खांभ 'लइ' लाई।
रहा बरहु लोरिक 'धरि' तानां। माल 'जुगुति पउ धरेसि सुआनां'।
बीर परान 'बरन गुन काहा'। 'बेडिनि' बांस 'चढ़ति जनु आहा'।
'चांदइं देख लोरिकु' गा आई। सेज 'सुभर होइ' 'बिसई' जाई।
'चढ़ा' लोरु धौराहरि 'देखेसि' बिषम अवास।
सरग 'नियर' धर औहट रांध न 'केऊ' पास॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६०; का० के प्राप्त अंशों में यह छंद नहीं है किन्तु पूर्ववर्ती छंद के बाद उसमें इस छंद का तर्क "बीर भुआ" है अतः का० में भी इसका रहा होना प्रमाणित है; बी० ५८६-५८८।

शीर्षक——कमंद अंदाख्तने लोरिक व रिहा करदने चांद बसतून।

पाठान्तर—(१) १. बी० बीरि भुवारि। २. बी० तैस मेला जैसै बहुरि। (२) १. बी० तब, मै० तउ तिरि। २. बी० अंकुरि। ३. बी० लै। (३) १. बी० भरि। २. बी० जुगति पगु धरसि बिवाना। (४) १. बी० बरंगै (बरन गुन—फ़ा०) कहा। २. बी० नाचनि। ३. बी० चरति जैसै अहा। (५) १. मै० चांदइं देख लोर, बी० चांद देषि लोरिकु। २. बी० नभर भै। ३. मै० बिसवइं। (६) १. बी० चरा। २. बी० देषति। (७) १. बी० नीरै। २. बी० कौउ।

अर्थ—(१) वीर [लोरिक] ने भुजाओं के बल से बरहे को चक्कर दिया और ऐसा डाला (फेंका) कि वह [पुनः] खुल कर न आता। (२) बरहा जब पड़ गया, तब चांदा दौड़ी [आई] और उसकी आंकड़ी को लेकर उसने मंदिर के खंभे में लगा (फंसा) दिया। (३) जब बरहा रह (रुक) गया, तब उसको लोरिक ने पकड़ कर ताना (खींचा) और उस सुजान ने मल्ल की युक्ति से [उस पर] पैर रक्खा। (४) उस वीर के प्राणों (पुरुषार्थ) के गुण का क्या वर्णन किया जाए? मानो कोई बेड़िन (नट का खेल दिखाने वाली स्त्री) बांस पर चढ़ रही हो। (५) चांदा ने देखा कि लोरिक आ गया था, तो वह शैया में सुभर होकर (फैल कर) जाकर विश्राम करने लगी। (६) लोरिक जब धवलगृह (प्रासाद) पर चढ़ गया, उसने उस विषम आवास को देखा। (७) वह ऐसा था कि आकाश उसके निकट था और धरती ओहट (दूर) थी, न कोई रांध (निकट) में था और न पास में।

(१९२)

लोरिक 'लीति' खांभ 'परिछांहीं'। सो 'देखिसि जो देखा' नाहीं।
'दिया साठि तिरि खांभइं बरहीं'। जगमग रतन पदारथ करहीं।
'हियरइं' हारु 'धरि(री) तसि' जोती। सरग नखत 'जनु बइठें' मोती।
चेरी 'सोइ जो' पहरे गई। 'जानु' अकासि 'कचपची' उईं।
'बिसवइ' चांद संपूरन 'जहां'। मानिक 'जोति तराइनि' 'तहां'।
'रइनि' मांझ 'जस' दिनु भा नांही 'पैर पराउ'।
'चढ़ि' 'लोरिक' 'सो' देखा जो न 'दीख हुत' काउ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६१, बी० ५८९-५९१।

शीर्षक—मै० : बर बालाए क़स्र ईस्तादने लोरिक व दीदने तमाशाए ख़्वाबगाहे चांदा व खुफ़्तने कनीज़गान।

पाठान्तर—(१) १. बी० लीन्ह। १. बी० परछाही। ३. बी० देषा जो देषसि। (२) १. बी० दियर साठि नौ षंभ बराही। (३) १. बी० हीयरै। २. बी० धरा तस। ३. बी० जानौ बैठे। (४) १. बी० सोय जु। २. बी० जानौ। ३. बी० किरकची। (५) १. बी० बिसई। २. मै० तहां। ३. बी० दिपैहि तरायन। ४. मै० जहां। (६) १. बी० रैनि। २. बी० जैसौं। ३. बी० बीर बराउ (पैर पराउ—फ़ा०) (७) १. बी० चरि। २. मै० लोर। ३. बी० अ [स]। ४. बी० देखो हुति।

अर्थ—(१) लोरिक ने खंभों की प्रतिच्छाया (आड़) ली और उसने वह देखा जो [पहले कभी] नहीं देखा था। (२) साठ दीपक तीन (?) खंभों पर जल रहे थे, और रत्न तथा पदार्थ (बहुमूल्य पत्थर) जगमग कर रहे थे। (३) [चांदा के] हृदय पर के हार ने भी वैसी ही ज्योति धारण कर रक्खी थी और उसमें जो मोती बिठाए हुए थे, वे [ऐसे लग रहे थे] मानो आकाश में नक्षत्र हों। (४) चेरियाँ जो पहरे के लिए जाकर सोई हुई थीं, वे [ऐसी लग रहीं थीं] मानो आकाश में कचपचियां उदित हुई हों। (५) सम्पूर्ण चांद (चांदा) जहां पर विश्राम कर रही थी, वहां पर माणिक्यों की ज्योति ही तारिकाओं की ज्योति हो रही थी। (६) रात्रि में ही जैसे दिन हो रहा थां [इसलिए लोरिक के] पैंर नहीं पड़ रहे थे। (७) लोरिक ने चढ़ कर वह देखा जो उसने [पहले] कभी न देखा था।

(१९३)

झारि चौखंडी ईंगुर बानी। चित्र उरेह 'कींन्ह' 'सोनवानी'।
लंक 'उरेहि' भभीखनु 'रेहा'। 'संची' 'मानु दसगियं कइ' देहा।
'छीतां' हरन राम संगरामू। दर 'पांडव' कुरखेत 'क' ठाऊं।
'खरपरा' चोरुकौडिया जुआरू। 'उजइनी(नि)' 'नगरी' अगियाबेतारू।
'मांझ ही(हि ?) पंडु काबि लिहि' लावा। 'चकाबूह' 'अरियहु' उचावा।
सींह 'संदूर' 'मिरिग मिरिगाबन' 'सावज' 'अनवन' भांति।
कथा 'काबि' सिरलोक नटारंभ 'लिखी (खि)' लाए चहुं पांति॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६२, शि०, बी० ५९२-५९४।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते नक़्शकारी चौखंडी। शि० में शीर्षक, (३), (६)।२ तथा (७) अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० की (किए—फ़ा०)। २. बी० सुनवांनी। (२) १. बी० उरेह। २. बी० रहा। ३. शि० संचीं, बी० साजी। ४. बी० मुन दसगैं की। (३) १. मैं० सीता। २. बी० पंडौ। ३. बी० का। (४) १. मैं० करिया, बी० षपरा। २. बी० उजिन। ३. शि० में स्पष्ट नहीं है, बी० नयरु। (५) १. बी० माछी व्यंदु खाभ लै। २. बी० चंकबोह। ३. बी० आरोहि। (६) १. बी० सिंधौर। २. मैं० मिरिघ मिरिघाबन, बी० मिरग मिरगावा। ३. मैं० में नहीं है। ४. बी० अन [अन]। (७) १. बी० काब्य। २. बी० लिखै (लिखी : लिखि—फ़ा०)।

अर्थ—(१) [उसने देखा कि] सारी की सारी चौखंडी ईंगुर के वर्ण की थी, और उसमें चित्रों का उरेह (उल्लेखन) सोने के पानी से किया हुआ था। (२) लंका को उरेह कर [उसमें] विभीषण को उरेहा गया था, और दशग्रीव की देह मानो [उस में] संची हुई थी। (३) सीता-हरण और राम का [रावण से हुआ] संग्राम, पांडव-दल तथा कुरुक्षेत्र का स्थान भी [उरेहे हुए थे]। (४) खर्पर चोर और कौड़िया (कौड़ी ढालने वाले) जुआड़ी उरेहे हुए थे, उज्जयिनी नगरी और [उसमें] अगिया वैताल उरेहे हुए थे। (५) मध्य में ही पांडवों का काव्य (महाभारत ?) अंकित कर लगाया हुआ था, और वह चक्रव्यूह [अंकित हुआ] था, जिसे शत्रुओं ने उठा रक्खा था। (६) सिंह, शार्दूल (शरभ), मृग, मृगारण्य और श्वापद (हिंस्र जंतु) अनवन (अनहोने) भांति के [उरेहे हुए] थे। (७) कथा काव्य के श्लोक और नाट्यारंभ (नाट्य ग्रंथ) चार पंक्तियों में लिख (उरेह) कर लगाए हुए थे।

(१९४)

'लवटि देख जउ' कूंकू लोरा। चंदन घसि भरि धरे कचोरा।
'बेनां' परिमलु अति औछरा। 'ठौर ठौर' खर तेलिया जरा।
मेघ सुगंध 'आहि' असरारू। चोवा बास 'होइ' महंकारू।
खैर कपूर सुरंग सुपारी। पान अडागर धरे संवारी।
नरियर दाख चिरौंजी 'आहा'। खांड 'खंडौर' 'कहउं' तेहि काहा।
'लोरहिं लीन्हि खांभ' परिछाहीं 'परा जाइ' मुख 'जोव'।
धनु बिरास चांदा कर बासु 'मांति' निसि 'सोव'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६३, बी० ५९५-५९७।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते ख़ुशबूए हर जिन्स आरास्तः गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लवटि देषि जौ। (२) १. बी० बीना (बेना—फ़ा०)। २. बी० ठाव ठाव। (३) १. बी० अते। २. बी० होय। (५) १. बी० अहा। २. बी० गदौर। ३. बी० कहं। (६) १. बी० लोरु बैठ। २. बी० सिर उचाइ। ३. मैं० जोइ। (७) १. बी० मांत। २. मैं० सोइ।

अर्थ—(१) जब लौट (घूम) कर कूंकू लोरिक ने देखा, [उसे दिखाई पड़ा कि] चंदन घिसे जाकर कच्चोलों में भर कर रक्खे हुए थे। (२) बीरण (खस) का परिमल अत्यधिक उछल (महक) रहा था और स्थान-स्थान पर तेलिया प्रखर रूप से जल रहा था। (३) मेद की सुगंध असराल

(निरंतर) हो रही थी, और चोवा की महकीली वासना [भी] हो रही थी। (४) खैर (कत्था), कपूर, अच्छे रंग की सुपारी, तथा समूचे पान संवार कर रक्खे हुए थे। (५) नारियल, द्राक्षा, तथा चिरौंजी थे, और जो खांड तथा खंडौर (खण्डपूर—शक्कर के लड्डू) थे, उन्हें क्या कहूँ ? (६) लोर ने खंभों की प्रतिच्छाया ली और वह जा कर [चांदा का] मुख देखने लगा। (७) [उसने कहा,] "चांदा का विलास धन्य है, जो [सुवासों से] मत्त रात में सो रही है।"

(१९५)

पालिक सेज 'जो' आनि बिछाई। धरत पाउ भुइं 'लागइ' जाई।
पाट 'बिनी' 'अरु' 'फूल उभारी'। 'सोनइं झारी हांस कुंदारी'।
सुरंग चीरु इकु आनि बिछावा। धरती 'लागि' चहूं दिसि आवा।
'तेहि चढ़ि' सूति रवनि 'बेकरारा'। 'खोंपा' छूटि छिटकि गए बारा।
बहु 'भंति करी फूल बहु' बासी। करंडी चारि 'भोर भर दासी'।
लोरु 'जान अइ' बिसहर पुहुप बास रस आइ।
'मनसा' हाथ 'पसारइ' कांपि 'उठइ' डरपाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६४, बी० ५९८-६००।

शीर्षक—मैं० : सिफ़ते तख्ते ज़री व मुकल्लल व जवाहरब (?) चिराग़।

पाठान्तर—(१) १. बी० जु। २. बी० लागे। (२) १. बी० बुनें। २. बी० औ। ३. मैं० फूलन्ह भारी। ४. बी० सोनें झारे हंस कुडारी। (३) १. मैं० बइसि। (४) १. बी० तिहि चरि। २. बी० बिकरारा। ३. बी० खूंपा। (५) १. बी० भातें करि फूल औ। २. बी० सौरि पर डासी। (६) १. बी० जानये (आइ—फ़ा०)। (७) १. बी० मन सैं। २. बी० पसारै। ३. बी० उठौ।

अर्थ—(१) जो पलंग की शैया लाकर बिछाई हुई थी, वह पांव रखते ही भूमि से जा लगती थी। (२) वह रेशम से बिनी और फूलों से उभाड़ी हुई थी। वह सोने की झाली (पानी चढ़ाई ?) हुई और हांस (?) की कुंदारी (कुंदी की) हुई थी। (३) उस पर एक सुरंग (अच्छे रंग का) चीर लाकर बिछाया हुआ था, जो धरती पर चारों ओर बैठता (लिपटता हुआ) आया था। (४) उसी पर चढ़ कर वह रमणी बेचेत सो रही थी, : उसके खोंपें (बालों के जूड़े) से छूट कर उसके बाल छिटक गए थे। (५) वह [शैया] बहुतेरी भांति की कलियों और बहुतेरे फूलों से सुवासित थी, उनकी : चार करंडियां दासियां भोर (प्रभात) होने पर भरती थीं। (६) लोर ने समझा कि

यह [कोई] विषधर (सर्प) था जो उन पुष्पों के सुवास-रस के लोभ में वहां आया हुआ था। (७) वह [उस रमणी को] छूने के लिए हाथ पसारने (बढ़ाने) की इच्छा करता था किन्तु [फिर] वह डर कर कांप उठता था।

(१९६)

'गेंडुवा' चांद धरा उढिकाई। दिनियर 'पइतिइं' बैठेउ आई।
मुखा कंवलु 'जनु बिहसत' अहा। अधर सुरंग 'बरन गुन' 'कहा'।
सोवत 'फिरा हिएं कर' चीरू। 'अस्थन' देखि मुरुछि गा बीरू।
'चित्तहिं कहई' आपु 'जनावउं'। 'पाय धरउं गइ बिगति सुनावउं'।
'फिरि कइ' लोरु चहूं 'दिसि' आवा। 'मनि संका नहि सोवत' जगावा।
गा परान बर पौरुख 'बीरहि बकति' न आउ।
'जीउ उडाना(न)' 'मनि संका 'केहि' बिधि सोवत जगाउ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६५, बी० ६०१-६०३।

शीर्षक—मैं० : बेदार करदन लोरिक चांदा रा अज़ ख्वाब।

पाठान्तर—(१) बी० गिडुवा। २. बी० पैतिहि। (२) १. बी० जानौ बिगसत। २. बी० बरंगौ (वरन गुन—फ़ा०)। ३. मैं० काहा। (३) १. बी० हिये बिहरि गा। २. बी० स्तन। (४) १. बी० चिंता है कस। २. बी० जगाऊ। ३. बी० पाव धरौ कै बगत सुनाऊ। (५) १. बी० फिर कै। २. बी० दिस। ३. बी० मिसु कै सोवत न सकै। (६) १. बी० बीरैहि बगत। (७) १. मैं० जीउ दान। २. बी० कहि (केहि—फ़ा०)।

अर्थ—(१) चांदा ने गेंडुआ (गोली तकिया) इस प्रकार उढका कर रक्खी थी कि मानो दिनकर (सूर्य) पैंती (?) पर आकर बैठ गया हो। (२) उसका मुख-कमल मानो विहस रहा था; उसके सुरंग (सुदंर) अधरों के गुण का क्या वर्णन किया जाए ? (३) सोते समय उसके हृदय पर का चीर हट गया, तो [खुले हुए] स्तनों को देखकर वह वीर मूच्छित हो गया। (४) चित्त में वह कहने लगा (सोचने लगा), "अपने आप को जना दूं, उसके पैर पकड़ूं और [उसे] अपनी गई-बीती सुनाऊं।" (५) [यह सोचते-सोचते] लोरिक [शैया के] चारों ओर घूम आया, किन्तु मन में वह शंकित था इसलिए उसने उसे सोते से जगाया नहीं। (६) उस के प्राण, बल और पौरुष चले गए थे, और उस वीर के [मुख से] वाक्य नहीं निकल रहे थे, (७) मन में [की] शंका के कारण उसके प्राण उड़ गए थे, फिर वह किस प्रकार उसे सोते हुए जगाता ?

१२. चांदा-लोर-संवाद खण्ड

(१९७)

'उछरत' बीर 'गहइ' कर बारी । 'नैनन सोव' मन 'जाग' गोवारी ।
फुनि खतरी 'जउ' 'नियरइं' आवा । कर गहि केस चांद 'गुहरावा' ।
चोर चोर 'कह कोउ न जागइ' । 'मानुस सोवत सो गुहारि न लागइ' ।
ऊंच 'बोल सुनि' चेरीं 'जागहिं' । चोरु देखि 'बहु चीसइं लागहिं' ।
'तानेसि केस दिहेसि दुइ' फेरा । 'करै(रइ) गुहारि चोर मुंह' हेरा ।
मन रहंसी धनि अस 'गहे' 'कहइ जे' आस तुलानि ।
धई ठाउं जो 'मांगिउं' सो मोहि 'मेरइसि' आनि ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६६, बी० ६०४-६०६ ।

शीर्षक—मैं० : बेदार शुदन चांदा व गिरफ़्तन मोए सरे लोरिक व फ़रियाद बर आवरदन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० अछरत (उछरत—फ़ा०) । २. बी० गही । ३. मैं० नैन सोवहि । ४. बी० जागु । (२) १. बी० जौ । २. बी० नियरै । (३) १. बी० कै कोय न जागै । २. बी० मानस सूत गुहारु न लागै । (४) १. बी० बोलौ तौ । २. बी० जागैहि । ३. बी० बिह जैसैं (बहु चीसइ—फ़ा०) लागैहि । (५) १. बी० तान(ने)सि केस दिह(हे)सि दोय, मैं० छाड न केस धरें दुइ । २. बी० करै गुहरु चोर मैं हेरा । (६) १. बी० कहै । २. बी० जिय की । (७) १. बी० मागा । २. बी० मेर्‌यौं ।

अर्थ—(१) [जब] उछलते हुए उस बालिका के हाथों को वीर [लोरिक] ने पकड़ लिया, तब वह नेत्रों से सो रही थी किन्तु मन से जाग रही थी, (२) और जब वह क्षत्रिय (वीर) निकट आया, उसके केशों को पकड़ कर चांद (चांदा) ने पुकार लगाई । (३) वह 'चोर' 'चोर' कह पुकार रही थी, किन्तु कोई न जागता था, जो मनुष्य सो रहा हो वह [किसी की] गुहार में नहीं लग सकता है । (४) [फिर उसने सोचा कि] उसकी ऊंची आवाज़ सुनकर दासियां जाग पड़तीं और चोर देखकर बहुत चीखने लगतीं, (५) अतः उसने उसके केश खींचे, उन्हें दो फेरे दिए, और उस चोर (लोरिक) का मुंह देखते हुए वह गुहार (पुकार) करती रही । (६) धन्या (नारी) इस प्रकार उसे पकड़ कर मन में हर्षित हुई, और कहने (सोचने) लगी कि उसकी आशा

तुल गई (पूरी होने को आई) । (७) [उसने मन में कहा,] "दैव के स्थान पर (दरबार में) मैंने जो मांगा था, उसे उसने लाकर मिला दिया ।"

(१९८)

सुनु अचेत 'धनि भेंभर' भोरी ।
'अपनें जरमि' न 'कीत्यैं (तिउं?)' चोरी ।
'आइउं तोरें' नेह 'गोवारी' ।
'कहे चोरु अउ' 'देत्यौं (दीतिउं ?)' गारी ।
चोरु 'होतेउं तोर' अभरन 'लेतेउं' । पूर गहन 'लइ उ(उं)छहिं देतेउं' ।
धरे केस 'तूं मोहि गोहरावसि' । 'सोवत' लोग 'केहि' अरथि जगावसि ।
अभरन काजि न 'आवइ मोरें' । रूप 'भुलानेउं' चांदा 'तोरें' ।
'तोहि लागि जउ मरऊं' नेहु न 'छाडउं' काउ ।
'पिरीति तुम्हारि लागि मोरे हिरदइं' 'जइ जीउ जाइ तउ' जाउ ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६७, बी० ६०७-६०९ ।

शीर्षक—जवाब दादने लोरिक बर चांदा बा नरमी ।

पाठान्तर—(१) बी० धन भ्यंभर । २. बी० अपनै जनमि । ३. मैं० कीन्हिउं । (२) १. बी० आयो तोरैं । २. बी० गुवारी । ३. बी० कहसि चोरु औ । ४. मैं० दीन्हीं । (३) १. बी० होउ तौ । २. बी० लेऊ । ३. बी० ले वोछें देऊ । (४) १. बी० मोरे तूं गुहरावसि । २. बी० सूत । ३. बी० किह । (५) १. बी० आवहिं मोरै । २. बी० भुलानौ । ३. बी० तोरै । (६) १. बी० तोर लागि जौ मरिहौ । २. बी० छाडौ । (७) १. बी० पिरति तुह्मार लाग मो हियरौ । २. बी० जौ सिरु जाइ तु ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ अचेत, भेंभर (तमतमाई हुई ?) और भोली स्त्री, सुन; अपने जीवन भर मैंने चोरी नहीं की । (२) ऐ ग्वालिन, मैं तेरे स्नेह में आया, [किंतु] तूने मुझे चोर कहा और गाली दी । (३) मैं चोर तब होता जब मैं तेरे आभरण लेता और पूरे (सब) आभरण लेकर छुड़ा भागता । (४) तू मेरे केश पकड़े हुए लोगों को बुला रही है ! लोग सो रहे हैं, उन्हें तू किस प्रयोजन से जगा रही है ? (५) आभरण मेरे काज नहीं आते हैं; मैं तो, हे चांदा, तेरे रूप पर भूला हुआ हूं । (६) तेरे लिए यदि मैं मर जाऊं, [तब भी] मैं तेरे स्नेह को कभी न छोड़ूंगा । (७) तेरी प्रीति मेरे हृदय से लगी हुई है, यदि इस कारण जीव जाता है तो भले ही जाए ।

(१९९)

चोरु 'रइनि जउ' चोरीं 'आवइ'। अभरन 'लेत तेहि' 'कवनु छुड़ावइ'।
'चोरत नेंह कहिय दहुं काहा'। 'अइस उतर केहु जानियत आहा'।
'मइं तोहि कों का' संदेस पठावा। कौन सकति तूं मो पहिं आवा।
चांटहि 'पंख' 'उठइ' जउ आई। 'रहइ' न 'परि' सो 'मरइ' उडाई।
जिउ 'देइ चाह' आइ सो बेरा। 'जियतहि' न 'कोउ चोर मुंह' हेरा।

मींचु टारि तूं 'आतेसि' 'कइसेइं' 'मेंटि' न जाइ।
पाउ 'धरहि तोहिं बिस्तर' 'जाइहि जीउ गंवाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६८।१, बी० ६१०-६१२।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत चांदा लोरिक रा दुज्द।

पाठान्तर—(१) १. बी० रयनि जौ। २. बी० आवै। ३. बी० ले ताह। ४. बी० कौनु छुडावै। (२) १. बी० चोरहि। २. बी० कहै धौं कहा। ३. बी० अैसे उतरि जाइ धौ अहा। (३) १. बी० मैं तौ कहु कि। (४) १. बी० पांख। २. बी० उठेहि। ३. बी० रहै। ४. मैं० पाउ। ५. बी० मरै। (५) १. बी० दे जाहि (चाहि—फ़ा०)। २. बी० चीन्ह। ३. बी० कोइ चोरु हम। (६) १. बी० आनसि (आतेसि—फ़ा०)। २. बी० कैसन। ३. बी० मेट। (७) १. बी० धरा तिहि बस्तरि। २. बी० जायहौ जीउ गमाई।

अर्थ—(१) [चांदा ने उत्तर दिया,] "चोर जब रात्रि में चोरी के लिए आए, तब उसको आभरण लेते समय कौन छुड़ा सकता है? (२) चोरी करते हुए व्यक्ति के सम्बन्ध में भला स्नेह की बात क्या कही जाए? ऐसा उत्तर किसी प्रकार से तूने जान (सीख) लिया है। (३) मैंने तुझको क्या सन्देश भेजा और तू किस शक्ति से मेरे पास आया? (४) चींटे को जब आकर पंख उठे (निकले) तो वह [जीवित] नहीं रहता है, और हो न हो वह उड़ कर मर जाता है। (५) यदि तू जीवन (प्राण) देना चाहता है तो वह वेला आ गई है, [चोर के] जीवित रहते हुए कोई चोर का मुंह नहीं देखता है। (६) तू [अपनी] मृत्यु को हटा कर आया है, किन्तु वह किसी प्रकार भी मिटाई नहीं जा सकती है। (७) यदि तूने बिस्तरे पर पैर रक्खा, तो तू अपने प्राण गंवा कर [ही] जाएगा।"

(२००)

'जउ लहि जीउ घट महंहि' होई। तउ लहि सागि न 'आवइ' कोई।
परथमि 'मानुस' जीउ 'गंवावइ'। तउ 'पाछें चढ़ि सरगेहिं आवइ'।
मरि 'कइ' चांद सरगि 'हउं' आवा। 'जउ' जिउ होइ डराइ डरावा।
हउं तउ 'मरिउं जउहि' तूं देखी। तोंहि देखि 'धनि मुइउं' बिसेखी।
'मुएं जो मारइ' सो कस आहा। चांद मुएं कर 'मारब' काहा।

देखि रूप जिउ 'दीन्हां' तउ 'आएउं तोहि' पासि।
रहे नैन 'जेहिं देखउं' 'रहइ जियहु लइ' सांस॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १६८।२, बी० ६१३-६१५।

शीर्षक—मैं० : सवाल करदने लोरिक व नमूदने तमशीद।

पाठान्तर—(१) बी० जौ लहु जीउ कया घट। २. बी० आवै। (२) १. बी० मानसु। २. बी० गवावै। ३. बी० बिवान चरि सरगेहि आवै। (३) १. बी० कैं। २. बी० जौ। ३. बी० जै। (४) १. बी० मुयो जबहि। २. बी० धन मुयो। (५) १. बी० मुयाह जु मारैं। २. बी० मारसि। (६) १. बी० लीन्हौ। २. बी० तौ आयो तुम्ह। (७) १. बी० जिहि देष्यौ। २. बी० रही जीभ (रहइ जियहु—फ़ा०) ले।

अर्थ—(१) "जब तक जीव" [लोरिक ने कहा,] "घट (शरीर) में ही होता (रहता) है, तब तक कोई प्राणी स्वर्ग (धवलगृह तथा बैकुंठ) में नहीं आता है। (२) पहले मनुष्य अपना जीव (जीवन) गंवाता है, तब [उसके] पीछे चढ़ कर वह स्वर्ग में आता है। (३) मैं, हे चांदा, मर कर [इस] स्वर्ग में आया हूं, यदि जीव हो तब [तो] डराया हुआ डरे। (४) मैं तो तभी मर गया था जभी मैंने तुझे देखा था; [आज] तुझे देख कर, ऐ नारी, मैं विशेष रूप से मर गया। (५) [इस समय] जो तू मृत को मार रही है, वह कैसा है? ऐ चांदा, मृत को मारना क्या? (६) तेरा रूप देख कर मैंने जीव (जीवन) दिया, तब मैं तेरे पास आया। (७) [या तो मेरे] नेत्र शेष हैं जिनसे मैं तुझे देख रहा हूँ, और [या तो मेरा] जीव साँसें ले ले कर शेष है।"

(२०१)

लोर 'बचन' सुनि उठा मरोहू। 'चांदा चितहिं बुझानेउं' कोहू।
केस छाड़ि 'धनि आंचर' गहा। चांद 'बइठि' बीरु ठाढा रहा।
'चोर' नाउं आपन कहि मोही। बोलु 'सद्दु' 'मकु चीन्हउं' तोही।

'कवनि जाति' तोर घरु 'हइ' कहां । 'कवनु' लोग तुम्हं आछहु 'जहां' ।
'मता' पिता तोरी 'चित' न करहीं। 'रइनि' फिरत तोहि 'बाजि' न धरहीं ।
'कहत' बचन 'मोहिं' अस भा 'का गहि करियहिं' तोहि ।
महरु 'रूषि लै (लइ) टागै (टांगइ)' सो हत्या 'फुनि' मोहि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६९, बी० ६१६-६१८ ।

शीर्षक—मै० : गुज़ाश्तने चांदा मूये सरे लोरिक व गिरफ़्तने कमर-बन्दे ऊ ।

पाठान्तर—(१) १. मै० में नहीं है । २. बी० चांदहि बचन बुझानां । (२) १. बी० धन अंचरु । २. बी० बैठ । (३) १. बी० चोरु । २. बी० सबदु । ३. बी० मुषु चीन्हौ । (४) १. बी० कौन जाति तोरु । २. बी० कहु । ३. बी० कौनु । ४. बी० अहा । (५) १. बी० मात । २. बी० च्यंत । ३. बी० रैनि । ४. बी० बरज । (६) १. बी० हसत । २. बी० मन । ३. बी० काढि न औपी । (७) १. मै० रूंख लइ करमहिं । २. बी० लागै ।

अर्थ—(१) लोर के वचनों को सुनकर [चांदा के जी में] मरोह उठा (करुणा जागृत हुई) और चांदा के चित्त का क्रोध बुझ गया । (२) [लोरिक के] केशों को छोड़ कर उस नारी ने उसका अंचल पकड़ा; चांद (चांदा) बैठी रही और वीर (लोरिक) खड़ा रहा । (३) [चांदा ने कहा,] "ऐ चोर तुम अपना नाम मुझसे कहो; [कुछ] शब्द बोलो, जिससे तुम्हें पहचान सकूं । (४) तुम्हारी कौन-सी जाति है और तुम्हारा घर कहां है ? वह कौन-सा लोक (देश ?) है जहां तुम [रहते] हो ? (५) क्या [तुम्हारे] माता-पिता [तुम्हारी] चिन्ता नहीं करते हैं और रात में फिरते समय वे तुम्हें वर्जन कर (रोक कर) नहीं रखते हैं ? (६) ये वचन कहते हुए मुझे ऐसा हुआ (लगा) कि तुम्हें पकड़ कर किया ही क्या जायगा । ? (७) महर यदि तुझे ले जाकर वृक्ष पर टांगे (तुझे फांसी दे), तो उसकी हत्या मुझे ही [तो होगी] !'

(२०२)

आजु कि 'चांद न' चीन्हसि मोही । 'गहने लीति उबारिउं तोही ।
'तुम्हरिय माख जो' दीत न काऊ । 'मारिउं' बांठ 'खी(खि)देरिउं राऊ' ।
'अनवन बीर देखु तोर अहईं' । संकरी 'बार' मोर मुंख 'चहईं' ।
'हउं सो आहि धहिं' कूंकूं लोरा । खांड परत 'जेइं' आंगु न मोरा ।
'महर काज मइं जीव न बारिउं । गार पसेउ तहां लोहू ढारिउं ।'

'पुरुख न' आपु 'सराहइ' पूछत 'कहई' बात ।
'चोर बोल सो मारइ' 'जो' 'मनि बाउर' रात ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७०।१, बी० ६१९-६२१ ।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) बी० चांदा । २. बी० गहनै लेत (लीत—फ़ा०) उबार्‌यौ । (२) १. बी० तुम्हारी साषि (माषि—ना०) न । २. बी० मार्‌यौं । ३. बी० षदेर्‌यों । (३) १. बी० अनअन बीर भाइ तोरैं अहहीं । २. मै० बेर । ३. बी० चहही । (४) १. बी० हौं सु आहि धन । २. बी० जिहि । (५) १. बी० महर काजि वस कूवैं लेउ : जौं जिउ चाहि काढ़ि कै देऊ । (किन्तु यह आगे २०४.४ है) । (६) १. बी० बीरु नहि । २. बी० सराहै । ३. बी० औ कहि । (७) १. बी० वोछ बोलु नहि बोलिये । २. बी० जौ । ३. बी० मनु बावर ।

अर्थ—(१) "ऐ चांद (चांदा)," [लोरिक ने कहा,] "आज क्या तुम मुझे पहचान नहीं रही हो ? जब तुम ग्रहण में ली हुई थीं, तब मैंने ही तुम्हें उबारा था । (२) यह तुम्हारी ही माख (ममता) थी, जो [तुमने] कभी नहीं दी थी, कि मैंने बांठ को मारा और राजा [रूपचंद] खदेड़ा (भगाया) । (३) देख, तेरे [पिता के] अनहोने वीर थे, [किन्तु संकट की वेला में [उन सबने] मेरा [ही] मुंह जोहा । (४) मैं, ऐ स्त्री, वह कूंकूं लोर हूँ, जिसने खड्ग पड़ते [समय] अंग नहीं मोड़ा । (५) महर के कार्य के लिए मैंने अपना जीव नहीं बचाया; जहां उसने प्रस्वेद (पसीना) गारा, वहाँ मैंने लहू ढारा (गिराया) । (६) [सच्चा] पुरुष अपनी सराहना नहीं करता है, पूछने पर ही वह बात कहता है, (७) और चोर भी बोल वही मारता (निकालता) है जो मन में बावला [या] अनुरक्त होता है [क्योंकि उसे ही जीने की चिन्ता नहीं होती है] ।"

(२०३)

'आपुहिं' बीर 'सराहसि' काहा । जाति 'गोवारु' आहि चरवाहा ।
'हमरें' चेर सहस 'एक अहहिं(हीं)' । काच खाहिं 'तोहि' आगिन चहहीं ।
अत केकान 'जउ पूंछु पधावा' । 'असवारहु कहं फेरि न' आवा ।
जा 'कहं' लोरु 'कीन्हि' मनुसाई । 'तेहिं कें' मंदिर 'कस पैठेउ' धाई ।
अइसें 'परि जउ' सेव 'करावा' । साईं दोह अस 'छटि नावा (न आवा)' ।

सुनि 'जउ पावइ' महरु अस 'गोवरां दीन्ह' बसेर ।
एक धरत सो धर येंहि तूं 'दूलह केहि' केर ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७०।२, बी० ६२२-६२४ ।

शीर्षक—मैं० : सवाल करदने चांदा दर अहानत: लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० आपन । २. बी० सराहहि । ३. बी० गुवारु । (२) १. बी० महरे । २. बी० दोइ रहही । ३. बी० तौ । (३) १. बी० ज पूछ बधावा (पधावा—फ़ा०) । २. बी० असवा वारैहि का फिरि कैं । (४) १. बी० कौहु । २. बी० करै । ३. बी० तिहि कैं । ४. बी० कि पैठै । (५) १. बी० पहिं जौ । २. मैं० करावइ । ३. बी० जीउ गवावा । (६) १. बी० जौ पाव । २. बी० गोवर पारि । (७) १. बी० दुलही कि ।

अर्थ—(१)—[चांदा ने कहा,] "ऐ वीर, तू अपने आप को क्या सराहता है ? तेरी जाति ग्वाले की है और तू चरवाहा है । (२) हमारे एक सहस्र चेर (सेवक) हैं, वे तुझे कच्चा ही खा जाएं और वे [इसके लिए] आग भी न चाहें । (३) [हमारे] केकान (घोड़े) इतने हैं कि यदि तू दौड़ता हुआ [उनके सवारों से] पूछने लगे, तो समस्त सवारों [से पूछने] का फेरा न आएगा । (४) जिसके लिए, ऐ लोरिक, तू ने पुरुषार्थ किया, उसके मंदिर में दौड़ कर तू कैसे (क्यों) प्रविष्ट हुआ ? (५) इस प्रकार (विधि) से जो सेवा कराता (करता) है, उससे स्वामि-द्रोह [का अपराध] छूटने पर नहीं आता है । (६) यदि महर ऐसा सुन पाए, जिसने तुझे गोवर में वास (रहने का स्थान) दिया है, (७) और वह [स्वामि-द्रोह] एक को [भी] पकड़े, तो वह इसी स्थान पर [तुझे] पकड़ेगा । [तब] तू किसका दूलह (प्रेमी) [होगा] ?"

(२०४)

साइं दोहु 'अस' बोलिए नारी । राति 'आइ हिये हनै(नइ)कटारी' ।
'कइ पायन्हि पखवारि संचारइ' । 'कइ दिन पाइ चूनां मुंह सारइ' ।
'जेहि करइं काजि' जीउ 'लइ' दीजा । ताकहुं चांद 'दोहु कइस' कीजा ।
'महर काज धसि कुवड़ां लेऊं । जिउ जउ मांग काढि कइ देऊं' ।
'महरइं' दोह न 'कीजइ' धनां । दोहु 'करहिं तिन्ह' कोउ न गनां ।
गुन अवगुन 'तहं' 'कोई जानै(नइ)' 'जउ' मन आहि सरीरि ।
'वाएं नारि घर आइउं' हउं 'बूडउं' मंझ 'नीरि' ॥

सन्दर्भ—मैं० १७१।१, बी० ६२५-६२७ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने लोरिक बर चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी से । २. मैं० जाइ अहिनानें मारी । (२) १. बी० कै पानहि बधवारु सचारै । २. बी० कै दिनाइ दर नैमहि सारै । (३) १. बी० जिव कर काजि । २. बी० लै । ३. बी० दोषु कैसै । (४) १. बी० महर काजि हौ जीऊनि वारौ : परैं पसेउ लोही तहा ढारे । (किन्तु यह २०२.४ है । (५) १. बी० महरै । २. बी० कीजै । ३. बी० करौ तिह । (६) १. बी० सभ । २. मैं० कोइ न जानइ । ३. बी० जो । (७) १. बी० सोई टारि बाहरि । २. बी० हैं बूडौ । ३. बी० नीरी ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ नारी, तू इस प्रकार स्वामिद्रोह [की बातें] उसके लिए कह जो रात्रि में आ कर हृदय में कटारी मारे । (२) तू चाहे तो मेरे पैरों में पखवारी (बेड़ी ?) सँचारे और चाहे तो दिन पाने (होने) पर मेरे मुंह में चूना लगाए (उसे उज्ज्वल करे) । (३) जिसके काज (लिए) जीव ले कर दिया जाए, उसको (उससे), ऐ चांदा, द्रोह कैसे किया जा सकता है ? (४) महर के लिए में कुए में धंस पड़ूँगा, और यदि वह जीव मांगेगा, तो वह [भी] निकाल कर दे दूंगा । (५) मैं [महर का] द्रोह नहीं कर सकता, [क्योंकि] जो द्रोह करते हैं, उन्हें कोई नहीं गिनता है । (६) गुण-अवगुण वहाँ (तब) कोई जानता है, जब [उसके] शरीर में मन होता है । (७) [अपनी] घर की नारी [अथवा अपने नारी और गृह] की उपेक्षा कर मैं आया, सो जल के मध्य में डूब रहा हूं ।"

(२०५)

'पूछउं' 'लोरिक कहु' सति मोही । 'कैं(केइं)' 'असती' बुधि 'दीन्हीं' तोही ।
'सतहिं तिरइ सायर' महिं नावा । बिनु सत 'बूड़इ थाह न' पावा ।
'जेहिं' सतु होइ 'सो लागइ' तीरा । सत 'कर' हीन 'बूड़' मंझि नीरा ।
सत गुन 'खैंचि' तीर 'लइ लावा' । सत 'छाड़ैं' गुन तोरि 'बहावा' ।
सत 'संभार (सांभर ?) तउ पावइ' थाहा ।
'बिनु' सत थाह 'होइ अवगाहा' ।
सतु साथी सतु 'सांभल' 'सतइ नाउ' कंडहार ।
'करि' सत कत तूं आवसि 'बर सिधि देइ' करतार ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७१।२, बी० ६२८-६३० ।

शीर्षक—मैं० : सवाल करदने चांदा बर लोरिक दर इश्क़ ।

पाठान्तर—(१) मैं० पूछीउं (पूछिउं—ना०) । २. बी० लोर कहौ । ३. मैं० लेइं (केइं) । ४. बी० अस्त्री । ५. बी० दीनी । (२) १. बी० सतांह तिरै सियार । २. बी० बूर (बूड़—फ़ा०) थाह नहि । (३) १. बी० जिहि । २. बी० सु लागै । ३. बी० क । ४. बी० बूर । (४) १. बी० तारि । २. बी० लै लावै । ३. बी० छोरै । ४. बी० बहावै । (५) १. बी० संभरि तिहि पावै । २. बी० बिन । ३. बी० होय औगाहा । (६) १. बी० साबरा । २. बी० सतै नाव । (७) १. बी० कहि । २. बी० पर सिधौं ।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "ऐ लोरिक, मैं तुझसे पूछती हूं, तू मुझसे सत्य कह, किस असती (असत्य-निष्ठ) ने तुझे [यह] बुद्धि (युक्ति) दी है ? (२) सत्य से ही सागर में नाव तिरती है, बिना सत्य के वह डूब जाती है, क्योंकि उसे थाह नहीं मिलती है । (३) जिसमें सत्य होता है, वह किनारे लग जाता है और सत्य से हीन जल के मध्य में ही डूबता है । (४) सत्य ही गुण (रस्सी) को खींच कर [नाव को] तट पर ला लगाता है, और सत्य को छोड़ने पर [तुमने जैसे] उस गुण (रस्सी) को तोड़ फेंका । (५) यदि सत्य का शंबल होता है, तो थाह मिल जाती है और बिना सत्य के थाह [का स्थल] भी अवगाढ (गहरा—अथाह) हो जाता है । (६) सत्य ही साथी, सत्य ही शंबल और सत्य ही नाव का कर्णधार [होता] है । (७) तू कहां सत्य [का आश्रय] कर आ रहा है कि सृष्टिकर्ता तुझे श्रेष्ठ सिद्धि दे ?"

(२०६)

'जेहिं' दिन चांद 'गइउं जेवनारा' । देखि 'बिमोहिउं रूप तुम्हारा' ।
तुम्हरी जोति 'जु भा' उजियारा । 'परिउं' पतंगु 'होइ' मइं 'न संभारा' ।
सो रंगु रहा 'न चित हुत' जाई । चितहुं मांझ रंग कुरिया छाई ।
रंग 'जेवन' रंग भोजन 'करउं' । रंग 'पुनि' 'जीवन' 'निरंग पुनि मरउं' ।
'तेहि रंग नैन नीर नइ' 'बहे' ।
'हें (होइ ?) बर रंग किरारैनै (करारन ?) ढहे' ।
रंगु 'जउ देह मन भारी' बिनु रंग 'उठइ' न पाउ ।
'जीउ' चाहि रंग दूलहु सुनु चांदा सत भाउ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७२।१, बी० ६३१-६३३ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने लोरिक चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिह । २. बी० गयो जिवनारे । ३. बी० बिमेहें रूप तुम्हारे । (२) १. मैं० भएउ । २. बी० पर्‌यों । ३. बी० होय । ४. मैं० नसंभारा (न संभारा) । (३) १. बी० जु चितहु न । (४) १. बी० जीवै । २. बी० करैं । ३. बी० सौ । ४. बी० जीव । ५. बौ० रंग बिनु मरौं । (५) १. बी० तिहि रंग फूटि नयन तस । २. मैं० बहा । ३. मैं० बिनु सत बूड होइ अवगाहा (तुल० २०५.५) । (६) १. बी० जु देहि मन बावरि । २. बी० उठै । (७) १. बी० जिहि ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जिस दिन, ऐ चांद (चांदा), मैं ज्यौनार में गया, तुम्हारा रूप देखकर विमुग्ध हो गया । (२) तुम्हारी (रूप की) ज्योति से जो प्रकाश हुआ, मैं पतिंगा होकर बेसंभाल [उस पर] जा पड़ा । (३) [तदनंतर] वही रंग (अनुराग) बना रहा और वह चित्त से नहीं जा रहा है, चित्त में भी उस रंग ने कुटी छा ली है (घर बना लिया है) । (४) उसी रंग (अनुराग) का जीमना और उसी रंग का भोजन करता हूं रंग (अनुराग) ही [मेरा] जीवन है और निरंग (अनुरागहीन) होकर मैं मर जाऊंगा । (५) उसी रंग (अनुराग) में नेत्रों ने अश्रु-सरिताएँ बहाईं और रंग (अनुराग) से वर (प्रबल) होकर उन्होंने करारों को ढहा दिया । (६) जब रंग (अनुराग) होता है देह और मन भारी होते हैं और बिना रंग (अनुराग) के पैर भी नहीं उठता है । (७) जीव की अपेक्षा भी रंग (अनुराग) दुर्लभ (प्रिय) होता है, ऐ चांदा, मेरा यह सत्य भाव सुनो ।"

(२०७)

रंग 'कइ' बात 'कहउं' सुनि लोरा । 'कइसें' रात मोहि मनु तोरा ।
जाति अहीरु रंगु आहि न तोही । रंग बिनु निरंगु न 'राता होई' ।
कहु दुखु 'जो तइं मोहिं निति' सहा । बिनु दुख 'यह' रंगु 'कइसें रहा' ।
'जउ न सहिय सिर खांडइ' घाऊ । रंग 'रती एक होइ' न काऊ ।
'अगिनि' झार बिनु रंगु न होई । जेहिं रंगु 'होइ' अवटि 'मर' सोई ।
'अन' न रुच 'रंग' बेधा जाइ नींदि निसि जाग ।
मोंट 'थूल तूं लोरिक' कह 'कइसें' रंगु लाग ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७२।२, बी० ६३४-६३६ ।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने चांदा हिकायत इश्क़ ऊ ।

पाठान्तर—(१) बी० की । २. बी० कहौं । ३. बी० कैसें । (२) १. बी०

राचै मोही। (३) १. बी मो तिहि जो तै। २. बी० य। ३. बी० कैसैं साहा। (४) १. बी० जौ न सहै सिर षाडै। २. बी० राता औ चलै। (५) १. बी० अगनि। २. बी० होय। ३. बी० मरै। (६) १. बी० अंन। २. बी० रंग कर। (७) १. बी० थूल्ह तूं लोरिका। २. बी० कैसै।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "ऐ लोरिक, सुन; रंग (अनुराग) तू [अपने] की बात [मुझसे] कह कि कैसे तेरा मन मुझ पर अनुरक्त हुआ? (२) [तेरी] जाति अहीर की है, इसलिए तुझे रंग (अनुराग) नहीं [हो सकता] है और जो रंग के बिना निरंग होता है, वह अनुरक्त नहीं हो सकता है। (३) वह दुःख बता जो तूने मेरे निमित्त सहन किया; बिना दुःख सहन किए यह अनुराग किस प्रकार रहा? (४) यदि कोई सिर खड्ग का आघात नहीं सहन करता है, तो उसे एक रत्ती भर भी रंग कभी नहीं होता है। (५) [पुनः] अग्नि की ज्वाला सहन किए बिना रंग नहीं होता है, जिसमें रंग होता है वह औट कर (संतप्त होकर) मरता है। (६) रंग से विद्ध को अन्न नहीं भाता है, उसकी निद्रा जाती रहती है और वह रात्रि भर जागा करता है। (७) ऐ लोरिक, तू मोटा और स्थूल है, तब तू कैसे कहता है कि तुझे रंग लगा हुआ है?"

(२०८)

'पानु भएउं' चांदा तोहिं जोगू।
सिर 'देइ खेलेउं' चित धरि भोगू।
'गात किहेउं' 'जस अँसू (अइसु) सुपारी'।
'खांडि पीसि दोइ' 'कीत्यों(तेउं)' नारी।
'औ(अव)न' स 'काढि कीन्ह दुइ आधा'।
अइस चांद 'मइं आपुहिं' साधा।
बिरह दगध 'हउं' चूनां कीन्हां। जरत नीरु 'तेहि' ऊपर दीन्हां।
अंनु 'छाड़ेउं' बिरहइं कइ झारा। पानी 'कें हउं रहिउं' अधारा।
'कहिउं' निरति 'सब आपनि' अब 'जउ' पूछहि बात।
अधर 'धरंत गइ पियरई 'तेहिं' रंग तोरें रात॥

सन्दर्भ—मैं पत्र १७३।१, बी० ६३७-६३९।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने लोरिक चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० बांनु (पांनु—फ़ारसी) भयो। २. बी० सौं षेल्यों। (२) १. बी० काटि (गात—फ़ा०)। २. मैं० जस सूवा सारी।

३. बी० खारि पीठि दोइ। ४. मैं० कीन्हेउं। (३) १. मैं० में प्रथम अक्षर त्रुटित है। २. बी० काढि कियो दोय। ३. बी० मैं आपहि। (४) १. बी० हौं। २. बी० तिहि। (५) १. बी० छाडौ। २. बी० बिरहै की। ३. बी० कै हौं रह्यो। (६) १. बी० कहै। २. बी० सभ आपन। ३. बी० जौ। (७) १. बी० अधर की बीरी (पियरई—फ़ा०)। २. बी० तिह।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "तेरे योग में मैं पान [जैसा पीला] हो गया, और [पान की भांति ही] सिर देकर तथा चित्त में [तेरा] भोग धारण कर मैंने [प्रेम का] खेल खेला। (२) [अपने] गात्र को मैंने ऐसा किया जैसे सुपारी हो, और ऐ नारी, उसे खंडित कर और पीस कर मैंने उसके टुकड़े कर डाले। (३) अपने अवन (असुंदर) को निकाल कर दो आधों में विभाजित कर डाला, इस प्रकार, ऐ चांदा, मैंने अपने-आपको साधा। (४) बिरह के दाह ने मुझे चूना कर डाला, और उसके ऊपर भी मैंने [अपने] जलते हुए शरीर पर [आंसुओं का] पानी दिया (डाला)। (५) विरह की ज्वाला के कारण मैंने अन्न छोड़ दिया, और पानी के आधार पर मैं [जीवित] रहा। [६] मैंने अपनी समस्त निरति [इसलिए] कही है कि अब तूने बात पूछी है। (७) अधरों पर धारण करते ही [उनके अमृत से] पीतिमा चली गई (जाएगी?) इसलिए (इस आशा से) मैं तेरे रंग (अनुराग) में रक्त हो गया हूँ।"

(२०९)

सुरंग सेज भरि फूल बिछावसि। 'कंवल कली तसि' मैनां रावसि।
'असि धनि छाडि जउ अनतइं धावा'। कइ सनेह 'तउ हीं छटकावा'।
भंवरु 'फूल' पर 'रहइ' लुभाई। रसु 'लइ' ता 'पहिं' बहुरि न जाई।
काहि लागि तूं 'कोड करावसि'। 'मोहि कुल राका धूर(रि) भरावसि'।
'अरे' लोर तूं 'केहिं बउरावसि'। 'तेहिं बउराउ' जहां कछु पावसि।
'का अचेति हउं बाउरि' 'कइ' तूं लोर 'बउरावसि'।
'कइ' सनेह मोहिं 'छरंगसि' 'जित भावइ तित जावसि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७३।२, बी० ६४०-६४२।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने चांदा हिकायत मैनां बा लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० कंवर करी अस। (२) १. बी० अस धन छारि जु अनतै धावै। २. बी० तब ही छिटकावै। (३) १. बी० फुर। २. बी० रहै। ३. बी० ले। ४. मैं० कहं। (४) १. मैं० कोरइ करसी।

२. मै० उहि के लिलार खूंट न धरसी। (५) १. बी० अहो। २. बी० तिहि बौरावसि। ३. बी० तिहि बौराई। (६) १. बी० कै हौ अचेत कि बावरि। २. बी० कै। ३. बी० बौरासि। (७) १. बी० कै। २. बी० छिरगसि। ३. बी० बरि भावै तहा जासि।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "तू फूलों से भर कर सुरंग शैया बिछाता है, और [उस पर] कमल-कलिका जैसी मैनां से तू रमण करता है। (२) [अपनी] ऐसी स्त्री को छोड़ कर जो तू अन्यत्र दौड़ रहा है, [उससे ज्ञात होता है कि] तू स्नेह करके तदनंतर [अपने को] अलग कर लिया करता है। (३) भौंरा फूल पर लुभाया रहता है किन्तु उसका रस लेकर पुनः उसके पास नहीं जाता है। (४) तू किसलिए [मुझसे] ऐसा कोड (खेल-खिलवाड़) करा रहा है और [किसलिए तू] मेरे राका (पूर्णिमा के चन्द्र) जैसे कुल में [मुझसे] धूल भरवा रहा है? (५) अरे लोरिक, तू किसको बावला कर रहा है? तू उसको बावला कर जहां (जिससे) कुछ पास के। (५) या तो (?) मैं अचेत और बावली हूं, और या तो तू, ऐ लोर, मुझे बावला कर रहा है। (७) तू स्नेह [की बातें] कर मुझे छल रहा है; जहां भी तुझे भाए, वहां तू जा।"

(२१०)

'जेहिं' दिन चांद 'दइय हउं' गढ़ा। तेहि दिन हुंते तोर रंगु चढ़ा।
'बिसरा' 'लोकु कुटुंबु' घर 'बारू'। बिसरा अरथु दरबु 'ब्यवहारू'।
मुख तंबोलु सिर तेलु बिसारा। बिसरा परिमलु फूल 'कइ' मारा।
अन न रूच निसि 'नींदि' बिसारी। बिसरी सेज सो 'कलि फुल वारी'।
बुधि बिसरी रंग 'भएउ सवाई'। 'ता कहं निरंग कहइ बउराई'।
'तहं तोरइ रंग' बिरवा हिरदइं 'लागेउ आइ'।
'कोंप' सरग जरि धरती 'जिय बरु' जाइ तउ 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७४।१, बी० ६४३-६४५।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिह। २. बी० दइ हौं। (२) १. मै० बिसर। २. बी० लोग कुटंबु। ३. मै० बार बिसारा। ४. मै० बेहवारा। (३) १. बी० की। (४) १. बी० सेज ('सेज' दूसरे चरण में आता है)। २. बी० मैना-रानी। (५) १. बी० भयो सवायो। २. बी० चांद निरंग करि तैं बौरायो।

(६) १. बी० नेह रंग तोरै। २. बी० लागा घाउ। (७) १. बी० कूप (कोंप—फ़ा०)। ३. बी० जै सिरु। ४. मै० जाउ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जिस दिन, ऐ चांदा, दैव ने मुझे निर्मित किया, उसी दिन से तेरा रंग मुझ पर चढ़ा [हुआ है]। (२) लोक (देश-समाज), कुटुंब, और परिवार मुझे [उसी दिन से] विस्मृत हो गए, अर्थ, द्रव्य, और व्यवहार मुझे भूल गए। (३) मैंने मुख में तांबूल [लेना] और सिर पर तैल [लगाना] विस्मृत कर दिया, मुझे परिमल भूल गया और पुष्प-मालाएं भूल गईं। (४) मुझे अन्न नहीं रुचता है, मैंने रात्रि में निद्रा विस्मृत कर दी है, और मैंने कलियों-फूलों वाली शैया भुला दी है। (५) बुद्धि भूल गई, तो रंग सवाया हो गया और उसको तू बावली हो कर निरंग कह रही है। (६) वहां (इस सब का कारण) यह है कि तेरे रंग (अनुराग) का विटप हृदय में आकर [ऐसा] लग गया है (७) कि उसकी जड़ें धरती में हैं तो उसकी कोपलें स्वर्ग (आकाश) में [निकल रही] हैं, और भले ही अब [उसके कारण] जीव जाता है तो जाए।"

(२११)

'जेहिं' दिन लोरिक 'रन' 'जिनि' 'आएहु'। पइसत नगर घायं 'दिखराएहु'।
'तेहि दिन हुत मइं' अनु न कराई। 'परइ' न नीदि सेज न सुहाई।
'पेट पइसि जिउ लीन्हा' काढी। बिनु 'जिउ' नारि 'देख बरु' ठाढी।
'मइं' तोहि लागि 'जेवनार' कराई। छतीस कुरी 'पिता' हंकराई।
'मकु' 'इक' तिल तुम्हं 'देखइ' 'पावउं'। देखि रूप 'मकु नैन सिराहउं।
'तेहिं' 'दिन' 'हुत' 'हउं भूलिउं' 'मोर जिउ तोहि कों चाह'।
चरचा मरमु तुम्हारा 'लोर दहुं करियहु काह'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १७४।२, बी० ६४६-६५१।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने चांदा हिकायत इश्क़ खुद बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिह। २. बी० रिन। ३. मै० जीति। ४. बी० आयुहु। ५. बी० दिषरायुहु। (२) १. बी० तिह दिन ते मोहिं। २. बी० परै। (३) १. बी० नैन पासि जीउ लेहिस। २. बी० जिव। ३. बी० देषि मैं। (४) १. बी० मैं। २. बी० जिवनार। ३. मै० पिताहि। (५) १. बी० मुकु। २. मै० टक। ३. बी० पाऊ। ४. बी० जिय नै सिराऊ। (६) १. बी० तिही। २. बी० हुतै। ३. बी० हू भूली। ४. बी० रह्यो न तुम्ह बिनु जाई। (७) १. बी० अब धौं करौ हौ कहाई।

अर्थ—(१) [चाँदा ने कहा] "ऐ लोरिक, जिस दिन तुम रण जीतकर आए थे और नगर में प्रवेश कर रहे थे, धाय ने मुझको तुम्हें दिखाया। (२) उसी दिन से ही मैंने अन्न [का आहार] नहीं कराया (किया), मुझे नींद नहीं पड़ती है और शैया नहीं भाती है। (३) तुमने [मेरे] पेट में प्रविष्ट होकर [मेरा] जीव निकाल लिया और बिना जीव के मैंने स्तब्ध होकर तुम्हें देखा। (४) मैंने तुम्हारे लिए ही ज्यौनार कराई, और छत्तीसों कुल वालों को पिता के द्वारा बुलवाया, (५) कि कदाचित् [इसी युक्ति से] तुम्हें एक तिल (थोड़ा सा) देखने पाऊँ, और तुम्हारे रूप को देखकर [अपने] नेत्रों को सिराऊं (शीतल करूं)। (६) उसी दिन से मैं भूली [सी] हूं और मेरा जीव तुमको चाहने लगा है। (७) [प्रश्नोत्तर करके] मैंने तुम्हारा मर्म चर्चा (देखा-समझा) है। ऐ लोरिक, [अब] बताओ कि क्या करोगे।"

१३. चांदा-लोर-मिलन खण्ड

(२१२)

'अंब्रित' बचन चांद अनुसारा। हंसा 'बीरु' भा बोलु अधारा।
हंसि 'कइ' 'बीरु' चीरु 'कर' गहा। 'मोतिन्ह' हारु टूटि 'गियं' रहा।
चांद कहा खिनु एकु 'सहारौ(र)हु। हारु टूटि गा मोंति 'संभारहु'।
बीनि 'मोंति' सभ 'लोर' उचावहु। तउ 'चढ़ि' 'सेज (?)' रावहु।
मोंति 'उचावत' 'रइनि' बिहांनी। उठा 'सूर लइ साध निमांनी'।
बीरु 'डरान' भोरु भा 'मन कइं चेत गंवाएउ'।
सेज हेठि 'लइ चांदइं सूरुज दिवसु' 'लुकाएउ'॥

सन्दर्भ—मैं० : १७५, बी० ६५२-६५४।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत दर खंदह व लागे शब गुज़रानीदन।

पाठान्तर—(१) १. मैं० अमिरित। २. मैं० लोरु। (२) १. बी० कै। २. मैं० लोरु। ३. बी० सिरु। ४. बी० मोत्यों। ५. बी० गै। (३) १. मैं० संभारहु (दूसरे चरण का भी तुक यही है)। २. बी० संभारौहु। (४) १. बी० मोत। २. मैं० बीर। ३. बी० चर। ४. मैं० पिरम रस। प्रतिलिपि में यह अर्द्धाली बाद में आती थी इसलिए छूटी समझकर [संभवतः आदर्श के अनुसार] पुनः किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऊपरी हाशिए में दे दी गई। प्रतिलिपि में इसका पाठ है; मोती तौ जै लेउ उचावहु : तै चरि सेज रवनि रै

रावहु। (५) १. मैं० उठावत। २. बी० रैनि। ३. बी० सुरिजु धन सुष चित मानी। (६) १. बी० डरा मन ('मन' आगे आता है)। २. बी० सुनि कै जीउ संकान। (७) १. बी० लै लोरिक चादहि द्योसु। २. बी० लुकान।

अर्थ—(१) जब इस प्रकार का अमृत (अमृतोपम) वचन चांदा ने निकाला, लोरिक हंस पड़ा (प्रसन्न हो गया) [क्योंकि] उसे वचनों का आधार मिल गया। (२) हंस कर बीर [लोरिक] ने हाथ से [उसका] चीर पकड़ लिया, तो ग्रीवा में [का] उसका मोतियों का हार टूट कर रह गया। (३) चांदा ने कहा, "एक क्षण सहारो (संभलो—रुको); मेरा हार टूट गया है, [पहले] उसके मोतियों को संभालो। (४) सभी मोतियों को बिन कर, हे लोर, उठा लोगे, तभी तुम शैया में चढ़कर रमण करो और कराओगे।" (५) [किन्तु] मोती उठाते-उठाते रात व्यतीत हो गई, और सूर्य (लोरिक) अपनी निर्मानित (तिरस्कृत) साध को लिए हुए उठा। (६) बीर (लोरिक) डरा कि प्रभात हुआ [इसलिए] उसने मन की चेतना गंवा दी। (७) दिन में शैया के नीचे सूर्य (लोरिक) को लेकर चांद (चांदा) ने छिपाया (छिपाए रक्खा)।

(२१३)

दई दई कै (कइ) द्यौ (दिव)सु गंवावा।
परी सा(सां)झ लोरिकि(क?) जिउ पावा।
छिरका चांदेहि (चांदहि) अंब्रित बानी।
पल्ह(ल्हु)ई बेलि जैसे कु(कुं)बिलानी।
न्हाइ धोइ बस्तर पहिरावा।
मधुर षुजांहजा (खजंहजा) काढि जिवावा।
नारिंग बेलि (?) गुसय (गुसाइं) निचाषी।
लोर देषि मैं (मइं) तुम्ह कौहु (कहुं) राषी।
मंदिर पिता कर आहा लोर पपु (पापु) नहि कीज।
उरौहु(उतरहु)आजु स कोसर(सकूसर)काल्हि दाष रसु लीज॥

सन्दर्भ—बी० ६५५-६५७। एक अर्द्धाली बी० में नहीं है।

मैं० त्रुटित है, क्योंकि पिछले कडवक के साथ जो चित्र है वह लोर-चांदा संभोग का है, जो बाद में आता है।

अर्थ—(१) "दैव, दैव" करके लोरिक ने दिन गंवाया (काटा); जब

संध्या पड़ी (आई), तब लोरिक ने [अपना] जीव पाया। (२) चांदा ने अमृत-जल छिड़का, तो उसकी [काया-] वल्लरी, जो जैसे कुम्हलाई हुई थी, पलुह उठी। (३) उसको नहला-धुलाकर [चांदा ने] वस्त्र पहनाए, और मधुर खाद्य-भ्रज्य निकाल कर उसे खिलाए। (४) [चांदा ने कहा,] जिस नारंगों की वल्लरी (?) को मेरे स्वामी (पति) ने नहीं चखा था, ऐ लोरिक देखो, मैंने उसे तुम्हारे लिए रख छोड़ा है। (५) [किन्तु] यह मंदिर (भवन) मेरे पिता का है, ऐ लोरिक, [यहाँ पर] पाप न करो; (६) आज सकुशल तुम उतर जाओ, [तो] कल तुम द्राक्षा का रस (अधर-रस) लेना।"

(२१४)

सुनहु चांद मोरी येकै (एकइ) बिनती।
आपनु भरमु कहौ (हौं) अरु हीनति (हिनती)।
उटइ सीसु तोरैं मंदिर पइ(ई)ठे। जूवा पैतु जिउ लाइ बईठो(ठे)।
तुम्ह जीता मोर(री?) भइ हारी। कौन छंद षेल्या(ला?) तुम्ह नारी।
तनु मनु जीउ लेई(इ) तूं गई। बिनु जिय काया रकत बिनु भई।
नैन सरूप तोर कर तानें। अभरन सब जानों(?) ऊपर बाने।
सत परान बुधि पावसि चित मन नैन बिसेष।
अति बिमान तुम्ह जीता काया थाक अस देष॥

सन्दर्भ—बी० ६५८-६६०।

मैं० यहाँ पर त्रुटित हैं जो उसके चित्रों से प्रकट है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु चांद ने पिछले कडवक की अंत की पंक्ति में दूसरे दिन जो द्राक्षा-रस लेने की बात कही है, उसका स्पष्ट उत्तर इस कडवक में नहीं दिखाई पड़ता है, यह चित्य है।

अर्थ—(१) "ऐ चांद, सुनो", [लोरिक ने कहा,] "मेरी एक बिनती है; मैं अपना भ्रम (मर्म) कह रहा हूँ और अपनी हीनता का निवेदन कर रहा हूँ। (२) अपने सिर को उठा (साहसपूर्वक ले) कर मैं तेरे इस मंदिर में प्रविष्ट हुआ, और जुए की पैंत (बाज़ी) के रूप में अपने जीव को लगा कर बैठा रहा। (३) इस जुए में तुम जीतीं और मैं हार गया! ऐ नारी [इस जुए में] तुमने कौन-सा छद्म खेला? (४) तुम [बाज़ी के रूप में लगाए हुए] मेरे तन-मन-जीव को ले गईं, और मेरी काया बिना जीव और बिना रक्त की हो गई। (५) नेत्र तेरा स्वरूप·····और सब आभरण मानो उस पर

·····। (६) मेरे सत्व प्राण, बुद्धि, चित्त, मन तथा नेत्र तुम्हें विशेष रूप से मिल रहे हैं, (७) तुमने मुझे अत्यधिक·····जीता है, ऐसा देख कर (?) काया थक गई है (निःसत्व हो गई है)।"

(२१५)

सुनि कै चांद भीरि गै(गियं) लावा। सकति रूप मेरें कै आवा।
जिह नित मरन गंजन जो सहा। सो पर(रि?)छि तस ता कर कहा।
मोहि लागि लोर जीउ परछेवा। अब हौं करौं दासि तोरि सेवा।
अधर षंडि नै[न]नि घिउ सांनौं। हिरदौ थार भर(रि) आगें आनौं।
सुर(रं)ग बेलि फर तुम्ह कौ राषी (राषे?)।
नैनहु देषि गुसाइ(ईं) नचाषी (निचाषे?)।
फूर सेज पर(रि)मल चंदन बहु बिधि कीज।
कर गहि रद(ही) पयोधर अधर षंडि रसु लीज॥

सन्दर्भ—बी० ६६१-६६३।

मैं० यहाँ पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

ऊपर आई हुई (५) निम्नलिखित २१३.४ से तुलनीय है—

नारिंग बेलि (?) गुसय (गुसाइं) निचाषी।
लोर देषि मैं (मइं) तुम्ह कौहु (कहुं) राषी।

अर्थ—(१) लोरिक की यह भीरुता (हीनता-दैन्य) सुनकर चांदा ने उसे गले से लगा लिया [और कहा,] "शक्ति और रूप (सौन्दर्य) मिलने को आ गए हैं। (२) जिसके लिए तुमने मरण और गंजन (कष्ट) सहन किए, अब तुम उसकी और उसके कथनों की परीक्षा कर लो। (३) ऐ लोरिक, तुमने मेरे लिए अपने जीव (प्राणों) को परिछिन्न किया, तो मैं [भी] तुम्हारी दासी [होकर] तुम्हारी सेवा करूँगी। (४) [मैं अपने] अधरों की खांड को [अपने] नेत्रों के घृत (स्नेह?) में सान रही हूँ और [उन खंडपूरों से] मैं हृदय के थाल को भर कर तुम्हारे आगे ला रही हूं। (५) मैंने सुरंग (सुन्दर) वल्लरी के फल (कुच) तुम्हारे लिए रख छोड़े हैं; नेत्रों से देखो कि वे मेरे स्वामी द्वारा अनचखे [छोड़ दिए गए] थे (६) पुष्प-शैया, परिमल तथा चंदन बहुतेरे प्रकार से [तैयार] किए हुए हैं। (७) मेरे पयोधरों को हाथों से ग्रहण किए रहिए और मेरे अधरों को खंडित करके उनका रस लीजिए।"

(२१६)

आपनु मरम चांद जौ कहा।
उठि कै(कइ) चांद लोरु (लोरु चांद ?) कर गहा।
गहि अंकौ गै(गियं) दीन्ही बा(बां) हा। पिरम न संकै लोरिकु नाहा।
आधी बीरी खंडि मुषि दीन्ही। आधी छीनि लोर पहि लीन्ही।
तबहि (कबही ?) सीसु लोर सिरु वारै।
त(क ?)बही षौ(षै)चि माझ मुष मारै।
त(क ?)बही रोस पीठि दै बैस(सा)।
तू त(क ?)बही हसि कै तोरै केस(सा)।
: चलत लोर कछु मन न सुहावै। कहि कहि प(पि)रम चांद बौरावै। :
भव कर (?) चितु उपना लोर मदन [अ ?]ति लाग।
अति [रस?] रसिकु सेंज फुनि रावै चांदा देय सुहाग॥

सन्दर्भ—बी० ६६४-६६७। इस कडवक में एक छठी अर्द्धाली भी है, इसीलिए बी० की चतुष्पदी संख्या भी इस कडवक में एक बढ़ गई है। यह छठी अर्द्धाली असंगत है, क्योंकि लोर के जाने की बात इस प्रसंग में नहीं आती है जो इसमें कही गई है। इसलिए यह अर्द्धाली कदाचित् प्रक्षिप्त है।

मै० यहाँ पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

अर्थ—(१) जब चांदा ने अपना मर्म कहा, तो लोरिक ने उठ कर चांदा का (?)हाथ पकड़ा। (२) उसको अंक में पकड़ कर उसकी ग्रीवा में उसने बांह दी, प्रेम [के इस व्यापार] में लोरिक-नाथ शंकित नहीं हो रहा था। (३) [पान की] आधी बीड़ी काटकर [चांदा ने लोरिक के] मुख में दी और आधी लोरिक [के मुख] से छीन ली। (४) कभी (?) लोरिक चांदा के सिर पर अपना सिर वारता, कभी उसे खींच कर उसके मुख पर अपना मुख मारता, (५) कभी रोष करके चांदा को पीठ देकर बैठ जाता, और कभी हंसते हुए उसके केश तोड़ने लगता। (बाद की अर्द्धाली कदाचित् प्रक्षिप्त है)। (६) चित्त में.....उत्पन्न हुआ, और लोरिक को मदन अत्यधिक लगा। (७) अत्यधिक [रस का ?] रसिक लोरिक पुनः (तदनंतर) शैया में रमण करने और चांदा को सौभाग्य देने लगा।

(२१७)

पैठ भुजुंगु राइ की बारी। फूल करी रसु लै(लेइ) फुलवारी।
डार डार चहुं दिस(सि) फिरिआवै। षूटै दाख बेलि फर रावै।
रवै नारिंग उतंग जभीरी। बिरसै नारिंग (?) दार्यों षीरी।
चंदन कू(कों)प नासिका लावै। बासु ल(ले ?)इ औ सीसि चरावै।
जहीं जहीं (जाही जूही) अवर सेवती। सबे फूर बिलस बनपा(प)ती।
राव की राषी बारी चांद भुजंगहि दीन्ह।
रसु जु लीन्ह पियासे भुजंग बिनु रस कीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ६६८-६७०।

मै० यहां पत्र त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। किन्तु मै० पत्र १७५ के साथ जो चित्र इस समय है, वह कदाचित् इसी कडवक का है : उसमें नायक-नायिका का संभोग चित्रित है।

अर्थ—(१) राय की बारी (राजा की बालिका रूपी वाटिका) में [वह] भ्रमर प्रविष्ट हो गया, और वह पुष्प-वाटिका के पुष्पों और कलिकाओं का रस लेने लगा। (२) वह चारों दिशाओं में एक-एक डाल पर फिरने, द्राक्षा वल्लरी का खंडन करने और बिल्व फल (कुचों) से रमण करने लगा। (३) वह नारंगों और उत्तुंग (उन्नत) जंभीरियों [जैसे चांदा के कुचों] से रमण करने और उसके नारंगों (?), दाडिम-बीजों (दातों) तथा खीरनी (जिह्वा) से विलास करने लगा। (४) चंदन की कोपलों (?) को वह नासिका से लगाता था और उसकी सुवास लेकर उसे सिर पर चढ़ाता था। (५) वह जाही-जूही (?) और सेवती (?) आदि सभी फूलों (?) और वसस्पतियों (?) का विलास कर रहा था। (६) राजा की रख छोड़ी हुई उस बारी (बालिका-वाटिका) को चांदा ने उस भ्रमर को दे दिया, (७) और उस प्यासे भ्रमर ने जो उसका रस लिया, तो उसे रस-हीन कर डाला।

(२१८)

खिन एक 'हाथ पाय रेंगि आए'। फुनि 'रे फेरि' दुहुं 'हियं उर लाए'।
बहु 'सोहाग दइ' सुंदरि' धरी। खरी अवटि जनु 'सांचइं' भरी।
अधर अधर 'सौं' कर 'कर'धरी। नाभी नाभि 'सों' 'तानी' रही।
'जांगि(घि?)जोरि तस कइ लइ लाए'। 'जनु' गज मेंमंत 'बर कहं आए'।
'काम सकति' धन(नि) अस कै गही'। फुनिरु 'फूटि अंब्रित नै(नइ)बही।

'धन सु राति जिहि सजन मिरावा' 'रइनि' छमासी 'होउ'।
'पंच' भूत आतमा सिरानें अस बिरसौ(सउ) सभ 'कोउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७६, बी० ६७१-६७३।

शीर्षक—मैं० : मज़ामअत करदने लोरिक बा चांदा।

पाठान्तर—(१) बी० यक। २. बी० बा(?)ह हाथ रग आई। ३. बी० रु भीरि (फेरि—फ़ा०)। ४. बी० हिरैं लाई। (२) १. बी० सुहागु दे। २. मैं० दोउ सिर। ३. बी० सांचै। (३) १. मैं० में नहीं है। २. बी० गहि। ३. बी० सौ। ४. बी० ताने (तानी—फ़ा०)। (४) १. बी० चापि चूरि कै तस गै लाई (लाए—फ़ा०) २. बी० जानौ। ३. बी० पुरषेहि आई (आए—फ़ा०)। (५) १. मैं० रस सभ निसि अहे। मैं० बहुत अपुरुब ते भए। (६) १. मैं० चांद घरिहि सूरुज आवा। २. बी० रैनि। ३. मैं० होइ। (७) १. मैं० पांच। २. मैं० कोइ।

अर्थ—(१) एक क्षण के लिए [लोरिक के] हाथ [चांदा के] पैरों तक रेंग आए, तब उन्हें लौटा कर उसने [उसके] दोनों हृदय-उरों (उरोजों) से लगाया। (२) बहुत सुहाग देकर उसने सुंदरी को पकड़ा, मानो खूब औटा कर उसे सांचे में भरा हो। (३) अधरों से अधरों और हाथों से उसने हाथों को पकड़ा, [उसकी] नाभि [स्त्री की] नाभि के साथ तानी हुई थी, (४) जांघों को जोड़ कर उसने इस प्रकार ले कर मिलाया कि मानों दो मदमत्त गज परस्पर बल [-प्रयोग] के लिए आए हुए हों। (५) काम-शक्ति भर उसने स्त्री को इस प्रकार से पकड़ रक्खा, तो अमृत की नदी फूटकर बह निकली। (६) वह रात्रि धन्य थी जिसने [दो] स्वजनों को मिलाया, ईश्वर करे यह रात छः मास की हो जाए! (७) [दोनों के] पंचभूत और आत्मा शीतल हुए, इसी प्रकार ईश्वर करे सब विलास-लाभ करें!

(२१९)

'केलि' करत सभ 'रइनि' बिहानी। देखि 'सूर धनि' उठी डरानी।
'जउ' लहि चेरीं 'उठइ' न पावा। 'तउ' लहि 'चांदइं' सुरिजु लुकावा।
मोहि 'संक' आपुन नांहीं लोरा। 'मत' कछु 'होइ' बहुल डरु तोरा।
मत 'कोइ' चेरी 'देखन' 'पावा'। जाइ महर 'पहं' बात 'जनावा'।
'जउ कोइ तोहि कों देखइ' आई।
'हौं (हउं) फुनि मरौं (रउं)' 'तउहि' बिसु खाई।

'परम खलीती जउ कर साहस' सो 'तरि लागइ' पार।
मांझ समुंद 'होइ बेरी' थाकी तीर लाउ करतार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७७, बी० ६७४-६७६।

शीर्षक—मैं० : वक़्त सुबह बिनहानः (?) करदने चांदा लोरिक रा दर ज़ेर तख़्त।

पाठान्तर—(१) १. बी० केरि। २. बी० रैनि। ३. बी० सुरिजु धन। (२) १. बी० जौ। २. बी० उठै। ३. बी० तौ। ४. बी० चांदा। (३) १. बी० डरु। २. बी० तुह्म। ३. बी० होय। (४) १. बी० को। २. मैं० देखइ। ३. बी० पावै। ४. बी० सौ। ५. बी० जनावै। (५) १. बी० जौ रु तुमहि कोउ देषै। २. मैं० हउं फिरि नरउं (मरउं—ना०)। ३. बी० तबहि। (६) १. बी० पिरम खलंताह जौ कर सैहिहस। २. बी० तिहि लागैं। (७) १. बी० होय बेरी, मैं० होइ।

अर्थ—(१) केलि करते हुए समस्त रजनी व्यतीत हो गई, तो सूर्य को [उदित होता] देखकर धन्या (स्त्री) अत्यधिक डरी हुई उठी। (२) जब तक चेरियां उठ न पाएं, तब तक मैं चांद (चांदा) सूर्य (लोरिक) को छिपा दूँ। (३) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, मुझे अपनी शंका नहीं है, किन्तु तुम्हें कुछ न हो, इसका तुम्हारे लिए बहुत डर है। (४) ऐसा न हो कि कोई चेरी देख ले, और वह जा कर महर से यह बात बता दे। (५) यदि कोई तुम्हें आ कर देख लेगा, फिर (तो) मैं तत्काल विष खाकर मर जाऊँगी। (६) परम स्खलित [नौका] भी यदि साहस करे तो वह तैर कर पार लग सकती है, (७) किन्तु यदि समुद्र के मध्य में पहुँच कर [नावों का] बेड़ा भी थक जाए (साहस हार बैठे), तो उसे सृष्टिकर्त्ता ही तीर से लगा सकता है।"

(२२०)

'भोर चेरि पानी लइ' आईं। मुखु 'धोवा अउ' सखीं बुलाईं।
'भेंभर' मुखु निसि चांद न सोवा। चीरु फाटु 'कहवां लहि' गोवा।
'फिरी मांग केस' 'उधसाने'। 'फूल झूरि हिरदै' 'कुंबिलाने'।
'सखिन्ह' देखि 'रावन की(कइ)' रई। 'तउ रे चांद भरि आंकुर' गई।
'भए उनिंद लोयन' रतनारे। 'दुहुं दिसि' 'खाए तंबोल पियारे'।
'चोली' चीरु संवारहि(हिं) सीस 'सिंदूरहि(हिं)' मांग।
भंवर 'फूल पर बइठेउ' लाग 'दीख तेहि' आंग॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७८, बी० ६७७-६७९ ।

शीर्षक—मैं० : आब आवरदने कनीज़गान बरूए चांदा शुस्तन (?) व आमदने सहेलियान ।

पाठान्तर—(१) बी० उठि चेरी ले पानी । २. बी० धुवाय । (२) १. बी० भ्यंभर । २. बी० कहुवां लै । (३) १. मैं० उधयाने । २. बी० फूर जोर हिरदौ । ३. मैं० कुंमिलाने । (४) १. बी० सषियन । २. मैं० रवां कैं । ३. बी० तो र चांद भरि आंकुरि । (५) १. बी० भइन नीं[द] लोइन । २. बी० चहुं दिस । ३. बी० षाइ तंबोर अडारे । (६) १. बी० चोरा । २. बी० सिदुरेहि । (७) १. बी० फूर पर बैठ्यौ । २. बी० दसौ नख ।

अर्थ—(१) प्रभात में चेरियां पानी ले आईं, चांदा ने मुख धोया और सखियों को बुलाया । (२) [सखियों ने कहा,] "ऐ चांदा, तुम्हारा मुख भेंभर (तमतमाया हुआ) है, क्या रात में तुम सोई नहीं ? तुम्हारा चीर फट गया है, कहां तक तुम उसे छिपाओगी ? (३) [तुम्हारी] मांग फिरी हुई है, [तुम्हारे] केश उद्ध्वस्त हो गए हैं, और [हार के] फूल सूख कर हृदय पर कुम्हला गए हैं !" (४) सखियों ने देखा कि वह रावण (रमण) के द्वारा रमण की हुई थी, तभी चांद अंकुर (पुलक) से भरी हुई थी । (६) उसके उन्निद्र नेत्र लाल हो रहे [थे], [मानो] दोनों ओर के उन प्यारे [नेत्रों] ने तांबूल खाया हो । (६) [जब] वे उसकी चोली और उसके चीर को ले कर संवारने लगीं और उसके सिर की मांग सिंदूरित करने लगीं, चांदा से उन्होंने कहा, "फूल पर भौंरा बैठ चुका है, [और उसका] लाग (लगाव—चिह्न) [तुम्हारे] शरीर पर दिखाई पड़ रहा है ।"

(२२१)

चांद 'सहेलिन सों' अस कहा । 'एकउ' चेरि न जागत रहा ।
'रइनि' चौंखंडी 'चढ़ि(ढ़ी) बिरारी' । 'लइ' उंदिरु खसि परी 'मंझारी' ।
ऊपरि परी 'तउहि मइं' जागा । नख 'थन' लाग चीरु फुनि भा(भां)गा ।
'तउहि' हुतें 'मोरि नींदि उड़ानी' । 'इहि परि' जागत 'रइनि' बिहानी ।
हाथ 'पाउ मइं निरु' 'न संभारा' । फिरी मांग 'सीस' अउ बारा ।
'तेहि गुन' नैन रात मोर मुख 'भेंभर' कुंबिलान ।
'अइसि' राति मोंहि 'दूभरि' मंदिर न कोऊ जान ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १७९, बी० ६८०-६८२ ।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने चांदा बर सहेलियान रा अज़ बहानः ।

(२)।२ के अंतिम दो शब्दों पर मैं० में चित्र का रंग उभड़ आया है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सहेल्योंह सौं । २. बी० येक । (२) १. बी० राति । २. बी० चरी बिलारी । ३. बी० ले । ४. बी० मजारी । (३) १. बी० तैंहु मौं । २. बी० फुनि ('फुनि' आगे ही पुनः आया है) । (४) १. बी० ते । २. बी० मोरी नींद गवानी । ३. मैं० इत फुनि । ४. बी० रैनि । (५) १. बी० पाव मैं सिरु । २. मैं० नसंभारा (न संभारा) । ३. बी० केस । (६) १. बी० तिहुतें । २. बी० भ्यंभर । (७) १. बी० अस । २. बी० दूभर ।

अर्थ—(१) चांदा ने सहेलियों से ऐसा कहा, "एक भी सेविका जाग नहीं रही थी, (२) रात में चौखंडी पर बिल्ली चढ़ी, और वह मार्जारी उंदुर (चूहे) को ले कर गिर पड़ी । (३) जब वह ऊपर पड़ी (गिरी), तब मैं जागी; उसका नख [मेरे] स्तनों पर लगा, तदनंतर चीर फट गया । (४) तभी से मेरी नींद उड़ गई और इसी प्रकार जागते-जागते रात बीत गई । (५) हाथ-पैर मैं निश्चित रूप से न संभाल पाई । सिर में मेरी मांग फिर गई और मेरे बाल फिर गए । (६) उसी कारण मेरे नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे हैं, मेरा मुख भेंभर (तमतमाया हुआ ?) और कुम्हलाया हुआ है । (७) रात मुझे ऐसी दूभर हुई, फिर भी मंदिर (भवन) में यह कोई नहीं जानता है !"

(२२२)

जाइ बिरसपति महरि जुहारी । कइ जुहारु फुनि बात उभारी ।
'रइनि' डरानी चांद दुलारी । 'बिसवइं ऊपर' परी 'मंझारी' ।
चोरु फाट मुखु गा 'कुंबिलाई' । चांद 'कुमन होइ बहुत' लजाई ।
चेरी 'बिसवइ(इं)' भा अंधियारा । जागत चांद 'भएउ भिनुसारा' ।
अन न रूच 'अउ भाव न' पानी । फूल घाम जस चांद सुखानी ।
'चलहु महरि कछू देखउ' 'अउ' कछु धरहु उतारि ।
'बिसई जस को' छंरगी 'अैस (अइसि) चांद बि(बे)करार' ॥

सन्दर्भ—मैं० १८०, बी० ६८३-६८६ ।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तने बिरस्पति बर महरि व कैफ़ियत गिरियः उफ़्तादने बाज़ नमूदन ।

पाठान्तर—(२) १. बी० रैनि । २. बी० बिसइ उ परी । ३. बी० मजारी । (३) १. मैं० कुंमिलाई । २. मैं० चितहि महं रही । (४) १. बी०

बिसइ । २. बी० किया उजियारा । (५) १. बी० भाव नहिं । (६) १. बी० अबहि महरि तुम्ह देषहु । २. बी० औ । (७) १. मै० सोवत जइसे । २. मै० असि भइ चांदा नारि ।

बी० में उपयुक्त के अतिरिक्त उसके पूर्व निम्नलिखित दोहा और है, जिससे उसकी चतुष्पदी-संख्या एक अधिक हो गई है :

चली महरि उठि उठि देषें चरी धौरहर जाई ।
मुष कुंबिलान सूषि गौ चांव देषि तिहि आई ॥

यह संभवतः ऊपर स्वीकृत दोहे के पाठान्तर के रूप में हाशिए में लिखा हुआ था, और प्रतिलिपि में मूल में सम्मिलित हो गया ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जा कर महरी को जुहार की, और जुहार कर तदनंतर बात उभाड़ी (उठाई) । (२) [उसने कहा,] "रात में चांदा दुलारी डर गई, [क्योंकि] विश्राम करते में ही [उसके] ऊपर बिल्ली गिरी । (३) [उसका] चीर फट गया और मुख कुम्हला गया, जिससे चांदा कुमन होकर बहुत लज्जित होगई है । (४) अंधेरा था और चेरियां विश्राम कर रही थीं, [इसलिए अकेली] चांदा को जागते-जागते सबेरा हो गया । (५) उसको अन्न नहीं रुच रहा है और न पानी भा रहा है और धूप में फूल जिस प्रकार सूख जाता है, उसी प्रकार चांदा सूख गई है । (६) ऐ महरी, चलो, कुछ देखो और कुछ द्रव्य उस पर उतार (वार) कर [दान-पुण्य के लिए] रख दो । (७) जैसे कोई विश्राम करते (सोते) में छली गई हो, चांदा इस प्रकार बेचैन है ।"

(२२३)

माता पिता 'लोकु' जनु 'आवा' । 'कनवड़ि' चांद न मुखु 'दरसावा' ।
'एक' आपुहिअस 'अकरंकु लाएसि' । 'अउ तेहि' ऊपरि 'सुरिजु' लुकाएसि' ।
'चांद सुरिजु' घर धरा 'छपाई' । 'राहु गरह दुइ गरहइं' आई ।
लोरु 'चउखंडी' दई संभारा । 'कउहु' दिवसु 'अंथवइ' करतारा ।
'अइस कुलखनां मूंड कटाउब' । 'पापधि चोर परि' रूंखि 'टंगाउब' ।
'नियरि' मींचु होइ ढूकी रगत न रहा सुखान ।
बिनु जिय 'लोरिकु सेजि तरांहीं' 'आपनि' कया न जान ॥

सन्दर्भ—मै० १८१, बी० ५८७-६८६ ।

शीर्षक—मै० : आमदने मादर व पिदर जानदन (?) व दरख्वाब साख्तन चांदा खुद रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोगु । २. बी० आवै । ३. बी० कनवडि । ४. बी० दरसावै । (२) १. बी० इक । २. बी० अकुरंकु लायसि । ३. बी० औतिहि । ४. मै० सूरुज (सुरुज) । ५. बी० लुकायसि । (३) १. मै० चांदा सूरिजु (सुरिजु) । २. बी० लुकाई । ३. बी० राह गरह दोय गरहे । (४) १. बी० चौखंडी । २. बी० १. कबहि । २. बी० अंथवै । (५) बी० अब को लहै तो महरु मरावै । २. बी० बाधि चोरु लै । ३. बी० टगावै । (६) १. बी० नेर । (७) १. बी० लोरु सेज तर । २. बी० आपन ।

अर्थ—(१) माता-पिता, लोक (आत्मीय ?) तथा जन आए तो कनावड़ी (लज्जित) चांदा ने [अपना] मुख न दिखलाया । (२) [वे कहने लगे], "एक तो इसने अपने आप ही ऐसा कलंक लगा रक्खा था [कि अपने विवाहित पति को यह छोड़ कर आई थी], उस पर इसने सूर्य (प्रेमी) को छिपाया !" (३) [जब] चांदा ने सूर्य (लोरिक) को घर में छिपा कर रक्खा था, दो राहु ग्रह (राजा के सेवक ?) उसे ग्रहण लगने के लिए आए । (४) लोरिक ने [यह देखकर] उस चौखंडी में दैव का स्मरण किया [और कहा,] "ऐ सृष्टि-कर्त्ता, कभी तो दिवस को अस्तमित कर । (५) मैं ऐसा कुलक्षण [हुआ] कि सिर कटाऊंगा, पापर्द्धिक (बधिक—जीवघात करने वाले) और चोर की भांति अपने को वृक्ष पर टंगवाऊंगा ।" (६) मृत्यु [जब इस प्रकार] निकट आ पहुँची, [उसके शरीर में] रक्त नहीं रह गया, वह ऐसा सूख गया । (७) बिना जीव के लोरिक शैया के नीचे [छिपा हुआ] अपनी काया को नहीं जानता था ।

(२२४)

अंथवा सरिजु चांद 'दिखरावा' । 'अब्रित छिरका' लोरु 'जियावा' ।
'आपनि' मींचु नैन 'मइं' देखी । मींचु 'आइ फी(फि)रि गई' बिसेषी ।
'हौं (हउं) जैजिया चांद कुंबिलानी' । 'अत अवसान भया तेहिं बानी ।
'एहिं परि रइनि जउ' दई जियावइ । ताकहुं मीचु न 'नियरे' 'आवइ' ।
'अधर चूंबि भर दै (दइ) अंकवारी' । चांद पायं 'परि' बांह पसारी ।
'सुनहु लोर' 'एक बिनती अब तुम्हं काह मंखाहु' ।
'हउं तुम्हरइ जइसि' ब्याही 'तूं मोर ब्याहू नाहु' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८२, बी० ६६०-६६२ ।

शीर्षक—मै० : विदाअ् करदने लोरिक बा चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० दषिरावा । २. मै० अमरित छिरिकि ।

३. बी० जगावा। (२) १. बी० आपनु। २. बी० मैं। ३. बी० देषि घन मुवो। (३) १. मै० सूर जिया अउ चांदा रानी। २. बी० अति औसान पयौं नहि पानी। (४) १. बी० याह बरिया जे। २. बी० नीरी (नियरे—फ़ा०)। ३. मै० आवा। (५) १. मै० काहे अस मन करहु मुरारी। २. बी० पर। (६) १. बी० अहो लोर यही न गौहन अब जिन काहु संकाहु। (७) १. बी० हो तुम्हरैं जस। २. बी० तुम्ह मोरे ब्याहे नाह।

अर्थ—(१) सूर्य अस्तमित हुआ और चांद दिखाई पड़ा, तो [चांदा ने] अमृत छिड़का और लोरिक को जीवित किया। (२) [उसने कहा,] "अपनी मृत्यु मैंने नेत्रों से स्वयं देखी, [मैंने देखा कि] मृत्यु आकर और मुझ को पहचान कर चली गई। (३) और यदि मैं जीवित [भी] हुआ तो चांदा कुम्हलाई हुई है, [अपनी] उस वणिका में मैं इतना अवसन्न हुआ! (४) इस रीति से रात में यदि दैव ने जिला दिया है, तो मैं देखूंगा कि मृत्यु [फिर] निकट न आए।" (५) लोरिक के अधर चूंब कर और भरी अंकबारी देकर [तदनंतर] बाहें फैला कर चांदा लोरिक के पैरों में पड़ी। (६) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, नुम [मेरी] एक विनती सुनो, अब तुम क्यों मांख (ममता-मोह) कर रहे हो? (७) मैं अब तुम्हारी वैसी ही हूं जैसी विवाहिता हो और तुम मेरे [जैसे] विवाहित स्वामी (पति) हो।"

(२२५)

बोला बीरु बाट 'दिखरावहु'। 'अउ' तुम्हं चांद बार 'लहि' आवहु।
उतरी चांद मंदिर चलि आई। 'भूपर' सूरिजु 'गोहनि' लाई।
'छाडिसि' मंदिर बेगि 'घर सारा'। पंवरि पंवरियहिं जागि खंखा [रा]'।
चलत 'पाय कर आरौ' पावा। कहा 'पंवरियहिं' तसकरु आवा।
चांद कहा 'मइ चेरि बुलाउब'। 'फूलन्ह कहुं फुलवारि पठाउव'।
उघरी 'पंवरि' बजर 'कइ' बीरु 'समंदि गा भागि'।
चांद 'चढ़ी चौखंडी' 'पंवरि' बजर 'होइ लागि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८३, बी० ६९३-६९५।

शीर्षक—मै० : फ़ुरूद आमदने लोरिक अज़ क़स्रे चांदा व ख़बर याफ़्तने दरबानान।

पाठान्तर—बी० में कडवक के पूर्व और है : आपनु मरमु चांद जै कहा : इनका महल लौर ईव रहा; पुनः दूसरा चरण काट कर अन्य द्वारा संशोधित है :

सुरजह बौहत सु अहा। किन्तु इस अर्द्धाली का प्रथम चरण २१६.१ है। (१) १. बी० दिषरावाहु। २. बी० औ। ३. बी० लैहि। (२) १. बी० भवरै। २. बी० गौहनि। (३) १. मै० छाडि। २. बी० गौहनि। (३) १. मै० छाडि। २. बी० पसारा। ३. बी० पौरि पैरिया जागि षघारा। (४) १. बी०पाव षभरारू। २. बी० पैरिहि। (५) १. बी० मैं चेर पठायौं। २. बी० फूलाह कौ वरहलु बुलायो। (६) १. बी० पौरि। २. बी० की। ३. बी० सभरिगा भाग। (७) १. बी० चरी षंड सतषणै। २. बी० बहुरि। ३. बी० होय लाग।

अर्थ—(१) [लोरिक] वीर बोला, "तुम मार्ग दिखाओ, और हे चांदा, तुम [स्वयं] द्वार तक आओ।" (२) चांद (चांदा) उतर कर मंदिर (भवन) [की सीमा] तक चली आई और भूमि पर सूर्य (लोरिक) को [अपने] साथ लाई। (३) [लोरिक ने] वह मंदिर छोड़ दिया और वह तेज़ी से घर की ओर चला, तो पौरी पर पौरिए ने जाग कर खंखारा। (४) [उसके] चलते (जाते) समय उसने [उसके] पैरों की आहट पाई, इसलिए पौरिए ने कहा, "चोर आया है!" (५) चांदा ने कहा, "मैं चेरियों को बुलाऊंगी और फूलों के लिए उन्हें फुलवाड़ी में भेजूंगी।" (६) [इस बहाने से जब] वह वज्र की पौरी खुल गई, तो वीर [लोरिक] [चांदा से] विदा लेकर भाग गया। (७) [तदनंतर] चांदा चौखंडी पर चढ़ गई और पौरी [पुनः] वज्र हो कर लग गई (बंद हो गई)।

१४. मैनां-समाधान खण्ड

(२२६)

मैनां 'पूछ' कहां निसि 'कीन्हेहु'। 'कवनि नारि भुव बरु गियं दीन्हेहु'।
रगत न देह 'हरदि जनु' लाई। 'अउ मसि' मुख 'सभ दीन्हि चढ़ाई'।
'पियर' पात 'जस' लोरिकु डोलसि। 'मुरि मुरि' हंससि निरंगु भा बोलसि।
'हउं मनुसहिं ओहंट पहिचानउं'। 'नैन न लाव सूत जस' 'जानउं'।
'ढेल काजहि' सतु आपु गंवावा। सत 'क' हीन 'जस तुम्हं घर' आवा'।
हंसि 'लोरिकु' अस बोला 'राधा' राति 'कछाइउं'।
'कउतिगु रइनि बिहानि तेहि देखत नैन न लाइउं'॥

सन्दर्भ—मै० : पत्र १८४, बी० ६९७-७०० (दो अतिरिक्त अर्द्धालियाँ होने के कारण चतुष्पदी-संख्या में एक की वृद्धि हो गई है)।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने मैनां बर लोरिक रा केह शब कुजा बूद ।

बी० में नीचे के हाशिए में अन्य हाथ के द्वारा लिखी हुई निम्नलिखित दो अर्द्धालियां और हैं—(तुल० क्रमशः पाँचवीं तथा दूसरी अर्द्धाली) :

ढील गात सम आप गुंवाये : संग हुतै जैसे तुम्ह घर आये ।
औस मुष सब लीन्ह छराई : औस मुष दीस जु बराई ।

पाठान्तर—(१) १. बी० पूछि । २. बी० कीन्ही । ३. बी० कौन नारि तुम्ह भव (भुव—फ़ा०) बरु दीन्हा । (२) १. बी० हरद जानौ । २. बी० औ रस । ३. बी० रस लीन्ह छिडाई । (३) १. बी० पीर (पियर—फ़ा०) । २. बी० जैसे । ३. बी० मरि मरि (मुरि मुरि—फ़ा०) । (४) १. बी० हौ मानस औ अते पिछानौ । २. मैं० बात कहइ मइं देखेहि । ३. बी० जांनौ । (५) १. बी० तेज काटि । २. बी० के । ३. बी० जैसे तुम्ह । (६) १. मैं० लोर । २. बी० मैं राधा । ३. बी० कछाये । (७) १. बी० कौतिगु रैनि भान (बिहान—फ़ा०) लहु देष्या मैना नैन न लाये ।

अर्थ—(१) मैनां [लोरिक से] पूछने लगी, "रातें कहां कीं (गंवाईं) ? बल्कि, [कहो] किस नारी की भुजाएं तुमने [अपने] गले में दीं ? (२) देह में रक्त नहीं है, [मानो] हल्दी लगाई हुई है, और सम्पूर्ण मुख पर मसि (कालिमा) चढ़ा दी गई है। (३) [ऐ लोरिक,] तुम पीले पत्ते के जैसे डोल (हिल) रहे हो, तथा मुड़ मुड़ कर हंस रहे और निरंग (निःस्नेह) होकर बोल रहे हो। (४) मैं मनुष्य को ओहट (दूर) से ही पहचान लेती हूं, और नेत्रों से (के निकट) लाए हुए सूत के सदृश उसे मैं जान लेती हूं। (५) तुमने ढेले (मिट्टी के शरीर) के लिए ही [अपना] सत गंवा दिया [है], और जैसे तुम सत से हीन [हो कर] घर आए [हो] !" (६) [उत्तर में] हंस कर लोरिक इस प्रकार बोला, "मैंने रात्रि में राधा [की रास या स्वांग ?] कछाई थी। (७) उसी कौतुक में रात बीत गई और उसे देखते हुए मैंने आंखें न लगाईं (मैं सोया नहीं)।"

(२२७)

चांद धौराहर चढ़ि 'अस' चाहा । सुरिजु कौन मंदिर 'दहुं' आहा ।
जनम 'अस्थान' जाइ पगु धरा । 'बांचि एहि सत्रुहि दिन' भरा ।
मीन रासि 'जउ' करकेहि 'जाइहि' । सिंघ परोसि 'नियर होइ आइहि' ।
'तुला रइनि' दिन 'दोउ सम आवहिं' । पंथ बराबरि 'पइ रे' धावहिं ।
'पाछें बरुइ गगन चढि आवइ' । 'रइनि' चांद 'कस तहु रे पावहि' ।

बहु दिन होइ 'मेरावा' चांद गिनि देखी रासि ।
गांग लांघि 'कइ' लोरिक 'जउ हरदीं लइ' जासि ।।

सन्दर्भ—मैं० १८५, बी० ७०१-७०३ ।

शीर्षक—मैं० : मुअज़िमे (?) शिमुरदने लोरिक चांदा बर क़स्र खुद रफ़्तन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० दिनु । २. बी० धौ । (२) १. बी० थान । २. बी० पांच आठ सतराहनि । (३) १. बी० जौ । २. बी० जाई । ३. बी० नीरे होइ छाई । (४) १. बी० तुरा रैनि । २. बी० दुसमहि आवैहि । ३. बी० नित उठि । (५) १. बी० पाछै परै गवनु चरि धावै । २. बी० रैनि । ३. बी० थोरे पिउ पावै । (६) १. बी० मिरावा । (७) १. बी० कै । २. बी० हरदी पाटन ।

अर्थ—(१) चांद (चांदा) ने धवलगृह [के ऊपरी खंड] पर चढ़ कर ऐसा (इस अभिप्राय से) देखा कि सूर्य (सूरज और लोरिक) किस मंदिर में है। (२) [दोनों ने] जाकर जन्म के स्थान में पैर रक्खा था और इस प्रकार शत्रुओं से बच कर दिन भर (पा) लिया था। (३) [चांदा ने कहा,] "जब मीन राशि से सूर्य कर्क पर जाएगा, तब पड़ोसी सिंह उसके निकट आ जाएगा। (४) तुला राशि में रात और दिन दोनों समान होते हैं और दोनों, हो न हो, बराबर का भाग दौड़ कर तै करते हैं। (५) पीछे भले ही तुम (सूर्य और लोरिक) गगन में चढ़कर आओ, रात में चांद (चंद्र ओर चांदा) को तुम तब किस प्रकार पाओगे ?" (६) बहुत दिनों पर ही [पुनः] मिलना होगा, यह बात राशियों की गणना कर चांदा ने देख ली, (७) [और यह तब होगा] जब गंगा को पार कर लोरिक [मुझे] लेकर हरदीं [पाटन] जाएगा।

(२२८)

'महरिइं महर पाई असि' चाहा । मंदिरि पुरुखु इक 'आवति' आहा ।
चेरी चेर नाऊ 'अउ' बारी । 'तिह(न्ह)' सुनि 'पुर घर बात' संचारी ।
घरि घरि महरीं 'कहि मिसु' करहीं । 'सुनि कइ अकरकु चितहिं न' धरहीं ।
'गोवरां' बात 'कहनाभन' भई । 'अउ' कछु मैंनां पहिं फुनि गई ।
फूल घाम 'जसि' रही सुखाई । बिहसति मैनां गई कुंबिलाई ।
'ता दिन कहा लोरिकहिं रोवत मैनां जाइ' ।
आगि लागि 'सुनि' 'बस्तर' 'जरतइ जाइ' बुझाइ ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र १८६, बी० ७०४-७०६ ।

शीर्षक—मै० : ख़बर याफ़्तने मादर व पिदरे चांदा अज़ आमदने कसी बेगाना बर क़स्र ।

पाठान्तर—(१) १. बी० महरि महर पै अस मुष । २. मै० आवहि । (२) १. बी० औ । २. बी० तिव । ३. बी० परकन जाइ । (३) १. बी० घेमसि । २. बी० सुनिकै अंकरंकु मन महिं । (४) १. बी० गोवर । २. बी० घनाहुन । ३. बी० कछु । (५) १. बी० जैसी । (६) १. बी० मारनि कहां सुर लै चांदहि तू परहाउ । (७) १. बी० सो । २. बी० बस्तर तोरै । ३. बी० अब फुनि जरत ।

अर्थ—(१) महरी और महर ने ऐसी चाह (ख़बर) पाई कि मंदिर (प्रासाद) में एक पुरुष आता रहा था । (२) सेविकाओं-सेवकों और नाइयों-बारियों ने सुनकर यह बात पुर (गोवर) के घर-घर में संचारित कर दी । (३) घर-घर में महरियां [इस समाचार की] चर्चा कर उसका मिस (चर्चा का बहाना ?) कर रही थीं, और इस कलंक [की बात] को सुन कर वे चित्त में नहीं धारण कर रही थीं । (४) पुनः गोवर में यह बाता-कथनी (चर्चा) हुई, और तदनंतर यह कुछ मैनां के पास भी पहुंची । (५) जैसे कोई फूल धूप में [पड़ने पर] सूख रहता है, [उसी प्रकार] बिहसती हुई मैना [इस चर्चा को सुनकर] कुम्हला गई । (६) उसी दिन जाकर लोरिक से रोते हुए मैनां ने कहा, (७) "[तेरे इस दुष्कृत्य को] सुनकर [जैसे मेरे] वस्त्रों में आग लग गई [है] और वह [मेरे] जलने से ही [वह जैसे] बुझेगी ।"

(२२९)

'खोलिनि' मैनहि 'देखत' अहा । कहसि न 'किर' 'धिय केइं कछु' कहा ।
बरन रात सांवर 'तोर' कांहें । 'बरन स तोर रात होइ चांहें' ।
'मोहिं कहु सुनीं कछू तइं' बाता । 'लोर बीर बहुयरि कहुं राता' ।
बारी उत्तरु देसि न मोही । 'केइं' कछु आइ कहा हइ तोही ।
जीभ काढि 'ताकरि हउं जारउं' । 'घरहि छंडाइ तेहि देस निसारउं' ।
उरध 'काटि' 'हउं मरिहउं' कहसि न बेदन 'काहि' ।
'सुहर रूप तोर बहुयरि' 'बिड' रे ढांकत आहि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८७।१, बी० ७०७-७०९ ।

शीर्षक—मै० : पुरसीदन खोलिन बर मैनां रा अज़ तग़ैयुरे हाले ऊ ।

पाठान्तर—(१) १. बी० षौलनि । २. मै० देखतहिं । ३. बी० कुर । ४. बी० घी के कुछु । (२) १. बी० तूं । २. बी० करौ सरात होइ नहि जाहे (चाहे—फ़ा०) (३) १. बी० मो कौं कहु जु हीये की । २. बी० सांवर [बरं]नु भयो तोहि राता (तुल० अर्द्धाली २) । (४) १. बी० कैं । (५) १. बी० ताकर हौं जारौ । २. बी० नांकु काटि जा देस निकारौ । (६) १. मै० फाटि (काटि—ना०) । २. बी० हौ मरिहौ । ३. बी० काहु । (७) १. बी० ससि जु रूपु तोर भइ है (बहुयरि—फ़ा०) । २. बी० बहु ।

अर्थ—(१) खोलिन मैनां को देख रही थी; [उसने कहा,] "ऐ बेटी, बता न कि किसी ने तुझे कुछ कहा है ? (२) तेरा रक्त वर्ण क्यों सांवला [हो रहा] है, तेरा वर्ण तो रक्त होना चाहिए ! (३) मुझ से कह कि क्या तूने कुछ [यह] बात सुनी है कि लोरिक वीर, ऐ बधूटी, कहीं [अन्यत्र] अनुरक्त है । (४) ऐ बालिका, मुझे तू उत्तर नहीं दे रही है, तो क्या किसी ने आकर तुझे कुछ कहा है ? (५) उसकी जिह्वा निकाल कर मैं जला दूंगी और घर छुड़ाकर उसे देश से निकलवा दूंगी । (६) मैं ऊर्ध्व (शिर) काट कर मर जाऊंगी, [क्योंकि] तू यह नहीं कह रही है कि तेरी वेदना क्या है । (७) ऐ बधूटी, तेरे सुघड़ रूप को [लगता है कि कोई] विट (दुष्ट, दुराचारी) ढांक रहा है ।"

(२३०)

काह 'कहउं हउं खोलिनि' माई । 'हउं फुनि आहउं' धीय पराई ।
धिय 'कै' जाति आहि सभ 'केरीं' । 'हउं फुनि भई तेहिं कइ चेरी' ।
जानि 'बूझि कउ मोहि कस गोवहु' । होइ 'तुम्हार त[इ?]स करि रोवहु' ।
'जाकरि कोई(ही) जरइ सो जानइ' । 'अनजरतें' कस काह 'बखानइ' ।
तुम्हं 'जानति मोसेउं' कर चोरी । लोरिकु 'रवंइ पराई' गोरी ।
'हउं जो' कहति तुम्हं दिन दिन लोरु रइनि कत जाइ ।
'घरह दाख रस परिचा' चरि चरि 'आउ' पराइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९०, बी० ७१०-७१२ । मै० में इस कडवक के सामने अब जो चित्र है वह लोरिक द्वारा की जाने वाली मैना की मनुहार का है, जो आगे आती है। इसलिए मै० यहाँ पर अस्त-व्यस्त लगती है ।

शीर्षक—मै० : जवाबदादन मैनां बर खोलिन रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहौं तुम्ह षौलनि । २. बी० हौं फुनि आहौं ।

(२) १. बी० की । २. बी० केरैं । ३. बी० फुनि आहौं तिहकै औभेरैं । (३) १. बी० बूझि कै मुहि का गोवोहु । २. बी० तुम्हर तटस कह रोवोहु । (४) १. बी० जिहि कर जरै सोइ पै जानै । २. मै० बिन जरते । ३. बी० बखानै । (५) १. बी० जानत मो सौ कर । २. मै० बीरु रवंइ किहुं । (६) १. बी० हौ जु । (७) १. मै० घर न दाख रस पिउ रे (तुल० २४२·७) । २. बी० आवै ।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "ऐ खोलन मां मैं क्या कहूं ? मैं तो पराई कन्या हूं । (२) समस्त [कन्याओं] की जाति [चेरी की] [होती] है, फिर मैं तो उसकी सेविका हो चुकी हूं । (३) जान-बूझकर तुम मुझसे क्यों गोपित कर रही हो ? वह तुम्हारा है, उसी [नाते] से तुम रो रही हो । (४) जिसकी कोही जलती है (जिसका कलेजा जलता है), वही जानता है; बिना जलते हुए [होने से] कोई कैसे और क्या कहे ? (५) तुम जानती हो कि मुझसे चोरी करता है और लोरिक वीर अन्य की गोरी (स्त्री) के साथ रमण करता है । (६) तुम से इसलिए मैं कहती रहती हूं कि प्रति दिन लोरिक रात में कहीं जाता है, (७) और वह घर के द्राक्षा-रस का परित्याग कर पराए का [खेत] चर-चर कर आता है ।"

(२३१)

'अउ ही पोह मोरि' माटी हो ऊ । 'मोहि आगें जउ कह' 'कस' कोऊ ।
'हउं दोखी जउ' कछू न जानउं' । अनजानते कस काहि बखानउं ।
दई 'ठाउं' भल 'बार न पावउं' । जानि बूझि 'जउ' तोहि लुकावउं ।
सो कस 'आहि रांडहि भंडहाई' । सेज छाडि 'जो अपुनिइं' जाइं ।
घर 'कइ' 'सुंदरि' 'कीन्हि' बिराई ।
'आपनी(नि) कीत्यों(तेंउ)' आनि पराई ।
तोहि लागि चितु 'बांधेउं' 'जीउ' मोर तूं आहि ।
'कहहि न कवन' भंडिहाई देस 'निसारउं' ताहि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८७।२, बी० ७१३-७१५ ।

शीर्षक—मै० : मुनकिर शुदने खोलिन केह मन हेच न मी दानम ।

पाठान्तर—(१) बी० षोही पूतु मोरौ । २. बी० मुहि आगै जौ कहि । ३. मै० कुछ । (२) १. बी० हौ दुषई (दोषी—फ़ा०) जौ । २. बी० जानौ । (३) १. बी० ठाव । २. बी० कबहि न पांउ । ३. बी० जौ ।

(४) १. बी० राड अहि झौहाई । २. बी० तुहि वा पैहि । (५) १. बी० की । २. मै० धीय । ३. बी० कीन्ह । ४. मै० अपनी कीनें । (६) १. बी० बाध्यैं । २. बी० जीव । (७) १. बी० कहु सो कौन । २. बी० निकारौं ।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "इसी समय मेरी मिट्टी (मेरा शरीर) पोह (गोबर की छोत) हो जाए, यदि मेरे आगे कोई कहे कि यह कैसा है । (२) मैं इसलिए दोषी [कही जा सकती] हूं कि [इस विषय में] कुछ जानती नहीं हूं, किंतु बिना जाने किसी के बारे में क्या बखानूं (कहूं) ? (३) दैव के स्थान पर [जाने के लिए ?] मैं भला द्वार न पाऊं यदि जान-बूझकर तुझसे कुछ लुकाऊं (छिपाऊं) । (४) [किन्तु] किसी रांड (विधवा या परित्यक्ता) से भंडता [जैसी] यह कैसी बात है कि कोई अपनी शैया को छोड़ कर [अन्य की शैया पर] जाए ? (५) घर की सुंदरी को उसने [जैसे] अन्य की कर डाला है और दूसरे की स्त्री को ला कर उसने अपनी कर लिया है ! (६) मैंने तेरे लिए (तुझ से लगा कर) ही अपने चित्त को बांध रक्खा है, तू ही मेरा जीव है । (७) तू कह न कि किसने वह भंडता की है; मैं उसे देश से निकाल (निकलवा) दूंगी ।"

(२३२)

माइ 'मोरि' तुम्हं सासु न होहू । 'बोलिउं चितहिं उठा जो' कोहू ।
'जाकर नित उठि बार बोहारउं' । 'ताकर ओछ कहइ का पारउं' ।
'कइ बियाह बारी हउं' आनीं । 'चूल्हि न फूंकि गइउं नहिं' पानी ।
भंवरु बासु 'केंवरे कइ' राता । 'कंवल कली' 'रोहि' पूछ न बाता ।
'अंब्रितु 'सरवरु आछत' भरा । सो सरवरु 'लइ अनतइं धरा' ।
जाइ 'देहु मोहि खोलिनि' लोरिक 'कीन्ह(न्हि)' दुहेलि ।
'सारसि परि ररि मरुऊं' 'पिउ बिनु रइनि' अकेलि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८८।१, बी० ७१६-७१८ ।

शीर्षक—मै० : बाज़ गुफ़्तने मैनां बर खोलिन रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मोर । २. बी० बोल्यौ चिताह उठ्यौ जौ । (२) १. बी० जाकौ बालु उभर न पारै । २. बी० ताकौ वोछ बोल कर मारै । (३) १. बी० कै बियाहि बरी हौ । २. बी० चूल्ह न फूंक्यौं गइ न । (४) १. बी० केवरै कि । २. बी० केवर करी । ३. मै० फुनि । (५) १. मै० अमिरित । २. बी० सरवरु अछतु, मै० कुंड जो आछत । ३. बी० अन पासेहि

ढरा (धरा—फ़ा०)। (६) १. मै० देखहु भाई षोलिनि, बी० देहु मोहि षोलनि। २. मै० हइ सत्त। (७) १. बी० सारस जौ परि मरिहौ। २. बी० संग बिनु रैनि।

अर्थ—[मैनां ने उत्तर दिया,] "तुम मेरी मां हो, सास नहीं हो; [जो-कुछ] मैंने कहा है, वह इसलिए कि मेरे चित्त में क्रोध उठा हुआ है। (२) जिसका मैं नित्य उठकर द्वार बुहारती (झाड़ती) हूँ, उसकी ओछी बात (निंदा की बात) क्या कह सकती हूं? (३) विवाह करके मैं तभी लाई गई थी जब मैं बालिका थी, [जब तक] न मैंने चूल्ही फूंकी थी (रसोई करती थी) और न पानी के लिए गई थी (पानी भरती थी)। (४) किन्तु [अब] भौंरा (प्रिय) केवड़े की सुवास पर अनुरक्त है, [इसलिए] वह कमल-कलिका को रोध (रोक) कर उससे बातें भी नहीं पूछता है। (५) जो [प्रीति का] अमृत-सरोवर भरा हुआ था, उस सरोवर को ले जा कर उसने अन्यत्र रख दिया है। (६) खोलिन, मुझे जाने दो, क्योंकि लोरिक ने मुझे दुःखित किया है। (७) [अब] मैं सारसी की भांति रट लगाती (चिल्लाती) हुई प्रिय (पति) के बिना रात में अकेली ही मर जाऊंगी।"

(२३३)

'रोस' न जाइ होइ 'हरुवाई'। 'हरुई' बात जाइ 'गरुवाई'।
'हरुव बोल भार सहि' लीजा। 'हरुएं कहं' जिउ 'करुव' न कीजा।
'हरुव होइ बुधि केर' अयानां। 'हरुवै होय कैरु (?)' सयानां।
'हरुव सो फूंकेहि' जाइ उड़ाई। 'पाउ न डोल जेहि चितहि गरुवाई'।
'गरुई' होइ घर अपनें 'रहहू'। 'उहि हरुवै' 'कै(कइ)' चित न करहू।
'उत्तिउं' जाति 'कुरवती' मैनां 'कीज न' कोहु।
'गाल्ह फारि कै(कइ)'जीभ 'उपारउं' पीउ(ऊं)लोरिक 'लोहु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८८।२, बी० ७१६-७२१।

शीर्षक—मै० जवाब दादन खोलिन बर मैनां रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रोसि। २. बी० हरवाई। ३. बी० हरइ (हरुई—फ़ा०)। ४. बी० गरवाई। (२) १. बी० हरुवो बोलु भारि सुनि कैं। २. बी० हरुवैं कौ। ३. बी० करू। (३) १. बी० हरू जिय बुधि करे। २. मै० हरुव न सेइय कहा। (४) १. बी० हरू जु फूकत। २. बी० आंधी न डोलौ जीह गरवाई। (५) १. बी० गरइ। २. मै० रहू। ३. मै० अस

हरुए। ४. मै० कहं। (६) १. बी० उत्तिम। २. मै० गुन आगरि। ३. मै० न कीजइ। (७) १. मै० गाला फरि दुइ। २. बी० उपारौं। ३. मै० आहु।

अर्थ—(१) [खोलिन ने कहा,] "रोष यदि नहीं जाता है तो हल्कापन होता है, और हल्की बात से गुरुता चली जाती है। (२) हल्के बोल का भार सहन कर लेना चाहिए और हल्के [बोल] के लिए जी को कटु नहीं करना चाहिए। (३) हल्कापन बुद्धि के अज्ञान से होता है; क्या हल्का [व्यक्ति] सज्ञान हो सकता है? (४) जो हल्का होता है, वह फूंकने से ही उड़ जाता है और जिसके चित्त में गुरुता होती है, वह डोलने (हिलने) नहीं पाता है। (५) गुर्वी होकर अपने घर में [पड़ी] रहो, उस हल्के (हल्का कार्य करने वाले) की चिन्ता न करो। (६) तुम उत्तम जाति की हो और कुलवती हो, ऐ मैनां, तुम क्रोध न करो। (७) [यदि लोरिक ऐसा कर रहा हैतो] मैं उसके गाल फाड़कर उसकी जिह्वा खींच लूंगी, और उस लोरिक का लहू पिऊँगी।"

(२३४)

बारि बियाहि 'जु (जो) तर(रु)नि उदाटी'।
बेर बांधि 'औ(अउ) नाव उसाटी'।
गुन 'जो' तोरि 'धरि' नाउ 'चढाई'। 'तेहि रे निगुनियहि को' 'पतियाई'।
'तेहि' सेतीं कसि होइ हियारी। लेजु काटि 'कइ कुवइं' उसारी।
'लावइ आगि सेज दिन' 'मोरी'। सूरिजु चांद रवंइ निसि चोरी।
'जउहि' 'सूरुज' चांद पहिं आवा। सरग 'तराइन महिं दिखरावा'।
'लाज भइउं तेहिं' सांवरि 'जइसि' राति 'अंधियारि'।
निलज चांद मुख 'कारें' 'फिरइ' 'राति उजियारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १८९, का०, बी० ७२२-७२४।

शीर्षक—मै० : तक़रीर करदने खोलिन बर मैनां रा।
का० : जवाब दादन मैनां खोइलिन रा।

पाठान्तर—(१) १. मै० जउ तइं हुत आनी, का० तरनि जउ राती। २. मै० कइ दीन्हि अस्तानी। (२) १. बी० जु, मै० में नहीं है। २. मै० धनि (धरि—ना०)। ३. बी० चरावै। ३. मै० तेहि निगुनिहि कों कवनु, बी० तिह रगनेह (निगुनिहि—ना०) कोइ। ४. बी० पतिआवै। (३) १. मै०

ओहि, बी० तिहि। २. का० खट, बी० जिहि कुवां। (४) १. का० लावइ आगि सेज दिन, बी० लावै आगि सेज तनि। २. का० मोरीं। ३. बी० रवै। (५) १. बी० जोवोहु। २. का० सूरुज सो। ३. बी० तरायन मोहि दिषावा। (६) १. का० हो गइउं तसि, बी० भयो तिहि। २. बी० जैस। ३. बी० अंधियार। (७) १. मै० कारे, बी० कारौ। २. का० भवंइ, बी० फिरै। ३. बी० रैनि अधियार (पूर्ववर्ती चरण का तुक भी यही है)।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "बचपन में ही ब्याह कर यदि किसी ने अपनी तरुणी स्त्री को अलग डाल दिया (?), बेड़े से बाँधकर यदि किसी ने नौका को दूर कर दिया, (२) गुण (नाव की रस्सी) तोड़ कर यदि किसी ने किसी को पकड़ कर नाव पर चढ़ाया, तो उस निर्गुणी की प्रतीति कौन करेगा ? (३) उससे हृदय का संबंध कैसे हो जो रस्सी को काट कर [किसी को] कुएं में से उस्सारे (ऊपर उठाए) ? (४) वह मेरी शैया में प्रतिदिन आग लगाता है, और चांद (चांदा) से वह सूर्य (लोरिक) रात्रि में चोरी-चोरी रमण करता है। (५) [क्योंकि] वह सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) के पास आता (जाता) है, तभी तो आकाश (धवलगृह) की तारिकाएं (चांदा की सेविकाएँ) मुख दिखाने लगी हैं। (६) उसी लज्जा से मैं ऐसी सांवली हो गई हूं, जैसी अंधेरी रात होती है। (७) भगवान करे निर्लज्ज चांदा के मुख पर कालिमा हो और मेरी उजाली रात पुनः आए।"

(२३५)

निसि दूभर (रि) तहां गई बिहाई। दिनु भा लोरु पहूता आई।
मंदिर चहूं दिस रबि उजियारा। तउ सु(सो) मैना मुषु अधियारा।
आगि न चूल्हें धरा न पानी। लोरिक चरची रबिनु(?) सुखानी।
दरसनु न करै लोर सौ(सौं) मैना। श्रवन नहि सुनै बगत(ति) नहि बैना।
लोरिक चाहि नारि मुख जोवै। चीरु खांचि धन तिह रस(?) गोवै।
मरइ सनेह स मैना उठी प(पा)य सिरु झार।
रगत धार दुहु नैनाह रोयसि घालि डभा(फा)र॥

सन्दर्भ—बी० ७२५-७२७। यह कडवक मै० में नहीं है, किन्तु इस समय मै० पत्र १६० पर जो चित्र है वह इसी का लगता है, इसलिए असंभव नहीं कि यह कडवक उसमें से निकल गया हो। कडवक प्रसंग में आवश्यक लगता है, क्योंकि इसके अभाव में अगले कडवक का विषय आकस्मिक रूप से प्रस्तुत किया हुआ लगेगा।

अर्थ—(१) जब [मैनां की] दूभर रात्रि वहाँ छोड़कर चली गई (व्यतीत हो गई), दिन हुआ और लोर आ पहुँचा। (२) मंदिर में चारों ओर सूर्य का प्रकाश हो गया था किन्तु मैनां के मुख पर तब भी अंधेरा ही था। (३) उसने चूल्हे में न आग जलाई थी और न पानी [भर कर] रक्खा था; लोरिक ने अनुमान कर लिया कि नलिनी (?) सूख गई है। (४) लोरिक के सम्मुख मैनां देखती न थी, न कानों से कुछ सुनती थी और न वचन बोलती थी। (५) लोरिक नारी (मैनां) का मुख [यह समझने के लिए] ध्यानपूर्वक देख रहा था [कि उसका रोष कहाँ तक वास्तविक है], और इसलिए वह [उसके मुख पर से] उसका चीर खींचता था, किन्तु स्त्री (मैनां) रोष(?) के कारण उस (अपने मुख) को छिपाती रहती थी। (६) मैनां के संबंध में उसे यह सन्देह हुआ कि वह मर जाएगी, पैर से सिर तक ऐसी ज्वाला [उसके शरीर में] उठी; (७) उसके दोनों नेत्रों से रक्त की धारा बह चली, और वह डफार छोड़ कर रो पड़ी।

(२३६)

'कइ' गियानु मनि लोरिक 'गुनां'। 'अवसिउ' मैनां 'कछु हइ' सुनां।
'तउ रे' बिरोधु 'मोहि' सेतीं कीन्हां। नारि अंतरपटु अंतरु दीन्हां।
'कर गहि कैं धन(नि) पासि बईठा'।
रगत 'झरत' 'तातें औ(अउ)र न' दीठा।
आंसु 'पोंछि 'मुख' पानी धोवा। मोहि देखि 'तुम्हं' काहे रोवा।
निससति रहइ न पारइ सैनां'। 'दिस्टि न करइ' 'बकति' 'नहि बैनां'।
'कइ मन सोग सोगाइहु' 'कइ' कछु 'भएउ बिसाउ'।
रस महि बिरसु 'संचारइ' 'चितहिं चढ़ा कस भाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १६१, बी० ७२८-७३०।

शीर्षक—मै० : दर खातिर गुज़रानीदने लोरिक मैनां शुनीदने अस्त।

पाठान्तर—(१) १. बी० कै। २. बी० गना। ३. बी० अैसैं। ४. बी० कुछू न। (२) १. बी० तें। २. बी० मुझ। (३) १. मै० बर कइ लोर पास धनि बइठा। २. बी० झार। ३. मै० मुख रोवत। (४) १. बी० पूछ (पोछि—फा०)। २. मै० में नहीं है। ३. बी० तै। (५) १. बी० निसिसत रहै न बारी मैनां (पारइ सैना—फ़ा०)। २. बी० श्रवन न सुनै (तुल० २३५.४)। ३. बी० बगत। (६) १. बी० कै मन सुरग सुकन्युहु। २. बी० कै। ३. बी० भयो बिपाऊ। (७) १. बी० संचारौहु। २. बी० चितेहि चरा कास भाऊ।

अर्थ—(१) लोरिक ने मन में ज्ञान करके विचार किया, "मैनां ने अवश्य ही कुछ सुना है। (२) तभी तो उसने मुझसे विरोध कर रक्खा है और उस नारी ने [मेरे और अपने बीच] अंतर-पट का अंतर दे रक्खा है।" (३) [यह सोच कर] लोरिक [स्त्री का] हाथ पकड़ कर उसके पास बैठ गया, किन्तु [उसके नेत्रों से] रक्त झड़ रहा था इसलिए उसे और कुछ न दीखा। (४) उसके आंसू पोंछ कर [लोरिक ने] उसका मुख पानी से धोया और बोला, "मुझे देखकर तू क्यों रो पड़ी ? (५) तू निःश्वास ले रही है और कोई संकेत नहीं डाल (कर) रही है; तू [मेरी ओर] दृष्टि नहीं कर रही है और न कोई वचन बोल रही है। (६) तू या तो मन में शोक से शोकायित हो गई है, अथवा तुझे कुछ विस्वाद हो गया है। (७) रस में तू विरसता का संचार कर रही है, [इसलिए बता कि] तेरे चित्त में कैसा भाव चढ़ा हुआ है ?"

(२३७)

'तेहिं लइ' भाउ 'चढ़ावहि' लोरा। 'जेहिं' सेतीं मन 'लागा' तोरा।
तजि मारगु 'जो' कुमारगि जाई। सो कस मुख 'दरसावइ' आई।
सुद्ध सांत 'जनु कछुव न जानइं(इ)'।
'मांगति' पान तउ पानी 'आनइं(इ)'।
'जे' छंद नौ खंडि 'काहि न आवै(वइ)'।
ते लोरिक 'कहूवां(हुंवां) अवरावै (वइ)'।
सेज छाडि 'तूं' सरगेहिं जासी। 'चांद रवसि' 'अउ' बोलसि 'भासी'।
'बारि भोरि मोहि डहकसि' जानसि 'कछुव' न जान।
'नारि कीन्हि तइं बाउरि' 'तेहि पंथ बहुल' सयान॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९२, बी० ७३१-७३३।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत दादन मैना बर लोरिक रा बा गुस्सः।

पाठान्तर—(१) १. बी० तिह लै। २. बी० चरावोहु। ३. बी० जिह। ४. मै० लागेउ। (२) १. बी० जु। २. बी० दरसावै। (३) १. बी० जानौ कछू न जानौ। २. बी० भागै। ३. बी० आंनौ। (४) १. बी० जै। २. मै० काउ न आए। ३. मै० तुम्हं कहवां पाए। (५) १. बी० तहुं। २. मै० चांदहि रवं। ३. मै० और। ४. मै० में शब्द नहीं है। (६) १. मै० भानु बोलि मोहिं डहंकसि। २. बी० कछु। (७) १. बी० बार कीन्ह तैं बावरि। २. बी० तुह्म (तुम्ह) पहि आहि।

अर्थ—(१) [मैनां ने उत्तर दिया,] "ऐ लोरिक, उसको लेकर भाव चढ़ा, जिससे तेरा मन लगा हुआ है। (२) जो मार्ग को छोड़ कर कुमार्ग पर जाता है, वह कैसे आ कर मुख दिखाता है ? (३) [ऊपर से] तू ऐसा शुद्ध (सीधा-सादा और शांत है मानो कुछ जानता ही नहीं है, पान माँगती हूं तो पानी लाता है। (४) जो छद्म नौ खंडों में किसी को नहीं आते हैं, ऐ लोरिक, तू उनका अभ्यास कहाँ पर कर लेता है ? (५) [मेरी] शैया को छोड़कर तू आकाश (चांदा के धवलगृह) में कहाँ जाता है ? तू चांद (चांदा) से रमण करता है और भासित कर (बना बना कर ?) बोलता है। (६) मुझ बालिका और भोली को तू डहक रहा (धोखा दे रहा) है और जानता (समझता) है कि मैं कुछ भी नहीं जानती हूं। (७) नारी को तूने बावली कर रक्खा है, और इस मार्ग में तू बड़ा सयाना है।"

(२३८)

अस 'धनि' पुरुखहि बेगि 'मरावा'। 'अनसंभवइं अस उत्तरु पावा'।
ठाकुर 'कइ धिय बिरिछहि' लावा। 'बास घनइ लइ' मूंडु कटावा।
सरग चांदु धर लोरिकु 'आहा'। 'इन्ह बातइं दहुं कहियइ काहा'।
सरग गएं धर 'बहुरि न आवइ'। 'जियतइं' सरगेहिं जान न 'पावइ'।
'अउ जउ तुम हम सरग पठाउबि'। सरग गएं 'किर' बहुरि न 'आउबि'।
जीभ संकोरहु मैनां 'रानी' 'होइ' बहुल पछिताउ।
'जइ मोंहि' सरगि 'चलाव(उ)बि' 'तुम सों कहां मेराउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९३, बी० ७३४-७३६।

शीर्षक—मै० : जवाब तरसानीदने लोरिक बर मैनां रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० धन। २. बी० पुरखहि। ३. बी० मरावै। ४. बी० अनसंभौ जिहि उतरु न आवै। (२) १. बी० की धी अकरंकु। २. बी० अस अनसभये (तुल० अर्द्धाली २)। (३) १. बी० अहा। २. बी० यह र बात घन कहिए कहा। (४) १. बी० फिरे न आई। २. बी० जैतिहि। ३. बी० पाई। (५) १. बी० अैसे तुम्ह हौ सरगि पठावबि। २. बी० धर। ३. बी० आवबि। (६) २. मै० में नहीं है। १. बी० होय (७) १. बी० जौ हौं। २. मै० चलावहु। ३. बी० तुम्ह सौ कहौ मिलाऊ।

अर्थ—(१) "ऐसी स्त्री", [लोरिक ने कहा,] "पुरुष (पति) को शीघ्र ही मृत करती है !" इस प्रकार का असंभाव्य (जिसकी कल्पना नहीं की जा

सकती थी) उत्तर [मैनां ने] पाया। (२) [उसने कहा,] "एक ठाकुर (क्षत्रिय) की दुहिता ने एक वृक्ष लगाया, तो [उसकी] सघन वासना को लेकर उसने सिर कटाया! (३) चांद (चांदा) स्वर्ग (आकाश) में है और लोरिक धरती पर है, [अतः] इन [बेतुकी] बातों के संबंध में क्या कहा जाए? (४) स्वर्ग जा कर कोई धरती पर लौटता नहीं है, और जीवित अवस्था में कोई स्वर्ग जाने नहीं पाता है। (५) अब यदि तुम मुझे स्वर्ग भेजोगी, तो स्वर्ग जा कर मैं पुनः न आऊँगा। (६) ऐ मैनां, तुम [अपनी] जिह्वा सिकोड़ो (कम बोलो), [अन्यथा तुम्हें] बहुत पछतावा होगा। (७) यदि तुम मुझे स्वर्ग चलाओगी (भेजोगी), तो तुम से कहां [मेरा] मिलना [होगा]?"

(२३९)

सुनि 'खरभरि खोलिनि तसि' धाई। 'जनु फुकरति बिहिलागनि' आई।
'लोरहि' अचगरु 'बकति' न आवा। अब 'हउं एहि(हीं) भूखिइ' खावा।
केस गहें कर मांथ 'ओनाएसि'। 'झूट(ठ) पचारि' 'दुहुं गालहि' लाएसि।
'जाकरि चेरी पियाव न पानी। ता करि धिय चेरी कै(कइ)' आनी।
'अउ तेहि ऊपरि' 'दिहसि' अंगारा। दहि दहि 'कुइला' भई सो 'बारा'।
'आगि' लाइ घर 'अपनें' लोर 'दहां दिसि धावहि'।
बेगि 'पइसि' जरि मैनां 'अंब्रित' 'छिरकि' 'बुझावहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९४, बी० ७३७-७३९।

शीर्षक—मै० : व आमदने मादर लोरिक व आश्ती करदने मियाने लोरिक व मैनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० करहु पौलनि तस। २. बी० जानौ फिकरति बिहिलागनि। (२) १. बी० लोरैहि। २. बी० बगत। ३. बी० हौ यहि पहि भूष्या। (३) १. बी० नवाईसि। २. मै० कूंचि झालि। ३. बी० दौहु गालहु। (४) १. बी० जाकर चेर। २. मै० कहं। (५) १. बी० औ तिहि। २. बी० बरसु। ३. मै० कोतला। ४. मै० नारा। (६) १. बी० अग। २. बी० आपन। ३. बी० दहा दिस धाउ। (७) १. बी० पैसि। २. मै० अमिरित। ३. मै० छिरकि छिरकि। ४. बी० बुझाउ।

अर्थ—(१) खलबली सुनकर खोलिन इस प्रकार दौड़ पड़ी जैसे फूत्कार करती हुई कोई विहिलाग्नि (?) आ जाए। (२) [यह देख कर] अचगर (अपराधी) लोरिक को वाक्य न आया, [क्योंकि] उसने समझ लिया कि इस

भूखी [अग्नि ?] ने मुझे खा लिया। (३) खोलिन ने दोनों के केशों को हाथों से पकड़े हुए [दोनों के] मत्थे झुकाए और झूठ-मूठ डाट-डपट कर दोनों को [एक-दूसरे के] गालों से लगा दिया। (४) [उसने कहा,] "जिसकी चेरियां पानी नहीं पिलाती हैं, उसकी कन्या को तुम [अपनी] सेविका (पत्नी) बनाने को लाए, (५) और उस पर तुमने [इस प्रकार] अंगारा दिया कि वह बाला जल-जल कर कोयला हो गई। (६) अपने घर में आग लगा कर, ऐ लोरिक, तुम दसों दिशाओं में दौड़ रहे हो! (७) तुम शीघ्र [घर में] प्रविष्ट हो, क्योंकि मैनां जल रही है, और तुम उसको अमृत छिड़क कर बुझाओ।

(२४०)

'लोर' हरकि 'खोलिनि' घर आई। बीर नारि कंठि लाइ मनाई।
'भुजा झेलि धनि सेज बइसारी'। पान 'बिरी मुख दीन्हि' संवारी।
रंग बिनु पान खवावसि मोही। सो रंग 'अबहुं न देखउं' तोही।
रंग बिनु 'बातन्ह भाउ बनावा'। तुम्हं लोरिक रंगु 'अनतइं' लावा।
धर 'तोर आछइ' मैनां 'पहां'। चितु मनु 'धावइ' चांदा जहां।
'सवन न सुनइ नैन नहि देखइ' 'जउ न होइ मन हाथि'।
सेज न भाव रूच नहिं कामिनि 'तिल न रहइ' संग साथि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९५, बी० ७४०-७४२।

शीर्षक—मै० : आश्ती करदन लोरिक बा मैना अज़ गुफ़्तार मादर।

पाठान्तर—(१) १. मै० लोरिक। २. बी० षौलनि। (२) १. बी० गहि अंगुरी सेज बैसारी। २. बी० बीर मुष दीन्ह। (३) १. बी० घूत न देष्यौं। (४) १. बी० बीर मान औपावा (उपावा—फ़ा०)। २. बी० अनतहि। (५) १. बी० तुर आछै। २. मै० जहां ('जहां' दूसरे चरण के तुक में भी है)। ३. बी० धावै। (६) १. बी० श्रवन न सुनै नैन न देषैं। २. बी० जो न होय जिउ हाथि। (७) १. बी० सो न रहै। मै० में दोहे के दोनों चरणों के प्रथमार्द्ध परस्पर स्थानांतरित हैं।

अर्थ—(१) लोरिक को [इस प्रकार] वर्जन कर खोलिन घर आई, तो वीर [लोरिक] ने स्त्री (मैनां) को गले से लगा कर मनाया। (२) भुजाओं पर ले (उठा) कर [उसने] स्त्री को शैया पर बिठाया और [तदनंतर] उसने संवार कर मैनां के मुख में पान की बीड़ी दी। (३) [मैनां ने कहा,] "तुम बिना रंग (अनुराग) के पान खिला रहे हो; वह रंग (अनुराग) अभी भी

मैं तुममें नहीं देख रही हूं। (४) बिना रंग (अनुराग) के ही तुम बातों से भाव (स्नेह) का अभिनय कर रहे हो और तुमने, ऐ लोरिक, रंग (अनुराग) अन्यत्र लगा रक्खा है। (५) धड़ तुम्हारा [भले ही] मैनां के पास है, किन्तु तुम्हारे चित्त और मन वहाँ दौड़ रहे हैं जहाँ चांदा है। (६) कान सुनते नहीं हैं, नैन देखते नहीं हैं, यदि अपना मन हाथ में नहीं होता है। (७) शैया भाती नहीं है और कामिनी रुचती नहीं है, [इसलिए] उसके संग-साथ में [पुरुष] तिल भर भी नहीं रहता है।"

(२४१)

मैनां तोहि 'जसि' तिरी न 'आहइ'। तोहि छाड़ि चितु 'लाग न चाहइ'।
मइं 'तोरें' रसि बिरसु बिसारा। 'देखि निभावइं आंबु' सहारा।
मइं तूं नारि चांद 'जसि' ,पाई। चांद जोति सबु गई 'हिराई'।
'सवन [नि ?] सुनि अपजसु केइं लाए'। लागु न मैनां 'कहें पराए'।
नैन देख तउ बात 'उभारी'। 'ढांकिय सुनि कइ उघरत बारी'।
'तोरि चाहि' को 'आगरि' 'मैनां' 'मोरें चित(चित्त)न समाइ'।
'अंब्रितु चूरि जु (जो)' 'बिरसइ' सो 'फर टेंटि' न खाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९६।१, बी० ७४३-७४५।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने लोरिक जमालियत व ख़ूबी मैनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० जस। २. बी० आही (आहइ—फ़ा०)। ३. बी० लागैं काही। (२) १. बी० तेरैं। २. बी० देखहि भावहि अंबु। (३) १. बी० जस। २. बी० रहाई। (४) १. बी० झगरु न मैंना अप[ज]सु लायें। २. मैं० कहन पराए, बी० कहें परायें। (५) १. बी० उभारैं। २. बी० जौ उघरहि तौ ढाकैंहि पारैं। (६) १. बी० तोहि। २. बी० आगर। ३. बी० में नहीं है। ४. बी० मेरै चितह कराय। (७) १. मैं० अमिरित कुंड जेहिं। २. बी० जु बिरसैं। ३. बी० हर (फर—फ़ा०) नीबु।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "मैनां, तेरी जैसी [कोई भी] स्त्री नहीं है, [जिससे] तुझको छोड़ कर [मेरा] चित्त लगना चाहे। (२) मैंने तेरे रस में विरस [होना] विस्मृत कर दिया, और तुझे देख कर मुझे आम्र-सहकार भी नहीं भाता है। (३) मैंने तो तुझे ही चंद्र जैसी स्त्री पाया है, और तुझे देख कर चंद्र की समस्त ज्योति गुम हो गई है। (४) कानों से तू किसी के लगाए हुए अपयश को सुनकर अन्य के कथन पर, ऐ मैनां, न लग। (५) नेत्र से देखे,

तो [कोई] बात उभाड़े, [अन्यथा] ऐ बालिका, उघड़ती हुई बात को सुन कर ढक दे। (६) मेरे चित्त में यह [बात] नहीं समा रही है कि तेरी अपेक्षा कोई बढ़ कर है, (७) और जो अमृत[फल] को तोड़ कर उसका विलास करता [होता] है, वह टेंटी (करीर) का फल नहीं खाता है।"

(२४२)

'लोर चांद मोरु केर महं काहा'। 'जो केरइ सो आछत आहा'।
'सोरह करां जउ रे दिखरावइ'। 'चांदा मोसिउं न सरभरि पावइ'।
लोरिक 'बिसरै(र)हु नारि गंवारी'। 'फूर' न बीनि पराई बारी।
'फूर' केतुकी भंवरु जो 'रावइ'। सो हरि कांटैं जीउ 'गंवावइ'।
'हउं' जिय 'तोरें' लोर डराऊं। नींद न 'जानउं भुगुति' न खाऊं।
'तोरिइं' बहुलि मन 'संका' पर बेलीं कत 'जाहु'।
'घर न दाख रस पिउ रे' 'नाह संकोरहु खाहु'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र १९६।२, बी० ७४६-७४८।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तन मैनां बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० लोरिक चांदा करिहौ कहा। २. बी० जो करिहौ सो आछौहु अहा। (२) १. बी० सोराह करा जो रि दिषरावै। २. बी० चांद कि सरभरि मो पैंहि पावै। (३) १. मैं० तोरें नारिंग बारी (नारि गंवारी—ना०)। २. मैं० फूल। (४) १. मैं० बास। २. बी० जु रावै। ३. बी० गवावैं। (५) १. बी० हौ। २. बी० तेरैं। ३. बी० जानौ भुगति। (६) १. बी० तोर। २. बी० संकौ। ३. मैं० जाइ। (७) १. बी० घरह दाष रस पूरें (पिउ रे—फ़ा०)। २. मैं० चरि चरि आउ पराइ (तुल० २३०.७)।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "ऐ लोर, चांदा मेरी सापेक्षता में क्या है ? और जो सापेक्षता में होता है, [वास्तव में] वही होता है। (२) यदि चांदा अपनी सोलह कलाएँ भी दिखाए, [तो भी] वह मुझसे समानता नहीं पा सकती है। (३) ऐ लोरिक, तू उस गंवार नारी (चांदा) को विस्मृत कर दे; तू पराई वाटिका में फूल न बिने (पर-स्त्री का अंग-स्पर्श न करे)। (४) केतकी के फूल से यदि भौंरा रमण करता है, तो वह कांटों द्वारा हरा जा कर प्राण गंवाता है। (५) मैं तेरे जी [के विषय] में, ऐ लोर, डरती रहती हूँ, और उसके कारण न नींद जानती हूं और न भुक्ति (भोजन)

खाती हूं। (६) तेरी (तेरे लिए) ही मेरे मन में बहुत शंका रहती है, तू पराई बेली के पास क्यों जाता है ? (७) तू घर का द्राक्षा-रस नहीं पीता है और, हे स्वामी, तू [दूसरों के द्वारा उच्छिष्ठ किए हुए] सकोरे खाता है !"

(२४३)

'बइठि' सांत 'हंसि लोरिक' कहा। गा 'सो' 'कोपु मैनां चितु अहा'।
'खर उपहर कइ' मंदिरु 'संवारा'। 'कीत' रसोइ 'अगिनि परजारा'।
'सहजि जेउं लोरिकु' अन्हवावा। अउ 'भल' भोजनु काढि जिवावा'।
रंग सुरंग 'सेउं' 'लीन्हि' सोपारी। पान बीरी मुख 'दीन्हि' संवारी।
हंसत लोरु बाहरि नीसरा। चांद बात 'मैनां' बीसरा।
सोइ 'पुरुष' 'सो' 'तरिवर' सोइ लोरु 'सो बेर'।
सोइ 'मिरिघु सो थरहरु सोइ अहेरिया सो अहेर'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९७, बी० ७४९-७५१।

शीर्षक—मै० : लहू दर खुशदिली लोरिक व मैनां गोयद।

पाठान्तर—(१) १. बी. बैठि। २. बी० धन सौ अस। ३. बी० सु। ४. बी० कोहु रामां चित अहा। (२) बी० घरु उजारि कै। २. बी० संवारी। ३. बी० आनि। ४. बी० आगि पैजारी। (३) १. मै० सेज बिछाइ। २. बी० औ भबि। (४) १. बी० सौ। २. बी० दीन्हि। ३. बी० दीन्ह। (५) १. बी० मैंनाही। (६) १. बी० पुरषु। २. बी० सोइ। ३. बी० तर वरु। ४. बी० बरबीर। (७) १. बी० मिरगु सोई पारधी सो घरु सोई अहीरु।

अर्थ—(१) "तू शांत [होकर] बैठ," हंस कर लोरिक ने कहा, तो मैनां के चित्त में जो क्रोध था वह चला गया। (२) उसने खूब आडंबर-युक्त करके [अपने] मंदिर (भवन) को संवारा और अग्नि प्रज्वलित (जला) कर रसोई की। (३) सहज जैसे ही लोरिक को उसने नहलाया और भला भोजन निकाल कर उसे जिमाया। (४) सुरंग रंग (अनुराग) के साथ सुपारियां उसने लीं और पान की बीड़ी संवार कर उसने [लोरिक के] मुख में दी। (५) हंसते हुए लोरिक बाहर निकला और चांदा की वार्ता [के समक्ष] मैनां को भूल गया। (६) [पुनः] वही पुरुष था, वहीं तरु वर था, वही लोरिक था और वही वेला थी, (७) वही मृग था, वही स्थल था, वही अहेरी था और वही आखेट था।

१५. चांदा-मैनां-विवाद खण्ड

(२४४)

असाढ़ असाढ़ी 'कइ' तिथि अही। 'दुज गिनि' देव जातरा कही।
सोम बारु 'स' महतु 'गुनि' कहा। सो दिन 'आगें' आवतु अहा।
होम जाप 'अगियारि करावहि'। 'परसि देव' कर जोरि 'मनावहि'।
'जउ धरि' मांथ देव पां 'लावइ'। 'सो' जसि चांद 'सुरिजु' बरु 'पावइ'।
सोमनांथ 'कहुं' पूजा 'लीजइ'। अखित फूल 'मार लइ' दीजइ।
चली 'पिरथिमी नौ खंड' 'देव' जात सुनि 'आइ'।
चांद सुरिजु सुनि रहंसी 'देउ मनाइसु' 'जाई(इ)'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९८, बी० ७५२-७५४।

शीर्षक—म० : कैफ़ियते चांद तरावत दरबुत खान : गुफ्तन महत।

पाठान्तर—(१) १. बी० की। २. बी० द्विजगनि। (२) १. मै० में नहीं है। २. बी० गिनि। ३. बी० आगै। (३) १. बी० अगियार करावोहु। २. बी० पाइ लागि (तुल० चौथी अर्द्धाली)। ३. बी० मनावोहु (४) १. बी० जौधरि। २. बी० लावै। ३. बी० से। ४. मै० सूरिजु। ५. बी० पावै। (५) १. बी० कौहु। २. म० कीजइ। ३. बी० सिर पाती। (६) १. बी० सु नव षंड पिरथमी। २. बी० हेव। ३. बी० आई। (७) १. बी० देव मनायौं। २. मै० में नहीं है।

अर्थ—(१) आषाढ़ की आषाढ़ी की तिथि [आई हुई] थी, तो पंडित ने गणना कर देव [-दर्शन की] यात्रा। (२) उसने सोमवार का महत्त्व समझ कर बताया, और वह दिन आगे आ रहा था। (३) [उसने कहा,] "[यदि कोई स्त्री] हवन, जप और अगियार (अग्नि-कर्म) कराए, देवता का स्पर्श कर उसे हाथ जोड़ कर मनाए (४) और यदि कोई माथा पकड़ कर उसे देवता के पैरों में लगाए, तो वह, हे चांदा, सूर्य [का सा सुन्दर] वर प्राप्त करे। (५) सोमनाथ की पूजा [की सामग्री] लीजिए और अक्षत फूल तथा माला ले कर उन्हें दीजिए।" (६) नौ खंड पृथ्वी चल पड़ी थी, और देव-यात्रा सुन कर आई [हुई] थी। (७) चांदा ने जब सूर्य [को पाने] की [बात] सुनी, वह हर्षित हो गई कि वह भी [अपने सूर्य को प्राप्त करने के लिए] जा कर देवता को मनाती।

(२४५)

'टांकिनि खतरिनि' बांभनि मिलीं।
'बैस(सि)नि' 'धगरिनि' भाटिनिचलीं।
'चउहानिनि फुनि पहिरि' पटोरा। 'गवन करत जनु समुंद हिलोरा'।
'कइ' सिंगार 'श(स)तभिनि' नीसरीं। 'कैथिनि डोडिनि अउ' गूजरीं।
'चमकति निकरी रूप' सुनारीं। 'निकरीं मालिनि अउ' कलवारीं।
'चली बेसवां अनवन' भांती। परजा 'पवनि सो' 'पांतिहि' पाती।
चला महर कर गोवरु देस परा सभ रोरु।
सोमनाथ 'कहं पूजहिं' 'सेंदुर 'फूल' तंबोरु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र १९९, बी० ७५५-७५७।

शीर्षक—मै० : रवानः शुदन औरतान खास व आम बराय परस्तीदन देव रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० टाकनि खतरनि। २. मै० बैस। ३. बी० ढाकनि भाटनि। (२) १. बी० चौहाननि फुनि पहरि। २. बी० गमन करत जानौ समद लेहारा। (३) १. बी कौं। २. बी० बस्तर। ३. बी० कैथनि डडनि औ। (४) १. बी० झमकति निसरी नैन। २. बी० निसरी मालनि औ। (५) १. बी० चली जु बेसा अन अन। २. बी० पौनि सु। ३. बी० पात्यौं। (७) १. बी० देव पूजैहि। २. बी० आखत फूर।

अर्थ—(१) टाकिनें, खतरिनें और ब्राह्मणिएं मिलीं (आईं), बैसिनें, धगरिनें, तथा भांटिनें चलीं। (२) पुनः चौहानिनें, जो पटोर पहने हुए थीं, इस प्रकार गमन कर रही थीं जैसे समुद्र की हिल्लोलें हों। (३) शृंगार करके सतभिनें निकलीं, कैथिनें, डोडिनें और गूजरिएं भी [निकलीं]। (४) रूप की चमकती हुई सुनारिनें निकलीं तथा मालिनें और कलालिनें भी निकलीं। (५) वेश्याएं अनहोनी भांति से चल पड़ीं, [इसी प्रकार] प्रजाएं और पावनिएं पंक्तियों-पंक्तियों में [चलीं]। (६) महर का गोवर चल पड़ा, सारे देश में रोर पड़ गया। (७) [लोग] सिन्दूर, फूल और ताम्बूल से सोमनाथ की पूजा कर रहे थे।"

(२४६)

चांद सहेलीं 'सबइ बोलाईं'। 'सरग हुतें जनु' 'आछरि' आईं।
'फिरि कइ चांद चउद्दसि' दीठी। 'जनु तरईं' चहुं पासि बईठी।

न्हाइ धोइ 'कइ' चीर 'फिराए'। अगर चंदन 'घसि सीस भराए'।
सेंदुर छिरकि भईं रतनारीं। मुख 'तंबोरु' सभ 'जोबन वारीं।
'इंद्र' सबद पंचतूर बजाए। गरह नखत 'सभ भेषन' आए।
'सोवन सुखासन बइठी' बहु गुन 'कीन्ह' 'सिंगार'।
चांद 'तराइन' सेतीं गवनीं 'देउ' दुवार॥

सन्दर्भ—पत्र २००, बी० ७५८-७६०।

शीर्षक—मै० : तलबीदने चांदा सहेलियान रा व रवानः करदन सुए बुतखानः।

पाठान्तर—(१) १. बी० सभै बुलाई। २. बी० सरगा हत्यें जानौ। ३. मै० अछरिन्ह। (२) १. बी० चांद चंहू दिसि फिरि वै। २. बी० जानौ तिरियन (तरई—फ़ा०)। (३) १. बी० कैं। २. मै० फिरावा। ३. मै० लाइ सीस गुंदावा (४) १. मै० तंबोलु। २. मै० जोबन नारीं। (५) १. बी० यंद्र। २. मै० चलि कूकत। (६) १. बी० आयौ सोवन सुषासन चांदा। २. मै० किएउ। ३. मै० में नहीं है। (७) १. बी० सहेल्यौहुं। २. बी० देव।

अर्थ—(१) चांद ने सभी सहेलियों को बुलाया, [वे ऐसी सजी हुई आईं] मानो स्वर्ग से अप्सराएं आई हों। (२) चतुर्दशी का चांद [चांदा के रूप में] [मानो] पुनः दिखाई पड़ा हो, और वे मानो तारिकाएं हों, इस प्रकार वे उसके चारों ओर बैठ गईं। (३) न्हा-धो कर उन्होंने चीर बदले और अगुरु तथा चंदन घिस कर उन्होंने सिर भराए। (४) सिन्दूर छिड़क कर वे रतनारी हो गईं, उन सभी यौवनवती नारियों के मुख में ताम्बूल था। (५) इन्द्र शब्द (वाद्य) तथा पंच-तूर्य बजाए गए, [उस वादन-मंडली में] समस्त ग्रह-नक्षत्र [छद्म] वेषों में आए हुए थे। (६) [चांदा] सोने के सुखासन पर बैठी, जिसका बहुतेरे गुणों से शृंगार किया गया था, (७) और चाँदा तारागणों (सहेलियों) के साथ देव-द्वार को गई।

(२४७)

हाथ 'सेंधउरा' सेंदुर भरा। भीतरि मंडप चांद 'पउ' धरा।
सखी साठि इक 'गोहनि' भई। नावति सीसु 'देउ' पहिं गई।
'देउ' दिस्टि चांदा मुखि लागी। बुधि बिसरी 'अउ' सिधि फुनि भागी।

देखत 'देउ गएउ मुरझाई'। चांद 'तराइन' सेउं चलि आई।
'कइ बिधि मोह मोहि जिउ' दीन्हां। 'कइ हउं सरग मंडप तेहि कीन्हां'।

मंडप 'तराइनि' भरि गा 'चांदइ किएउ' अजोरु।
होम जाप 'सभ' बिसरा 'कवनु' दिवसु 'यह' मोरु॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०१, बी० ७६१-७६३।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तन चांदा दरूने बुतख़ानः व आशिक़ शुदने देवान दीदने चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सिधौरा। २. बी० पाउ। (२) १. बी० गौहनि। २. बी० देव। (३) १. बी० देव। २. बी० औ। (४) १. बी० देव गयो मुरझाई। २. बी० तरायन स्यौं। (५) १. बी० कै बिधि पूर मोहि वरु। २. बी० कै हौं सरगि मंडप सौ लीन्हा। (६) १. बी० तरायन। २. बी० चांदेहि कीन्ह। (७) १. बी० सब। २. बी० कौनु। ३. बी० अब।

अर्थ—(१) हाथ में सिन्दूर-पूरित सिन्दूर-पात्र [लिया] तथा मंडप (देव-मंदिर) के भीतर चांदा ने पैर रक्खा। (२) वह साठ-एक सखियों के साथ हुई और सिर नमित करती हुई देवता के पास गई। (३) देवता की दृष्टि चांदा के मुख पर लगी, [तो उसकी] बुद्धि विस्मृति हो गई और तदनंतर [उसकी] सिद्धि भाग गई। (४) उसको देखते ही देवता मूर्छित हो गया, [क्योंकि उसने देखा कि] चांद (चांदा) तारिकाओं (सहेलियों) के साथ आई हुई थी। (५) [उसने कहा,] "विधाता ने या तो मोह (ममता) करके मुझे जीव ही दिया था, अथवा [अब] उसने मुझे स्वर्ग-मंडप में कर दिया है! (६) मंडप तारिकाओं (सहेलियों) से भर गया है और चांद (चांदा) ने यहां प्रकाश किया है! (७) [लोगों को] हवन और जप-सब-कुछ भूल गया है, यह हमारा कौन-सा (कैसा) [भाग्य का] दिन है!"

(२४८)

सेंदुर 'छिरका' अगरु 'चढ़ावा'। 'नमसकार कइ देउ' मनावा।
'सोवन' आखत 'फूल कइ' मारा। 'पाइ' लागि 'बिनवइ' अस ना(बा?)रा।
'देउ' सुरिजु 'मांगउं' तुम्हं पासा। सेव 'करउं' मन 'पूजइ' आसा।
चांद 'सुरिजु' बरु 'जेहि दिन पावउं'। 'देउ करस बहु घिरित भरावउं'।
'बिनवइ चांदा पायंन' परी। 'देउ' सूरिज बिनु 'जियउं' न घरी।

'इक' चित कइ मोहि 'आपैहु(प)' 'दूसर' राध न जाइ।
देउ पूजि 'कइ चांदा' 'बिनती ठाढि' कराइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०२, बी० ७६४-७६६।

शीर्षक—मैं० : परस्तीदने चांदा बुत रा व ख़्वास्तने मुहब्बत बा लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. मैं० छिरकि। २. बी० चरावा। ३. बी० पाइ लागि कर जोरि (तुल० दूसरी अर्द्धाली)। (२) १. बी० सौवन। २. बी० फूर कि। ३. मैं० पायं। ४. बी० बिनवै। (३) १. बी० देव। २. बी० माग्यौं। ३. बी० करौं। ४. बी० पूजै। (४) १. मैं० सूरिजु (सुरिजु)। २. बी० जिहि दिन पाऊ, मैं० जेहि पावउं। ३. बी० देव करस सभ घिरति भराऊ। (५) १. बी० बिनवै चांदा पायेहि। २. बी० देव। ३. बी० जिउ। (६) १. बी० यक। २. मैं० देइहउं। ३. मैं० बिहफै (?)। (७) १. बी० कै बिनती। २. बी० चांदा ठाढ।

अर्थ—(१) [चांदा ने] सिंदूर छिड़का, अगुरु चढ़ाया तथा नमस्कार कर देवता को मनाया। (२) सोने के अक्षत थे, फूलों की माला थी। वह बाला [देवता के] पैरों में लग कर इस प्रकार विनय करने लगी, (३) "हे देव, मैं तुमसे सूर्य (लोरिक) को मांग रही हूं, मैं तुम्हारी सेवा करूँगी यदि मेरी आशा पूरी होगी। (४) [मैं] चांद (चांदा) जभी सूर्य (लोरिक) को वर [के रूप में] प्राप्त करूंगी, हे देव, मैं [तुम्हारे लिए] बहुतेरे कलश घृत से भराऊंगी।" (५) चांदा उसके पैरों में पड़कर विनती करने लगी, "हे देव, मैं सूर्य (लोरिक) के बिना एक घड़ी न जीऊंगी। (६) उसको मुझे एकचित्त करके दो [जिससे] वह दूसरे (मैनां) के निकट न जाए।" (७) देवता की पूजा कर चांदा [उससे] खड़े-खड़े [इस प्रकार] विनती कर रही थी।

(२४९)

'चढ़ी पालिकी' मैनां रानी। 'सखी साठि सेउं' आइ तुलानी।
सोक संताप बिरह 'कइ' जारी। 'किसन' बरन मुख 'दीसा नारी'।
मर 'सेउं' अमर सीस अति रूखा। मुख 'कंवलु कंदरपु झरि' सूखा।
'बहुल' उदेग उचाट संताई। पूजा 'देउ चढ़ाएसि' आई।
आखत फूल 'लीन्ह' कर काढी। 'देउ परांतर उतरि भइ' ठाढ़ी।

'अहो देउ तेहि खाएहु' जो पर 'पुरुखहि राव'।
'अपनिइं सेज छाडि' निसि 'अनतइ' फिरि फिरि धाव ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०३, बी० ७६७-७६६।

शीर्षक—मै० : आमदने मैनां व मुनिदयान खुद दरे बुतखानः व परस्तीदने देव रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सखी साठि सौं। २. बी० चरी पालिकी। (२) १. बी० की। २. मै० किशन (किसन)। ३. बी० दीसै कारी। (३) १. बी० स्यौं। २. बी० कवरु कंद्रपु झिरि। (४) १. बी० बहुत। २. बी० देव चरायसि। (५) १. बी० लीन्ह। २. बी० देव वरतर उतर। (६) १. बी० अहौ देव तिहि षयुहु। २. बी० पुरषेहि रांव। (७) १. बी० अपना छारि सेज। २. बी० अनतें।

अर्थ—(१) [इसी समय] मैनां रानी [भी] पालकी चढ़ी और साठ सखियों के साथ वह [भी] आ पहुँची। (२) वह शोक, संताप और विरह की जली हुई थी और कृष्ण वर्ण का उस नारी का मुख दीख पड़ा। (३) उसका अमर (जीव) [जैसे] मर [रहे शरीर] के साथ था, उसका सिर अत्यधिक रुक्ष था और उसका मुख-कमल कन्दर्प की ज्वाला से सूख गया था। (४) बहुत उद्वेग और उच्चाट से सन्तप्त हो कर उसने आकर देवता को पूजा चढ़ाई। (५) अक्षत और पुष्प उसने हाथ में निकाल लिए और वह देव [-मंडप] के प्रान्तर में उतर कर खड़ी हो गई। (६) उसने कहा, "अहो देवता, उसे तुम खा जाना जो पर-पुरुष से रमण करती है, (७) और जो रात में अपनी शैया छोड़कर बार-बार अन्यत्र दौड़ती है ?"

(२५०)

'हंसि कइ चांदइं' मैंनां बूझी। 'कइ ससुरें हुति आइहु झूझी'।
अति 'दूमनि' अउ सांवरु बानूं। सीस न 'बंदनु' अधर न पानूं।
'कइ' साईं निसि सेज न 'आवइ'। तेहि संताप दुख 'रइनि' बिहावइ।
'कइ तोहि' नारि आहि बुधि थोरी। 'तेहि' औगुन पिउ 'लावइ' खोरी।
'कइ तुम्हं करहु' न अरप 'सिंगारू'। 'कइ सोहागु हिएं हुंत बारू'।
'तोरि जसि' तिरी न 'देखउं' कवनि खोरि सो 'लाव'।
'कइ' सुगांइ काहू 'सेउं' अपजसु 'आनि' 'चढ़ाव' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०४, बी० ७७०-७७२।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने चांदा बर मैनां रा अज़ शिकस्तगी हाले ऊ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हसि कै चांदहि। २. बी० के सुसरें हुत आयेहि जूझी। (२) १. बी० दूमन। २. मै० बेदनु (बंदनु—ना०), बी० चंदनु (बंदनु—ना०)। (३) १. बी० कै। २. बी० आवौ। ३. मै० रोइ। (४) १. बी० कै तुम्ह। २. बी० तिहि। ३. बी० लावै। (५) १. बी० कै तुम्ह करौ। २. बी० सिंगारा। ३ बी० गयो सुहागु हियो ही बारा। (६) १. बी० तुम्ह जस। २. बी० देष्यैं। ३. मै० लाइ। (७) १. बी० के।.२. बी० स्यौं। ३. मै० सोइ। ४. बी० चराव।

अर्थ—(१) हंस कर चांदा ने मैनां से पूछा, "क्या तुम सासुर (ससुराल) से झगड़ा करके आई हो, (२) [और इसलिए] तुम अत्यधिक दुर्मन हो, तुम्हारा वर्ण सांवला [हो रहा] है, सिर पर वंदन (रोली) नहीं है और अधरों पर पान [का रंग] नहीं है ? (३) अथवा (क्या) यह है कि तुम्हारा स्वामी रात्रि में शैया पर नहीं आता है, और उसी संताप के कारण दुःख में रात व्यतीत होती है ? (४) या, ऐ नारी, तुम्हें बुद्धि थोड़ी है, और उस अवगुण के कारण तुम्हारा पति तुम में खोडि (त्रुटि) लगाता है ? (५) या, तुम अल्प शृंगार [भी] नहीं करती हो, और या तुम सौभाग्य को हृदय से दूर रखती हो ? (६) तुम्हारी जैसी स्त्री मैं नहीं देखती हूँ, तब वह कौन-सी खोडि (त्रुटि) [तुममें] लगाता है ? (७) अथवा, वह किसी से [तुम्हारे अनुचित संबंध का] सन्देह करता है और उसका अपयश तुम्हें ला कर चढ़ाता (लगाता) है ?"

(२५१)

सुनहु न 'चांदा' उतरु हमारा। 'घरु मुसिया निसि कै(कई) उजियारा'।
नाहुं लीन्ह मोंहि परा खंभारू। 'काकहुं' अटवौं(उटवउं) 'अरप सिंगारू'।
हंसि हंसि बात 'कहइ बिगराई'। तिल इक 'नैन न देखि' लजाई।
बहु 'खंखोट' तोहि 'तिरिया आवहि'। सती 'रूप' पर पुरुखहि 'रांवहि'।
आपु छिनारि अउर कहुं कहा। सो कस चांदा 'ढांके' रहा।
गा सुहागु सुख निद्रा चांद नाहुं 'जउ' लीन्ह।
'सोग' संताप बिरह दुख सेज 'पूरि' मोंहि दीन्ह ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०५, शि०, बी० ७७३-७७५।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने मैनां बर चांदा रा।

शि० : जवाब दादने मैनां चांदा रा कैफ़ियते इश्क़ लोरिक वा चांदा बाज़ नमूदन ।

बी० : मैनां चाद जुध । किंतु यह शीर्षक बाएं हाशिए में और प्रतिलिपि-कर्त्ता से व्यक्ति द्वारा दिया हुआ लगता है ।

शि० में अधिकांश पाठ अस्पष्ट है ।

पाठान्तर—(१) १. मै० चांद एक । २. मै० नांह कीन्ह मोहि परा खभारा (तुल० दूसरा अर्द्धाली) । (२) १. बी० काकौहु । २. मै० करिहउं । (३) १. बी० कहौ बिषराई । २. बी० देष नैन न । (४) १. बी० घंघोट । २. मै० दूषन आवहिं । ३. मै० तीय । ४. बी० रावैहिं । (५) १. बी० ठाढे । (६) १. बी० जौ । (७) १. बी० सोक । २. बी० पूर ।

अर्थ—(१) "ऐ चांदा" [मैनां ने कहा,] "मेरा उत्तर तू सुन न ! तूने मेरा घर रात्रि में प्रकाश करके मूसा (लूटा) है । (२) मेरा स्वामी तूने लिया तो मुझे खभार (उद्वेग) पड़ गया, [अतः] अब किसके लिए मैं अल्प शृंगार [भी] करने का साहस करूंगी ? (३) तू हंस हंस कर और विकृत कर बातें कहती और तिल भर भी नेत्रों से देख कर लज्जित नहीं होती है । (४) ऐ स्त्री, तुझे खंखोट बहुत आता है, तू सती का रूप बनाए हुए पर-पुरुष से रमण करती है । (५) अपने-आप तो तू छिनाल है, और दूसरे को [छिनाल] कहती है । किंतु, ऐ चांदा, यह [तथ्य] ढांकने से कैसे [ढंका] रहेगा ? (६) मेरा सौभाग्य, मेरा सुख, मेरी निद्रा चले गए, क्योंकि तूने मेरे स्वामी को [मुझसे] छीन लिया, (७) और शोक, संताप तथा विरह का दुःख [तुम ने] मेरी शैया में पूरित कर (भर कर) मुझे दे दिया ।"

(२५२)

देखहु बांगरि 'कीरु(केरि)' धिठाई' । 'आइ सो बूझति' बात सुगाई ।
मइं 'तोंहि कों' का अचगरु कहा । 'अइस कहत को ऊतर' सहा ।
'जसि आपुन' 'तसि अवरहि जानइ' । 'जसि छिनारि तसि सूगि बखानइ' ।
'पुरुख' छिनारि 'केर' को लेई । बात 'कहत अस ऊतर' देई ।
'तइं का दीखि हउं बेसा' दारी । चित 'सुगाइ' मोहि दीन्हीं गारी ।
तूं 'बिटारि' जग 'जूठि(ठ)नि' 'देस घेरि' 'लै(लइ)' जासि ।
घर घर घालि 'बिगोइसि' 'खोरि खोरि' चिललासि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०६, बी० ७७६-७७८ ।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने चांदा मर मैनां रा ।

पाठांतर—(१) १. मै० करइ धुताई । २. बी० अैसें पूछत । (२) १. बी० तो कहु । २. बी० अस औहट को काकर । (३) १. बी० जस आपनु । ३. बी० तस और हि जानौ । ४. बी० जानु छिनारि कि सुरगि बषाना । (४) १. बी० पुरषु । २. मै० कर । ३. बी० बात अनउतरु । (५) १. बी० तें कहि देषति बेसां । २. मै० सुंघाइ । (६) १. बी० छिनारि । २. मै० कुच छुवतइं । ३. बी० देसि घोरि । ४. मै० लइ लइ । (७) १. बी० बिगोयसि । २. बी० घोरि घोरि ।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "इस बांगड़ लड़की की धृष्टता देखो, यह [यहां] आकर सन्देह करती हुई [ऐसी] बातें पूछ रही है ! (२) मैंने तुझे क्या अनुचित कहा है, और ऐसा कहते हुए किसने ऐसा उत्तर सहन किया है ? (३) तू जैसी अपने-आप है, वैसी ही औरों को भी जानती (समझती) है, जैसी छिनाल तू है, वैसी ही होने का सन्देह कर तू [अन्य को भी] कहती है । (४) उस छिनाल के पुरुष को कौन लेगा जो बात कहते ही ऐसा उत्तर देती है ? (५) ऐ वेश्या और दारी, तुझे मैं क्या ऐसी दिखी कि तूने चित्त में [मेरे चरित्र] पर शंका करके तूने मुझे गाली दी ? (६) तू बिटारी है और जगत् की जूठन है, देश [भर] को तू घेर-घेर कर ले जाती है । (७) घर-घर को [इस निंदित व्यापार में] डाल कर तूने बिगोया (तिरस्कृत किया] है और गली-गली तू चिल्लाती [फिरती] है ।"

(२५३)

'आन होइ डरि कहुं' मरि जाई । 'चांद न आछहु' 'मनहि' लजाई ।
'हाथन्हि' 'मोर बियाहा लीजिय' । अउ मोहिं सेतीं 'ऊतरु' 'कीजिय' ।
'यह' 'फुनि' कहिय 'नांउं' मसवावी । 'जो पर पुरुख' न छाड़इ पासी ।
आपु 'करावइ' मोहि डरु 'लावइ' । अवरु बिसेखें 'रावरि' 'धावइ' ।
यह उपखान 'कि' 'आछइ' गोवा । 'झूठइं नाएं जस बिसहर' रोवा ।
पाटि 'पढी' 'हंसि (हसि)' चांदा चहूं भुवन उजियारि ।
देस 'लोक सब जानइ' 'पितहि 'देवाय(इ)सि' गारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०७, भो० पत्र २० (नवीन), बी० ७७९-७८१ ।

भो० में इस कडवक के नीचे तर्क 'बाद' दिया हुआ है, जो आगे आने वाले कडवक का है।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने मैनां बर चांदा रा।

भो० : मकाशफ़ः गुफ़्तन मैनां बर चांदा रा व फ़ोहश गुफ़्तन इश्क़ बा लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० अन (आन—फ़ा०) होई दर केहि। २. भो० चांदहि आछरि, मै० चांद आछिय। ३. बी० मनह। (२) १. बी० हाथौहु। २. बी० मोरि बियाही लीजै। ३. भो० सरभरि। ४. बी० कीजै। (३) १. बी० याह। २. मै० सो। ३. भो० कांहूं, बी० मा। ४. बी० जौ पर पुरषु। (४) १. बी० करावै। २. बी० लावै। ३. भो० पर ओर, मै० रांवा। ४. बी० धावै। (५) १. मै० करि। २. बी० आछै। ३. भो० झूठइ पासन बिसैभर, बी० झूठे ठांव बैसि भरि। (६) १. मै० बड़ी। २. बी० अस। (७) १. भो० लोक जग जानेसि, बी० देस नर जानै। २. मै० कुरहि। २. भो० देवावसि, मै० देवाइय।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "अन्य कोई हो तो डर कर कहीं मर जाए, किंतु ऐ चांदा, तू मन में लज्जित [भी] नहीं है। (२) [मेरे] हाथों से तू मेरा विवाहित ले रही है और मुझ से [ही] उत्तर कर रही है! (३) इस पर भी उसका नाम 'मसवासी' कहा जाए जो पर-पुरुष को, यदि वह पासी भी हो तो, नहीं छोड़ती है? (४) [जो कार्य] स्वतः तू कराती है, मुझे [उसके लिए] डर लगाती (डराती) है, और अन्य को बिसेखने (दूषण लगाने) के लिए तू स्वयं दौड़ती रहती है। (५) यह उपाख्यान क्या छिपा हुआ है कि जैसे विषधर [जिसको काट खाता है उसके] नाम पर झूठ-मूठ ही रोता है। (६) ऐ चांदा, तूने [ऐसी] पट्टी पढ़ रक्खी है कि चारों ओर भुवनों में प्रसिद्ध है। (७) देश और लोक में यह बात सभी-कोई जानता है कि तूने अपने पिता (कुल) को गाली दिलाई है।"

(२५४)

पाटि 'पढ़ी' 'हउं' काहे नाही। पंडित 'मुनिवर' सेव कराहीं।
बार बूढ 'नइ' पायन 'लागहिं'। 'पाप केत पुरसा कर' 'भा(भां)गहि।
तूं 'उभरी' बोलसि भंडहाई। 'अउ' मोहिं सेतीं करसि बड़ाई।
सात छिनारि घालि 'तूं करही'। काह करउं जउ 'लीते' मरही।
देवर जेठ 'भाइ संग' लेसी। 'ई(ई)ठ' मीत 'कुनबा' परदेसी।

तेलि भूंज औ 'कोयरी' धोबी 'नाऊ' चेर।
रांध 'पास सभ' गांजसि 'काढइ' 'खोरि बिहेरि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २०८।१, भो० पत्र २१ (नवीन), बी० ७८१-७८३।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने चांदा बर मैनां रा व दुश्नाम दादन।

भो० : इल्म व जमाल ख़ुद नमूदन चांदा व फ़ोहश गुफ़्तन बर मैनां रा।

पाठान्तर—बी० में (४)। २ निकला हुआ है, उसके स्थान पर (५)। १ 'लेसी' का पाठ 'लागी' करके ले लिया गया है, फिर (५)। २ तथा (६)। १ की एक अर्द्धाली बनाने के लिए (६)। १ का पाठ 'तेली धांची और कपरिया' कर दिया गया है, पुनः (६)।१ किया गया है : छीपा नाउ और सुनरिया।

(१) १. मै० बड़ी। २. बी० हौ। ३. बी० मुनियर। (२) १. मै० सब। २. बी० लागैहि। ३. भो० पायन्ह देखिकर, बी० पाब कीन्ह बर संहसु। ४. बी० भागहि। (३) १. मै० उभरैल। २. बी० औ। (४) १. बी० तं गाढ़ी। २. मै० लीन्हें। (५) १. भो० अउर सग, मै० भाइ सब। २. मै० ईट। ३. भो० कुरुंबा, मै० करटा। (६) १. भो० कोयरी बारी। २. बी० बारी। (७) १. मै० पापधि सब, बी० पा सभ। २. बी० जागसि। ३. मै० काढहि, बी० गदह। ४. बी० घौर बरेर।

अर्थ—(१) [चांदा ने उत्तर दिया,] "मैं पट्टी-पढ़ी क्यों न होऊं [जब कि] पंडित और मुनिवर [आकाश के चंद्र के रूप में मेरी] सेवा करते हैं, (२) [जबकि मेरे उस रूप में] बालक-बूढ़े सभी झुक कर पैरों लगते हैं, और [इससे] उनके कितने ही पूर्व-पुरुषों के पाप भग्न हो जाते हैं? (३) तू उभड़ी (मर्यादा का उल्लंघन करने वाली) है, भंडता [की बातें] बोलती है, और मुझसे [अपनी] बड़ाई करती है! (४) तू सात छिनालों को [अपनी तुलना में] घेलुवा (नगण्य) करती है; मैं क्या करूं जो तू [किसी को] लिए हुए मरती है! (५) देवर हो, जेठ हो, या भाई हो, तू [उसको] साथ ले जाती है, [अथवा] वह सगा हो, इष्ट हो, मित्र हो, कुटुंबी हो या परदेशी हो, (६) तेली हो, भूंजा हो, कोयरी हो, धोबी हो, नाई हो चेर (सेवक) हो, रांध (पड़ोस) या पास का हो, (७) तू सबको गंजती है, और [फिर] तू उसे बिहेड (पीड़ित) कर तथा दोष लगा कर निकाल देती है।"

(२५५)

तूं 'चउगुन' बहु भेस 'फिरावसि'। 'गिनतकार' लेखें 'बौरावसि'।
'असितिरिया' फुनिसती 'कहावै(वइ)'। 'घरांघरां' जगुफिरिफिरि 'आवइ'।
निचलि न 'आछइ एकउं' घरी। धरत दसांवन' ऊपरि परी।
'दुमनहु तोर हुंत चांदा आइहि'। कार 'कीत' मुख सरगि 'लुकाइहि'।
लीन किये मोर भतार छपाए। देखिउं गइउं दुवार दिवाए।
'तेहि' दिन कर 'तू संभरि' 'कहई पाछे हेरत' आइ।
देस 'मंदिर' जगु 'जानइ' 'रहंसति सुनहि लजाइ॥

संदर्भ—मैं० पत्र २०८।२, बी० ७८५-७८७।

शीर्षक—मैं० गुफ़्तने मैनां चांदा रा आं चे हिकायत बूद।

पाठान्तर—(१) १. बी० जोगिनि। २. बी० फिरायसि। ३. बी० गिनतर-कार। ४. बी० बौराइसी। (२) १. बी० अस् तरिया। २. मैं० कहावा। ३. बी० घराह घरह। ४. बी० आवै। (३) १. बी० आछै येकै। २. बी० पिरति (परत—फ़ा०) उसायक। (४) १. बी० दुमहि तिरहु चांदा आई। २. बी० कीन्ह। ३. बी० फिराई। (५) १. यह अर्द्धाली बी० में नहीं है। (६) १. बी० तिह। २. बी० ती जौहरु। ३. बी० षइ बाचिहौं। (७) १. बी० देसा। २. बी० जानै। ३. बी० अपने हि मनह।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "तू [मुझसे] चौगुनी संख्या में बहुतेरे वेष धारण करती रहती है, और [आकाश के चंद्र के रूप में] गिनतकार (ज्योतिषी) के लेखे (गणित) [के मिस] [लोगों को] बावला करती रहती है। (२) [विडंबना यह है कि] इस प्रकार की स्त्री फिर भी सती कहलाती है जो जगत् में घर-घर [चंद्र के रूप में बारह राशियों] में फेरे (चक्कर) लगा जाती है। (३) तू एक घड़ी भी निश्चल नहीं रहती है और किसी के बिस्तर धरते ही उस पर जा पड़ती है। (४) दुर्मनस् होते हुए भी, ऐ चांदा, यदि कोई तेरे पास आए तो [अपना] मुख काला कर तू उसको भी आकाश (धवलगृह) में छिपा लेगी। (५) मेरे भर्त्तार को [अपने में] लीन कर तुमने छिपा रक्खा, यह मैंने तब देखा (जाना) जब मैं गई और तेरे द्वार दिलाए (बंद कराए) हुए देखे। (६) उस दिन की [बात] तू स्मरण करके कहो, [जिस दिन] तू उसे पीछे-पीछे ढूँढती हुई आई थीं। (७) देश, घर और जगत् इसे जानता है, किन्तु तू इसे लज्जित होकर भी हर्षित होते हुए सुन रही है!

(२५६)

'हीनि' बिटारि 'हउं तोहि' 'पिउ' जोगू। अइसउ 'कहा कहि संभव' लोगू।
'जेहिं रूपवंतहि यह धनि मोहइ'। 'तेहि गियं' 'पाइ' 'निबांधा सोहइ'।
'सुनतहिं' देह मोरि 'अंगिराई'। देखत मरउं 'आव' 'बिगराई'।
गाइ 'चरावइ करइ' दुहावा। तेंहि सेतीं मोंहि 'अकरंकु' लावा।
'जेहि' धौराहर मोर बसेरा। सीस टूट 'जइ ऊपर' हेरा।
राय कुंवर 'नर नरवइ' 'मोहहिं' एक सिंगार।
तोर भतारु चेर उरगावन 'आछइ पवरि' दुवार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०९।१, भो० पत्र २३ (नवीन), बी० ७८८-७९०।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने चांदां मर मैनां रा।

भो० : बुजुर्गी व बलंदी खुद नमूदन चांदा व अहानत व हिमाक़त लोरिक बाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० है। २. बी० हौ तुझ। ३. भो० पिय। ४. भो० कहा कहि संभवइ, बी० कहा कैसा·····(अपाठ्य)। (२) १. बी० जिह रूपवंतिह·····मोहै। २. बी० तिहकैं। ३. मैं० नारि, भो० बाव। ४. बी० कि बाध्यौ सोहै। (३) १. बी० सुनताह, मैं० सुनतइं। २. बी० अंकुराई। ३. मैं० आहि, बी० करौं। ४. बी० बुकराई (बिगराई—फ़ा०)। (४) भो० में अर्द्धाली के चरण परस्पर स्थानांतरित हैं। १. बी० चरावैं करै। २. मैं० अकरकु। (५) १. बी० जिह। २. बी० पर ज·····(संशोधन के कारण अपाठ्य है)। (६) १. बी० न रवै मुष मंडन। २. मैं० मोहि मोहइं, बी० मो पति। (७) १. मैं० आछहि पवंरि, बी० आछै पौरि।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा,] "मैं हीना हूँ, बिटा हूँ और तू ही प्रिय (पति) के योग्य है, ऐसा भी लोग क्या कह सकते हैं? (२) जिस रूपवान को यह स्त्री मुग्ध करती है, उसी के गले में पड़ा हुआ इसका निबंध पांव शोभा देता है। (३) [इसका नाम] सुनते ही मेरी देह अंगड़ाई लेने (टूटने) लगती है, और ऐसी विकृति आती है कि इसे देखते ही मैं मरने लगती हूँ। (४) जो गाएं चराता और [उन्हें] दुहता है, उससे मुझे यह कलंक लगा रही है! (५) जिस धवलगृह (प्रासाद) में मेरा निवास है, उसके ऊपर यदि देखा जाए तो सिर टूट जाए। (६) राजा, कुमार, नर, नरपति—सभी [मुझ पर] एकमात्र [मेरे] शृंगार (सौन्दर्य) के कारण मुग्ध होते हैं,

(७) जब कि तेरा पति [हमारा] दास है और [हमारी] पौरी के द्वार पर एक भृत्य के रूप में रहता है !"

(२५७)

मोर 'पुरुख खांडइं जगु जानइ'। गन गंध्रप 'सभ' रूप 'बखानइ'।
पंडितु पढा 'खरा' सहदेऊ। चारि 'बेद जीति जाइ न' कोऊ।
'भीम बली' भोज 'कर' जोरा। राघौ 'बंसिक' कूकूं लोरा।
'गहनइं पंथ जेइं' लीत उबारी। 'अस' न बोलु 'सुनु साथरि' दारी।
'मोर' पिउ सरग 'कइ अछरिहिं रावइ'।
'तोहि जइसी' पहिं 'पाउ न धुवावइ'।
'तुरै चढ़े रन' बाग न 'मोरइ' तूं कस 'भुंजसि' ताहि।
भाई भतारु 'तोर वि(बि)गरैता' 'जानउं' सेवक 'आहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २०६।२, बी० ७६१-७६३।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादन मैना बर चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० पुरषु खाडै जगु जानै। २. बी० मोहि। ३. बी० बषानै। (२) १. बी० खरी। २. बी० वाजनु न जानै। (३) १. बी० अब तौ करै। २. मैं० के। ३. बी० वासिक। (४) १. बी० गहन लीत जिहि। २. बी० कस। ३. बी० तू साटनि। (५) १. बी० मोरो। २. बी० आछरि रावै। ३. बी० तुम्ह वैसी। ४. बी० पाय न धुलावैहि। (६) १. बी० तुरी चरांह रिन। २. बी० मोरै। ३. बी० देखसि। (७) १. बी० बापु सबु कुनबा। २. बी० जानै। ३. बी० आह।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "मेरे पुरुष को खड्ग [चलाने] में जगत् जानता है, और गण तथा गन्धर्व—सभी उसके रूप का बखान करते हैं। (२) वह ऐसा पढ़ा हुआ और पंडित है कि वह खरा सहदेव है और चारों वेदों में कोई उससे जीत कर जाता नहीं है। (३) वह भीम [जैसा] बली है और भोज की जोड़ी का है, वह कूंकूं लोर राघव-वंशी (राघव की परंपरा का) है। (४) जिसने तुझे ग्रहण (संकट) के मार्ग से उबार लिया, [उसके संबंध में] ऐसा न बोल, ऐ साथरी की दारी, सुन। (५) मेरा प्रिय स्वर्ग की अप्सरा से रमण करता है, तुझ जैसी से वह अपने पैर भी नहीं धुलाता है! (६) जब वह रण में घोड़े पर चढ़ता है, तब वह [उसकी] लगाम नहीं मोड़ता है, तू उसे कैसे भूंज (भोग) सकती है ? (७) तेरे ही भाई और भर्त्तार ऐसे विकृत हैं मानो सेवक हों।"

(२५८)

'जउ पइ' लोरु 'लीन्हहि मोहिं लावसि'।
'बहुरि न' मैनां देखन पावसि।
आइ 'बइस' अब 'करसी' मोरी।
'सपनेहु' सेज 'नावइ (न आवइ)' तोरी।
ढांकी मूंठि 'हुती' अंधियारी। अब यह बात 'करउं' उजियारी।
'काह करइ तूं' पारसि मोरा। 'दइय' दीन्ह 'मइं पाइउं' लोरा।
'अब गरुई होइ' आछहु मैनां। जीभ 'संकोरि राखु मुख' बैनां।
जाहिं जोग हुत रावनु 'तासों भएउ' मिराव।
मोंतिहि हारर महिं 'घुंघुची' मैनां 'होइ न' पाव॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१०।१, बी० ७६४-७६६।

शीर्षक—मैं : जवाब दादने चांदा बर मैनां रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जो पै। २. बी० नेर मोरै आवसि। ३. मैं० फिरि कइ। (२) १. बी० बैठ। २. मैं० कुरही। ३. बी सपनैं। ४. बी० न आवै। (३) १. बी० हुत्यै। २. बी० करै। (४) १. बी० काह करौ तोहि। ३. बी० दई। ४. बी० मैं पाया। (५) १. बी० सुध करहु जिउ। २. बी० संकौरौहु मुष कर। (६) १. बी० तासौं भयो। (७) १. बी० घूंघचि। २. बी० सोभ न।

अर्थ—(१) [चांदा ने कहा] "यदि हो न हो, तू लोरिक को लेकर मुझको [कलंक] लगाती है, तो मैनां, तू पुनः [उसे] देखने न पाएगी। (२) वह अब आकर मेरी करसी में बैठेगा और वह स्वप्न में भी तेरी शैया पर नहीं आएगा। (३) यह [अब तक] ढकी हुई मुट्ठी [जैसी] अंधकारपूर्ण थी, और अब इस बात को प्रकाशित कर रही हूँ। (४) तू मेरा क्या कर सकती है ? दैव ने दिया, तब मैंने लोरिक को पाया। (५) अब, ऐ मैनां, तू गुर्वी (गंभीर) होकर रह, तू जिह्वा को सिकोड़ कर वचनों को अपने मुंह में रख। (६) जिसके योग्य वह रमण था, उससे उसका मिलाप हो गया। (७) ऐ मैनां, [अब] तू मुक्ताओं के हार में घुंघुची न होने पाएगी।"

(२५९)

'पुरुख सिघ सों' 'सरभरि' 'पावइ'। मारि 'बिधांसि' खाइ 'घरि आवइ'।
मंछ नियर 'चारा कहं धावइ'। 'लइ कइ' भुगुति 'भंडार न आवइ'।

'सूवा सेंबरु' 'सेवा' जाई। 'खाइ बार हिरि' गएउ उडाई।
'गएं कर बहुल होइ' पछितावा। संवरि 'नियर' 'अंबरबां(व)हि' आवा।
दिवस चारि 'तुम्हं' 'देह भोगाएहि'। साईं मोर 'कर' 'का घटि जाइहि'।
भंवर 'कि' 'नियरे' 'बइसइ' 'पइ कलि मांति' भुलाइ।
खिन एक 'लइ (लेइ)' बास 'रस' 'सुमिरि कंवर सिर' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१०।२, भो० पत्र २४ (नवीन), बी० ७९७-७९९।

भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'अरगि', जो आने वाले का है।

शीर्षक—मै० : जवाब दादन मैना बर चांदा रा।

भो० : मरदानगी व दिलावरी लोरिक गुफ़्तन मैनां बख़िजालत नमूदन बर चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. मै० पुरुष सिंग सों, भो० पुरुष सिंघ सइं, बी० पुरषु सिंध सौं। २. भो सरबरि। ३. बी० पावै। ४. बी० विध्वंसि। ५. बी० घरी आवै। (२) १. मै० नियरा, बी० नीर (नियर—फ़ा०)। २. बी० चारै कहुं धावै। ३. बी० लोरिक। ४. मै० भंडार नावइ (न आवइ), बी० भंडारै पावै। (३) १. भो० सोई सेंवर, बी० सूवै सीवरु (सेंवरु—फ़ा०)। २. बी० सेयो। ३. बी० घाइ चांच पर। (४) १. मै० तउहु गएं कर होउं, बी० करि करि मन में बहुल। २. भो० संवरि, बी० नेर। ३. मै० अंबरामहि, बी० अंबरायें। (५) १. भो० तुम। २. मै० देह भखाइहि, बी० लीन्ह भुगाई। ३. भो० का, बी० अब। ४. बी० नेर न जाई। (६) १. मै० जउ। २. मै० नियरे, बी० निवरै। ३. बी० बैसै। ४. बी० मैकर माति, मै० बेलि माहि जो। (७) १. बी० बैठि, मै० में नहीं है। २. बी० रस लेई। ३. भो० भंवर कंवल सिर, बी० सुमिरि कंवर तनि, मै० उड़ि रे कंवर सिर।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "पुरुष तो उस सिंह से सादृश्य प्राप्त करता है जो [जन्तुओं को] मारकर, विध्वंस कर और खाकर घर आ जाता है। (२) मत्स्य चारे के लिए निकट दौड़ पड़ता है, किन्तु भुक्ति (भोजन) ले कर [चुगाने वाले के] भांडार में नहीं आता है। (३) सुए ने जाकर सेंबल की सेवा की, किन्तु उसे खाने की वेला में [जब उसे अपनी भूल ज्ञात हुई], वह लज्जित होकर उड़ गया। (४) [उसको सेंबल के पास] जाने का बहुत पछतावा होता है, और आम्राराम का स्मरण कर वह पुनः उसके निकट आ जाता है। (५) चार दिन तुमने देह का भोग करा ही लिया तो उससे मेरे स्वामी का क्या घट जाएगा? (६) भौंरा निकट बैठा कि, हो न हो,

कली पर मत्त होकर [अपने-आपको] भूल जाता है किन्तु वह क्षण भर [उसका] सुवास तथा रस लेकर [पुनः] कमलिनी का स्मरण कर उसके सिर (निकट) जा पहुंचता है।"

(२६०)

'अरगि ठाढ़ि हुति' मैनां नारी। दवरि चांद 'बरु' बांह पसारी।
'इमिरेभा(भां)गि गए'अभरन तानें। हारु'टूटि(ट)''मोंती' 'छिरियानें'।
एक 'बीर' नगुला 'दुइ' टूटे। 'भा(भां)गि सलोनी' मानिक फूटे।
'संकरी टूटि' दहां दिसि भई। 'चंदन चौरी (चोलि)' फाटि गियं गई।
उखरी 'खूंट' 'दुवउ' धर परी। मानिक हीर 'पदारथ' जरी।
अभरन टूटि बिथरि गा मैनां गइ कुंबिलाइ।
चांद बेगि 'कैं' देव घर 'मिली' 'तराइनि' जाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २११, बी० ८००-८०२।

शीर्षक—मै० : दस्त दराजी करदने चांदा बा मैनां।

पाठान्तर—(१) १. बी० अरग ठाढि तुम्ह। २. बी० बरि। (२) १. बी० अम (इम—फ़ा०) र (रे—फ़ा०) भाग (भागि-फ़ा०) कर (गए—फ़ा०)। २. मै० टूटि गा। ३. मै० मोंति। ४. बी० छिहराने। (३) १. बी० बार (बीरना०)। २. बी० दोइ। ३. बी० भाग सलूनी। (४) १. मै० टूटि हार। (तुल० अर्द्धाली २)। २. मै० चोली चीर। (५) १. बी० खुटी। २. बी० दोउ। ३. बी० पवारी। (७) १. मै० में नहीं हैं। २. मै० मिलीं। ३. बी० तरायन।

अर्थ—(१) मैनां नारी चुप होकर खड़ी थी, [तब तक] दौड़ कर चांदा ने [मैनां पर] बाहें फैलायीं। (२) इस प्रकार तानें जाने पर [मैनां के] आमरण भग्न हो गए, हार टूट गया और [उसके] मोती छिटक गए। (३) एक बीर (कर्णाभरण-विशेष) तथा दो नगुले टूट गए, सलोनी (बाहु का आभरण-विशेष) भग्न हो गई, और [उसके] माणिक्य फूट गए। (४) संकरी टूटकर दसों दिशाओं में हो गई, और ग्रीवा पर चंदनौटे की चोली फट गई। (५) खूंटें (कर्णाभरण-विशेष) उखड़ी हुईं दोनों धरा पर आ पड़ीं, जो माणिक्य, हीरों और पदार्थों (बहुमूल्य पत्थरों) से जटित थीं। (६) आभरण टूट कर छितरा गए, इसलिए मैनां कुंभला गई, (७) और चांद (चांदा) शीघ्रता कर देवगृह में तारिकाओं (सहेलियों) से जा मिली।

(२६१)

'जात' चांद नैनां फरहरी। 'जानु सत्तुरुइं' 'सारसि' धरी।
'तानिसि' चीरु चांद भइ नांगी। परा हाथु 'गइ फाटि पतांगी'।
दस नख लाग 'दुहुं' थनहारा। 'औ(अउ) देवरा भौ रगत मझारा'।
केस 'छूटि दहुं दिसि छिरियाए'। 'जनु' नावित अभुवां 'किर आए'।
'सोरह' करां चांद 'कइ' गई। 'कुरां उतार' 'घरी' इक भई।
'घालि रूप बांगरि कर' 'मैनां गई सिरानि'।
बांधि चांद 'करि कायर' कीतेसि बइरि' परानि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१२, बी० ८०३-८०५।

शीर्षक—मैं० : मुहकम गिरफ़्तने चांदा बर मैनां रा व मैनां नीज़।

पाठान्तर—१. बी० जातैं। २. बी० जानौ सूरै। (सत्रुइं—फ़ा०)। ३. बी० सोसिर। (२) १. बी० तानसि। २. बी० गै फाटी आगी (आंगी—ना०)। (३) १. बी० दोउ। २. मैं० चांद राति भइ रगतहि धारा। (४) १. बी० जूर दहु दिस छरहराई। २. बी० जानौ। ३. बी० देहि आई। (५) १. बी० सोराह। २. बी० की। ३. बी० करा उतारि। ४. बी० करा। (६) १. बी० ठालि रूप बांगर। २. बी० मैनां गइ सिरानि। (७) १. बी० केरा कापर। २. बी० लीतसि बीर (कीतेसि बैरि—फ़ा०)।

अर्थ—(१) चांदा के जाते समय मैनां फड़फड़ा उठी, [और उसे ऐसा पकड़ा] मानो शत्रु (बहेलिए) को सारसी ने पकड़ लिया हो। (२) उसने चांदा का चीर खींचा तो चांदा नग्न हो गई, और [उसका] हाथ पड़ा तो [चांदा का] पतांगी (पत्रांगिका—चोली) फट गई। (३) उसके दोनों भारी स्तनों में [उसके हाथों के] दसों नख लगे और देवकुल (देवालय) रक्त के मध्य हो गया [इतना रक्त बहा]! (४) उसके केश छूट कर दसों दिशाओं में छिटक गए, [और वह ऐसी लगने लगी] मानो निश्चय ही नावित (दरसनिया) अभुवाने (सिर के बाल खोलकर उसे चक्कर देने) के लिए आने पर लगता हो। (५) चांदा की सोलहों कलाएँ चली गयीं, एक घड़ी भर [इस प्रकार की] कुल-उतार (कुल मर्यादा को विकृत करने) की वह घटना हुई। (६) तब मैनां शीतल होकर गई, जब उसने उस वक्रा (चांदा) का रूप (शृंगार) गिरा दिया। (७) उसने चांदा को बांध कर (?) उसे कादर बना दिया और [उस] बैरी को पलायित कर दिया।

(२६२)

'मलिन कामि दोऊ' परजरीं। 'जनु' गैंबर मैमंत ऊभरीं।
दोउ नारि 'अभिरीं' सतमूला (समतूला)।
'नखहन(हिं)' आंग 'जनु' 'टेसू' फूला।
'अतैनित (अतियंत) करहिं हाथा बाहीं।
थन उघार 'तस' 'ढांकहिं' नाहीं।
मरन सनेह 'सो तिरियन्ह' रेसा।
चीर न 'संभरहिं' मोंकर केसा।
कहा न सुनैहि(नहिं) 'उतरु न(नहि) देहीं।
सीस नांग 'जनु' भौं(भ)वंरी लेहीं।
'अते स बरबर' 'लागीं' दुहुं महिं हार न कोइ।
'लोगन्ह' 'जात बिसरि गई' 'मंडपि नटार(रं)भ' होइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१३, बौ० ८०६-८०८।

शीर्षक—मैं० : दर खून लाल शुदन चांदा व मैनां व हज़ीमत नमी खुरदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० मदन कामि दूनौ। २. बी० जानौ। (२) १. बी० उभरी। २. मैं० नख। ३. बी० दहुं। ४. बी० टेंस। (३) १. मैं० ऊभी। २. बी० सिर। ३. बी० ढाकैं। (४) १. बी० जु तिरिया। २. बी० समरेहि। (५) १. मैं० मुंह नहि बोल। २. बी० जानै। (६) १. मैं० आए भर भर। २. बी० लागेहिं। (७) १. बी० लोगाह। २. मैं० जाप बिसरिगा। ३. मैं० तेहि लरब बिटारीन्ह (बिटारिन्ह—ना०)।

अर्थ—(१) वे दोनों [नारियाँ] मलिन काम से प्रज्वलित हो कर उठीं और मानो [दो] मदमत श्रेष्ठ गज हों, [ऐसी] वे उभड़ (उठ) पड़ी। (२) दोनों नारियां समतुल्य रूप से भिड़ गईं और नख-क्षत से [उनके] अंग ऐसे हो रहे थे मानो किंशुक फूल उठे हों। (३) वे अत्यधिक हाथा-बाहीं कर रहीं थीं, उनके स्तन खुले हुए थे और वे उन्हें ढांक भी नहीं रही थीं। (४) उन स्त्रियों के संबंध में मरने का सन्देह [हो रहा] था; उनके चीर नहीं संभल रहे थे और उनके केश मुक्त हो रहे थे। (५) वे कहना नहीं सुन रही थीं, न वे उत्तर दे रही थीं और उनके सिर ऐसे नग्न थे मानों वे भंवरी ले रही हों। (६) वे अत्यधिक बर्बरता पूर्वक लिपटीं, किन्तु दोनों में से कोई

हारी नहीं रही थी। (७) लोगों को यात्रा विस्मृत हो गई [क्योंकि], मंडप में [यह] नाट्यारंभ (नाटकीय समारोह) हो रहा था।

(२६३)

'पउदर ओंदरि' 'धरनि मिलि गएऊ'। देवहि जिय 'कर सांसउ भएऊ'।
देवधर रगत 'भएउ तेहिं लोही'। हिएं लाग डर 'भुगुति न होई'।
'देउ कहइ' बिधि 'मइं न बोलाईं'। 'इंद्र' सभा की 'आछरि' आईं।
अब जउ 'दुहुं' महिं 'एकउ मरई'। 'इंद्र' राय 'मोहिं जीउ कहं धरई'।
चला देउ 'हत्या मोंहि लागी'। छाडि मंडपु 'निसरा डरि भागी'।
'सुर आएं देखहिं' सकइ न कोउ छडाइ।
मुनिवर जाप बिसरि गा बरंभा सीस डोलाइ॥

सन्दर्भ—मै० : पत्र २१४, बी० ८०९-८११/१।
शीर्षक—मै० : गुरीख्तन बुत अज़ बुतखान : अज़ जंग अशियान।
बी० में दोहा नहीं है।

पाठान्तर—(१) १. बी० पौदर मंडपु। २. बी० धरा मिलि गायों। ३. बी० कौ सांसैं भांयों।(२) १. बी० भयो सब लोहू। २. बी० बगत न मोहू।(३) १. बी० मनाह कहै। २. बी० मैं न बुलाई। ३. बी० यंद्र। ४. मै० अछरिन्ह। (४) १. बी० इह। २. बी० एकौ मरै। ३. बी० यंदु। ४. बी० जिय मोकोंहु धरै। (५) १. बी० नहि तिय मो लागै। २. बी० निसिरा डरु भागैं।(६)१. मै० में इस चरणार्द्ध में कोई शब्द छूटा लगता है।

अर्थ—(१)[उस झगड़े के परिणाम-स्वरूप] मंदिर का पौदर टूट-फूट कर [जब] धरती में मिल गया, तब [उसके] देवता को अपने जीव (प्राणों) का संशय हुआ। (२) देव-गृह उनके लहू से रक्त हो गया था, और [देवता को] हृदय में डर लग रहा था, इसलिए [चढ़ाया हुआ] भोजन उससे नहीं किया जा रहा था। (३) देवता कह रहा था, "हे विधाता, मैंने इन्हें नहीं बुलाया था, इन्द्रसभा की ये अप्सराएँ [स्वतः] आईं। (४) यदि अब इनमें से एक भी मर जाएगी तो इन्द्रराज मुझे मेरे प्राणों के लिए पकड़ेगा।" (५) [इसके अनंतर] यह सोच कर कि उसे हत्या लग जाएगी, [मंदिर का] देवता चल पड़ा और डर के मारे मंडप को छोड़कर भाग निकला। (६) देवता आ कर [उन्हें झगड़ते] देख रहे थे, किन्तु उन्हें कोई भी छुड़ा नहीं सक रहा था। (७) मुनिवरों को जप करना भूल गया [था] और ब्रह्मा सिर हिला रहे थे।

(२६४)

कंवरि 'तराइनि' सूरिजु आवा। देसु 'लोकु' मिलि आगें धावा।
जन पठए 'हुत' बेगि 'बुलावहु'। करम 'हमार सहिइं' चलि 'आवहु'।
चांदा 'मैनहि असि कइ' गही। अब लहि 'असि' न 'काहूं' 'सेउं' भई।
'सुनहिं' न बोलु 'न करहिं' 'मिरावा'। तस न कोउ 'जो आइ' छुडावा।
'जउ इन्ह' महिं 'एकउ' मरि 'जाई'। हत्तिया 'लागी' देस बुराई।
कंवरि 'तराइनि' सूरिजु 'दुहुं' 'तुम्ह' 'पइसि छुडावहु'।
लागि जाइगी हत्तिया उजरत देसु 'बसावहु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २१५, शि०, बी० ८११।१२-८१४।

शीर्षक—मै० : आमदने लोरिक नज़दीक बुतख़ान: व मअ़लूम करदन ख़ल्क़ कैफ़ियते जंग। शि० : अपाठ्य है।

पाठान्तर—(१) १. बी० तरायनि। २. बी० लोगु। (२) १. मै० सो। २. शि० बुलावउ, बी० बुलाये। ३. बी० हरसहीं। ४. शि० आवउ, बी० आये। (३) १. मै० मैं ना कइ असि, बी० मैं न होइ कर। २. मै० अईसि, बी० अस। ३. मै० काहू (काहु)। ४. बी० स्यौं। (४) १. मै० सुनहि। २. मै० कों करहि, बी० न करैहि। ३. मै० मनावा। ४. शि० जो इन्हां, बी० जौ पैसि। (५) १. मै० जउ रे दुंहुं, बी० अब इन्ह। २. मै० एक बी० येको। ३. मै० नाई। ४. बी० लागैं, शि० लागहि। (६) १. बी० तरायनि। २. बी० दहु। ३. बी० वा, मै० में नहीं है। ४. बी० पैसि छुडाउ, शि० अस्पष्ट है। (७) १. शि० बस, बी० बसाउ।

अर्थ—(१) [मंदिर के देवता ने पुकारा,] "ऐ कमलिनियो (सुंदरियो) और तारिकाओ (दासियो-सखियो) तथा सूर्य (लोरिक), आ जाओ; देश तथा लोक मिल कर आगे दौड़ पड़ो! (२) जो जन भेजे हुए हैं, उन्हें शीघ्र बुलाओ, यह हमारा कर्म (भाग्य) होगा कि सभी चले आएँ! (३) चांदा और मैनां ने [एक-दूसरे को] इस प्रकार पकड़ रक्खा है कि ऐसी [लड़ाई] अब तक किसी से नहीं हुई है। (४) वे [किसी की] बातें नहीं सुन रही हैं, इसलिए कौन उनमें मेल कराए? ऐसा कोई नहीं है जो आकर उन्हें छुड़ा सके। (५) यदि इन [दोनों] में से एक भी मर जाएगी, तो मुझे हत्या लगेगी और देश में बुराई (निन्दा) होगी। (६) ऐ कमलिनियो (सुंदरियो), तारिकाओ (सहेलियो-दासियो), और सूर्य (लोरिक), तुम प्रविष्ट होकर

दोनों को [एक-दूसरे से] छुड़ाओ। (७) [अन्यथा] हमें हत्या लग जाएगी, तुम उजड़ते हुए देश को बसा लो!"

(२६५)

'मेरई (ईं) सूधि कइ' 'दोऊ' नारीं। 'भेंभर' भोंरीं जोबन बारीं।
'कइ' 'खंडवानी' 'दोउव' 'पियाईं'। 'कोह परजरतीं' छिरकि बुझाईं।
बासि 'कपूरें' पान 'खियाईं'। 'एक' खंड छाप आनि 'पहिराईं'।
'यह गियानु' तुम्हं चांद न 'बूझउ'। मैनां 'सहुं को झूझ' न 'झूझउ'।
'ओछि' बात सुनु चांद 'न कीजिय'। ऊतर 'दइ अनु' 'ऊतर' 'लीजिय'।
'सिराजुद्दीन' सेउं 'कबि' छंद 'दाउद' कहे संवारि।
'मेरईं सूधि कइ' दोऊ नारीं 'लाइ' धरीं अंकवारि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१६, भो० पत्र २५ (नवीन), बी० ८१५-८१७।

शीर्षक—मैं० : आश्ती करदने लोरिक मियाने चांद व मैनां।

भो० : रिहा करदन अमीर मसऊद व जंग व सामान दादन मैनां रा व मनअ् करदन चांदा रा। [यह शीर्षक सर्वथा अशुद्ध है और (१) तथा (७) के पाठ-भ्रम से संबद्ध है।]

पाठान्तर—(१) १. भो० बी० मीर मसऊद कि (मसूद की-बी०)। २. बी० दून्यौ। ३. बी० भ्यंभर। (२) १. बी० कै। मैं० खंडवानि (खंडवानी—ना०)। ३. बी० दुवै। ४. बी० पिवाई, भो० बनाई। ५. बी० कापर जारी। (३) १. बी० कपूरी। २. भो० खवाईं, बी० खियाए। ३. बी० यक। ४. बी० पहिराए। (४) १. बी० योंहु ग्यानु। २. भो० बूझिय, बी० बुझाये। ३. भो० सेउं को जूझ, बी० सेती क जूझ। ४. भो० झूझिय, बी० जाये। (५) १. बी० वोछी। २. बी० ब कीजा। ३. मैं० देइय। ४. भो० उतर न। ५. बी० दीजा। (६) १. बी० सिराजदिं के। २. बी० में नहीं है। ३. बी० दाउदि। (७) १. भो० बी० मीर मसूद कि (मसउद की-बी०)। २. बी० लई।

अर्थ—(१) दोनों नारियों को [लोरिक ने] शुद्ध (सीधी-शांत) कर मिलाया। वे [दोनों] योवनवती बालिकाएं भेंभर (विह्वल) और भूली हुई [हो रही] थीं। (२) खंडवानी [तैयार] करके दोनों को उसने पिलाया, और क्रोध से जलती हुई दोनों को [मीठे शब्दों का जल] छिड़क कर बुझाया (शान्त किया)। (३) दोनों को [उसने] कर्पूर से सुवासित कर पान खिलाया और [दोनों को] एकखंडी छपी साड़ियां लाकर पहनाईं। (४) [फिर उसने कहा,] "ऐ चांदा, यह ज्ञान तुम नहीं समझती हो कि मैनां से तुम्हें कोई युद्ध न जूझना (करना) चाहिए। (५) ऐ चांदा, सुनो; ओछी बात न करे, उत्तर दे और उत्तर ले।" (६) सिराजुद्दीन से काव्य के ये छंद दाऊद ने संवार कर कहे हैं। (७) सीधी (शांत) कर दोनों नारियों को [लोरिक ने आपस में] मिलाया और [तदनंतर दोनों को] ला (ले) कर [उसने उन्हें] अंकवार में पकड़ा।

१६. चांदा-लोर-परदेश-प्रस्थान खण्ड

(२६६)

चांद सुखासनु मंदिर चलावा। देउ मनाएं 'ला(लां)छनु' पावा।
'जउ देव बारहिं लांछनु' लागा। 'जानउं चंद्र' मेघ 'तर' भागा।
'सोरह' करां करत 'उजियारी'। 'पूनिउं राति भई' 'अंधियारी'।
चांद कलंकी 'चितहिं स(सं)खानी'। एक खंड 'नाहीं नौ' खंड जानी।
'एहिं' परि जाइ मंदिरि ऊतरी। कनवड़ि 'होइ तउ पाछें' परी।
'चढ़ी चांद धौराहरि' सिरु धनि' बइठि नवाइ'।
'नैन गांग मुख धोवइ' मुख मंसि धोइ न 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१७, बी० ८१८-८२०।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क है, 'चांद सुखासन' है, जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तन चांदा अज़ बुतखानः सूए खानः खुद।

पाठान्तर—(१) १. बी० लछिनु। (२) १. बी० जो हुत बारेहि लंछिनु। २. बी० जानौ कि चांद। ३. बी० रत। (३) १. बी० सोराह। २. मैं० उजियारा। ३. बी० पून्यों चांद कि भइ। ४. मैं० अंधियारा। (४) १. बी० चितह लजानी। २. बी० छाडि नौव। (५) १. बी० इहि। २. बी० होइ तौ पीछे, मैं० दीख तउ पाछें। (६) १. बी० चरी राम धैराहर। २. बी० बैठि नवाई। (७) १. मैं० पंक नेक रे। २. बी० धोवै। ३. बी० जाई।

अर्थ—(१) चांदा ने सुखासन मंदिर (घर) की ओर चलाया, [तो] [उसने मन में कहा,] "देवता को मनाने से मैंने लांछन [ही] पाया।" (२) जब देवता के द्वार पर [उसे] लांछन लगा, तब [वह छिप कर इस प्रकार भागी] मानो चंद्र मेघ के नीचे (पीछे) छिप कर भागा हो। (३) जो

सोलह कलाओं से उजाला करती थी, वह पूर्णिमा की रात्रि अंधकारमयी हो गई। (४) कलंकित चांदा चित्त में शंकित हो गई, [क्योंकि यह बात] एक खंड तक [सीमित] नहीं रही, वह नौ खंडों में प्रसिद्ध हो गई। (५) इस प्रकार से जाकर जब वह [अपने] मंदिर (घर) में उतरी, वह कनावड़ी (लज्जित) होकर पीछे [के भाग में] पड़ रही। (६) चांदा धवलगृह (प्रासाद) पर चढ़ी, तो वह सिर पकड़ कर और उसे नीचा कर बैठ गई। (७) [अपने] मुख को वह नेत्र-गंगा से [भले ही] धो रही थी, किन्तु मुख की कालिमा नहीं धोई जा सकती थी।

(२६७)

'चढी' पालिकी मैनां नारी। बिहस 'कंवरि सब' जोबन बा(वा)री।
'गोवां पूजि कइस सुख आई'। 'जइ सब गोहन देउ घर गई (?)'।
'खिनहि चांद कुर पानि' उतारा। 'हम सहिं' नारि छिनारि 'बिटारा'।
हंसि हंसि पान अडाकर खाहीं। मिलीं सहेलीं कोड कराहीं।
'पानी उत(ता)रा' 'मसि मुख' लाई। सो मसि 'मुख थें धोइ' न जाई।
'झमकति' आई पालिकी सुख 'सउं' मंदिरि 'पईठि'।
'गईं' सहेली घर 'घर' मैनां 'सेजि बईठि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१८, बी० ८२१-८२३।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तन मैंनां अज़ बुतखानः सूए खानः खुद।

पाठान्तर—(१) १. बी० चली। २. बी० कंवर पर। (२) १. बी० गोवरा बात घनांहुनि भई (तुल० २२८'४)। २. बी० सषी बुलाई सभै तिनि लई। (३) १. बी० कहेहिं (खिनहिं—फ़ा०) चांद कर पानी। २. बी० मौंसौ। ३. बी० नचारा। (५) १. मैं० पानि उतारी। २. बी० औ मसि। ३. बी० मुख की कदे। (६) १. बी० सुष स्यों (तुल० चरण का उत्तरार्द्ध)। २. बी० स्यौं। ३. बी० पईठी। (७) १. बी० गइ। २. बी० घरह। ३. बी० सेज बईठी।

अर्थ—(१) मैंनां नारी जब पालकी पर चढ़ी, सब यौवनवती कमलिनियां (सुंदरियां) हंस रही थीं। (२) [मैंनां ने कहा,] "हम किस सुख के साथ गोवां (ग्राम-देवता ?) की पूजा कर आईं जब साथ-साथ हम देव-गृह में गईं। (३) [किन्तु] "चांदा ने क्षण भर में [हमारे] कुल का पानी उतार लिया [और कहा,] कि हम सभी नारियां छिनाल और बिटारिनें हैं। (४) [उसकी]

सहेलियां [किस प्रकार] हंस-हंस कर अडाकर (बिना कुचले हुए) पान खा रही थीं, और मिल कर कोड (क्रीड़ा-खिलवाड़) कर रही थीं। (५) मैंने तो [उसका] पानी उतार कर [उसके] मुख में मसि (कालिमा) लगा दी है, और वह मसि (कालिमा) मुख से धोई नहीं जा सकेगी।" (६) यह कहती हुई वह पालकी पर झमकती हुई आई और सुख-पूर्वक [अपने] मंदिर (घर) में प्रविष्ट हुई। (७) सहेलियां अपने-अपने घर गईं और मैंनां शैया पर जा बैठी।

(२६८)

'खोलिनि पूछहि कहु दहुं' मैंनां। 'देउ' बारि कस 'पाइहु' बैंनां।
'हउं' तुम्हं 'पूजइ देउ' पठाई। 'अउ पाछें तेंहि चांदा आई'।
'हम जानां यह सहिय' तुम्हारी। 'ऊपर घालति करति धमारी'।
थोर बहुल 'जइसइं किछु परतिउं'। 'आजु सेउ चांदा कइ कीत्यौं(तिउं)।
'ए सब' लोरिक के उपगारा। 'बाजी मो सौं(सउं)' देव दुवारा।
बहुल 'भएउ नोचियाऊ' चांद 'सकूसर आइ'।
नांगि नंगि कइ छंडतिउं 'लेतिउं' चीर छिनाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २१९, बी० ८२४-८२६।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने खोलिन मैंनां रा कैफ़ियते बुतखानः।

पाठान्तर—(१) १. बी० षौलनि पूछ कहौ धौं। २. बी० देव। ३. बी० पायो। (२) १. बी० हौ। २. बी० पूजा देव। ३. बी० औ पीछै कै चांद बुलाई। (३) १. बी० जौ हौं जांनौ सगी। २. बी० जे पर घालि बिपरीति अमारी। (४) १. बी० जैस कछु हूत्यौं। २. बी० आजु सु चांदा परगट। ३. मैं० करतिउं। (५) १. बी० जे (ये—ना०) सभ। २. मैं० बाचें तूसिउं (?)। (६) १. बी० भयो पछितावं। २. बी० सकोसर (सकूसर—फ़ा०) आई। (७) १. बी० नगन करि छरत्यौं। २. बी० लेत्यौं।

अर्थ—(१) [खोलिन पूछने लगी,] "ऐ मैंनां, कहो तो, देव-द्वार पर तुमने कैसा बैना पाया ?" (२) [मैंनां ने कहा,] "तुमने मुझे देवता की पूजा करने को भेजा और उसके पीछे ही चांदा [वहां] आ गई। (३) हमने जाना (समझा) कि तुम्हारी यह [चेष्टा] सहृदयता-युक्त (?) है कि तुम ऊपर [कुछ] डाल रही हो और धमार कर रही हो। (४) [फिर तो] थोड़ा-बहुत जैसा-कुछ हो सका आज मैंने [भी] चांदा की सेवा की। (५) और ये सब

लोरिक के उपकार हैं कि वह मुझ से देव-द्वार पर भिड़ गई। (६) [वहां] बहुत नोचियाव (नोंच-चोथ) हुआ, [तब] चांदा कुशल-पूर्वक [अपने घर] आई, (७) [अन्यथा] उसको मैं नंगी और नग्न करके छोड़ती और उसका चीर छिना लेती।"

(२६९)

'मैनहि मालिन तउहि बोलाई'।
'उरहन दें (दइ) महरीनि (इं ?)' पठाई।
चांद 'भुजंगि' राइ 'कइ' घिया।
'अइस नकीज (न कीज) जइस ओइं किया'।
'पूनिउं मुखु देखत' उजियारा। 'आपु कलंके' भा अंधियारा।
महर महरि कइ भइ मोंहि कानीं। 'लउतिउं' आगि 'उतरतिउं' पानीं।
'असि कइ धीय दीन्हि मोकराई'। 'अबहि सकोरहु' अनत न जाई।
चारि भुवन जगु देखत मो 'सिउं' 'बांगरि' लागि।
जेहि 'अकरक' अस 'लागइ' 'जाइ' देस तजि भागि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२०।१, बी० ८२७-८२९।

शीर्षक—मै० : तलबीदने मैनां मालिन रा व फ़िरिस्ता[द]न बर महर।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैनां मांरनि तोहि बुलाई। २. मै० ओरधन देइ महरां। (२) १. बी० भनीजै। २. बी० की। ३. बी० अैस न कीजै जस उनि कीया। (३) १. बी० पून्यों मुषु देस (दीस—फ़ा०)। २. बी० अवरु कलंकी। (४) १. बी० लवत्यौं। २. बी० उतारत्यौं। (५) १. बी० अस कै धिया दीन्ह मुकराई। २. मै० में अस्पष्ट है। (६) १. बी० सौ। २. बी० बांगरी। (७) १. बी० अकुरंक। २. बी० होइहै। ३. बी० जाई।

अर्थ—(१) मैनां ने मालिन को तभी (तत्काल) बुलाया, और उलाहना देकर(देने को) उसे महर के पास भेजा। (२) [उसने कहलाया,] "राजा की दुहिता चांदा भुजंगिनी है; उसे ऐसा न करना चाहिए था जैसा उसने किया है। (३) उसका पूर्णिमा का (के जैसा) मुख देखने में उज्ज्वल था, किन्तु अपने द्वारा ही कलंकित किए जाने के कारण वह अंधेरा (अंधकारपूर्ण) हो गया [है]। (४) महर-महरी की मुझे कानि हुई, नहीं तो उसे आग लगा [कर जला] देती और उसका पानी उतार लेती। (५) [तुमने अपनी] दुहिता को ऐसा मुक्त कर रक्खा है! अभी ही उसे सिकोड़ो (नियंत्रण में करो), जिससे वह अन्यत्र न जाए। (६) चारों भुवनों और जगत् के देखते हुए वह वक्रा मुझसे लग (उलझ) गई। (७) जिसे ऐसा कलंक लगता है, वह देश को त्याग कर भाग जाता है।"

(२७०)

'मालिनि पुहुप करंडि भरि लिई'। राजमंदिर चलि भीतर 'गई'।
'महरिहि' सीसु नाइ भइ ठाढ़ी। कुसुम 'करी लइ दीतिसि' काढ़ी।
हार 'जोरि' 'फूला पहिराई'। 'अउर' फूल भरि सेज 'बिछाई'।
फुनि 'मालिनि बिनती' औधारी। 'सुनहु त बिनवइ दासि' तुम्हारी।
आजु लोर 'कें' मंदिर 'बुलाइउं'। चांद 'क ओरहन' देइ 'पठाइउं'।
जस 'उन कहा सो कहिसि अस 'तस' 'हउं कहइ न पारउं'।
बहुल 'मात हउं दोखी' 'कहं' लगि कहत 'संभारउं'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२०।२, बी० ९३०-९३२।

शीर्षक—मै० : रफ़्तन गुलफ़रोश दरखानः राय महर व पेश इश्तादन।

पाठान्तर—(१) बी० मारनि पहुप कडंड भरि लाई। २. बी० आई। (२) १. बी० महरिह। २. बी० जोर लेहसि करि (तुल०अर्द्धाली तीन का पूर्वार्द्ध)। (३) १. बी० जोर। २. बी० फूल पहिरावा। ३. बी० और। ४. बी० बिछावा। (४) १. बी० मारनि तीय। २. बी० सुनि बिनवौ अविचार। (५) १. बी० कै। २. बी० बुलायो। ३. बी० उराहन। ४. बी० पठायो। (६) १. मै० ओरहन ओइं कहा। २. बी० हौ कहौ न पारौ। (७) १. बी० बात कहि देषी। २. बी० कहाँ। ३. बी० सभारौ।

अर्थ—(१) मालिन ने पुष्पों की करण्डी (डलिया, टोकरी) भर ली और राजमंदिर जाकर वह [उसके] भीतर गई। (२) महरी को सिर नमित कर वह खड़ी हुई और [एक] कुसुम-कलिका निकाल कर उसे दी। (३) उसने [इसके अतिरिक्त] हार जोड (गूंथ) कर फूला (महरी) को पहनाया, तथा और फूलों से भर कर [उसकी] शैया बिछाई। (४) तदनंतर उस मालिन ने बिनती प्रस्तुत की, "यदि तुम सुनो, तो यह तुम्हारी दासी तुमसे बिनती करे। (५) आज मैं लोर के मंदिर में बुलाई गई और चांदा [के संबंध] का उलाहना देने के लिए मैं भेजी गई। (६) जैसा [उलाहना] उस (मैनां)ने कहा है—कि ऐसा कहना, वैसा मैं नहीं कह सकती हूं, (७) [इसके लिए] हे माता, मैं बहुत दोषी (दोष-पूर्ण) हूं, [क्योंकि] उसे कहते हुए मैं कहां तक स्मरण करूं?"

(२७१)

महरि कहा 'सुनि मालिनि' माई। जस 'तइं' सुनां 'तइस' कहु आई।
'काल्हि जउ' चांद देव घर' गई। देव 'दुआर' 'बिटारित भई'।
चारि भुवन जग 'जानहु' आवा। कछु आपनु 'अउ बहुल' परावा।
चांद न आछइ 'अपनें' पानी। बिनु पानी अति जीभ सुखानी।
घर घर बात'देस' फिरि आई। 'कार(रं)क दिए मुंह निकरि' न जाई।
तूं राजा 'कइ धिय' 'सो चांदा' 'कैसें लोक' हंसावसि।
'अउ जो पुरुखा सात गए' सरगि तूं 'तिन्हहि लजावसि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२२, बी० ६३३-६३५।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने महरि बर गुलफ़रोश रा व बाज़ नमूदन गुल-फ़रोश अ़ताबे चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहु मांरनि माई। २. बी० तैं। ३. बी० तैस। (२) १. बी० कालि जु। २. बी० दुवार। ३. बी० जस होई षई। (३) १. बी० जातेहि। २. बी० औ बहल। (४) १. बी० आपन। (५) १. बी० जगाह। २. बी० कार कीन्ह मुष निसरि। (६) १. बी० की धीय। २. बी० में नहीं है। ३. बी० बारिक पिता। (७) १. बी० औ पनि पुरषह सात। २. बी० तिन्ह लाज लगावसि।

अर्थ—(१) महरी ने कहा, "ऐ मालिन सखी, सुन; जैसा तूने [मैना से] सुना, वैसा तू आकर कह" (२) [मालिन ने कहा,] "कल जब चांदा देवगृह गई, देव-द्वार पर वह लांछित-अपमानित हुई। (३) मानो जगत् के चारों भुवन वहां पर आगए थे, कुछ अपने थे और बाहुल्य से पराए थे। (४) चांदा अपने पानी (मर्यादा) में नहीं रहती है, [इसलिए] बिना पानी (मर्यादा) के उसकी जिह्वा अत्यधिक शुष्क [हो रही] थी। (५) देश में घर-घर यह बात फिर आई है कि उसने [अपने] मुँह में ऐसा कालिख दिया (लगाया) है कि उससे [बाहर] निकला नहीं जा रहा है। (६) 'ऐ चांदा' [लोग कहते हैं,] 'तू राजा की कन्या होकर कैसे लोक में [अपनी] हंसी करा रही है, (७) और जो तेरे सात पूर्व-पुरुष स्वर्ग जा चुके हैं, उन्हें लज्जित कर रही है!"

(२७२)

'सुनतहि फूला' महरि लजानी। 'घरी' सहस 'जनु' मेला पानी।
'जइस तुसार पुरइनि दहि' दही। तस होइ महरि बात सुनि रही।

'कवनि' भांति 'बरु गई बोलाई'। 'इहिं' कुर बोरनि लाज 'गंवाई'।
काहे 'कहं बिधि तइं अवतारी'। 'बरु अवतरतइ मरतिउं बारी'।
अस 'ओरहन दहुं कैसें' सहिए। जहां 'बियाही तहं' का कहिए।
'दुइ' कुर बोरनि 'अकरनि' 'गोत लजावनि' दारि।
'पायं लागि कह मालिनि' 'हरकी(किय) आहि छिनारि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२३, बी० ६३६-६३८।

शीर्षक—मै० : शरमिन्दः शुदने महर व फूला अज़ अ़ताबे चांदा।

मै० में इस कडवक के सामने जो चित्र है, वह बाद वाले कडवक का है, जो मै० में त्रुटित है।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुनते फूलांह। २. बी० घरे। ३. बी० जानौ। (२) १. बी० जस तूसरि परयनि दह। (३) १. बी० नून। २. बी० कर गई बिलाई। ३. बी० यह। ४. बी० लगाई। (४) १. बी० कौ बिधि तूं औतारी। २. बी० कोरि सहस चौहु देसेहि गारी। (५) १. बी० उरहन धौ कैसैं। २. बी० बियाहि तहां। (६) १. बी० दोई। २. बी० अंकुरनि। ३. मै० लोक हंसावनि। (७) १. बी० पाई लागि कै बिनइ मारनि। २. मै० हरकही। ३. बी० बहुल बिचारि।

अर्थ—(१) यह सुनते ही महरी फूला [ऐसी] लज्जित हुई मानो उस पर एक सहस्र घटियाँ (छोटे घड़े) जल डाल दिया गया हो। (२) जैसे तुषार में दग्ध होने से पुटकिनी (कमलिनी) जल जाती है, वैसी ही [दग्ध] होकर महरी उसकी बात सुनती रही। (३) [उसने कहा,] "किस भांति (क्यों) यह [ससुराल से] बुलाई ही गई कि इस कुल को डुबाने वाली ने लज्जा गंवा दी? (४) विधाता के द्वारा किसलिए अवतरित ही की गई? बल्कि अवतरित होते समय ही, ऐ बालिका, तू मर जाती (गई होती)। (५) ऐसा उलाहना भला कैसे सहन किया जाए और जहां पर तू विवाहित है, वहां पर क्या कहा जाए?" (६) "यह दोनों कुलों को डुबाने वाली, अकरणीय को करने वाली और गोत्र को लज्जित करने वाली दारी हुई", पैरों में लगकर मालिन ने कहा, "इस छिनाल को हटकिए (मना कीजिए)।"

(२७३)

राज मंदिर हुतें मार(रि)नि आई।
मैना नारि आइ सम(मु) झाई।

महरि बिरूना (बिरवना) करै(रइ) बि[र]राई।
चांद केर मुषि लै(लइ) मसि लाई।
माइ बाप बंधु कुट(टुं)बु बिगोवै(वइ)।
रोइ रोइ चांद कार मुष धोवै(वइ)।
समदि(समुद ?) पैठि(बैठि ?) दिनु ले(लइ) मुसकाई।
मुषि जु चरी मसि धोई(इ) न जाई।
अ(आ)न होइ हीयो द[र]केहि फाटै।
पुरषु नारि कर नासिक काटै।
मैना आगि बुझान कह (इ ?) अस मारनि आई।
चांद कीन्ह सत ढील राह(हि ?) निरंग ही आई॥

सन्दर्भ—बी० ८३९-८४१। मै० में अब यह कडवक नहीं है किन्तु अब उसके पत्र २२३ पर जो चित्र है वह इसी कडवक का है, पूर्ववर्ती का नहीं है, क्योंकि उसमें मालिन और मैना का संवाद चित्रित है।

अर्थ—(१) मालिन राजमंदिर से आई और आकर उसने मैनां नारी को समझाया। (२) [उसने कहा,] "महरी बिलपना करती और बिललाती है [और कहती है] कि चांदा का मुख लेकर उस पर कालिख पोतनी चाहिए। (३) [चांदा] माता, पिता, बंधु और कुटुंब को बिगो रही है और रो-रोकर आंसुओं से अपना काला मुख धो रही है। (४) वह हर्षपूर्वक (?) बैठ कर (?) [भले ही] दिन भर मुसकराती रहे, किन्तु उसके मुख पर जो कालिमा चढ़ गई है, वह धोई नहीं जा सकती है। (५) अन्य कोई होता तो उसका हृदय दरक कर फट जाता, [क्योंकि] पुरुष ऐसी नारी की नाक काट लेता है।" (६) मैनां की आग (रिस) बुझ गई जब मालिन ने आकर उससे कहा; (७) "चांदा ने सत्व ढीला कर दिया है, [क्योंकि] सुसज्जित (?) होने (हो कर जाने) पर वह निरंग ही आई (लौटी) है।"

(२७४)

चांद बिरसपति 'सों' अस कहा। भा सो कुछ 'जो चित(चित्त)महं' अहा।
'सरग हुतें' धर परा 'अठाऊ'। उठा सबदु जग मेंट न काऊ।
अब 'यह' बात देस फिरि आई। 'अउ धइ ढांके रह' न लुकाई।
'हउं जो न सुनतिउं' बोलु परावा। 'जेहिं डरिउं सो आगें' आवा।
अब 'हनि मरिहउं' पेट कटारी। 'केइं रि (रे)' सहब देस कइ' गारी।

लोरहि कहसि बिरसपति 'मोहि लइ निकरि पराइ'।
आजु राति 'लइ निकरउ' 'न(ना ?)तरु मरउं भोर' बिसु खाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२४, बी० ८४२-८४४।

शीर्षक—मै० : तलबीदने चांदा बिरस्पति रा व फ़िरिस्ताने बर लोरिक।

पाठांतर—(१) १. बी० सौ। २. बी० हौंनैं कौ। (२) १. बी० सरगौ हुतैं। २. बी० निहाऊ। (३) १. बी० याह। २. बी० ढांकी बाढी रहै न। (४) १. बी० हौं जनु सुनत्यौं। २. बी० जिहि दिन डरौ सु आगै आगैं। (५) १. बी० लै मरिहौ। २. बी० कोरि, मै० केइं दुख। ३. बी० सहस चहु देसहि गारी। (६) १. बी० मो लै निसरि पराय। (७) १. बी० ले निसरौहु। २. बी० ना तौ भोर मरिहैं।

अर्थ—(१) [उधर] चांदा ने बृहस्पति से ऐसा कहा, "कुछ वही हुआ जो मेरे चित्त (ध्यान) में था। (२) स्वर्ग से [वह पदार्थ] अस्थान में धरा पर आ पड़ा और उसका शब्द (शोर) ऐसा उठा कि जगत् में वह कभी भी न मिटेगा। (३) यह वार्ता अब देश भर में चक्कर लगा आई है और पकड़ कर (ज़बर्दस्ती) ढक रखने से छिप नहीं रही है। (४) [कहां तो] मैं ऐसी थी कि जो दूसरे का बोल नहीं सुनती थी, [और कहां अब ऐसी हो गई कि] जिस [बात] के लिए डर रही थी, वही आगे आई! (५) अब मैं पेट में कटारी मार कर मरूँगी, क्योंकि मैं किस प्रकार देश [भर] की गाली सहूँगी? (६) लोरिक से, ऐ बृहस्पति, [तू मेरी ओर से] कह कि अब वह मुझे लेकर निकल भागे। (७) आज रात को [ही] वह मुझे लेकर निकल चले, नहीं तो मैं सबेरे विष खाकर मर जाऊंगी।"

(२७५)

आइ बिरस्पति कहा संदेसू। लोर चांद 'लइ' 'चलु' परदेसू।
सांवनु लाग 'देउ' घरराई। पावस 'पंथ न हांडे' जाई।
नार खोर नदि 'जर(ल?)' भरि 'रहे'। 'एहिं सयंसारु जहां लहि अहे'।
'ओनइ' लाग 'धर' बादर 'आई'। 'दादुर ररहिं' 'बीजु चमकाई'।
पावस 'पंथ कवन निरबाहइ'। 'जीउ' डराइ हिय 'फाटइ चाहइ'।
सरद सिसिर 'रितु हेंवतहि' जात न लागी बार।
'चलब' चांद 'कहु बिहफइ' 'होइ' बसंत उजियार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२५, बी० ८४५-८४७।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने बिरस्पति लोरिक रा सुख़ुने चांदा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० लै । २. मै० में नहीं है । (२) १. बी० देव । २. बी० पंथाह चले न । (३) १. मै० पानि । २. बी० रहै । ३. बी० वहि सँसारू ज लहु औ अहें । (४) १. बी० उनै । २. बी० दर । ३. मै० बरिसइं । ४. बी० दादु रढैं । ५. मै० बीजुरी लौकइ । (५) १. बी० राति कौन निरवाहै । २. बी० जाइ । ३. बी० फाटन चाहै । (६) १. बी० रुति होवत । (७) १. बी० जाइ । २. बी० कौ बिहपै । ३. बी० होय ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने आकर [लोरिक से चांदा का] संदेश कहा, "ऐ लोरिक, तू चांदा को लेकर परदेश चले (जाए) ।" (२) [लोरिक ने कहा,] "सावन लग गया है और दैव गर्जन करने लगा है, वर्षा में मार्ग चलने से नहीं जाता (समाप्त होता) है । (३) जहां तक भी संसार में नालियां, खोरियां और नदियां थीं, वे पानी से भर रही हैं । (४) बादल आकर और अवनमित होकर धरा से लग रहे हैं, दादुर (मेढक) चिल्ला रहे हैं, और बिजली चमक रही है । (५) वर्षा में मार्ग कौन निबाह पाता है ? [मार्ग चलते हुए] जी डरता है, और हृदय फटना चाहता है । (६) शरद, शिशिर तथा हेमंत ऋतुओं में जाने में देरी न लगेगी, (७) [अथवा,] चांदा से, ऐ बृहस्पति, कहना कि जब उज्ज्वल बसंत होगा, [तब] चलूंगा ।"

(२७६)

सुरिज सुमंतु बिरसपति पावा । चांद बारि कौ (कहं ?) जाइ जनावा ।
होहि न उतावरि चांदा रानी । उवै(वइ)अगस्ति घटै(ट)हि सर पांनी ।
पंथ थाक साइर भरि रहे । गरैं बूड जहां लहु अहे ।
तर उपरि पानी न संभारै । चलै (चले) न जाइ बीचि होइ हारै ।
तौ निकरें कर होइ पछितावा । जान न जाई फिरि को आवा ।
जो अइबे कहुं आहि बीर कहि (कह) बिहपौं(फइ ?) आयहु ।
फुनि रु(रे) होइ पछिताऊ बहुरें मोहि न पायहु ॥

सन्दर्भ—बी० ८४८-८५० ।

मै० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से ज्ञात होता है । किन्तु यह कडवक प्रसंग में आवश्यक है । अतः असंभव नहीं कि यह मै० के पूर्वज में त्रुटित रहा हो अथवा, मै० की प्रतिलिपि करते समय रह गया हो ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जब सूरज (लोरिक) का सुमंत्र (विचार) पाया, तो उसने चांदा बालिका को जाकर सूचित किया । (२) [लोरिक के शब्दों में उसने कहा,] "ऐ चांदा रानी, उतावली न हो, अगस्त को उदित होने और सरोवरों का पानी घटने दो । (३) [इस समय तो] मार्ग बंद हैं और सागर (जलाशय) भर रहे हैं; वे जहां तक भी थे, आकंठ [जल से] बूड़े (डूबे) हुए हैं । (४) [पथिक के लिए] एक तो तले जल है, और दूसरे ऊपर [वर्षा का] जल है, दोनों को [एक-साथ] वह संभाल नहीं पाता है और चल कर भी वह जा नहीं पाता है, तथा बीच में ही हार पड़ता है । (५) तब निकल पड़ने का पछतावा होता है, और यह नहीं जान पड़ता है कि लौट कर कौन आएगा ।" (६) [यह सुनकर चांदा ने कहा,] "यदि लोरिक को आना है, तो बीर (लोरिक) से कहना, ऐ बृहस्पति, कि वह आ जाए, (७) [क्योंकि] फिर पछतावा होगा, और पुनः मुझे न पाएगा ।"

(२७७)

'बिहफइ जाइ' लोरु 'समुझावा' । बीर चांद 'चित' कोपु उचावा ।
'छांड़ि गोवर अइसइं बहिराउबि' । बरु जीउ जाइ बहुरि 'कोइ आउबि' ।
'मइं आपन जिउ अस परिछेवा' । राति दिवस घन 'बरसइ' देवा ।
'पटुवइं' केर देखि बौसाऊ । हाथ ऊभ 'भुइं परइ' न पाऊ ।
'पुरुखहि' पानि आगि का कहिए । 'जइस परइ' सिर 'तइसइ सहिए' ।
'कहा लोर सुनु बिहफइ' 'हउं तउ रासि गिनाउं' ।
कालि धरउं 'लइ' पाइंतु 'तउ हउं' चांद 'पलाउं' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२६, बी० ८५१-८५३ ।

शीर्षक—मै : तफ़हीम करदने बिरस्पति बर लोरिक रा ।

बी० में उपर्युक्त (३) के बाद अधिक है :

दीजै जीव तौ पायोहुं गोरी : जौ जिउ जाइतौ कुवरि बहोरी ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहपै आइ । २. बी० समझावा । ३. मै० चित (चित्त—ना०) । (२) १. बी० छाडि लोर अैसैं भुवरावबि । २. बी० को आवबि । (३) १. बी० मैं अपना जिउ सब परछेवा । ३. बी० बरसहि । (४) १. बी० तिरियाह । २. बी० धर परैं । (५) १. बी० पुरषैहि । २. बी० जैस परैं । ३. बी० तैसि र रहिये । (६) १. बी० लोरिक कहा बिरसपति । २. बी० आजु जु गवन गिनाऊं । (७) १. बी० ले । २. बी० तौ हौ । ३. बी० बुलाऊ (पलाउं—फ़ा०) ।

अर्थ—(१) बृहस्पति ने जाकर [तब] लोरिक को समझाया, [और कहा,] "ऐ वीर, चांदा ने चित्त में कोप उठाया (किया) है। (२) उसने कहा है, 'गोवर को छोड़कर मैं इसी प्रकार बाहर चली जाऊंगी और लौट कर न आऊंगी, भले ही जीव जाए और कोई लौट कर आए। (३) मैंने अपने जीव को इस प्रकार परिच्छिन्न कर लिया है, भले ही रात-दिन दैव घना बरसे। (४) बुनकर का व्यवसाय (पुरुषार्थ) देखो; [जब] उसका हाथ उठता है, [उसका] पैर भूमि पर नहीं पड़ता है। (५) पुरुष के लिए पानी या आग की बात क्या कही जाए? जैसा कुछ उसके सिर पर पड़ जाता है, वैसा ही वह सह लेता है।'" (६) लोरिक ने कहा, "ऐ बृहस्पति, तब मैं राशि गिनाता हूं। (७) कल मैं पांइत (प्रस्थान की वस्तु) लेकर रक्खूंगा, और उसके बाद मैं तथा चांदा पलायित हो जाएंगे।"

(२७८)

'रइनि खेलि' 'दिनु' भा 'भिनुसारा'। पंडित 'कें' घरु लोर सिधारा।
'बिसवां पंडित जाइ' 'जगावा'। 'पाटा' पानि 'बीर कहं' आवा।
पाट 'बइसारि' 'दीन्ह आसीसा'। चंद्र 'भायं' सूरिज 'मुख' 'दीसा'।
'काह चित बरु' भा परगासू। 'तूं रबि जो कीन्हां' 'हम बासू'।
काह मया हम 'कहं चित' चढी। भइ 'उजियारि बिप्र की (कइ)' मढी।
कहु जजमान 'सो' कारनु 'जेहि लगि इहवां आएहु'।
चंद्र जोति मुख उदिनल 'केहि लगि' 'चित्त' 'उचाएहु'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३७, म० पत्र १४५।२, बी० ८५५-८५७।

शीर्षक—मै० : रफ़्तने लोरिक दर ख़ानए ज़ुन्नारदार व पुरसीदने वक़्ती सांद।

म० : दास्तान रफ़्तने बर नजूमी पुरसीदन ऊ रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० रैनि खल। २. मै० गइ। ३. बी० भुनसारा। ४. बी० कै। (२) १. बी० बिसवां सिधु रिषि लोर, मै० पंवरि जाइ कइ आपु। २. मै० जनावा। ३. बी० पाट। ४. बी० बीर कौहु, म० बिप्र लइ। (३) १. बी० बिठाइ। २. बी० कि दीन्ह असीसा, मै० फुनि दीन्ह असीसा। ३. बी० गुसाइ, म० भाव। ४. म० मुंह, बी० मति। ५. म० दी [सा]। (४) १. म० काह चेति चित, मै० कहहुं चेति बरु, बी० काह चित च। २. मै० पबितर निजुइ कीन्ह, बी० तैं [र] बि जोग कीन्ह। ३. बी० परगासू।

(५) १. मै० कहं चित (चित्त), बी० उपरि। २. मै० अजोरि जेइं हमरी। (६) १. बी० सु। २. मै० जेहि इहवां तुम्ह आएहु, बी० जिहि मनसा चलि आइ। (७) १. बी० कह लगु। २. बी० जीउ, मै० चित (चित्त)। ३. बी० उचाई।

अर्थ—(१) रजनी ने [खेल] खेल लिया, और दिन का भिनुसार (प्रभात) हुआ तो लोरिक पंडित के घर को चला। (२) विश्राम करते हुए पंडित को जा कर उसने जगाया, तो वीर (लोरिक) के [बैठने के] लिए पाटा (पीढ़ा) और [हाथ-पैर धोने के लिए] पानी आया। (३) [पंडित ने] उसे पाटे पर बिठा कर आशीर्वाद दिया [और कहा,] "सूर्य के मुख पर [आज] चंद्र का भाव (प्रभाव) दिखाई पड़ा है! (४) क्या चिंता हुई कि उसके कारण तुम्हारा प्रकाश हुआ—वह प्रकाश जो, ऐ सूर्य, तुमने हमारे आवास पर किया है। (५) मेरे लिए ऐसी क्या मया (ममता) [तुम्हारे] चित्त में चढ़ी कि इस विप्र की मढ़ी प्रकाशित हुई है। (६) हे यजमान, वह कारण कहो जिसके लिए तुम यहां आए। (७) तुम्हारे मुख पर उदीर्ण चंद्र की ज्योति है, [तब] किसलिए तुमने [अपना] चित्त उठाया (उचटाया) है?"

(२७९)

सूरुज कहा मइं 'चांद' पलाउब। 'सुकुर' बाजु दइ पूरुब चलाउब।
धरी 'मांडि' कइ रासि गिनाई। सब ही सिधि ओइं पंडित पाई।
मोर 'गनित' तुम्हं लोरिक जानहु। 'कहउं बोल' 'सो सच करि' मानहु।
दिन दस तुम्हं कहं 'बाट चलावइ'। 'पर भुइं पंथ' 'बहुल सिधि पावइ'।
एक दोइ काल 'जइस मइं' 'देखी(ख)उं'।
औगुन होइ पइ नाहीं 'लेखी(ख)उं'।
आधी राति 'जउ' जाइहि तब उठि चालेहु बीर।
सूर उवत तुम्हं उतरेहु 'बूढि' गांग के तीर॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २२८, म० पत्र १४६।१, बी० ८६१-८६३।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'आत (रात)', जो बाद के कडवक का है।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने ज़ुन्नारदार वक़्ती नेक व साअ़ती ख़ूब।

म० : मुक़ाम करदन लोरिक बर नजूमी व कैफ़ियत जंग।

बी० में इस पाठ की तीसरी और चौथी अर्द्धालियां यथा दूसरी और तीसरी हैं, शेष तीन अर्द्धालियां और दोहा भिन्न हैं, जो इस प्रकार हैं :—

(१) सिधि रिषि रासि गिनै परवाना : गिनि सम भाव क रासि बषाना ।

(४) अगनित देव भला है बारू : पूरब दिसि चाली अवतारू ।

(५) सूर अंथव तौ लै चलु लोरा : षोजु न पावसि कोऊ तोरा ।

सूर चलै ले चांदहि कें गोवर अधियार ।
बीजु लवें धनु गरजै निसरी [न ?] कोउ बार ॥

(यही दोहा आगे कडवक २८१ में आया है)

पाठान्तर—(१) मै० चांदा । २. भो० सगुन । (२) १. म० मांगि । (३) १. बी० गिनत । २. बी० कहां जु बोलु । ३. म० सबइ तुम्हं, बी० सोइ तुम्ह (४) १. म० पंथ चलावइ, मै० बाट चलावहि । २. मै० पुनि एंहि पंथ, म० पूरूब पंथ । ३. मै० बी० भला सिधि (अस—बी०) पावहि । (५) १. मै० मइं किछु । २. म० देखउं । ३. म० लेखउं । (६) १. म० जब । (७) १. मै० बूड़ि ।

अर्थ—(१) सूर्य (लोरिक) ने कहा, "मैं चांद (चांदा) को भगाऊँगा । शुक्र (ग्रहा, वार तथा काने बावन) को वर्जित कर (बचा कर) उसे पूर्व की ओर चलाऊंगा ।" (२) घड़ी का निश्चय कर [पंडित ने] राशि गिनी, तो उसने समस्त सिद्धियां [उस यात्रा में] पाईं । (३) [उसने कहा,] "मेरा गणित, ऐ लोरिक, तुम जानते हो; [इसलिए] मैं जो वचन कर रहा हूँ उसे सच करके मानो । (४) दस दिनों तुम्हें मार्ग चलाएगा, [तदनंतर] परभूमि (परदेश) के मार्ग में बहुतेरी सिद्धियां तुम पाओगे । (५) एक-दो काल जैसे मैं देख रहा हूं, किन्तु [उनसे तुम्हारा] कोई अपगुण (अपकार) होगा, ऐसा मैं नहीं देख रहा हूं । (६) जब आधी रात चली जाएगी तब, ऐ वीर, तुम चल देना (७) और सूर्य उगते तक तुम बूढ़ी गंगा के तीर (तट) पर उतर जाना ।"

(२८०)

राति 'भई' 'तउ' लोरिक आवा । मेलि बरहु 'गै' आपु जनावा ।
'बाट चहति फुनि' 'चांदा होती' । 'लीतिसि' अभरन मानिक मोंती ।
अंकुरी लाइ 'लोर तस ताना' । आवत 'सुरिजु चांद' 'पइ जाना' ।
परथमि मेलि अरथु सबु 'दीतेसि' । 'पाछें सुरिजु चांद' 'धनि लीतेसि' ।
चांद 'सुरिज के पायंन' परी । 'सूरिज' चांद लइ 'मांथे' धरी ।

निसि अंधियारि 'नीरु' घन 'बरिसइ' 'चांदहि सुरिजु' लुकाई ।
बेगि बेगि 'कइ चाले दोऊ' 'जानउं जाइ' उड़ाई ॥

सन्दर्भ—मै० : पत्र २२६, म० पत्र १४६।२, बी० ८७०-८७२ ।

शीर्षक—मै०: फ़ुरूद आवरदने लोरिक चांदा रा व बाख़ुद बुरदन ।

म० : दास्तान आमदन लोरिक दर ख़ान: चांदा बर लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. मै० परी । २. बी० तौ । ३. बी० तौ । (२) १. म० बी० कहत तौ । २. बी० चांद अहोती । ३. बी० लेतस (लीतिस—फ़ा०) । (३) १. बी० लौर अस तानां, मै० लोर तस तानेसि । २. मै० सूर । ३. बी० निसि जान्या, मै० न जानेसि । (४) १. बी० लीतसि । २. मै० औ पाछें चाद । ३. बी० भरि लीतसि । (५) १. मै० सूरिजु के, बी० सूरिजु कैं । २. बी० पायहि । ३. बी० माथैं, म० माथहि । (६) १. मै० मेघ । २. बी० बरसै । ३. मै० चांद सूर । (७) १. बी० कै चालेहि, म० चलु चांद गुवारी । २. बी० जानौं जाह, म० जाहिं केहा दोउ ।

अर्थ—(१) रात हुई तब लोरिक आया; [वहां] बरहा (रस्सा) फेंक कर और जाकर उसने अपने को जताया । (२) चांदा भी उसकी बाट जोह रही थी, उसने आभरण, माणिक्य और मोती ले लिए थे । (३) बरहे की आंकड़ी लगाकर लोरिक ने [उसको] ऐसा ताना कि चांद (चांदा) ने सूर्य (लोरिक) को आते हुए, हो न हो, जान लिया । (४) पहले उसने समस्त अर्थ (धन-आभरणादि) [वस्त्रों में] डाल दिए (लिए) और पीछे सूर्य (लोरिक) ने चांदा स्त्री को ले लिया । (५) चांद (चांदा) सूर्य (लोरिक) के पैरों में पड़ी और चांद (चांदा) को सूर्य (लोरिक) ने लेकर मस्तक पर धारण किया । (६) रात अंधेरी थी और मेघ सघन रूप से बरस रहे थे, चांद (चांदा) को सूर्य (लोरिक) ने [उस अंधकार में] छिपा लिया (७) और फुर्ती-फुर्ती करके दोनों [इस प्रकार] चले मानों वे उड़े जा रहे हों ।

१७. कुंवरू-भेंट खण्ड

(२८१)

'काले झगा पहिरि दोइ' चाले । 'रचे किरीज चांद सिर' घाले ।
ओडन 'खांड' लोर कर गहा । दुइ जन 'चले' न तीसर अहा ।
कर गहि निसरी 'धनुक गोवारी' । इहिं बिधि 'चली' 'सो' चांदा नारी ।

गोवरु छाडि कोस 'दस' 'गए'। छाडि बाट ऊबट होइ भए।
'खरग बिसाहत' कुंवरू भाई। 'चलहु चांद सो भेटती(ति) जाई'।
'सुरुज' चला लइ चांदहि कइ गोवर अंधियार।
बीज लवइ घन गरजइ निसर (रि) न कोउव 'पार' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३०, म० पत्र १४८।२, बी० ८७९-८८१।

शीर्षक—मैं० : लिबासे सियाह पोशीदः रवान शुदने लोरिक व चांदा।
म० : पीश्तर रवान शुदने लोरिक व चांदा।

पाठान्तर—(१) १. म० कार झटक (झंग) पहिरि के, बी० कारी राति फिरे दोइ। २. बी० अभरन बहुत चांद गै। (२) १. म० खरग। २. बी० चाले। (३) १. बी० धनुषु गुवारी। २. मैं० कीन्हि। ३. बी० स। (४) १. बी० चहु। २. मैं० भए (दूसरे चरण का भी तुक यही है)। (५) १. मैं० तहवां हुत सो, बी० खरक बिसैतिहि। २. बी० चलहु चाँद तिह मिलियेहि जाई, मैं० चलत लोर सो भेटहु आई। (६) १. मैं० सूर। (७) १. म० बार। बी० में दोहा इस प्रकार है :—

चांद कहा मैं सभ को छाड्यो कहू न काहू बात।
तुहि सनेह लोर भल दिषत्यों नाउ बीर मन रात ॥

अर्थ—(१) दोनों काले झगे (वस्त्र-विशेष) पहन कर चले, उन्होंने किरीज (किरिञ्ज—बांस का टोकरा ?) रचा था, उसे चांद (चांदा) के सिर पर डाल दिया। (२) ओडन और खड्ग को लोरिक ने हाथों में पकड़ा और दोनों जन चल पड़े, तीसरा कोई [साथ] न था। (३) हाथों में धनुष लेकर वह ग्वालिन निकली और इस प्रकार वह चांदा नारी चली। (४) गोवर को छोड़ कर वे दस कोस (गए) थे कि वे मार्ग को छोड़ कर अटपटे मार्ग से हो पड़े। (५) [लोरिक ने कहा,] "यहाँ पर मेरा भाई कुंवरू खड्ग मोल ले रहा [होगा], ऐ चांद चलो, उससे भेंट करते हुए चलें।" (६) [इस प्रकार] सूर्य (लोरिक) चांद को लेकर और गोवर को अंधकारपूर्ण करके चला। (७) उस समय बिजली 'लप-लप' कर रही थी, धन गरज रहा था और कोई निकल नहीं सकता था।

(२८२)

कुंवरू 'अगुमन' चीन्हां लोरू। 'धावा' सिधु चला 'सभ' गोरू।
'पाछें' 'हेरत' चांदा आई। जिउ 'कुंवरू कर गएउ' उड़ाई।

'कहेसि' लोर 'तुम्हं' भला न किया। 'कित' लइ 'चले' महर कइ धिया।
'तिरियहि जरम' 'टांक बुधि' होई। 'तिन्ह के' संग 'न' लागइ कोई।
बूढिय 'खोलिनि' तुम्हरी माई।
'तेहि कइ' 'मया' 'न तुम्हं चित(चित्त)' आई।
'बारि' बियाही मैनां 'मांजरि' लोरिक आहि तुम्हारि।
'बारि बूडि(ढि)' 'ररि' 'मरिहहि' 'करहु न चित हमारि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३१, म० पत्र १४९।१, बी० ८९५-८९८। म० में इस कडवक के नीचे तर्क है 'चांद', जो आगे के एक कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : शिनाख्तन कुंवरू लोरिक रा दरमियाने राह अज़ पसेऊ चांदा।

म० : शिनाख्तन कुंवरू लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. मैं० अउतहि, बी० येकमैं। २. म० रहा, बी० धावै। ३. म० चला सब, बी० मिलावै। (२) १. बी० पाछै। २. म० देषइ। ३. बी० कवरू कर गयो। (३) १. बी० कहा। २. मैं० तइं। ३. बी० कथ। ४. मैं० चला (४) १. म० तिरियहि जरहि, बी० तो यह जनम। २. म० नाक बडि, बी० नां बढ (बुधि—फ़ा०)। ३. म० निकरे, बी० तिहकै। ४. बी० कि। (५) १. म० बूढी खोइलिन, बी० बूढी षौलनि। २. मैं० तेहिक, बी० तिहकी। ३. बी० चिंता। ४. म० न चित महं, बी० चितह न। (६) १. बी० बार। २. म० में नहीं है। (७) १. बी० बार बूढ। २. म० दोउ, बी० चरि। ३. बी० मरिहै। ४. म० करु न चित तुम्हारि, मैं० मानइ बचन हमार।

बी० में उपर्युक्तयों के पूर्व एक अर्द्धाली और है :

चांद कहा कंवरू सुनि बाता : लोर मोर मनु येकै राता।

किन्तु यह आगे आने वाले कडवक की है।

अर्थ—(१) कुंवरू ने आगे से ही लोरिक को पहचान लिया [और वह दौड़ कर उसके पास जा पहुंचा], [जैसे] जब सिंह दौड़ पड़ता है तो समस्त गोरू (जन्तु) चल पड़ते हैं। (२) [किन्तु] उसके पीछे चांदा को आई हुई देखते ही कुंवरू का जीव उड़ गया। (३) [उसने कहा,] "ऐ लोरिक, तुमने यह अच्छा नहीं किया। तुम महर की दुहिता को लेकर कहां जा रहे हो ? (४) स्त्रियों को जन्म (जीवन) भर एक टंक ही बुद्धि होती है, [इसलिए] उनके संग कोई नहीं लगता है। (५) तुम्हारी माता खोलिन

बुड्ढी है, तुम्हें चित्त में उसकी ममता [भी] नहीं आई ? (६) [फिर] मैनां मांजरि (मदन-मंजरी), ऐ लोरिक, तुम्हारी बचपन की विवाहिता है ! (७) वे दोनों बालिका (बाला) और बुड्ढी चिल्ला चिल्ला कर मर जाएंगी, [भले ही] तुम मेरी चिंता न करो।"

(२८३)

चांद कहा कुंवरू सुनि बाता। लोर मोर 'जिउ एकइं' राता।
'जियतइं जीउ' 'न छाडउं' काऊ। 'दुहुं दिसि भए सो लोग बटाऊ'।
हउं 'ओहि के वहु चित (चित्त)' 'बस' मोरें।
'काह कुंवरू होइ' 'रोएं' तोरे।
इहि बिधि 'देखि देसंतर' 'लेऊं'। काहु 'कहउं' 'अनु' अतर 'देऊं'।
तुम्हं 'हम' तजि 'जाइबि परदेसू'। मइं दुख 'कीन्ह' पुरुख कर भेसू।
हउं 'महरी कइ धिय सो' चांदा 'चहूं भुवन' उजियारि।
'कवन अजोगि संग मिलीयो (लेउ)' 'कुंवरू' भाइ तुम्हार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३२, म० पत्र १४९।२, भो० पत्र २६ (नवीन), बी० ९४४-९४६।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने चांदा कुंवरू रा हिकायते इश्क़।
म० : गुफ़्तने चांद कुंवरू रा जवाब।
भो० : जवाब दादने चांद अज कुंवरू रा।

पाठान्तर—१. म० जिउ अब केहि, भो० जिउ एकइ, बी० मनु ऐकै। (२) १. बी० जबते जीव, भो० जियतइं जीय। २. मैं० न छाडीउं (छाडिउं), बी० नु छाडो। ३. म० दुइ दिसि होइ कि बाट बटाऊ, भो० दुइ दिसि भए यह लोग बताऊ, बी० दह दिस भये ति लोर बटाऊ। (३) १. म० ओहि कें वह जिय, भो० ओहि कें वह चित (चित्त), बी० उहि कै वोहु चित। २. बी० बसि, मैं० में नहीं है। ३. बी० काहु कहा होइ, म० का होइ कुंवरू। ४. भो० रोए। (४) १. बी० देषु दिसंतर। २. मैं० लेहूं, बी० लीयो। ३. भो० करउं, बी० कहौ। ४. म० कस, भो० किसु। ५. मैं० देहूं, बी० दीयो। (५) १. म० में नहीं है। २. मैं० जाईहि परदेसू, बी० लै जाइ बिदेसू। ३. भो० लीन्ह। (६) १. म० महरी कै धिय, मैं० सो महर धिय, बी० महरे की धीय सु। २. बी० आछौ जग। (७) १. म० लोर लागि चित

बांधिउं, मैं० कवन अजोग संध किएउ, बी० कौन औजोगि संजो मिलीयो, भो० कवन अजोग संग मिल। २. बी० कंवरू।

अर्थ—(१) चांदा ने कहा, "कुंवरू, [मेरी] बात सुनो; लोरिक का और मेरा जीव एक है और वह रक्त (अनुरक्त) है। (२) जीव के जीवित रहते [लोरिक को] कभी न छोड़ूंगी; दो दिशाओं में वे ही लोग हो जाते हैं जो पथिक होते हैं। (३) मैं उसके और वह मेरे चित्त में बसते हैं, [इसलिए] कुंवरू तुम्हारे रोने से क्या होता है ? (४) इस प्रकार [घर से निकल कर] मैं देशान्तर देख लूंगी; [इससे अधिक] क्या कहूं तथा दूं ? (५) तुम्हें (तुम सब को) छोड़कर हम परदेश जाएंगे, इसी दुःख के कारण मैंने पुरुष का वेष कर लिया है। (६) मैं महरी की कन्या वह चांदा हूं जो चारों भुवनों का प्रकाश है। (७) [तब] कौन-सी अयोग्य के साथ, ऐ कुंवरू, तुम्हारा भाई मिला है ?"

(२८४)

'असि' चांदा तुम्हं लाज 'गंवाई'। सरग हुतें 'धर ऊतरि' आई।
'मुख कारे निसि रहै(हइ)''गोवारी'। 'पाख पाख दिन''होइ'अंधियारी।
'रहु नहिं चांद(दा)''मनहि लजाई'। 'असि कि होइ गोवर कइ' जाई।
'बारह मंदिर रइनि' 'दिन' धावसि। सूरुज सेजि 'उजियारे' रावसि।
'तजि जिउ सोग रबि रहइ' लुभाई। 'कहउं बात तूं खिन न लजाई'।
दान खरग कर 'निरमल' लोरिक भाइ हमार।
'तूं रे निलज्जि अमावसि कुर जो कीन्ह' अंधियार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३३, म० पत्र १५२।१ (म० में इस पत्र के बाद पत्र-संख्याएं बदली हुई हैं—प्रति के दो पत्र यहां पर त्रुटित हैं), बी० ९४७-९४९।

शीर्षक—म० : जवाब दादने कुंवरू वा एहानत चांदा रा।
म० : मलामत करदन कुंवरू चांदा रा।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे इसी कडवक का तर्क है 'असि चांदा', जिससे यह ज्ञात होता है कि अत्रुटित अवस्था में उसमें भी यह छंद रहा होगा।

पाठान्तर—(१) १. बी० अस। २. म० लवाई, बी० गमाई। ३. बी० उतरि भुइ, मैं० भुइं उतरी। (२) १. मैं० मकु कारे मुख तैं फिरसि, म० मुख कारे निसि रहु न। २. बी गुवारी। ३. मैं० पाखहि पाख। ४. बी० होय। (३) १. म० रहसि त (न) चांदा, बी० रही न चांदा। २. बी० मनह

सुजाई। ३. बी० अस क्यौं होइ महर की। (४) १. बी० बाराह मंदिर रैनि। २. म० तूं। ३. म० अंधियारें। (५) १. म० तजि जिउ सोक मरि रह, मैं० तजि जिउ सोक अरु रहइ, बी० तुझहि सूग रबि रह्यो। २. म० आन होइ तउ मरइ लजाई, बी० कहौ बात ता कहनु न जाई। (६) १. बी० निरमर। (७) १. म० तूं तउ मैन असि निलजि अमावस कै, बी० तूं निलज अमावस कुरह कीन्ह।

अर्थ—(१) "ऐ चांदा (चांद)", [कुंवरू ने कहा,] "तूने लज्जा गंवा दी जो तू आकाश (धवलगृह) से उतर कर भूमि पर आ गई! (२) काले [किए हुए] मुख के साथ, ऐ ग्वालिन, तू रात में रहे और पक्ष-पक्ष भर के दिन तू अंधकारमयी होती रहे! (३) तू मन में लज्जा लाकर के [चुप] नहीं रह सकती है? क्या गोवर की कन्या ऐसी होती है [जैसी तू है]? (४) रात-दिन तू बारह मंदिरों (बारह राशियों) में दौड़ती रहती है, और सूर्य (लोरिक) की शैया में उजाले में (सबकी जानकारी में) में रमण करती है। (५) तू [लोक-निंदा का] शोक त्याग कर सूर्य (लोरिक) को लुब्ध कर रखती है। मैं तुझसे ये बातें कह रहा हूं और तू क्षण भर के लिए भी लज्जित नहीं हो रही है! (६) मेरा भाई लोरिक खड्ग-दान में निर्मल है, (७) जब कि तू निर्लज्ज अमावस्या है, जिसने अपने कुल को ही अंधकार पूर्ण कर लिया है।"

(२८५)

'धरि कुंवरू लोरिकु' कंठि लावा। नैन नीरु भरि 'गांग' बहावा।
'गी(गि)यं छोडि' कुंवरू 'पाइनि' परा। बिरह दगध 'घाएं जनु ररा'।
'देखि सु(सो)' चांदा 'चितहि संकानी'। 'म कहुं लोर छाड़इ मोरि कानी'।
कातिग मास 'खेलि रितु' गाई। हम 'फुनि कुंवरू खेलत' आई।
'ठाढ़े कुंवरू हरदीं बाटा। चलन देहु [?] चांद संघाता'।
'माई खोलिनि औ मैनां' 'कहु संदेस अस जाइ'।
'पीहर जान न पावइ मांजरि रहइ खोलिनि के पाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३४, म० यहाँ पर त्रुटित है, बी० ६५०-६५२।

शीर्षक—मैं० : विदाअ करदने लोरिक बा कुंवरू व पेश्तर रफ़्तन।

म० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कुंवरू', जो इसी कडवक का है, अतः अत्रुटित म० में भी यह कडवक रहा होगा।

पाठान्तर—(१) १. बी० हरका कवरू लोरु। २. बी० बीरु। (२) १. बी० केस छोरि। २. बी० पाइ। ३. बी० घाई जौ डरा। (३) १. मैं० देखहुं। २. मैं० चितहिं संखानी, बी० चितांह संकानी। ३. बी० मुकु लोरिक छाडै मन जानी। (४) १. बी० खेल रुति। २. बी० कवरू भी देषत। (५) १. बी० में ऊपर की (४) यथा (५) है और (४) निम्नलिखित है :

तौ लहि चांद खेत चहु गई : लांबी बीष उतावरि भई।

(६) १. बी० मा खौलनि औ माजरि। २. बी० कहौ संदेसा जाई। (७) १. बी० बाहरि जान न देयो मैना पुरुऔ षौलनि पाई।

अर्थ—(१) कुंवरू को पकड़ कर लोरिक ने कंठ से लगाया, और नेत्रों में (अश्रु) भर-भर कर उसने गंगा बहा दी। (२) उसकी ग्रीवा को छोड़ कर कुंवरू उसके पैरों में [गिर] पड़ा, और मानो बिरह-दाह के घावों से [पीड़ित होकर] चिल्लाने लगा। (३) यह देखते हुए चांदा चित्त में [पुनः] शंकित हुई [क्योंकि उसने सोचा,] 'कहीं लोरिक मेरी कानि न छोड़ दे।' (४) [तब तक लोरिक ने कहा,] "कार्तिक मास को खेल कर (सुख-पूर्वक व्यतीत कर) और उसके ऋतु-गीत गाकर हम, ऐ कुंवरू, पुनः [गोवर] आकर खेलते (सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करते। (५) ऐ कुंवरू, हम हरदी के मार्ग में खड़े हैं, चांद के साथ [मुझे] जाने दो। (६) मां खोलिन तथा मैनां से जा कर ऐसा संदेश कहना, (७) "मांजरि (मैनां) पीहर न जाने पाए, और वह खोलिन के पैरों में (उसकी सेवा में) रहे।"

१८. बावन-युद्ध खण्ड

(२८६)

'चले दोउ भुइं पाउ न धरहीं। पैग बेगि उतावर भरहीं।'
'चला लोर मिलि चांदा आई। खोलिनि मैनां पसरी माई।'
'चांदहि देखि लोर कहं कहा।
कइसे भउ मलिन जो चित (चित्त) अहा।'
'अउ अस कहा सुनहि लूं लोरा।
नीकें मन चित करिहइं(उं ?) तोरा।'
'तोरे सनेह छाडिउं घरु बारू। कइ बोरहि कइ लावहि पारू।'

'सांझ परी दिन अंथवइ' लोरिक चांदा दोइ ।
'अवघट' घाट 'गांग के' रहे पुरुष तिरि 'सोइ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३५, म० यहाँ पर त्रुटित है, बी० ६५३-६५५ ।

शीर्षक—मै० : रवानः शुदने लोरिक व चांदा ब शिताब ।

पाठान्तर—(१) १. बी० चला लोर धरि पाउ न धरै: इक इक बीष खेत लौहु भरै । (२) १. बी० मिल्यौ बीरु चांदा चलि गई : मैना षौलनि मन अस भई । (३) १. बी० चांदा देषि लोर चितु गहा : ले उसास फुनि बेदन कहा । (४) १. बी० चांद कह सुनि तुहि लगि लोरा : बहुतक महतु गयो है मोरा । (५) १. बी० तुम्ह लगि छाडे पास परिवारू : कै बूडहु कै लावोहु पारू । (६) १. बी० साझ परी दीनु आंथवा । (७) १. बी० औघट । २. बी० गंगा कै । ३. बी० सोय ।

अर्थ—(१) दोनों चल पड़े किन्तु भूमि पर वे पैर नहीं रख रहे थे, उतावली के पग वे जल्दी-जल्दी भर रहे थे । (२) लोरिक चल पड़ा था और चांदा आकर उससे मिल गई थी, [फिर भी लोरिक के मन में] खोलिन और मैनां की माया (ममता) प्रसार कर रही थी । (३) यह देख कर लोर से चांदा ने कहा, "जो तुम्हारा मन था, वह मलिन कैसे हो गया ?" (४) उसने पुनः ऐसा कहा, "ऐ लोरिक तू सुन, मैं अच्छे मन से तेरी चिंता करूँगी । (५) तेरे ही स्नेह में मैंने घर-बार छोड़ा है । तू या तो (चाहे) मुझे डुबाए और या तो (चाहे) मुझे पार लगाए ।" (६) संध्या पड़ गई, दिन अस्तमित हो रहा था, [इसलिए] लोरिक तथा चांदा दोनों (७) गंगा के एक औघट घाट पर पुरुष और स्त्री सो रहे ।

(२८७)

'गांग' 'सरस्सइ अउ तेहि तरनां' । लोरिक जाइ लीति एक छरनां ।
चांदा फिरि फिरि आपु 'दिखावा' । 'मकु खेवट मोहि देखत आवा' ।
सरंगा 'ठांउ' जउ 'खेवट' आवा । कर कंगन चांदइं 'चमकावा' ।
'खेवट' देखि 'अचंभइ' रहा । तिरिया एक 'अकेरिइं' अहा ।
'खेइ नाउ दहुं' देखउं जाई । कवनि 'नारि कहवां हुत' आई ।
सरंगा 'पेलि' चलाएसि खिन खिन चित(चित्त)हि 'संखाइ' ।
काह 'कहिअ कस पूछिअ' कइसें इहवां आइ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २३६, म० पत्र १५२।२ । बी० में इस एक कडवक के स्थान पर चार कडवक हैं [दे० परिशिष्ट] ।

शीर्षक—मै० : रसीदने लोरिक व चांदा बरे गंगा व इशारत करदने चांदा मल्लाह रा ।

म० : दास्तान नमूदन चांदा व दास्तान मल्लाह रा ।

पाठान्तर—(१) १. म० गंग । २. मै० सरिस वहा मनकरनां । (२) १. म० दिखावइ । २. म० मोहि देखत मकु केवट आवइ । (३) १. म० तीर । २. म० केवट । ३. मै० झमकावा । (४) १. म० केवट । २. म० अचंभउ । ३. म० अकेली । (५) १. म० कहइ नाउ लइ । २. मै० तिरी यह इहवां [तुल० (७)] । (६) १. म० बेगि । २. म० सपकाइ । (७) १. म० कहउं केउं पूछउं ।

अर्थ—(१) गंगा सरस हो रही (बढ़ रही) थी और उसे पार करना था, [यह देखकर] लोरिक ने जाकर एक छलना (छलपूर्ण युक्ति) का आश्रय लिया : (२) [स्वयं वह छिप गया—दे० बाद के कडवक, और] चांदा पुनः-पुनः अपने को दिखाने लगी कि कहीं (कदाचित्) उसे देखकर केवट आ जाए । (३) जब एक केवट [अपने] सरंगे (नाव) के स्थान पर आया, चांदा ने हाथ का कंगन चमकाया । (४) केवट यह देखकर अचंभे में हो रहा कि एक स्त्री [वहां] अकेली ही थी । (५) [उसने मन में कहा,] "नाव को खेकर और [वहां] जाकर देखूं कि यह कौन-सी स्त्री है और कहां से आई हुई है ।" (६) उस सरंगे (नाव) को उसने ढकेल कर चलाया, [किन्तु] क्षण-प्रतिक्षण वह चित्त में शंका कर रहा था (७) कि इससे क्या कहा जाता और कैसे पूछा जाता कि यह यहाँ किस प्रकार आई हुई थी ।

(२८८)

'खेवट' देखि बिमोहा 'रूपा' । अभरन बहुल सो नारि 'सुरूपा' ।
दइय 'गोसाईं' पूजइ आसा । असि तिरिया जउ आवइ पासा ।
'कहा नाउ परदेसी चाहू (चहाहू)' । 'बइसि' सरंगा बाट गहाहू ।
लोर चांद 'दोइ सरंगा' चढ़े । 'एक काठ के दोऊ' गढ़े ।
'खेवट ठाढ उरवारहिं रहा' । करिया 'लोर आपु कर' गहा ।
'आगें' 'चांद सयानी' 'पाछें' लोरिकु बीरु ।
दइय 'संजोगें' गांग 'तिरि आए' 'बूडत पाएउ' तीरु ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २३७ (१)–(३)+२३९ (४)–(७), म० पत्र १५३, बी० ९६८-९७० ।

मैं० में इस कडवक में दो और कडवकों की पंक्तियां हैं, जो प्रक्षिप्त ज्ञात होती हैं (दे० परिशिष्ट के कडवक २८८ अ–२८८ आ) ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'तउ लहि', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : आशिक शुदन मल्लाह अज़ दीदन जमाल सूरत चांदा ॥
म० : दस्तान मुश्ताक़ शुदन केवट अज़ दीदन ऊ ।

पाठान्तर—बी० में प्रथम तीन अर्द्धालियां भिन्न हैं :

(१) षेवट षाचि सुरंग लै आवा : बिनु इक लोरिकु माथु उठावा ।

(२) उठा लोरु षेवट तस मारा : बैसि रही घन उठै न पारा ।

(३) देहि तराइ तौ षेवट षेवा : दोइ जने चरे न तीसर लेवा ।

(१) १. म० केवट । २. मैं० रूप । ३. मैं० सुरूप । (२) १. मैं० विधाता । (३) १. मैं० खेवट कहा उतर दिसि जाहू । २. म० लइ कइ । (४) १. बी० दोउ सरगह, म० आइ सरंगहि । २. म० अति सुरूप दइय के, बी० ऐक घाटि जानौ दोऊ । (५) १. म० केवट उतरि करियावन गहा, बी० ऊभा षेवटु पारे रहा । २. म० लोर आपुन कर, बी० लोरिक योही । (६) १. बी० आगैं, मैं० आगूं । २. बी० षेव सु चांदा । ३ म० पाछूं । (७) १. म० संजोग । २. १. बी० सब लांघी, म० सब उतरे । ३. मैं० बूडत पावा, बी० बूडन पायो ।

अर्थ—(१) केवट उसके रूप को देखकर विमोहित हो गया, [और उसने मन में कहा,] "इसके शरीर पर बाहुल्य के साथ आभरण है और नारी सुरूपा भी है । (२) हे दैव स्वामी, मेरी आशाएं पूरी हो जाएं यदि ऐसी स्त्री मेरे पास आ जाए ।" (३) [केवट ने कहा,] "ऐ परदेशिनी, क्या तुम नाव चाहती हो ? इस सरंगे (नाव) पर बैठ कर मार्ग पकड़ो ।" (४) [यह सुनकर] लोरिक और चांदा दोनों ही उस सरंगे (नाव) पर चढ़ गए [केवट को उन्होंने चढ़ने न दिया]; दोनों एक ही काठ के गढे हुए थे (एक-से चतुर थे) । (५) केवट [नदी के] इस पार ही खड़ा रह गया और लोरिक ने करिया (डांड) अपने हाथ में कर ली । (६) आगे सयानी चांदा थी, और उसके पीछे लोरिक वीर था । (७) दैव के संयोग से वे गंगा को पार कर आ गए, और डूबते-डूबते दोनों ने तट प्राप्त किया ।

(२८९)

'तउ' लहि बावनु आइ तुलानां । पूछा 'खेवट' 'पिरम' भुलानां ।
'चेरा चेरी मोरे' 'दोई' । इहि मारग 'तइं' देखे 'कोई' ।
'सुनि' 'खेवटु मुखु देखत' हंसा । 'कुंवर कुंवरी इक इहवां' बसा ।
पुरुख लुकान 'तिरी' दिखरावा । हउं रंगि 'राता' तेहि 'कें' आवा ।
'ओहि राजा ओहिं' रानी जाने । 'कहउं साच तोहिं जानि नखाने' ।
'उहइ नाउ लइ डांडइं लाए' ऊभी चेरि न 'जोवइ' ।
'बावन देखि दौरि' धसि 'लीतीं' 'एहिं(हीं) परिहंस रोवइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४०, म० पत्र १५३, बी० ९७१-९७३ ।

शीर्षक—मैं० : आमदने बावन बर किनारह गंगा व पुरसीदन मल्लाह रा ।
म० : दस्तान आमदन बावन शौहर चांद पुरसीदन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तौ । २. मैं० केवट । ३. बी० परम । (२) १. मैं० चेरी चेर मोर दुइ । २. मैं० आए, बी० दोऊ । ३. मैं० तोहि, बी० तैं । ४. मैं० पाए, बी० कोऊ । (३) १. बी० सु । २. म० कइ केवट मुंह देखि । ३. बी० कवरि कवरु यकु ईहिवा । (४) १. म० तिरिया, मैं० तिरियइ । २. म० रातै । ३. बी० तिह कैं । (५) १. बी० वोह राजा वाह । २. बी० कहैं साच तोर झूंठु बषानें । म० में अर्द्धाली है : अति रूपवंत बिचक्खन सोई : रन खत्तिरी पुरुष औ जोई । (६) १. बी० बहु सुरंग दिषरावा । २. बी० जेऊ । म० में चरण है : वह देखु सरंगा लागा तीरहि धनी निचोरइ चीर । (७) १. बी० देषि बावन, म० बावन दौरि ऊभि । २. म० लीतेसि । ३. बी० परिहस परिहस रोऊ, म० परिहंस गने न नीर ।

अर्थ—(१) तब तक बावन आ पहुंचा और [चांदा के] प्रेम में भूले हुए (भ्रमित) केवट से उसने पूछा, "(२) मेरे चेरी और चेर (सेविका और सेवक)—दो जन—[इधर आए] हैं; इस मार्ग में क्या तुमने [दोनों में से] किसी को देखा है ?" (३) यह सुनकर केवट उसका मुख देखते हुए हंस पड़ा [और उसने कहा,] "एक कुमारी और एक कुमार यहां बसे थे । (४) पुरुष छिप गया और स्त्री ने अपने-आपको दिखलाया । मैं उसी के अनुराग में रंगा हुआ [यहां तक] आया । (५) मैंने उसे राजा और उसे रानी समझा; मैं सच कह रहा हूं, तुम्हें [पीछा करते हुए] जानकर वे [नदी] पार कर गए । (६) [तुम्हारे] उसी [चेरे] ने नाव को लेकर डांड लगाया

चेरी खड़ी रही और उसने [फिर कर] देखा भी नहीं।" (७) यह देखकर बावन दौड़ा और [नदी में] घंस कर इस परिहास [की स्थिति] पर [कि उसकी स्त्री को एक अन्य पुरुष भगाए जा रहा था] वह रोने लगा।

(२९०)

'धनुक' बान बावन 'सिर' धरा। लोरिक देखि 'गांग' महिं परा।
'जउ लहि बावन' 'पार न भएऊ'। 'तउ लहि लोर' 'कोस चिहुं' गएऊ।
सांस 'मारि' बावनु तस धावा। 'मारि पबारउं' 'जान' न पावा।
'जस रे' 'गोवारु चरावइ' गाई। अपनी 'करइ सो धाइ' पराई।
'जउ जउ' 'धावइ' पावइ खोजू। 'एहिं परिहंस तउ' रहइ न रोजू।
'ओइ रे चलहिं' यहु धावइ' 'मिला' कोस दस जाइ।
ऊंचा 'रे बिरिख' सुहावन 'एक हुत' 'लोरिक लीन्हा 'आइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४१, म० पत्र १५४, बी० ९७४-९७६।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'चांदइं देखा', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : दर गांग उफ्तादने बावन व दुबाल : लोरिक करदन।

म० : दस्तान दुबाल : चांद व लोरिक दोबारन बावन।

पाठान्तर—(१) १. बी० धनुष। २. म० कर। ३. बी० गंगा। (२) १. बी० बावन बीर। २. म० पारहि गोऊ, बी० पार जौ भए। ३. बी० तौलहि लोरिक। ४. म० कोस दुइ गएऊ, बी० जिउ लै गये। (३) १. बी० मारि (?)। २. बी० मारि बिपारौं। ३. म० जाइ। (४) १. म० जइसन, मैं० जाति। २. बी० गुवारु चरावै। ३. बी० करैसु धाय। (५) १. बी० जौ जौ, मैं० जेउं जेउं। २. म० धाव न, बी० धावै। २. म० एहिं परिहस, बी० अति परिहस चषि। (६) १. म० ओइ रे चलइं, बी० वै रु चलैं। २. बी० वहु धावैहि। ३. बी० मिल्या। (७) १. बी० मंदिर, म० खेर। खेड़ा। २. बी० म० में नहीं है। ३. मैं० लोरहि लीन्हां। ४. बी० धाय, म० जाइ।

अर्थ—बावन ने धनुष-बाण को सिर पर रक्खा और लोरिक को [नदी के उस पार] देखकर वह गंगा में [कूद] पड़ा। (२) [किंतु] जब तक बावन [नदी के] पार भी न हुआ था, तब तक लोरिक चार कोस आगे चला गया था। (३) सांस रोक कर बावन उसी प्रकार से दौड़ा [और उसने कहा,]

"मैं उसको मार कर फेंक दूंगा, और वह जाने न पाएगा। (४) [जिस प्रकार दौड़-दौड़ कर] जाति के उस ग्वाले ने गाएं चराई हैं, अपनी [जैसी] वह कर रहा है और दौड़ कर भाग रहा है!" (५) [किंतु] जैसे ही जैसे वह दौड़ता था उसका खोज (चरण—चिह्न) पाता था, इस परिहास से तब उसका रोना [भी] न रहा। (६) वे चल रहे थे और यह दौड़ रहा था, [इस प्रकार पीछा करते-करते] यह उनसे दस कोस पर जा मिला। (७) एक ऊंचा और सुहावना वृक्ष [वहां पर] था, उसे लोरिक ने आ लिया।

(२९१)

'चांदइं' देखा बावनु आवा। बचनु न 'आवइ' 'दांत कपावा'।
'फिरि जउ' लोरिक पाछें हेरा। बावन आइ 'बाघ' जस घेरा।
'मुंख(मुक्ख)फिराइ' लोर 'सेउं' कहा। 'अइ' देखु बावन आवत अहा।
'धनुक चढ़ाइ बावन कर गहा'। 'तस मारउं जस देह न रहा'।
'ओहट' 'हुतें' बावन सरु मेला। 'सो रे' लोरिक ओडन 'ठेला'।
'ओडन फूट लुहावट फूटा अउ लोरिक कइ' बांह।
'ऊजा बिरिख आंब कर लोरिक लीन्ही छांह'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४२, म० पत्र १५४, बी० ९७७-९७९।

शीर्षक—मैं० : ख़बर करदने चांदा बावन मी आयद व आमदने बावन।

म० : दास्तान नरसीदन चांद अज़ आमदन बावन।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदेहि। २. बी० आवै। ३. बी० ओठ कपावा, मैं० थाके पावा। (२) १. मैं० चांदइं। २. बी० पाग, म० बाग। (३) १. बी० मन ठहराइ, म० मुंह निहुराइ। २. बी० स्यों। ३. म० वह, बी० ये। (४) १. बी० धुनषु चराइ बावन सिर धरा [तुल० २९०·१]। २. बी० तस मारा जस तनु भुई परा। (५) १. बी० दूर। २. म० ओहट। ३. म० सोई, बी० सो सरु। ४. बी० पेला। (६) १. बी० वोडन फूटि लुहावटि फूटी औ लोरिक की। (७) १. बी० ऊचा रूख अंबर कर लोरिकि लीन्ही छांह, मैं० : परा बिरिक्ख आंब कर लोरिक ऊभा तेहि छांह, म० ऊजा बिरिख सुहावन लोरिक लीतेहि छांह [तुल० २९०·७]।

अर्थ—(१) चांदा ने देखा कि बावन आ गया था, [इसलिए] उसके मुख से बोल नहीं आ रहे थे और उसके दांत कांप रहे थे। (२) [तब तक] बावन ने आकर व्याघ्र के सदृश [उसे] घेर लिया, जब तक लोरिक ने घूम

कर पीछे [लोरिक] की ओर देखा। (३) उसने मुख फिरा कर लोरिक से कहा, "यह देख, बावन आ रहा है।" (४) [लोरिक ने यह सुनकर] धनुष चढ़ा कर हाथ में बाण लिया [और कहा,] "इसे मैं ऐसा मारूंगा कि इसका देह न रहेगा।" (५) [तब तक] ओहट (दूर) से बावन ने शर छोड़ा [तो] उसे लोरिक ने [अपने] ओडन से ठेल दिया (रोक कर व्यर्थ कर दिया)। (६) [पर] उसका ओडन फूट गया, लुहावट भी फूट गया, और लोरिक की [एक] बांह [फूट गई], (७) तथा वह आम वृक्ष उखड़ गया जिसकी छाया लोरिक ने ली थी।

(२९२)

'सुनु बावन कह' 'चांद गोवारी'। काहि लागि 'तुम्ह कीन्हि' गुहारी।
माइ बाप 'जउ' दीन्ह बियाही। 'बरिस दिवसु' 'हउ तुम्ह पहं' आही।
पिरम कहानी 'कीन्हि न' बाता। 'तइं नहि देखेउं' कार कि राता।
'सवन' 'मनां हुत तुम्ह रे ओनाइउं'। 'तरसि मुइउं पइ सेज न पाइउं'।
'जसि आइउं तसि मइकें गइऊं। दइय क लिक्खा सो मइं पइऊं।'
बहुरि 'जाहि' घरि आपनें 'कहा सुनहि जौ(जउ)' मोरु।
राव रूपचंद बांठा 'मारा' 'सो यह कूंकूं' लोर॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४३, म० पत्र १५५, बी० ९८०-९८२।

मैं० में इस कडवक के बाद तर्क है 'अरे', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने चांदा मर लोरिक रा बावन रा।

म० : दस्तान दंबाल: चांद व लोरिक दूबद बावन ब गुफ़्तन चांदा बावन रा बहुजूर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. मैं० बावन कह कौन, बी० सुनु बावन कहै। २. बी० चांदा नारी। ३. म० तूं करसि, बी० तुम्ह लाग। (२) १. बी० जै। २. बी० बरसु द्यौंसु। ३. बी० हौं तुम्हरै। (३) १. म० कही जो, बी० कहौं न। २. बी० नैन न देष्यौं। (४) १. बी० म० स्रवन। २. बी० सुना हम तुम्हरा नाऊं। ३. बी० तिसर मुये दहि सेज क ठाऊ। (५) १. म० जसि देखिउं तसि मइंकइ आइउं : दइय क लेखा हुत सो पाइउं, बी० में यह अर्द्धाली नहीं है। (६) १. बी० जाहु। २. म० बावन कहां सुनहि तू, मैं० बावन संग तजि। (७) १. बी० मार्‌यो। २. म० अहइ सो कूंकुंहि, मैं० आहि सो कूंकूं।

अर्थ—(१) चांदा ग्वालिन ने कहा, "ऐ बावन, सुनो तुमने किसलिए यह गुहार (पुकार) की है? (२) मां-बाप ने जब [मुझे तुम्हारे साथ] ब्याह दिया और मैं बरस-दिन तक तुम्हारे पास रही, (३) तुमने प्रेम कथन करने पर [भी] बातें न कीं, और तुमने न देखा कि मैं काली (कुरूप) हूं कि राती (सुंदरी)। (४) कानों और मन से मैं तुम्हें ओनाती रहती (तुम्हारे बोल सुनने के लिए आतुर रहती), किन्तु तरस कर मर गई और [तुम्हारी] शैया मैंने न पाई! (५) जैसी [क्वांरी] मैं आई थी, वैसी ही [लौट कर] मैं मायके गई; दैव का जो लेख था, वह मैंने प्राप्त किया। (६) ऐ बावन, तू अपने घर लौट जा, यदि तू मेरा कहना सुने। (७) जिसने राव रूपचंद के बांठ को मारा था, यह वह कूंकूं लोर है।"

(२९३)

'अहे' 'पापिनि हउं तोहि का मारउं'। नाकु काटि 'कस' देस 'निसारउं'।
तोहि जसि तिरी 'कुवड़ां' 'धसि लेई। बात कहत 'आन' ऊतर देई।
कस 'लोरिक सेउं' मोहि 'डरावसि'। 'तउ बड़बोलि जान जउ' 'पावसि'।
'तोहि' लगि लोरिक जीउ 'गंवावा'। 'भेंट भई' अब जान न 'पावा'।
'बिसिख' मारि ओडन 'सेउं' 'फोरउं'। 'काटउं' मूंड भुआडंड 'तोरउं'।
अस सुनि लोरिक 'सिघ जस' 'कोपा' ओडन लइ पटतारि'।
'बावन एक फुंक(पुंख)सर छाडा गएउ बिरिख सउं फारि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४४, म० पत्र १५५, बी० ९८३-९८५।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने बावन चांदा व अन्दाख्तने तीरे दु अम्बरू।

म० : दस्तान जवाब गुफ़्तन बावन बा चांदा।

पाठान्तर—बी० में ऊपर दी हुई (२) नहीं है, ऊपर की (३), (४) (५) उसमें क्रमशः (२), (३), (४) हैं, और यथा (५) है :

जौ पर आइ सि करह उचावा : ले वोडन कस सौंहां आवा।

(१) १. म० अरे, बी० है। २. बी० पापनि अब का तुझ मारौं। ३. म० तोहि। ४. बी० निकारौं। (२) १. म० कुवा। २. मैं० अस, म० कइ। (३) १. म० लोर सेउं, बी० लोरिक पे। २. म० डरपावसि। ३. बी० तौ बड बोलु जान जौ, म० तूं पइ बोलि जाइ जनि। ४. मैं० पावइ। (४) १. बी० तुहि। २. मैं० गंवावहि। ३. बी० भइ सहेट। ४. मैं० पाइहि। (५) १. मैं० बी० बिरख। २. मैं० तेहि, बी० सौ। ३. बी० फोरौ। ४. बी० काटौ। ५. बी० तोरौ। (६) १. बी० में नहीं है, मैं० सिंग जस। २. म० गाजा। ३. बी० वोडन लै पटतार, मैं० ओडन खांड संभारि। (७) १. बी० बावन भुवंग सर

छाड्यौ : मार्‌यो बिरिषु दुफार, म० बावन इक जउहि सर छोड़ा अंगवंहि बीर संभारि ।

अर्थ—(१) [बावन ने उत्तर दिया,] "हे पापिनी, मैं तुझे क्या मारूं, और [तेरी] नाक काट कर तुझे देश से क्या निकालूं ? (२) तेरी जैसी स्त्री तो कुअड़े (छोटे-मोटे कुएं) में धंस लेती (कूद पड़ती), किंतु तू [ऐसी निर्लज्ज है कि] बातें कहते हुए अन्य ही उत्तर देती है । (३) कैसे तू मुझे लोरिक से डरा रही है ? तब तो तू ऐसी लंबी-चौड़ी बातें करे जब तू जाने पाए ? (४) तेरे ही लिए लोरिक [अब] प्राण गंवा रहा है; अब उससे भेंट हो गई है, वह जाने नहीं पा सकता है । (५) बाण मार कर मैं [लोरिक का उसके] ओडनके साथ फोड़ दूंगा, उसके मुंड को काट लूंगा और उसके भुजा-दंडों को तोड़ डालूंगा ।" (६) ऐसा सुन कर लोरिक सिंह के सदृश कुपित हुआ ; उसने ओडन पटतार (संभाल) कर ले लिया था । (७) [तब तक] बावन ने एक फुंक (पुंख—बांण का अग्र भाग) तथा शर (सरकंडा—बाण का पिछला भाग) छोड़ा, जो वृक्ष को [अपने] साथ फाड़ता हुआ [निकल] गया ।

(२९४)

चांद 'कहा' अब देवरु 'लीजइ' । 'गाढे ओखदि ढीला दीजइ' ।
दो[इ] सर गएं रहा अब एकू । 'लोर' बीर 'कइसेउं कइ' टेकू ।
'वह सर मेलि फुनि नियर न आवइ' । 'जउ आवइ तउ जीउ गंवावइ' ।
'गाढ़े रोस जो घात संचारू । गरजा देवरु उठा झनकारू' ।
'बावन बान पहूता आई' । मारिसि देवरु 'गएउ उड़ाई' ।
बर बावन कर 'भा(भां)गा' 'चांदइं' कहा 'पचारि' ।
'अंथवा सुकुर सुरिजु' परगासा 'जानइ' 'सभ' 'सयंसारि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४५, म० पत्र १५६ ।

बी० ९८६-९८८ । म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'बावन', जो अगले का है ।

शीर्षक—मैं० : पन्दादने चांदा लोरिक रा व अन्दाख्तने बावन तीर सो अम ।

म० : दस्तान चांद गुफ़्तन पनाह देवर बकराइ लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कहै । २. बी० लेजै (लीजै—फ़ा०) । ३. बी० गाढहि ढील लावै सो कीजै, मैं० गाढ़े ओखदि ढील न दीजइ । (२) १. म० लोरिक । २. मैं० कइसें कइ, बी० देवर कर । (३) १. बी० वोहु मेलहु जस

नेर न आवै, मैं० सर मेलेसि कसि नियरें आवइ । २. बी० जौ आवै तौ जीउ गंवावै । (४) १. म० गाढे रोस जो घात संचारू : गरजा देवरु उठा झनकारू, बी० गाढ परोय जौ धरह संचारी : गरजा देवरु उठी छिहारी (झनकारी—फ़ा०) । (५) १. म० बावन तब हीं धनुक चढाई, बी० बावन बीरु पहूता आई । २. बी० पर्‌यो पहराई । (६) १. म० नहा । २. म० चांद, बी० चांदेहि । २. बी० बिचारु (पचारि—फ़ा०), म० पचारि पचारि । (७) १. मैं० अंथवा सुरुजि बहुरि, बी० उठा (अंथवा—फ़ा०) सूकुसूर । २. बी० जानै । ३. मैं० में नहीं है । ४. बी० सैंसारु ।

अर्थ—(१) [लोरिक से] चांदा ने कहा, "अब देवकुल (देवालय) [का आश्रय] लेना चाहिए, गाढ़े समय में ओषधि यह होती है कि ढील दीजिए [और बचाव कर लीजिए] । (२) दो शर बावन के व्यर्थ जाने से अब तो एक ही [उसके पास शेष] रहा है; ऐ लोरिक वीर, तू उसे किसी प्रकार से भी करके टेके (रोके) । (३) वह बाण [भी] छोड़ कर वह निकट न आएगा, क्योंकि यदि [तब] वह [निकट] आएगा तो अपने प्राण गंवाएगा । (४) बावन ने जब गाढ़े रोष में [लक्ष्य पर] घाव चलाया (बाण छोड़ा) और वह गर्जा, देवकुल (देवालय) में झंकार उठी । (५) बावन का बाण आ पहुंचा; उसने [बाण] देवकुल (देवालय) में मारा था, [किन्तु] वह [बाण] उड़ (चूक) गया । (६) चांदा ने ललकार कर कहा, "बावन का बल [अब] भग्न हो गया, (७) शुक्र (बावन) अस्त हो गया और सूर्य (लोरिक) प्रकाशित हो गया, यह संसार में सभी जान जाएँ ।"

(२९५)

देवर 'मांझ लोर सिर' काढा । ओडन 'फूट पेट' 'हुत ठाढा' ।
'लइ' चांदहि 'आगें कइ चला' । लोर बीर पाछें भा भला ।
बावन कहा बाच 'यह' 'मोरी' । 'तूं रे पुरुख वह' तिरिया 'तोरी' ।
लोक कुटुंबु 'हउं आखउं' जाई । 'मइं' तोहि दीन्हीं 'गांग' 'अन्हाई' ।
लोरिक 'फिरि घर अपने जाई' । 'बोलिय पाछें' 'लखियं' 'बुराई' ।
चांद 'कहइ सो मूरुख' 'जो अैसे (अइसें) पतियाइ' ।
'जाकरि' बारि बियाही लीजइ 'सो होइहै(हइ) कस भाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं पत्र २४६, म० पत्र १५७।१, बी० ९८९-९९१ ।

म० में इसके बाद तर्क है 'धीमर', जो २९५ अ (दे० परिशिष्ट) का ज्ञात होता है ।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने बावन लोरिक रा बअ़द उफ़्तादने हर सेह तीर ख़ाली ।

म० : दास्तान गुफ़्तने बावन ब सुख़ुन ख़ुद रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० माहि बावनु सरु । २. म० फूट ठांउं । ३. बी० हुतें गाढा । (२) १. बी० लै । २. बी० आगैं कै चाला । (३) १. म० हइ । २. बी० मेरी । ३. बी० तू रु पुरषु याह, मै० लोर बीर यह । ४. बी० तेरी । (४) १. म० महि कहेऊं, बी० महि लीन्ह न । २. बी० मैं । ३. बी० गंगा । ४. म० नहाई, बी० न्हाई । (५) १. म० चांद बहुरि घर जाई, बी० कहा बहुरि घर जाये । २. बी० बोले पीछैं । ३. मै० लखिय, बी० लषमी । ४. बी० पराये । (६) १. बी० कहै सो बावर, मै० कहइ मन मोरें लोरिक । २. मै० अइसे बहुरि को जाइ । (७) १. मै० जेहिं कइ, बी० जाकर । २. मै० तेहि कइसें पतियाइ, म० सो काहे कर पतिहाइ ।

अर्थ—(१) देवालय में [से] लोरिक ने सिर निकाला, फूटा हुआ ओडन [उसके] पेट पर खड़ा था । (२) वह चांदा को लेकर और उसे आगे करके चल पड़ा, भला वीर लोरिक [उसके] पीछे हुआ । (३) बावन ने कहा, "यह मेरी वाचा है कि, ऐ लोरिक वीर, तू पुरुष है और वह स्त्री है । (४) लोक तथा कुटुंब से मैं जाकर कहूंगा कि मैंने गंगा-स्नान कर तुझे उसको दे दिया । (५) ऐ लोरिक, तू लौट कर अपने घर जा; यदि पीछे कोई बुराई देखे तो कहे ।" (६) चांदा ने कहा, "वह मूर्ख होगा जो ऐसे की प्रतीति करेगा । (७) जिसकी बाल्यावस्था की विवाहिता (स्त्री) को लीजिए, वह कैसे भाव (सद्भाव)-पूर्ण हो सकता ?"

(२९६)

बावन 'धनुकु सो दीन्ह अडारी' । 'बारेहि परखि तजी मइं' नारी ।
'हम जानां' 'धनुकहि' सिधि पाई । 'बान' भरोसें 'तिरी' 'गंवाई' ।
'गै धसि लेइ गांग महं परऊं' । 'बूडिहि मरउं' 'न करि लइ धरऊं' ।
'अब हउं धनुक हाथ कस करऊं' । 'बरु' कंठ 'सारि कटारी' 'मरऊं' ।
'बरु यह आंखि न देखत आई । लइगा सूरुज चांद भुलाई' ।
'जउ यह मोरी बारि बियाही' 'माइ दीन्ह अउ' बाप ।
'राज करउ जम लोरिक चांदहि खाइहि सांप' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २४७, म० पत्र १५६, बी० ९९२-९९४ ।

शीर्षक—मै० : अन्दाख़्तन बावन कमान व अफ़सोस करदन ।

म० : दास्तान अन्दाख़्तन बावन तीर व कमान ख़ुद रा बर ज़मीन ज़द ।

पाठान्तर—(१) १. बी धुनुषु स घालि अडारी, म० धनुष जो लीन्ह उतारी । २. बी० बाराह बरष तजी हम । (२) १. बी० मै जांनौ । २. बी० धुनष, म० धनुक । ३. बी० तिह र । ४. मै० जोइ । ५. बी० गमाई । (३) १. बी० घर लै हौ गंगा महि पर्यौं । २. मै० बूडि मरउं, बी० बूड न मुयो । ३. मै० गै संक न धरऊं, बी० मगर नही धरयौ । (४) १. बी० बहुरि धुनषु कर गहि नहि धरौ । २. बी० बर । ३. मै० सारा कटारा (सारी कटारी—ना०), म० मारि कटारिइं । ४. बी० मरौ । (५) १. म० बरु यह रूख न देखउं काही : लइगा लोरिक चांद चलाही, बी० यहु दुष नैन न देष्यों अपनै : जिह की चांद रैनि जैसैं सुपने । (६) १. बी० जौ तैं बार बियाह । २. बी० दीन्ही माई औ । (७) १. म० लोर बहुरि फिरि एकसर भादिया मोरेउ बरउ (परउ) संताप, बी० राजु करी भरि लोरिका चांदा षई जो सांप ।

अर्थ—(१) बावन ने [अब] उस धनुष को डाल दिया, [और कहा,] "मैंने इस नारी को [इसकी] बाल्यावस्था में ही परख कर त्याग किया था । (२) मैंने जान रक्खा था कि धनुष से सिद्धि प्राप्त हो जाएगी, किन्तु बाण के भरोसे मैंने स्त्री गंवा दी । (३) अब मैं जाकर और धंस (कूद) ले कर गंगा में पड़ूंगा (गिरूंगा) और उसमें मैं जाकर डूब मरूंगा किन्तु अब धनुष हाथ में न धरूंगा । (४) अब में हाथ में धनुष कैसे करूंगा (पकड़ूंगा) ? उससे अच्छा यह होगा कि कंठ को कटार से काट कर मर जाऊं । (५) मैं आंखों से आकर यह न देखता कि चांद को सूर्य (लोरिक) भुला कर ले गया, तो अच्छा होता । (६) क्योंकि यह मेरी बाल-विवाहिता है और [इसके] मां-बाप ने [इसे मुझको] दिया है, (७) हे लोरिक, तुम यम (यमपुर) में राज्य करोगे और चांद को सांप खाएगा (डंसेगा) ।"

१९. कलिंग-युद्ध खण्ड

(२९७)

बावन फिरि गोवर दिसि 'भए' । 'लोर चांद दुइ आगें' 'गए' ।
'राइ करिंगा बोदिया' दानी । 'मांगइ' दान 'जइस जग नानी(नआनी)' ।
'बान दिलावहिं' 'लेहि' न सोई । 'पुरुख मांग कइ मांगइ' जोई ।

'अइस' दान जगि 'काउ' न ली(लि)या ।
'कहु तइं जउ काऊ सुने 'दी(दि)'या ।
देस 'देसंतर मानुस जाई' । मेहरी 'पुर(रु)ष' बाप 'अउ भाई' ।
'ठौर ठौर जउ' 'दानिय' दुहुं महिं इक इक 'लेंहि' ।
घर 'महं लोग संगहरि मरहिं' बाहरि पाउ न 'देंहि' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४८ । बी० ९९५-९९७ । म० यहां पर त्रुटित है ।

शीर्षक—मैं० : बाज़ गश्तने बावन व मुलाक़ात करदने लोरिक व चांदा बा बोदिया ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० गए । २. बी० लोरिक चांदा आगै । ३. मैं० भए । (२) १. बी० राव करटेका (करिंगा—फ़ा०) बधिया । २. बी० मांगहि । ३. बी० जैस जगदानी (?) । (३) १. बी० बाह (बान—फ़ा०) डुलावहि (दिलावहि—फ़ा०) । २. मैं० लीन्हा ३. बी० पुरषहि मागि कि मागहि । (४) १. बी० अस रि । २. बी० काहू । ३. बी० कहौ मोहि जौ काहौ । (५) १. बी० दिसंतर मानइ जाये (जाई—फ़ा०) । २. बी० महेरी पुरुष, मैं० मेहरी मनुस । ३. बी० औ भाये (भाई—फ़ा०) । (६) १. बी० ठाव गव जौ । २. मैं० मनुसइं । ३. बी० लेई । (७) १. बी० सभ लोगा ह (हु ?) सत धराह । २. बी० देई ।

अर्थ—(१) तदनंतर बावन के गोवर की दिशा में होने (जाने) पर लोरिक तथा चांदा दोनों आगे बढ़े । (२) बोदिया नाम का करिंगाराय का एक दानी (कर उगाहने वाला) था, वह इनसे ऐसा दान मांगने लगा जैसा कि संसार में अन्य नहीं मांगता है । (३) ये बाने (वस्तुएं) दिला रहे थे, किन्तु उसने उन्हें न लिया, वह या तो पुरुष को और या तो स्त्री को—दो में से एक को मांग रहा था । (४) "ऐसा दान जगत् में कभी भी नहीं लिया गया है", [लोरिक ने कहा,] "तू ही कह, यदि कभी तूने [ऐसा दान] दिया गया सुना हो । (५) मनुष्य देश-देशान्तर को जाता है और स्त्री, पुरुष, बाप और भाई [साथ-साथ] होते हैं । (६) स्थान-स्थान पर दानी यदि दो में से एक-एक करके उन्हें ले लिया करे (७) तो घर ही में लोग साथ-साथ मरें, वे बाहर पैर न रक्खें ।"

(२९८)

'लीन्हें डांग फिरा' कोटवारा । बोलत बोलु मांझ 'मुख' मारा ।
देखि 'अकेरें चितहिं न लावहिं' । 'दुहुं' महिं 'एक' 'लेन पइ धावहिं' ।

'देंहि दान अउ बिनति' कराहीं । 'कहा चलहु राजा पहिं जाहीं' ।
कहा न 'सुनइं अउ दान न लेहीं' । 'भल बोलत' अन ऊतरु देहीं ।
'लोरिक चांदा कुमषी भई(ए)' । 'असि बिनती कहि ओहट गए' ।
'लोरिक' 'बीर' 'हथवासा' 'चांदा' 'धनुक चढाव' ।
'दुइ' जन 'सभै(भइ)' 'संघारे' 'जान न' 'कोऊ पाव' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २४९, भो० पत्र ४४ (नवीन), बी० ९९८-१००० । म० यहां पर त्रुटित है ।

भो० में इस कडवक के नीचे तर्क 'बोदिया' है, जो अगले का है ।

शीर्षक—मैं० : जंग करदने लोरिक बा कोतवाल व बोदिया दानी ।

भो० : नशिस्तन ज़क वातियान दरमियान राह अज़ां चांदा व लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. भो० बइठे दानी अउ कोटवारा, बी० भीन्ही (लीन्हे-ना०) डाग पितर पटतारा । २. मैं० मुंह । (२) १. भो० अकेलें चितहिं न लावा, बी० अकेले चितह न लावैंहि । २. बी० दोहु । ३. मैं० में नहीं है, बी० येकै । ४. भो० लेन पै धावा, बी० लीन (लेन—फ़ा०) पंथावहि (पै धावहि—ना०) । (३) १. बी० मागहि दानु औ नेत (बिनति—फ़ा०) । २. भो० कहइं चलहु राजा पहिं जाहीं । (४) १. बी० सुनैहि दानु ना लैहीं, भो० सोभ न दानु न लेही । २. मैं० बात कहत । (५) १. मैं० लोरिक चांदहि अस मत किहे, भो० लोर चांद तउ कुमखी भए । २. मैं० अस मनुसइं गै बैरी भए, बी० अस रि मतेहि बिरहे पर गई (गए—फ़ा०) । (६) १. भो० लोर । २. मैं० खरग । ३. भो० हथवासा ओडन । ४. मैं० चांदइं । ५. बी० धुनषु चराय, मैं० धनुष चढ़ाए । (७) १. बी० दहुं । २. मैं० सबही मारे । ३. भो० जा नहिं । ४. बी० येको पाई ।

अर्थ—(१) [फिर लोरिक ने देखा कि] डांग (लट्ठ) लिए हुए [एक] कोट्टपाल फिर रहा था, जो बोल बोलते ही मुंह में (पर) मार बैठता था । (२) अकेले [पुरुष] को देखकर [वे लोग] उसे चित्त में न लाते थे, [किन्तु पुरुष और स्त्री दोनो के होने पर] दो में से एक को लेने के लिए वे दौड़ते ही थे । (३) वे (लोर-चांदा) दान (कर) दे रहे थे और [उनसे] बिनती कर रहे थे; [वे कह रहे थे,] चलो हम राजा के पास चल रहे हैं ।" (४) किन्तु वे उनका कथन नहीं सुन रहे थे, दान (कर) नहीं ले रहे थे, और भली बात भी कहते समय वे अन्य (बुरा) उत्तर देते थे । (५) [यह देख कर] लोरिक और चांदा को रोष हुआ और वे ऐसी बिनती कर ओहट (कुछ दूर)

हो गए। (६) लोरिक ने हाथ में खड्ग लिया और चांदा ने धनुष चढ़ाया, (७) [फिर] इन दोनों जनों ने [मिल कर] सबको मार गिराया और कोई भी [भाग कर] जाने न पाया।

(२९९)

'बोदिया लोर चेति कर गहा'। दस 'अंगुरीं' मुख 'मेलत' अहा।
'कहा' बीर 'मोहिं दै जिउ दानूं'। 'जीउ छाडु काटु मंकु कानूं'।
'मूंडि मूंडि' 'सिर जोरें धरे'। हाथ 'गात अंगुरा भुइं 'परे'।
नौ खंड 'प्रिथिमी' सुनां न काऊ। अइस दान को देहि बटाऊ।
'अस कि' 'दानि अनियाई' होई। जो जस 'करइ' पाव तस 'सोई'।
'मुख कारी' 'कइ' 'बोदिया' 'पठवा' 'बेल बंधाइ'।
आपन राउ 'करिंगा' 'बोदिया' 'बेगि हंकारहि' 'जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५०, म० पत्र १५९, भो० पत्र ४५ (नवीन), बी० १००१-१००३।

भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'हाथ काटि', जो अगले का है।

शीर्षक—मैं० : गिरफ़्तार शुदने बोदिया व दस्त बुरीदने लोरिक।

म० : दास्तान अजज़ ब इलहाज करदनेबोदई पेश लोरिक।

भो० : खुसूमत शुदन बाज़ कवातियान व लोरिक बा चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० फुनि बधिया अस लोरि कहा, म० बोदई जाइ जियत घर कहा, मैं० बोदिया दानि चेति कर गहा। २. मैं० बी० अंगुरी। ३. म० झेलत। (२) १. म० बी० कहै। २. भो० मोहि देहिं जिय दानूं, बी० मुहि दीजै दानू। ३. म० भो० छाडउं (गहा—भो०) नाक अउर काटउं कानूं, बी० जैय (जीय—फ़ा०) छाडौं अस ले तुम्ह कांनू। (३) १. म० मूंड मुंडाइ। २. बी० अस जो रैं धरा, म० सिर जोरि धरे, भो० सिर जोरिया धरे। ३. म० गात अंगुरी भुइं परीं, भो० गात अंगुरी भुइं परी, बी० काटि अंगुरी भुई परा। (४) १. म० पिरथी। बी० में अर्द्धाली है : बधिया चांद पाई परि रहा : अब सो सुनहु जो रु तुम्ह कहा। (५) १. म० अइस, बी० अस न। २. भो० अनियाई दानि, बी० नियाई दान न। ३. बी० करै। ४. म० होई। (६) १. मैं० मुंह कारा, बी० मुख कारौ। २. भो० करि बी० कैं। ३. म० बोदई, बी० बधिया। ४. म० पठए, बी० बैठो। ५. बी० बोलु बधाय। (७) १. बी० करुटेका (करिंगा—फ़ा०)। २. बी० म० में नहीं है, भो०

बोदई। ३. भो० बेगि बोलावहिं, बी० उठै जाइ बलु। ४. बी० भाई, म० जाइ जाइ।

अर्थ—(१) बोदिया ने लोरिक को चेत कर (पहचान कर) [उसका] हाथ पकड़ा और वह [अपने] मुंह में [हाथ की] दसों उंगलियां डालने लगा। (२) उसने कहा, "ऐ बीर, मुझे जीव-दान दे, मेरा जीव (मेरे प्राण) छोड़ दे, भले ही [मेरे] कान काट ले।" (३) [लोरिक ने कहा,] "सिरों को तूने मूंड-मूंड (मंडवा-मुंडवा) इकट्ठा कर रक्खा है, और [मृतों के] हाथ, गात्र और उंगलियां भूमि पर पड़ी हुई हैं। (४) नौ खंड पृथ्वी में ऐसा कभी नहीं सुना [गया] है कि ऐसा दान भी कोई पथिक देता है। (५) क्या कोई दानी (कर उगाहने वाला) ऐसा भी अन्यायी होता है? जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है।" (६) [तदनंतर] बोदिया का मुंह काला कर और उसके बालों से बेल बंधवा कर [लोरिक ने] उसे भेज दिया, (७) [और कहा,] "ऐ बोदिया, अपने करिंगा राजा को तू जा कर शीघ्र बुला [ला]।"

(३००)

'काटि हाथ मुख कीन्हां' कारा। 'बांधी (धि) बेल तेंहि चूरें बारा'।
'इहिं परि बोदिया' जाइ तुलानां। देखि नगर सभ परा भगानां'।
'देखत लोगु अचंभइ' रहा। 'पूछत' बात न 'बोदियहि' कहा।
'बोदियइं राइहिं कीन्ह पुकारा'। 'हुत जेवनार तहं राउ हंकारा'।
'बोदियहिं राइहि कीन्ह' जोहारा। 'पूछा राव केइं यह सारा'।
'कौन बरीं अस राजा आवा देस हमार'।
'राउत पाइक ओंहि कों लागउ जाइ' गुहार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५१, म० पत्र १६१, बी० १००४-१००६।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'बोदई', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : आमदने बोदिया पेशे राव व फ़रियाद करदन।

म० : दास्तान दस्त व गोश बुरीदने लोरिक ऊ रा।

पाठान्तर—(१) १. म० काटि हाथ मुख कीन्हां (न्हां ?), बी० काटे हाथ कीन्ह मुष। २. म० बांधि बेल अउ चूरे बारा, बी० बाघ बेल कैं चोरैं पारा (चूरे बारा—फ़ा०)। (२) १. म० इहिं बिधि बोदई, बी० बैठ ग बधिया। (३) १. बी० देषि स लोगु अचंभै, म० देषत लोगु अचंभउ। २. म० पूछहिं। ३. म० बोदई, बी० बधिये। (४) १. बी० बधिया जें दिन

जाइ पुकारा, म० दानी केतइ जाइ पुकारा । २. म० बइठ राइ जहां जेवनारा, बी० हुत जियनार भीतरहि हकारा । (५) १. बी० राजा बधिये जाइ, म० बोदई राजहि जाइ । २. म० पूछ भडारी गएउ अस बारा, बी० पूछै भर री अस कै मारा । (६) १. म० भीउं बरी अस राजा केइ रे आएउ बसति हमारि, बी० कौन बीर अस राजा जु आवा सेव हमार । (७) १. म० दानी मारि कोटवार जो मारइ लागहु बेगि, बी० रावत पाइक साजि कर लागहु जाइ ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने बोदई के] हाथ काट कर उसका मुख काला कर दिया और बेल बांध कर उसके बाल तोड़ डाले । (२) इसी प्रकार से बोदिया जा तुला (पहुँचा) और उसे [इस प्रकार आहत] देखकर समस्त नगर में भग्नता (भगदड़) पड़ गई । (३) [उसे] देखकर लोग अचंभे में हो रहे, किन्तु प्रश्न करने पर बोदिया ने कुछ न कहा । (३) बोदिया ने राजा से पुकार की, तो राजा ने उसे वहां बुलवाया जहां वह भोजन पर [बैठा हुआ] था । (५) बोदिया ने राजा को जुहार की, तो राजा ने पूछा, "यह [दशा] किसने की ? (६) कौन ऐसा बली राजा हमारे देश में आया हुआ है ? (७) रावतो तथा पायको, जाकर उसको गुहार लगो (उसका सामना करो) ।"

(३०१)

'बोदियइं आनि घोर' एकु 'दीन्हां' । पूछि बाट सो 'आगें कीन्हां' ।
'दर नर पुरुख केर कस अहइ' । 'करत' 'संजोग कवनि बिधि' 'रहइ' ।
एकु 'पुरुख अउ दूसरि' नारी । 'तीसर न कोऊ' 'नाऊ अउ बारी' ।
अति 'बड होंति बिचक्खन' सोई । 'ओइं' खत्तिरी 'पुरुष अउ' जाई ।
वह रे 'अचूक' बान सर मारइ । वह 'रन खतरी खरग संघारइ' ।
'देई' संजोग 'राइ तिन्ह बोलिउं' 'मांगिउं' अचगर दानु ।
'जन मानुस सभ जीउ गंवाइउं आपन' नांक 'अउ' कान ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २५२, म० पत्र १५८, बी० १००७-१००९ ।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने राव बोदिया रा व जवाब दादने ऊ ।
म० : दास्तान पुरसीदन राव बोदई रा ।

पाठान्तर—(१) १. म० बोदई तुरी पलानि, बी० बूढि (बोदई—फ़ा०) पलानि घोर । २. बी० दीया । ३. म० आगेउ कीन्हा, बी० आगैं कीया । (२) १. बी० दरस पुरषैहि पकर आहै, मै० दर नर पुरुष सो कइसइं अहा ।

२. म० करत, बी० कैस । ३. बी० संजोव कौन बड । ४. म० रहइ, बी० आहै । (३) १. मै० पुरुष दूसरि हइ, बी० पुरषु औ दूसर । २. म० तस नहि कौनउ, बी० तीसर नाउ न । ३. बी० आहिउ बारी । (४) १. बी० रूपवंत विचषण । २. बी० रिण महि । ३. बी० पुरषु अ । म० में अर्द्धाली है : रूप दुहूं के सम जग मोहइ : रैनि मांझ चांद जस सोहइ । (५) १. म० चूकि । २. म० रन खेलइ खरग संभारइ । बी० में अर्द्धाली है : वोहु राजा जोगु धनष सर मारै : बहुरि न कहि कहि षरग उभारै । (६) १. मै० देषि । २. म० देहि मस्ट मोहि कहं, बी० आइ मति भूलो । ३. बी० मांग्यों । (७) १. म० जिहि मांगें जीउ गंवाएउं अब रे, बी० जानु मानु सब जीउ गवायो काट । २. बी० औ ।

अर्थ—(१) [राजा ने] बोदिया को ला (मंगा) कर एक घोड़ा दिया (दिलाया), और उससे मार्ग पूछ कर उसको आगे किया । (२) [फिर उससे पूछा,] "उस नर (योद्धा) पुरुष का दल कैसा है, और वह संयोग (शस्त्रास्त्र-सज्जा) किस विधि से करता रहता है ?" (३) [बोदिया ने कहा,] "एक पुरुष है औ दूसरी नारी है, [उनके साथ] तीसरा कोई नाई-बारी भी नहीं है । (४) वे अत्यधिक विचक्षण हैं, वे पुरुष और स्त्री—दोनों ही क्षत्रिय (योद्धा) हैं । (५) वह [स्त्री] अचूक बाण (पुंख) और शर मारती है, और वह रण-क्षत्रिय (योद्धा) खड्ग [से] संहार करता है । (६) दैव-संयोग से, हे राजा, उन्हें मैंने बुलाया और एक अचगरा (औद्धत्य-पूर्ण) दान (कर) [उनसे] मांगा । (७) [किन्तु परिणाम यह हुआ कि] अपने जनों-मनुष्यों सब जीवों को गंवाया और अपने नाक और कान गंवाए ।"

(३०२)

बात 'सुने' 'सभ' मिले सियाने । 'तुम्हं भनि' 'नरवइ भए' अयाने ।
'जउ परदेसी एक नर' होई । 'लखि जउ मिलइ मान रे सोई' ।
'वह करि साहन जउ' सिधि 'पावइ' । 'दइय संजोग वह दर बिचलावइ' ।
'जानइ बात सभइ' 'सयंसारा' । इकु 'हारइ अउ' होइ मुंहु कारा ।
'बांह बाच दइ ओहि' 'हंकराइय' । 'अस खतरी' जउ रह' 'ओरगाइय' ।
'बहु परसाध कइ बोलाइय' 'अंबरित बचन सुनाइ' ।
'गाउं ठाउं सब ओंहि कों' दीजिय 'जित भावइ तित' 'जाइ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २५३, म० पत्र १५९, बी० १०१०-१०१२ ।

शीर्षक—मै० : मशावरत करदने राव करिंगा बा दानायाने खुद रा ।
म० : दास्तान तक़सीम करदने वज़ए साख्तन मर्दमान ।

पाठान्तर—(१) १. मै० सुनत । २. बी० कैं । ३. बी० तुम्ह फुनि, म० गै तुम्हं । ४. बी० नरवै भयहु । (२) १. म० जउ परदेसी आएउ, बी० जौ परदेसी येकै । २. म० एकहि एक पबारइ सोई, बी० कौन जानै साहस करै कोई । (३) १. बी० जो कर सांहस सो । २. बी० पावै । ३. मै० दइय संजोगइं दल न चलावइ, बी० दई संजोग देइ बिचलावै । (४) १. बी० जानै बात सभै । २. म० संसारा, बी० सैसारा । ३. म० हारा औ, बी० हारै औ । (५) १. बी० बाही बाच दे कोहु । २. बी० हकराये । ३. बी० जौ रहि । ४. म० ओलगाइय, बी० उरगाये । (६) १. बी० यह परसाद करै हकराये । २. मै० अमिरित बचन सुनाइ, बी० जस आवै उहि गाऊ । (७) १. म० गाउं ठाउं तेहि दीजिय, बी० बावनु छांडि चांदा दै पुठि गौ । २. म० तित जित भावइ तर, बी० जह भावै तहां । ३. बी० जाउ ।

अर्थ—(१) यह वार्ता सुनने पर समस्त सयाने लोग मिले [और उन्होंने कहा,] "ऐ नरपति, तुम जैसे अयाने हो गए हो । (२) यदि परदेशी एक (अकेला) पुरुष [भी] हो और वह दिखाई मिले (पड़े), तो उसे मानना (सम्मान देना) चाहिए । (३) वह साधन [एकत्रित] कर यदि सिद्धि प्राप्त कर लेता है, तो दैव-संयोग से [अकेला ही] दल को विचलित कर देता है । (४) समस्त संसार इस बात को जानता है कि एक (कोई) हारता है तो उसका मुंह काला होता है । (५) उसको बाहुओं (सुरक्षा) का वचन दे कर बुलाइए और यदि वह क्षत्रिय (योद्धा) रहे, तो उसकी सेवा लीजिए । (६) बहुतेरे प्रसाद (उपहारों) के साथ और अमृत [जैसे मधुर] वचन सुना कर उसे बुलाइए, (७) उसको गांव-ठांव सब दीजिए और [उसे इस बात की छूट दीजिए कि] जहां-कहीं उसे भाए, वह जाए ।"

(३०३)

'बांभन दस' 'बिदवांस' बुलाए । 'बांह' 'बाचं दइ' 'राइ चलाए' ।
'जेहिपरि' आवइ 'तेहि भनि' 'आथइ' । जो 'वह कहइ' 'सोइ तुम्हं माथइ' ।
'कहउं दानि हुत यहु' 'अनियाईं' । नांक 'कान' भल 'कूंचि' 'कटाईं' ।
'अवर जो मारे यहि कोटवारा' । 'तिन्ह औगुन ही नियाउ' तुम्हारा ।
'राइ' 'बांह' 'दइ तुम्हं हंकराइय' । 'जब जित भावइ तब उतहि जाइय' ।

'हम राजा कइ परजा' 'बिदवांस पंडित सभ आहिं' ।
'दिस्टि पसारि देखन को पावइ' ऐती जोगिति 'काहिं' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २५४, म० पत्र १६१, बी० १०१३-१०१५ ।

शीर्षक—मै० : फ़िरिस्तादने राव करिंगा दह जुन्नारदारान रा बर लोरिक ।

म० : दास्तान तलबीदन राय जुन्नारदारान रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बंभन सब । २. मै० बिधवांस । ३. मै० बोल । ४. बी० होइ कै । ४. म० राव चलाए, बी० आनहु जाए । (२) १. मै० जेहिं बिधि, बी० जिह परि । २. म० तेहिं बिधि, बी० तिह परि । ३. मै० आवहु, बी० ल्यावोहु । ४. बी० वोहु कहै । ५. मै० सोइ तुम्ह मानहु, बी० सु तुम्हहि मनावोहु । (३) १. म० कहहिं दानी हुतइ, बी० कहौं दान वहि हुत । १. बी० अमनाये (अनियाई—फ़ा०) । ३. बी० काटि । ४. म० कीन्ह, बी० हाथ । ५. बी० कटाये । (४) १. बी० अरु जिय मारे बहु कुटवारा । २. बी० वोहु औगुन आनिये । (५) १. बी० राजा । २. मै० पूर । ३. बी० देय अस करियोहु । ४. म० भन जित भावइ तुम्हं जाइय, बी० जितही जाइ तितई तुम्ह जइयहु । (५) १. म० हम रे अभागी बजा, बी० पूछा राजा कहि अस । २. मै० बिधवांस पंडित सभ आहि, बी० हम सौ बाभन आह । (७) १. बी० द्रिष्टि पसारि देषि कैं आवै, म० दिष्टि अपार देखि को पारइ । २. बी० एत आजुगति वाह, म० एती जोगिति केहि आहि ।

अर्थ—(१) [राजा ने यह मत सुनकर] दस विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाया और बाहों (सुरक्षा) का वचन देकर राजा ने उन्हें [लोरिक के पास] रवाना किया । (२) [राजा ने कहा,] "जिस प्रकार से वह आए, उसी प्रकार से वह रहे और जो वह कहे, वही तुम्हारे मत्थे हो । (३) [उससे] कहो कि यह दानी (बोदिया) ही अन्यायी था, और भले ही इसके नाक-कान कुचलवा कर कटाइए । (४) और जो तुमने इसके कोट्टपाल को मारा है, सो उनके अवगुणों (अपराधों) के कारण ही तुम्हारा [कार्य] न्याय्य है । (५) राजा ने तुम्हें बांह (सुरक्षा) [का वचन] देकर बुलाया है; जब जहां भाए, तब वहां जाना । (६) हम राजा की प्रजा हैं और सब विद्वान् पंडित हैं । (७) [किन्तु] दृष्टि को पसार (फैला) कर [अदृष्ट को] कौन देख सकता है ? इतनी योग्यता किसे [होती] है ?"

(३०४)

'बांभन जाइ सो दीन्ह असीसा'। बात 'सुनत मन' 'उतरी' रीसा।
लोरिक 'कहा' चांद कस 'कीजइ'। 'एइं बंभनहिं कस' ऊतरु 'दीजइ'।
'बहुते जन' हम 'इन्हके' मारी। 'मूंड काटि कइ दीन्ह अडारी'।
'जिय ऊपर अब उठइ गोवारी'। 'जूझि मरइं जउ लाग गुहारी'।
'राजा आहि भल अहइ नियाई'। 'नीकी बात तेहि कहेसि पठाई'।
'मंता' जो हम तुम 'उपजइ चांदा' 'अउर न कोऊ' आहि।
'भाई बापु बंधु नहि कुनबा' 'फिरि पूठौ (?) आ काह(हि)' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५५, भो० पत्र २७ (नवीन), बी० १०१६-१०१८।

शीर्षक—मैं० : आमदने जुन्नारदारान व गुफ़्तन लोरिक रा।

भो० : रसीदन जुन्नारदारान बर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. भो० बांभन दीन्ह आइ आसीसा, बी० बैठे जाइ कै दीन्ह असीसा। २. भो० सुनें मन, मैं० सुनत सभ। ३. बी० गई सु। (२) १. भो० कीहा (किहा ?)। २. बी० कीजा। ३. मैं० एहिं बांभन का, बी० जै (यै) है बैठ कस। ४. बी० दीजा। (३) १. भो० बहुत लोग। २. बी० उनके। ३. भो० मूंड मुंडाइ जो देसहि निसारे, बी० दान रबूषी दीन्ह निसारे। (४) १. बी० जे ऊपर एम उठै स नारी, मैं० जइ परि राजा लाग गोहारा। २. बी० जूझि मरइं जिय (जइ—फ़ा०) लाग गुहारी, मैं० झूझि मरत गै दई उबारा। (५) १. भो० राउ बड़ा अउ अहइ नियाई, बी० राजा बडु डरावन जाई। २. भो० धनु बानहिं दइ बाजि पठाई, बी० भली बात कहते न रिसाई। (६) १. भो० बी० मता। २. भो० उपजइ, बी० आई। ३. भो० सोइ पै, बी० और न कोई। (७) १. मैं० बाई बाप बंधु कोउ नाहीं, भो० भाइ बंधु लोग नहि कुटुंबा। २. भो० बहिनि भौजि अब चाहि, मैं० बांभन पूछहिं काहि।

अर्थ—(१) [तदनुसार] एक ब्राह्मण ने जाकर आशीर्वाद दिया, उसकी बातें सुनते ही लोरिक के मन से रोष उतर गया। (२) लोरिक ने कहा, "चांदा, कैसा (क्या) किया जाए ? इस ब्राह्मण को कैसा उत्तर दिया जाए ? (३) हमने इनके बहुतेरे जनों को मार कर और उनके मुंड (सिर) काट कर डाल दिए। (४) ऐ ग्वालिन, अब तो जी पर उठती (लगती) है [क्योंकि] यदि राजा गुहार लगता है तो हमें जूझते हुए प्राण देने होंगे। (५) राजा भला है और न्यायप्रिय है और [इस ब्राह्मण को] भेज कर उसने अच्छी बात

कही है। (६) ऐ चांदा, मत वही है जो हममें-तुममें उत्पन्न हो, क्योंकि और कोई नहीं है [जिससे परामर्श किया जा सके]। (७) [यहां] भाई, पिता, बंधु तथा कुटुंबी नहीं हैं, फिर यह किससे पूछो ?"

(३०५)

इक बांभन 'का बहुरि' दस आए। बचन राइ के आइ सुनाए।
चलहु लोर 'अपुने' 'पउ' धारहु'। 'हम जियतइं' 'जीवन जनि हारहु'।
'चला' 'लोरु संजोइ' उतारा। 'जाइ करिगा राउ' जुहारा।
'बहुतइ भूईं' 'चलि' हम आए। 'राजा सोग' 'खरे' संताए।
नैन न देखा सुनां 'न काऊं'। 'दुहुं' महिं एक दानु 'लेइ राऊं'।
'बैरि' बिरोधे 'नरवइ' छाड़ि चले घर बार।
'हम रे अकेले' 'दुमने भाई बीर परिवार' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५६, म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र २८ (नवीन), बी० १०१९-१०२१।

भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनि राजा अस', तथा म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनि' जो अगले कडवक के है।

शीर्षक—मैं० : बाज़ आवरदने जुन्नारदारान बर लोरिक कलामे राव करिगा।

म० : व रफ़्तन लोरिक पेश करिगा।

भो० : गुफ़्तन जुन्नारदारान बर लोरिक व चांदा अज़ जेहत रवाना करदन अज़ पेशराह।

पाठान्तर—(१) १. भो० गै फुनि, बी० पंडित दस। (२) १. बी० आपनु। २. भो० पा, बी० पगु। ३. बी० धारौहु। ४. भो० हम्हं जियतइं, बी० जैति हमार। ५. बी० मनहि जिन हारौहु। (३) १. म० चलि कै। २. बी० लोर संजोन, म० लोर संजोह (संजोइ—ना०), भो० लोरहि संजो। ३. मैं० राइ करिगा राउ, बी० जाइ करनीका (करिगा—फ़ा०)। (४) १. बी० पहलै भुमी जु। २. भो० चले। ३. म० रे सो हम, बी० राइ न किनहू, भो० राइ सेउं हम। ४. बी० हम न। (५) १. बी० नरु कोऊ। २. म० दो, बी० दौहु। ३. मैं० लेहिं बटाऊ, बी० ले राऊ। (६) १. मैं० बरिहि, बी० बीर (बैरि—फ़ा०)। २. बी० नरवै। (७) १. बी० हमहि राष ले। २. म० दुइ मानुस बैरी भा संसार, भो० आहि दोउ जन भाई बीर परिवार, मैं० दुमने भा बैरी कोटवार।

अर्थ—एक ब्राह्मण क्या ? फिर तो दस [ब्राह्मण] आए और आकर उन्होंने राजा के वचन सुनाए। (२) [उन्होंने कहा,] "ऐ लोर, चलो और अपने पैर रखो (पधारो), हमारे जीते जीवन न हारो।" (३) लोर चला, उसने संयोग (रण-सज्जा) को उतार लिया और करिंगा राजा को जुहार किया। (४) [लोरिक ने कहा,] "बहुतेरी भूमि चल कर हम आए हैं, और हे राजा, हम शोक से बहुत संतापित हैं। (५) हमने नेत्रों से यह [कभी] न देखा और कभी सुना है कि दो में से एक [पथिक] को राजा दान (कर) के रूप में ले लेता हो। (६) बैरी के विरोध के कारण ही, हे राजा, [हम दोनों] घर-बार छोड़ कर चले थे, (७) हम अकेले हैं और भाई, बंधु तथा परिवार [हमसे] दुर्मनस् हैं।"

(३०६)

सुनि 'राजइं' अस ऊतरु 'दीन्हां'। जो 'हम्हं बूझिय' सो तुम्हं 'कीन्हां'।
'अजहूं कहु सो बात करावउं'। 'जिय' 'मारउं कै सूरि भरावउं'।
सीसु नाइ 'लोरिक' अस 'कहा'। 'गरुव नरिंद' राउ 'तूं अहा'।
'मेदिनि कहइ' 'बड आहइ' राऊ। 'राइ' हुतें 'हइ बड़ा नियाऊ'।
'तुम्हं' 'नरवइ नियाउ सब' जानहु। 'जउ बर करहुं देस धरि आनहु'।
'मारग चलइ चहूं दिसि लोक असीसइ तोहि।
'राजा मया मोह कइ' 'हरदीं पठवहु मोहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५७, म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र २६ (नवीन), बी० १०२२-१०२४।

शीर्षक—मै० : जवाब दादन राव बर लोरिक रा।
म० : जवाब दादन राव बर लोरिक रा।
भो० : जवाब गुफ्तन राव करिंगा लोरिक व चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. भो० बी० राजा, मै० राजइ। २. बी० दीया। ३. म० हम चाहहिं, मै० बी० हम पूछें (पूछे—बी०)। ४. बी० कीया। (२) १. म० अजहूं कहु बहोरि हउं करउं, भो० कहु अबहूं सो बात करावउं, बी० अजहूं कहौहु त सासति करौ। २. मै० कै। ६. म० बी० मारौं कै सूरी भरउं (भरौ—बी०)। (३) १. मै० लोरहिं। २. बी० कहै। ३. भो० गरुवा नरिंद, बी० गरू मारिदु। ४. बी० त अहै। (४) १. बी० मेदनि कहत। २. म० भल आहइ, मै० बडा हुत, बी० बडे तुम्ह। ३. भो० राउ।

४. म० बर होइ न काऊ, बी० फुनि औ बड न्याऊ। (५) १. म० अउ तुम्ह, बी० तुम्हि फुनि। २. म० नरवइ नियावहु, भो० नरवइ अनियाउ न, बी० बड़े नियावहु। ३. बी० जानौहु। ४. म० जो भल होइ सोइ तुम्हं मानहु, भो० जउ बर करहु देस कहं मानहु, बी० जौ बर करहु देस कर आनौहु। (६) १. तू सुमया करि नरवै हरदी पठवौहु मोहि (तुल० परवर्ती चरण)। (७) १. भो० राजा मया करउ तुम, मै० जउ बर लइ (कइ) संतावइ कोई, बी० जो रु दिनइ (दीनहि) बसि करहु। २. मै० बी० सो हत्या पुनि मोहि (फुनि तोहि—बी०)।

अर्थ—(१) यह सुन कर राजा ने ऐसा उत्तर दिया, "जो हम को पूछना (कहना) था, वही तुमने किया, (२) और आज (अब) भी जो कहो, वह बात मैं कराऊं : इनके जीव मारूं, या इन्हें शूली भराऊं।" (३) सिर नमित कर लोर ने ऐसा कहा, "ऐ राजा, तुम गुरु (बड़े) नरेन्द्र हो। (४) मेदिनी कहती है कि 'राजा बड़ा है, और राजा के द्वारा बड़ा न्याय है। (५) हे नरपति, तुम समस्त न्याय [का विषय] जानते हो, यदि तुम बल [-प्रयोग] करो तो देश [भर] को पकड़ कर ला सकते हो। (६) लोग चारों ओर मार्गों पर [निर्भय होकर] चलते हैं और तुम्हें आशीर्वाद देते हैं। (७) हे राजा, तुम मया-मोह करके मुझे हरदीं [पाटन] भेज दो।"

(३०७)

सुनि 'राजा अस कीन्ह' पसाऊ। 'भाइ हमार' 'जो' आहि बटाऊ।
'दीन्ह' सुखासनु 'अउर' 'तुरंगू'। पंथ 'लागि तुम्ह लागि करिंगू'।
'टंका सहस' 'परसाध' दिवाए। 'तुरित बेगि बलदा लइ' आए।
'सेव करहुं' 'जउ इहवां' रहहू। 'नहि जउ मन होइ तहवां चलहू'।
'तेहिं करि' बात 'न पूछन' कोई।
तिह(जिहि) की(के) संक(ग) एक जन होई।
राइ बांभन 'दस' दीन्हें 'अगुवा' जित भावइ तित जाहु।
खर कइ कहइ न पारउं 'मयाह' करहु तउ रहाहु॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६२ (?), भो० पत्र ३० (नवीन), बी० १०२५-१०२७।१।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनहि', जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—म० : मरहमत करदन राव करिंगा बर लोरिक ।

भो० : शुनीदन गुफ़्तार लोरिक मरहमत करदन राजा बा लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हसि राजा किया । २. बी० हमरैं भाइ । ३. बी० में नहीं है । (२) १. बी० देहि । २. बी० और । ३. भो० तुरंगा । ४. भो० लागि तुम्ह राइ करिंगा, बी० लाग तुम्ह नेह यकंगू । (३) १. म० टका लाष । २. बी परसाद । ३. भो० अपाठ्य है, बी० नित वै बेग बराई । (४) १. भो० सेव करउं, बी० सोय करहु । २. बी० जो ईह ही । ३. भो० जउ मनमान तहंहि तुम्ह जाहू, बी० औ जसु भाव तहा ही जहहू । (५) १. बी० तिह थी । २. म० करइ नहि, भो० न पूछइ । ३. म० जो परदेसी सहंगा, भो० जेहि के साथ तिरी इक । (६) १. मो० दुइ । २. भो० में नहीं है । (७) भो० मया । बी० में दोहा नहीं है ।

अर्थ—(१) ऐसा सुन कर राजा ने पसाव किया, और कहा, "यह हमारा भाई है, जो [इस समय] पथिक है । (२) मैंने [चांदा के लिए] सुखासन और [तुम्हारे लिए] तुरंग दिए, जो तुम्हारे कलिंग तक के लिए मार्ग के लिए होंगे । (३) मैंने एक सहस्त्र टंके उपहार के रूप में दिलाए हैं, जिन्हें तुरंत और शीघ्र ही बलद (बैल) ले कर आ रहे हैं । (४) यदि तुम यहां रहो तो तुम [हमारी] सेवा करो, अन्यथा जब [और जहां के लिए] तुम्हारा मन हो, तुम वहां के लिए प्रस्थान करो । (५) उसकी कोई बात नहीं पूछनी है जिसके साथ एक ही जन हो ।" (६) [यह कहते हुए] राजा ने अगुवों के रूप में उसे दस ब्राह्मण दिए [और कहा,]" तुम्हें जहां भाए, वहाँ जाओ; (७) ज़ोर देकर मैं नहीं कह सकता हूं, किन्तु यदि तुम मया (ममता) करो तो [अभी] रहो ।"

२०. प्रथम सर्पदंश खण्ड

(३०८)

'सुनु नरवै' 'एक' बचन 'हमारा' । 'रहे चले सो बांध' 'तुम्हारा' ।
हरदीं आहि 'हमारेउ' लोगू । मन धरि 'चले दोउ तिन्ह' जोगू ।
'अस सुनि राइहि' बीरा 'दीन्हां' । सीसु 'नाइ' 'कइ' 'लोरहि लीन्हां' ।
उतरे 'आइ' 'बांभन के' अवासा । 'मंगता मिलिया आइ चहुं' पासा ।
'जो जिसु जोगु दानु तिस दी(दि)या' ।
जस कीरति आपनि करि ली(लि)या ।

'पूनिवं राति सपूरनि' 'सूते फूलन्ह' सेज 'बिछाइ' ।
'बास लुबुध भुवंगु' 'एक आवा' 'अउतहि चांदहि खाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २५९, म० पत्र १६३ (?), बी० १०२७-१०३० ।

मैं० में इस प्रसंग का यही कडवक है, शेष चार नहीं हैं, जिससे स्पष्ट है कि मैं० का पाठ यहां पर त्रुटित है ।

शीर्षक—मैं० : अर्ज़दाश्त करदन लोरिक पेशे राव करिंगा ।

म० : अर्ज़ करदन लोरिक राव रा बअज़ी मरदुम ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० सुनु राजा, म० सुनहु राउ । २. बी० निजु । ३. बी० हमारे । ४. म० हउं चालसि चाहउं चेर, बी० रहे कुभेउ फुनि वासि । ५. बी० तुम्हारे । (२) १. बी० हमारौ, मैं० हमारा । २. बी० चलहु आहि तिहि । (३) १. बी० याह सुनि राजा, म० राइ उतर सुनि । २. बी० दीया । ३. म० चढ़ाइ । ४. बी० सो । ५. म० लोरिक लीया । (४) १. म० जाइ । २. बी० बंभन कै । ३. म० मंगता आइ मिले चहुं, बी० सभ ते आनि मिलाये । (५) इस अर्द्धाली के स्थान पर मैं० में यथा चतुर्थ निम्नलिखित है—

दीन्ह सुषासन अउर तुरंगू : पंथ लाइ तिन्ह राइ करिंगू । (तुल० ३०७·२) और म० में है : जा कह कछू हाथ कै देई : जस कीरति आपु कहं लेई । (६) १. बी० पून्यौ राति निरमल । २. म० भए आपनि, बी० फूलह । ३. बी० डसाई । (७) १. बी० बासु भुवंग बिरूधा । २. म० न मानइ, बी० में नहीं है । ३. बी० सूत चांद गौ खाइ, म० चांदहि खाइ अघाइ ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "ऐ राजा, हमारी (मेरी) एक बात सुनो; हम रहे और अब चले, तो भी हम तुम्हारे बंध हैं (हमारा जीवन तुम्हारे पास बन्ध-गहन रख उठा है) । (२) हरदीं [पाटन] में हमारे लोग (स्वजन) हैं, उनका योग (उनसे मिलना) मन में रखकर हम दोनों चले हैं ।" (३) ऐसा सुनकर राजा ने उसे [विदा का] बीड़ा दिया, जिसे लोरिक ने सिर नमित करके लिया । (४) [तदनंतर] वे [चल कर] एक ब्राह्मण के आवास पर उतरे, तो उनके चारों ओर भिक्षुक आ मिले । (५) जो जिस योग्य था, [उन्होंने] उसको वैसा दान दिया, और अपनी यश-कीर्ति कर ली । (६) संपूर्ण रूप से पूर्णिमा की रात्रि थी, वे फूलों की शैया बिछा (बना) कर सोए । (७) [पुष्प-राशि की] सुवास पर लुब्ध एक सर्प आया, और आते ही उसने चांदा को [काट] खाया ।

टिप्पणी—कलिंग उस समय संभवत : एक अनुर्वर राज्य था, जिससे वहां के

भिक्षुक पड़ोस के राज्यों तक में जाकर भिक्षा मांगते थे। अवधी प्रदेश में अब तक ऐसे फटे-हाल मंगतों को 'करिंगा' कहा जाता है।

(३०६)

'डंसतहि चांद भई अंधियारी। पैंग भरत बिसंभरि भइ बारी'।
खतरी खाइ 'चला फुफुकारी'। लोर बीर सुनि लाग गुहारी।
'पैसत बामीं लोर' कर गहा। तस 'पटकेसि' जस 'ठावहिं' रहा।
मारि भुवंग 'लोर जउ' आवा। चांद मुई लोरिक गुहरावा।
'लोरिक बांभन सोवत जगाएउ'।
घर घर 'कहहीं' 'अै(अइ)स' 'केहि खाएउ'॥
'नगर सोर जब अथवा परा घरहिं घर सोग।
तिरिया पुरुख उबरि गएउ(गए?) तहं बिधि दीन्ह बिजोग॥'

सन्दर्भ—म० पत्र १६३ (?), बी० १०३४-१०३७।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सात', जो अगले का है।

मै० यहां पर त्रुटित है, उसकी पत्र-संख्या २६० नहीं है। संभवत: यहां पर उसका आदर्श भी त्रुटित था, क्योंकि पत्रों के साथ के चित्र उन्हीं के कडवकों के हैं।

शीर्षक—म० : दास्तान बेहोश शुदन चांदा अल मुजर्रद खुरदन मार।

पाठान्तर—(१) १. बी० चांदा द्रिष्टि भइ उजियारी : बिसु चरि गयो न उठी नारी। (२) १. बी० चले रभकारी। (३) १. बी० पेट पान जाइ। २. बी० पटसि। ३. बी० ठावै। (४) १. बी० बीर जौ। (५) १. बी० बांभन सूत जागसि अस भाई। २. बी० सब। ३. बी कौहु घाई। (६-७) १. बी० मै दोहा है :

नगर फिकारा उभथा परिहै सभा षभोरु।
तिरी पुरषु जो निया बिधि दीनौ र बिछोरु॥

बी० में इसके पूर्व अधिक है : बारा चांद जै कीन्ह अजोरा : चांद राह लै गंगेवैहि जोरा।

अर्थ—(१) डंसते भर में चांद अंधकार-पूर्ण हो गई (काली पड़ गई), डग भरते ही वह बालिका बेसंभाल (अचेत) हो गई। (२) स्त्री (चांदा) ने कहा, "ऐ क्षत्रिय (वीर), वह काट कर और फुफकार कर चला जा रहा है।" यह सुनकर लोरिक वीर (चांदा की) गुहार लगा (सहायता

के लिए दौड़ पड़ा)। (३) [सर्प के] बिल में प्रविष्ट होते ही लोरिक ने उसे हाथ से पकड़ लिया, और उसे [भूमि पर] ऐसा पटका कि वह उसी स्थान पर रह गया। (४) जब सर्प को मार कर लोरिक आया, तो उसने पुकार लगाई, "चांदा मर गई!" (५) लोरिक ने ब्राह्मण को [जिसके आवास पर वह ठहरा हुआ था] सोते हुए से जगाया; घर-घर में लोग कहने लगे "किस [जंतु ने] ने [चांदा को] इस प्रकार काट खाया है?" (६) नगर में जब यह शोर अस्तमित हुआ, घर-घर में शोक पड़ गया। (७) [लोग कह रहे थे,] "स्त्री-पुरुष जब [किसी प्रकार संकटों से] बचे भी, तो विधाता ने उन्हें [एक-दूसरे का] वियोग दे दिया!"

(३१०)

रइंनि 'भुवंग परि' काहू न सोवा। 'जेइं रे' सुनां सो 'धाहहिं' रोवा।
तंतु न मंतु न ओखधु 'जोरा'। 'अउर सहेलिन्ह बन्हन तोरा'।
लोरिक बीर बहु 'कारनु करई'। 'चाह कटारइ कंठ दइ मरई'।
'जेहिं' 'लगि तजेऊं सभ घर बारू'। 'तेहि बिन कस अब जिवन' अधारू।
'चंदन काटि कइ चितइ रची। आनि आगि तेहिं ऊपर संची'।
'लइ बैसंदरु बारइ कइसें [इं?] धर सियराइ'।
'दई गुनी एक आना चांदा लीन्ह जिलाइ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६४, बी० १०३८-१०४०।

म० में इसके बाद तर्क है 'सावन', जो अगले कडवक का है, मै० के विषय में दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—म० : व अजज़ व इलहाज व ज़ारी करदन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० नगर महि। २. बी० जिहि र। ३. बी० झोहैं। (२) १. बी० मोरा। २. बी० कैसे उपरि करिये सोरा। (३) १. बी० करनु करिये। २. बी० चाहि कटार कंठ गै सरिये। (४) १. बी० जिहि। २. बी० तज्यौ सभै परिवारू। ३. बी० अब तू कह (हु) न जिये। (५) १. बी० चंदन काटिहि चिहि चिरावा : ले चादेहि उहि उपरि छावा। (६) १. बी० षेव बैसंदरु बीना मार्‌यों रहहि बराई। (७) १. बी० दई संजोग लोरिक कर येत्यों चांदा आनि दिवाई।

अर्थ—(१) उस रात में, जो सर्प के प्रकार की [ही] थी, कोई भी न सोया; जिसने भी वह सुना, वह धाड़ मार कर रोया। (२) न तंत्र,

न मंत्र और न ओषधों का योग चल सका, और सहेलियों ने भी चांदा के [वस्त्राभूषणादि के] बंधन तोड़ दिए। (३) लोरिक वीर बहुत कारुण्य [-पूर्ण प्रलाप] कर रहा था, और चाहता था कि कंठ में कटार दे कर वह मर जाए। (४) [वह कहने लगा,] "जिसके लिए मैंने समस्त घर-बार छोड़ा, उसके बिना अब जीवन का आधार किस प्रकार [होगा] ?" (५) [चांदा के साथ भस्म होने के लिए] उसने चंदन की लकड़ियां काट कर चिता रची और अग्नि [भी] लाकर उस पर संच दी। (६) आग लेकर जब वह [चिता] जला रहा था कि उसका धड़ किसी प्रकार [भी] [उस पर जल कर] शीतल हो, (७) दैव (ईश्वर) [वहां पर] एक गुणी को ले आया और उसने चांदा को जीवित कर लिया।

(३११)

'सरवन लागि मंत्रु इन्ह कहें'। 'सुनतहि' लोगु 'अचंभइ रहे'।
पहर 'इक राति चांद हुति' डसी।
'डंसतहि मुई न निसि करि बसी'।
अगनित गुनी 'सभइ चलि आवा'। 'होइ अकारन मरन न पावा'।
'जियतइं जीवनु काहूं पाए। 'डंसतहि मुनी परत खरि आए'।
अब 'सो' गुनी मंत्र 'इक बोलइ'। 'तिसु बाचा' हीरा कस 'तौलइ'।
'देखि गुनी मन चिंता' 'आखउं' मंतरु इक बार।
गुरु के बचन 'संभारउं' जीउ देइ करतार॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६४, बी० १०४१-१०४३।

मैं० के संबंध में देखिए पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—दास्तान आमद गारुरी व गुफ़्तन मंतर बर चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुगनि येकु मंत्रु उनि कहा। २. बी० सुनि कै। ३. बी० अचंभै रहा। (२) १. बी० येक रहतेहि बाह। २. बी० डसते न जानौ गहनै कसी। (३) १. बी० आयो तिह ठावा। २. बी० भई उकार मरन नहि पावा। (४) १. बी० जसतें जीवनु काहू पाई। २. बी० तब ही मुवा जहा हूते षाई। (५) १. बी० योहु। २. बी० कस बोलै। ३. बी० बिनुत करी। ४. बी० तौलै। (६) १. बी० देखु गुनी जु सभै जसवंता। २. बी० कहै। (७) १. बी० संभारै।

अर्थ—(१) इसने [चांदा के] कानों में लग कर एक मंत्र कहा, और

उसको सुनते ही लोग आश्चर्य-चकित रह गए। (२) एक प्रहर रात्रि में (रात्रि व्यतीत होते) चांदा [सर्प के द्वारा] डंसी गई थी, और उसके डंसते ही वह मृत हो गई थी और रात भर के लिए भी नहीं बसी थी (जीवित रही थी)। (३) [वहां] अगणित गुणी थे और वे सभी [उसका उपचार करने को] चले आए थे कि अकारण मरण न होने पाए। (४) जीवित रहते हुए जीवन [भले ही] किसी ने पाया हो, [अन्यथा विषधर के] डंसते ही वे मुनि भी पड़ (मर) जाते हैं जो खरी (बड़ी) आयु वाले होते हैं। (५) अब वह गुणी एक मंत्र कह रहा था और उस [मंत्र] की वाचा (शब्दावली) को हीरे के जैसा तौल रहा था। (६) [उसकी अवस्था] देख कर गुणी मन में सोचने लगा, "एक बार मैं मंत्र कहूं (७) और [साथ ही] गुरु के वचनों का स्मरण करूं, तो [संभव है] कर्त्ता (ईश्वर) जीव-दान कर दे।"

(३१२)

'चांदहि फिरि जिउ नवा संचारू। फुनि लोरिक मनि सुषै (ख़) अपारू'।
कर 'कंगन' अभरन सभ 'दीन्हां'। 'अउ सो गारुरि मांगि कइ लीन्हां'।
'हिरदइं सुमति चली फिरि आई'। 'कीन्ह' सुखासनु चांद चलाई।
'दुहुं के मन कइ' पूजी आसा। करहिं बहुत मन' भोग बिलासा।
अलख निरंजनु 'जाहि जियावइ'। 'दइअ क लिखा सो मानुस पावइ'।
अरथ दरब 'सभ होइहि' 'चांदा' 'जउ जीवन सयंसारि'।
तुम्हं मुए 'हम फुनि चांदा' मरत न 'लागति' बार॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६५, बी० १०४४-१०४६।

मैं० के संबंध में दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'दसीदन', जो बाद के कडवक के फ़ारसी शीर्षक का ज्ञात होता है। म० में इस कडवक के बाद के दो पत्र नहीं हैं, जिन पर चार कडवक रहे होंगे।

शीर्षक—म० : दास्तान नरिंदः शुदन चांदा अली फ़रमान खला इन माली।

पाठान्तर—(१) १. म० पिरम मंत्र जउ गारुरि पढ़ा : बिख लहरि सुनि चांदहि चढ़ा। (२) १. बी० कंकन। २. बी० दीया। ३. बी० बोटै लोर बांधि कर लीया। (३) १. बी० चला लोर तिल इक न रहाई। २. बी० फाद। (४) १. बी० चला लोर मन। २. बी० बहुते करिहैं। (५) १. बी० भुवाह जिवावै। २. बी० जोइ लिष्या सु सोई पावै। (६) १. बी० सब होय-

है। २. बी० में नहीं है। ३. बी० जे जीवत सैंसारि। (७) १. म० तुहु मंइं होत जिउ देतउं। २. बी० लागै।

अर्थ—(१) चांदा को फिर नए जीवन का संचार हुआ, तो लोरिक के मन में अपार सुख हुआ। (२) हाथों का कंगन और समस्त आभरण [लोरिक ने गारुड़ी को] दे डाला, और गारुड़ी ने भी उनको मांग कर लिया। (३) [चांदा के] हृदय में सुमति (चेतना) पुनः आ गई, तब लोरिक सुखासन (एक प्रकार की पालकी) [का प्रबंध] करके [अपने साथ] चांदा को ले चला। (४) दोनों के मन की आशा पूरी हुई, और वे मन में बहुत भोग-विलास [की कल्पना] करने लगे। (५) [लोरिक ने कहा,] "अलख-निरंजन जिसको जिला देता है, वह मनुष्य दैव (विधाता) का लिखा (कर्म का भोग) [भी] पाता है। (६) इसलिए ऐ चांदा, यदि संसार में जीवन रहा, तो अर्थ-द्रव्य आदि सभी होंगे। (७) किन्तु तेरे मृत होने पर मुझे [भी] मरते देरी न लगती।"

२१. द्वितीय सर्पदंश (बिसहर) खण्ड

(३१३)

चलत चलत जउ भइ गइ 'सांझा'। 'कीन्ह' बसेरा बन खंड 'मांझा'।
'पाकरि रूंख' देखि 'छतनारी'। 'तेहि' तरि बसे पुरिषु 'अउ' नारी।
'जेंइं' भूंजि सुख सेजि डसाई। 'सूता सूरिज चांद गियं' लाई।
'अंथए जोन्ह' 'भएउ' अंधियारा। 'पाछिलि' राति होत 'भिनुसारा'।
'तेहिं' खिन बिसहर दीन्ह दिखाई। 'चांदहि' 'डंसि कइ' 'गएउ' लुकाई।
'असि सुकुवारि' 'जो लहरि न आई' 'खात' गई मुरुझाइ।
एकु बोलु 'पइ बोलिसि चांदा' 'लोरहि सोवत' जगाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६१, भो० पत्र ३३ (नवीन), बी० १०७१-१०७३। म० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं० : मांदने लोरिक व चांदा शब्द दरे बयाबां व मार ख़ुरदने चांदा रा ज़ेरे दरख़्त।

भो० : अज़ रफ़्तन राह शब दर आमद व फ़रूद आमदंद ज़ेरे दरख़्त पाकर व मार गुज़ोद चांदा रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० संझा। २. बी० लीन्ह। ३. बी० मंझा।

(२) १. बी० पाकुरि रूखु। २. बी० छतभारी। ३. बी० ता। ४. बी० औ। (३) १. भो० जेइं, बी० जीय (जेंइ—फ़ा०)। २. बी० सोवत चांद सुरिज गै (गिय—फ़ा०)। (४) १. मैं० अथए जोन, बी० अंथई जोन्हि। २. भो० भए, बी० भयो। ३. बी० पिछली। ४. बी० भुनसारा। (५) १. बी० तिहि। २. मैं० चांदइ। ३. मैं० डसि कइ, बी० डसि कैं। ४. बी० गयो। (६) १. भो० अति सुकुवारि, बी० अस कुंवरि। २. बी० लहरि न आई, मैं० लहरि जउ आई। ३. भो० खातहि। (७) १. बी० पै बोलसि, भो० पइ बोली चांद। २. बी० सोवत लोरु।

अर्थ—चलते-चलते जब संध्या हो गई, तब उन्होंने [एक] वन-खंड में बसेरा किया। (२) एक पाकर का छतनार (पत्र-बहुल) वृक्ष देख कर वे पुरुष तथा स्त्री उसी के नीचे बस रहे। (३) खा-पीकर उन्होंने सुख-शैया बिछाई, और सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को गले लगा कर सो गया। (४) ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) के अस्तमित होने पर जब अंधेरा हो गया था, और पिछली रात में जब भिनुसार (प्रभात) हो रहा था, (५) उसी क्षण (बेला) में [एक] विषधर दिखाई पड़ा और वह चांदा को डस कर छिप गया। (६) वह ऐसी सुकुमार थी कि उसे [सर्प-दंश की] लहर भी न आई और वह [सर्प के] काट-खाते ही मुर्झा गई। (७) केवल चांदा लोरिक को सोते हुए से जगा कर एक बोल बोल सकी।

(३१४)

चांदा लोरहि कहा जगाई। उठहु नाह धन बिसहरि खाई।
चरि गै बिसु औ नारि न बोलै। जाग्यो(गेउ) नाहु सोवत धन तो लै।
चांद चांद कै मेलसि धाहा। रोइ रोइ लोर खेह सिर बाहा।
झगा फारि पाग भुई मारी। कहै पेट हनि मरौं कटारी।
कुकरमु करि संग लाग्यों(गेउं) तोरैं। तू फुनि हाथ न लागहि मोरैं।
बाट माझ ठसकावसि किय(ए)सि बिरहि मोहि जारि।
लहन मोर अस ही है चांदा कवन खोरि तुम्हारि॥

सन्दर्भ—बी० १०७४-१०७६।

मैं० यहां पर त्रुटित है। उसके पत्र २६१ पर जो चित्र है वह इसी कडवक का है, उसमें लोरिक खड़ा और चांदा विष-मूर्छित दिखाई गई है। भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे जो तर्क है वह इसी कडवक का है। म० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) चांदा ने लोरिक को जगाकर कहा, "हे स्वामी उठो, [तुम्हारी] धन्या (स्त्री) विषधर (सर्प) द्वारा खा (काट) ली गई है।" (२) [तब तक] विष चढ़ गया था, और स्त्री बोल नहीं रही थी, स्वामी उठा तो वह स्त्री [तब तक] सो (पड़) गई थी। (३) "चांद, चांद" [कह] कर वह धाड़ मारने लगा, और वह लोरिक रो-रोकर सिर पर मिट्टी फेंकने (डालने) लगा। (४) उसने झगा (वस्त्र) फाड़ कर पाग भूमि पर पटक दी, और कहने लगा, "मैं पेट में कटार मार कर मर जाऊंगा। (५) कुकर्म कर (अपनी विवाहिता को छोड़कर) मैं तेरे संग लगा, फिर भी तू मेरे हाथ न लगी! (६) तू मुझे बाट में ही धोखा दे रही है और मुझे विरह में जला रही है। (७) मेरा प्राप्य (भाग्य) ही ऐसा है; हे चांदा, इसमें तुम्हारा कौन-सा दोष है?"

(३१५)

'छाडेउं' भाइ बाप महतारी। 'तजेउं बियाही' 'मैनां नारी'।
लोगु 'कुटुंबु' घरु बारु 'बिसारेउं'। देसु छाडि परदेस 'सिधारेउं'।
'गांउं ठांउं' पोखर अंबराई। 'परिहरि निसरेउं' 'कूंवा बाई'।
अरथ दरब 'कर' लोभु न 'कीन्हेउं'। चांद सनेहि 'देसंतरु लीन्हेउं'।
बिचि 'हौं(हउं)' 'बाट' परी करतारा। 'ना' धनु 'भएउ' न मीतु पियारा।
'यह रे' बात 'सभ जानहिं' 'चांद मोर होत परान'।
जउ जिउ 'जाइ कया कस दीखइ' 'मइं' का 'करबि' अपान॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६२, भो० पत्र ३४ (नवीन), बी० १०७७-१०७९। म० यहां पर त्रुटित है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—मैं० : गिरियः करदने लोरिक अज़ बेहोशी चांदा।

भो० : तनहाई व बेकसी खुद नमूदन लोरिक अज़ बराय चांदा मुतअ़ल्लिक़ शुदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० छाड्यों। २. बी० तज्यौं बिवाही। ३. बी० मैं नारी। (२) १. बी० कुटंबु। २. बी० बिसार्यौं। ३. बी० सिधार्यौं। (३) १. बी० गाव ठाव। २. बी० परहरि निकर्यो। ३. मैं० गवन उपाई। (४) १. बी० का। २. बी० कीन्हा। ३. बी० दिसंतरु लीन्हा। (५) १. मैं० होइ। २. मैं० बाट बाट। ३. मैं० नहि। ४. बी० हुवा। (६) १. मैं० इहइ, बी० यह र। २. मैं० अब जानउं, बी० सभ जानसि। ३. मैं० तोरें मरन निदान। (७) १. बी० होय कया हौं देषौं। २. बी० हौ। ३. बी० करिब।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "मैंने भाई, बाप, मां को छोड़ा, और विवाहिता नारी मैनां को छोड़ा, (२) लोक, कुटुंब और घर-बार को विस्मृत किया, देश को छोड़ कर परदेश चला; (३) गांव, स्थान, पोखर (तालाब) आम्राराम, कूप तथा वापी को छोड़ कर निकला, (४) अर्थ और द्रव्य का लोभ मैंने न किया और चांदा के स्नेह में देशान्तर [का वास] ग्रहण किया, (५) बीच में, ऐ सृष्टि कर्त्ता, मुझ पर यह बाट पड़ी (यह डाका पड़ा) कि न धन [मेरे साथ का] हुआ, और न [मेरी] प्रिय मित्र [मेरे साथ की] हुई! (६) ऐ चांदा, यह बात सभी जानते हैं कि तू ही मेरा प्राण है। (७) यदि जीव चला गया (तुम चली गईं), तो काया कैसे दीखेगी (मैं कहां जीवित दिख सकूंगा)? तब मैं अपने आत्म (जीव) को [रख कर ही] क्या करूंगा?"

(३१६)

जीउ 'पइसारा' निसरि न जाई। बिसु 'न' 'गांठि' 'मरतेउं जेइं' खाई।
'मरिहउं' 'कवनें करि' उपगारा। जीभ खांडि हनि मरउं कटारा।
चांद 'मुएं' कत 'पावइ' लोरा। 'साथि गएं' 'सोवहि गियं मोरा'।
नैन नीर 'भरि' सायर 'पाटी'। 'नाउ चढ़ाइ' चांद गुन 'काटी'।
'दई' गुसाईं सिरजनहारा। तोहि छाडि 'किसु' करउं पुकारा।
जस 'कीन्हेउं तस पाएउं' 'रहेउं' चांद मनु लाइ।
जो 'बाउर मनुसइं' 'चितु' 'बांधइ' सो 'अइसेहिं' पछिताइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६३, म० पत्र १६५ (?), भो० पत्र ३५ (नवीन), बी० १०८०-१०८२।

शीर्षक—मैं० : अैजन। म० : गिरीस्तन लोरिक फ़रियाद करदने ऊ।

भो० : जाने खुद फ़िदा साख्तने लोरिक अज़ बराए चांदा वाक़याए हाल खुद बाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० पपिया, म० पियारा। २. म० नहिं। ३. बी० गंठिना, ४. म० मरब जा, भो० जो मरतेउं, बी० त्यों मरत्यों। (२) १. बी० मरिहौं। २. म० कवनउं कइ, मैं० कोई करी (करि), बी० कौन करि। ३. बी० षंडि। (३) १. बी० मुइ। २. म० पावहि, भो० पाउब, बी० पाइहौं। ३. बी० साथनि गई, मैं० म० साथ गए। ४. म० सोइहि तोरा,

भो० सोइहि गियं सभनहि मोरा, बी० सोभ लै । (४) १. म० भो० मइं, बी० मो । २. बी० फाटे । ३. बी० नाव चराय । ४. बी० काटे । (५) १. म० दया । २. म० भो० केहि, बी० कस (किसु—फ़ा०) । (६) १. बी० जस कीन्हौं तस पायों । २. बी० रह्यों । (७) १. म० बाउर मनुसहि, बी० बावर मनसहि । २. मै० चित (चित्त) । ३. बी० बाध्यो । ४. बी० अैसैं ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "[मेरे शरीर में] जो जीव का प्रवेश है, वह निकल कर जा नहीं रहा है; गांठ में विष भी नहीं है, जिसे खाकर मर जाता । (२) [फिर] किस उपकार (उपाय) के द्वारा मरूंगा ? जिह्वा को खंडित करके और कटार का आघात करके मरूंगा । (३) ऐ चांदा, तू उसके मरने पर लोरिक को कहां पा सकेगी ? साथी के जाने पर तू ग्रीवा मोड़ कर सोया करे ! (४) नेत्रों के नीर से सागरों को भर कर मैंने पाटा, तो [उस अश्रु-सागर से पार करने के लिए] ऐ चांदा, तूने नाव पर मुझे चढ़ाकर उसका गुण (रस्सा) काट दिया !" (५) "ऐ दैव, स्वामी और सृष्टि कर्त्ता, तुझे छोड़ कर किस की पुकार (गुहार) करूं ? (६) मैंने जैसा किया, वैसा पाया, [क्योंकि] मैंने अपने मन को चांद (चांदा) से लगा कर रक्खा था । (७) जो बावला मनुष्य से चित्त को बांधता है, वह इसी प्रकार पछताता है ।"

(३१७)

'बैरिनि भइ सो पाकरि' रूंखा । 'जेहिं' तरि बसें 'परा' मोहि दूखा ।
काटि पेड 'जरि मूरि उपारउं' । 'डारि डारि' 'चइरी कइ' 'फारउं' ।
सरु रचि आगि चहूं दिसि 'बारउं' । चांद 'लाइ' 'गियं आपुहि' 'जारउं' ।
देस 'देस मोरी भइ गइ' लाजा । सूरिजु 'चांद क निसि' 'लइ' भाजा ।
'अब जउ पिरिति नहिं ओर निरीबाहउं' । नरक कुंड सभ पुरुषा बाहउं ।
पति न होइ सत 'छाडें' हानि होइ कुर कांनि ।
'तउ रें बीर' 'जउ सिर पहुंचावउं' धीय 'पराई' आनि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६४, म० पत्र १६७, बी० १०८३-१०८५ ।

म० में इसके बाद तर्क 'कारी' है जो अगले कडवक का है । भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क 'बैरिनि' है, जो इसी का है ।

शीर्षक—मै० गुफ़्तने लोरिक दरख्त पाकर रा ।
म० : मलामत करदन लोरिक अज़ दरख्त रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बैरनि भयो सु पाकुरि । २. बी० जा । ३. बी० परै । (२) १. बी० जरमूर उजारौ । २. बी० डार डार । ३. बी० छेदि कैं । ४. मै० बारउं, बी० फारौं । (३) १. बी० बारौं । २. म० लागि । ३. बी० गैं आपनु । ४. बी० जारौं । (४) १. मै० देसंतर भइ मोरि । २. म० चांदहि, बी० चांद कै । ३. बी० लै । (५) १. मै० जउ एह बात ओर निरबाहउं, बी० अब जैं पिरति न वोरि निबाहौं । (६) १. बी० हारे । (७) १. मै० तोरें बूत, बी० तौरे पुरषु । २. बी० वोरि निबाहौं । ३. म० परारी ।

अर्थ—(१) पाकर का वह (यह) वृक्ष मेरा वैरी हुआ, जिसके नीचे निवास लेने के कारण मुझे दुःख [झेलना] पड़ा । (२)[इस] पेड़ को काट कर इसको जड़-मूल से मैं उत्पाटित कर रहा हूँ और [इसकी] एक-एक डाल को चैलियों के रूप में फाड़ (चीर) रहा हूं । (३)[उससे] शर (चिता) रच कर चारों ओर से आग जला रहा हूँ और चांद को गले से लगा कर अपने आपको उसमें जला रहा हूँ । (४) मेरी यह लज्जा [की बात] देश-देशान्तर में हो चुकी है कि सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को रात में लेकर भाग गया है । (५) यदि अब प्रीति का समाप्ति तक निर्वाह न करूँ, तो मैं [अपने] समस्त पूर्व-पुरुषों को नरक कुंड में झोंक दूंगा । (६) सत्य छोड़ने से पत (प्रत्यय) नहीं रहता है, और कुल-कानि की हानि होती है, (७) [अतः ऐ चांदा,] तुझ पराई कन्या को लाकर यदि इस प्रीति को सिरे (समाप्ति) तक पहुँचाऊँ, तभी मैं वीर हूँ ।"

(३१८)

'कारे' नाग 'सतुर' 'बटवारे' । मींत 'बिछोह' दीन्ह हतियारे ।
'बरु मोहि खातिसि' फिटु रे कुजाती । काहे 'दूखे' मोर 'संघाती' ।
'तोरें' 'ठांउ आइ जउ बसई' । 'पुरुखछाडि मेहरिहि कत' 'डसई' ।
मंतरु सकति 'किएं' सतुरु 'चलावा' । 'केइं रे' 'नाग तूं गोहनि लावा' ।
'कइ तूं' बावन बीर पठावा । 'चांदहि डसइ' नाग होइ आवा ।
'जेहिं' कारनि 'मइं जीव निबारा' 'देखउं' बहुल संताप ।
तेहि सेतीं बिच 'बाहे' 'अरु पचि' मारे 'साप' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६५, म० पत्र १६७, भो० पत्र ६२ (नवीन), बी० १०८६-१०८८ ।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने लोरिक बर मार रा व तास्सुफ़ खुरदन ।
म० : मलामत कर्दने लोरिक व बददुआए करदने मार रा ।

भो० : बामाद: गुफ़्तने लोरिक वाक़ए हाल खुद अज़ बुराई चांदा अंदेश मंद ।

पाठान्तर—(१) १. भो० काले । २. बी० सतर । ३. म० भो० वट-वारे । ४. बी० बिछोर । (२) १. बी० बरि मोहि षात कि । २. बी० डसिया, मैं० देखे (?), म० दूखे तइं । ३. बी० संगाती । (३) १. मैं० तोरे, बी० तोरी (तोरे—फ़ा०) । २. बी० ठाव आइ जौ बसे । २. म० पुरुख छाडि कस तिरि ही, मैं० पुरुष छाडि कत नारी, बी० पुरषु छडि कत मिहरी, भो० पुरुख छाडि मेहरिहि कस । ४. बी० डसै । (४) १. मैं० केई, बी० के । २. म०, भो०, बी० सतुरु (सतरु—बी०) पठावा (तुल० पांचवी अर्द्धाली) । ३. बी० कै र । ४. म० भो० काल तू गोहनि (गोहनहि—भो०) लावा, मैं० नाग तूं गोहनि आवा । (५) १. भो० कै तोहि, बी० कै तहु । २. बी० चांदहि डसें, मैं० चांदइं डसहिं । (६) १. बी० जिहि । २. म० हउं जीव निबारेउं, बी० हौं जीउ उबारौं । २. बी० देषौं । (७) १. बी० पारा । २. बी० रे बिजु, भो० पचि र (रे) । ३. मैं० सांप सांप ।

अर्थ—(१) ऐ काले नाग, सत्वर डाका डालने वाले, ऐ हत्यारे, तूने मुझे मित्र का वियोग दिया ! (२) भले ही तूने मुझे खाया होता ! ऐ कुजाति, तू नष्ट हो जा, तूने मेरे संगी को क्यों दोष (दु:ख) पहुँचाया ? (३) यदि [कोई] तेरे स्थान पर आकर बसे, तो तू पुरुष को छोड़ कर नारी को क्यों डंसे ? (४) [अथवा] तू शक्ति से सत्वर चलाया हुआ मंत्र है ? ऐ नाग, तुझे किसने साथ लगा दिया था ? (५) अथवा, तू बावन वीर का भेजा हुआ था, और चांद को डंसने के लिए नाग बन कर आया हुआ था । (६) जिस [चांदा] के कारण मैंने [गोवर से भागकर] अपना जीव बचाया, और [जिसके कारण] मैंने बहुतेरे संताप देखे, (७) उसी [चांदा] से तूने बीच डाल दिया, और हार कर, ऐ सर्प, [उसी को] तूने मारा !"

(३१९)

'कइ रे' कुदिन 'हम' पायंतु धरा । 'कइ रे कलापु' 'मांजरि' 'कर' परा ।
'कइ रे कुटुंब' जिउ भारी कीन्हा । 'कइ रे' सरापु माइ मोहि दीन्हां ।
'घरी' धरत 'कइ' पंडितु भुलानां । 'कइ हम' 'कुसगुनि' कीत पयानां ।
अत 'बड भएउं न चांटु दुखाएउं' । 'कवन' पाप दइया 'मइं' पाएउं ।
'यह रे' महर धिय 'नारि' 'अदोसी' । 'केइं रे' निपूती चांदा कोसी ।

'कइ केहुं' किच्छु 'देइ मोकरावा' दोसु भुवंगहि लाग ।
'कवनि नींदि' तुम्हं 'सूतिहु' चांदा 'सपनहि भएउ' सुहागु ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६६, म० पत्र १६८, भो० पत्र ३६ (नवीन), बी० १०८९-१०९१ ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क 'नाग भेंस' है, जो अगले कडवक का है । भो० में पूर्ववर्ती कडवक के नीचे तर्क 'कै' रे कुदिन' है, जो इसी कडवक का है ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कै र । २. भो० मइं । ३. बी० कै सरापु, म० कइ कराप । ४. मैं० मैनां । ५. बी० का । (२) १. बी० कै कुटंब । २. बी० कै रु । (३) १. बी० घरी । (घरी—फ़ा०) । २. मैं० गा, बी० कै । २. भो० कै मइं, बी० कै हम । ३. मैं० कुसगुन कुसगुन, बी० कुसुगनि । (४) १. बी० बर भयो उचाटु दुषायों । २. बी० कौन । ३. म० हउं, बी० मैं । ४. बी० पायों । (५) १. बी० रु । २. म० भो० चांद । ३. भो० निदोषी । ४. बी० कै रु । (६) १. मैं० कइ केउं, बी० कै काहू । २. म० देइ मोगलावा, भो० देइ मोगराए, बी० दौ सुकरावा । (७) १. बी० कौन नींद । २. मैं० सूती, बी० सोवोहु । २. मैं० सपनेइं भयेउ, बी० सुपनै भयो ।

अर्थ—(१) "या तो हमने किसी बुरे दिन को पायंत रक्खा (प्रस्थान किया), अथवा हम पर मांजरी (मैनां) का कलाप (दु:खित होने का प्रभाव) पड़ा है ? (२) अथवा, मेरे कुटुंबियों ने जी भारी किया है ? अथवा, मेरी माता ने मुझे शाप दिया है ? (३) अथवा, [यात्रा की] घड़ी निर्धारित करते हुए पंडित ने भूल की है ? अथवा, हमने कुशकुनों में प्रयाण किया है ? (४) इतना बड़ा (इतनी बड़ी अवस्था) का हो गया हूं, [किन्तु] मैंने चींटे को भी दु:खित नहीं किया है; [तब] यह कौन-सा पाप (किस पाप का भोग), हे दैव, मैंने पाया है ? (५) महर की यह दुहिता निर्दोष नारी है, [फिर] किस निपूती के द्वारा चांदा कोसी गई है ? (६) अथवा, किसी ने कुछ दे (खिला) कर इसे मुक्त किया (आने दिया), और दोष भुजंग को लगा है ? (७) ऐ चांदा, तुम कौन-सी निद्रा में सो गई हो कि स्वप्न ही मेरा सौभाग्य हुआ है ?

(३२०)

नाग भेस होइ 'केइं' धनि 'हरी' । 'लोरहि' राम अवस्था परी ।
रामहि हनिवंतु 'भएउ संघाता' । मोहि न 'कोइ' बिनु दई बिधाता ।

'दुसर न कोउ जो कर' उपगारा। सिरजनहार 'देहि' निस्तारा।
'हनिवंत सीता कहं धसि बारी'। लंका खूंट खूंट 'परजारी'।
'हउं फुनि' 'चांद हरी जउ' 'पावउं'। लंका 'छाडि पलंका' 'धावउं'।
'ओखदि मूरि' चांद 'जेहि बहुरइ' 'जउ' 'कोइ देइ बताइ'।
'सातउ बादर' 'सात भुइं' इक इक 'ढूंढउं' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६७/१, म० पत्र १६८, भो पत्र ३७ (नवीन), बी० १०६२-१०६४।

शीर्षक—मैं० अंजन लहू। म० : फ़रियाद व ज़ारी करदन लोरिक व ग़ुरबी व तनहाई ख़ुद रा।

भो० : वाक़अ हाल ख़ुद नमूदन लोरिक चुनांचि राम उफ़्तादह बूंद बराए सीता रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कैं, मैं० में नहीं है। २. मैं० बी० धरी। ३. बी० लोरिक। (२) १. बी० भयो सगाता। २. बी०, भो० केऊ, म० कोउ। (३) १. बी० दुसर न कोई करि, म० मरहुं कोई जो करइ। २. मैं० देवहि। (४) १. बी० हनिवति सीता कौ धस मारी। २. मैं० कइ जारी, भो० फिरि जारी। (५) १. बी० हौं फुनि, मैं० हउं पुनि, भो० हौं जउ। २. भो० चांद हरी सुनि, बी० चांदै हिरी ज्यों। ३. भो० पावहुं, बी० पाऊं। ४. बी० छोडि बिलंका। ५. मैं० जावउं, भो० धावहुं, बी० धाऊ। (६) १. बी० औषध मूरि। २. मैं० केहु जियई, भो० जेहि जीवइ, बी० जौ बहुरै। ३. म० जोति, मैं० में नहीं है, बी० है। ४. म० भो० केउ (कोइ—म०) देइ दिखाइ, (७) १. बी० सातौ बादर, म० भो० सातउ सरग। २. बी० सातौ भुई इक इक। ३. बी० ढूढौं, बी० भो० हेरउं।

अर्थ—(१)[उसने कहा,] "नाग के वेष में होकर किसने [इस] स्त्री को हर लिया कि लोरिक को (के ऊपर) राम की जैसी अवस्था (विपत्ति) पड़ गई? (२) राम को तो हनुमान का संग हो (मिल) गया था, जब कि मुझे विधाता के बिना (अतिरिक्त) कोई नहीं है। (३)[मेरा] दूसरा कोई नहीं है जो उपकार (उपाय) करे; ऐ सृष्टिकर्ता, तू ही मुझे [इस संकट-सागर से] निस्तार दे! (४) हनुमान ने सीता के लिए [अशोक] वाटिका में धंसकर (प्रविष्ट होकर) लंका को तनिक-तनिक करके जला दिया था, (५) मैं भी यदि हरी हुई चांदा को पा सकूं, तो लंका को छोड़कर [उसके आगे] पलंका तक दौड़ जाऊं। (६) चांदा जिस सेबाहुड (लौट) जाए (आए)

यदि कोई मुझे ऐसी औषधि-मूल बता दे, (७) तो उसे मैं सातों बादलों (आकाशों) तथा सातों भूमियों [में से] एक-एक में जाकर उसे ढूंढ़ डालूं।"

(३२१)

चांद लागि 'मइं' बहु दुख 'देखा'। गनत न 'आवइ' 'एकउ' 'लेखा'।
मारेउं बांठ 'किएउं सुध' राई। 'राखेउं' 'महरा कइ' महराई।
'परेउं खाट लइ' 'पिरम जउ' मारा। आइ बिरसपति दीन्ह अधारा।
एकु 'बरिस' 'मढ देवर जागेउं'। जोगी 'भेख भीख फुनि' 'मांगेउं'।
बरहा मेलि सरगि 'चढ़ि धाएउं'। सिर 'सेउं' खेलि चांद 'लइ आएउं'।
चोरु चोरु 'कइ' मारत 'उबरेउं' 'तेइं धनि लिएउं छुड़ाइ'।
अब 'तेइं' 'धनि' बनखंडि 'कइ छाड़ेउं' 'केंहि गुहराऊं(वउं) जाइ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६६, म० पत्र १६६, बी० १०६५-१०६७।

म० में इस कडवक के नीचे तर्क है 'संगि गो' जो कडवक ३२२ का है।

शीर्षक—मैं० : ऐज़न लहू। म० : दर्द मंदी ख़ुद गुफ़्तन लोरिक दरख़्त मुक़ाबिलन् (?)।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैं। २. मैं० देखे, बी० देख्यों। ३. बी० आवत। ४. म० कवन सो, बी० बनत न। ५. मैं० लेषे, बी० लेख्यौं। (२) १. बी० षदेर्‌यों। २. बी० राषी। ३. बी० महर केरि। (३) १. बी० पर्‌यौ षाट लै। २. बी० पिरम क, मैं० बिरह जउ। (४) १. बी० बरसु। २. बी० मढु देवरु जाग्यौं। ३. मैं० भेस होइ भीख, बी० भेस भीख फिरि। ४. बी० माग्यौं। (५) १. बी० चरि धायो। २. बी० स्यों। ३. बी० लै आयौ। (६) १. बी० मैं० करि। २. म० छूटेउं, बी० में नहीं है। ३. बी० चांदा लियो छुडाइ, मैं० चांद लिएउ लुकाइ। (७) १. बी० तें ले, मैं० तेइ। २. बी० धन, म० धनि पुनि। ३. बी० छाड्यौं। ४. म० गहि गहि आनउं जाइ, बी० किहि गुहराउ जिवाय।

अर्थ—(१) "चांदा के लिए मैंने बहुतेरा दुःख देखा; एक भी लेखे में वह गिनती में नहीं आ रहा है। (२) मैंने बांठ को मारा, राजा [रूपचंद] को शुद्ध (सीधा) किया तथा महर की महराई रक्खी। (३) जब प्रेम के द्वारा मैं मारा गया (आहत किया गया) और मैं खाट लेकर पड़ गया, उस समय बृहस्पति ने आकर मुझे [जीवन का] आधार दिया। (४) एक बरस तक मैं मढ़-देवालय में जागता रहा और योगी के वेश में होकर भीख माँगता रहा।

(५) बरहा (रस्सा) डालकर मैं आकाश (धवलगृह के ऊपरी खंड) पर चढ़ दौड़ा, और सिर (जीवन) के साथ खिलवाड़ कर [वहाँ से] चांदा को लेकर आया। (६) 'चोर' 'चोर' [पुकारा जा] कर मैं मारे जाने से बचा, [उस समय] उस स्त्री ने ही मुझे छुड़ा (बचा) लिया [अन्यथा न बच पाता]। (७) अब उसी स्त्री को, मैंने बनखंड में [ला] कर छोड़ (गंवा) दिया, तो किसको जा कर पुकारूं ?"

(३२२)

'संगि' न साथी 'भइं भइं' रोवा। मित 'जो होत'(हुत)'सो' दई बिछोवा।
आंसू 'सायर भरि' 'उपटाए'। 'नयनन्ह' बनखंड 'रोइ बहाए'।
'कहि कहि' चांद चांद 'गुहरावइ'। 'धुनि धुनि' सीसु नारि'पइं'लावइ'।
उतरु 'न देइ लोर मुंह' जोवा। 'नाग' डसी बिसु 'लहरी(रि)न्ह'सोवा।
'गांउ ठांउ होइ तहं' 'धांवउं'। बिखम उजारि गुनी कत 'पावउं'।
माइ बाप 'गुरु दूलह' दुख न जान कस होइ।
जउ सिर 'परइ' 'तउ हि पइ' 'जानिय' दुखी 'होइ जनि' कोइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६७।२, म० पत्र १६९, भो० पत्र ४६ (नवीन), बी० १०९८-११००।

शीर्षक—मैं० : अंजन लहू। म० : दर तनहायगी व गरीबी खुद गुफ्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० संग। २. बी० भैं भैं। ३. म० जो हुता, बी० जु होत। ४. बी० सु। (२) १. बी० सैर भरैं। २. मैं० उपटावइ। ३. बी० नैनहु। ४. म० रोइ पहाए, मैं० रोइ बहावइ। (३) १. म० करि करि। २. बी० गुहरावै। ३. म० धरि धरि। ४. म० बी० पां, भो० पाय। ५. बी० लावै। (४) १. मैं० न देहि, भो० न देहिं। २. मैं० बी० नारि मुष। ३. म० बी० सांप। ४. लहरन्हि, मैं० लहरइं, बी० लहरेहि। (५) १. बी० गाव ठाव होइ तौ ब, मैं० गांउ ठाउं होइ तहंवा। २. मैं० धावउं, बी० धाऊं, भो० धांएउं। ३. मैं० पावउं, बी० पाऊं, भो० पांएउं। (६) १. बी० की दुलही, मैं० गुरु दूखहि। (७) १. भो० मैं० जौ सिर परा, बी० जिह सिर परै। २. भो० तउ, मैं० सो, बी० सु। ३. बी० म० जानसि, भो० जान्या। ४. बी० होउ जिन।

अर्थ—(१) उसका [अब] न कोई संगी था और न साथी वह घूम-

घूम करके रोया, क्योंकि उसका जो मित्र था, उसे दैव ने उससे वियुक्त कर दिया था। (२) आंसुओं से सागर भर कर [उसके द्वारा] उमड़ाए जा चुके थे और नेत्रों के द्वारा रो-रोकर बनखंड बहाए जा चुके थे। (३) वह 'चांद-चांद' कह कहकर पुकार (चिल्ला) रहा था, और अपना सिर पीट-पीट कर उस नारी के पैरों से लगा रहा था। (४) वह उत्तर नहीं दे रही थी, [इसलिए] लोरिक उस का मुंह देख रहा था, किन्तु वह नाग द्वारा डसी हुई उस के विष की लहरों में सो रही थी। (५) [लोरिक ने कहा,] "यहां कोई गांव-ठांव होता तो वहां दौड़ जाता, इस विषम उजाड़ में कोई गुणी कहाँ पाऊं ? (६) मां, बाप, गुरु और दूल्हा (विवाहित पति) नहीं जानते हैं कि दुःख कैसा होता है। (७) जब वह सिर पर पड़ता है तभी, हो न हो, उसको जाना जा सकता है। [भगवान करे] दुःखित कोई न हो !"

(३२३)

'जरमि' न छूट पिरम कर बांधा। पिरम खांड 'आहइ' बिस सांधा।
'जेहिं यह' चोट 'लागि' 'सो' जानी। 'कइ' लारिक 'कइ' चांदा रानी।
'कोइ' न जान दुख काहू केरा। 'सो पै(पइ) जान' 'परइ जेहिं' बेरा।
पिरम 'आंच' 'जेहिं हियरे लागइ'। नींद 'जाइ तपि तपि' निसि 'जागइ'।
सात सरग 'जउ बरिसहिं' आई। पिरम आगि 'कइसेइं' न बुझाई।
चिनगि एक' जउ 'बाहेर मारइ' 'एहिं' पिरम 'कइ' झार।
भसम 'होइ' 'जरि' धरती 'तिल' इक 'सरग पतार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २६८।१, म० पत्र १७०, बी० ११०१-११०३।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'जेहि', जो अगले कडवक का है।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क है 'जरम', जो इसी का है।

शीर्षक—मैं० : अंजन लहू। म० : दर्द मंदी व सोज आशिक़ां ईशां।

पाठान्तर—(१) १. बी० जनमि। २. मैं० होइ, बी० खइये। (२) १. बी० जें याह। २. म० लागी, बी० लाग। ३. बी० तें। ४. बी० कैं। (३) १. म० सुखी, बी० को। २. म० जानइ सोइ। ३. बी० परै जिह। (४) १. मैं० झार। २. बी० जिहि हीरै लागैं, मैं० जेहिं हिरदैं लागइ। ३. मैं० न जान तपत, बी० जाइ तापित। ४. बी० जागै। (५) १. बी० जौ बरषहिं। २. बी० कैसैं, म० कैसेहुं। (६) १. बी० चिरंग (चिनगि–ना०)

ये [क] । २. बी० बाहुरि मारै । ३. मै० एहि, बी० याहु रु । ४. बी० की । (७) १. बी० होय । २. मै० जाइ । ३. म० खिन । ४. बी० सुरग पतारि ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "प्रेम के द्वारा बांधा (बंदी किया) हुआ कभी छूटता नहीं है, [उसके लिए] प्रेम विष से युक्त किया हुआ खड्ग [होता] है । (२) जिसको इसकी चोट लगती है, वही इसे जानता है; या तो [इसे] लोरिक जानता है और या तो [इसे] चांदा रानी जानती है । (३) कोई [अन्य व्यक्ति] किसी का दुःख नहीं जानता है; उसे, हो न हो, वही जानता है जिस के बेड़े पर वह पड़ता है । (४) प्रेम की ज्वाला जिसके हृदय में लगती है, उसकी नींद चली जाती है, और तप्त होकर वह रात में जागता है । (५) सातों आकाश (आकाशों के बादल) यदि आ बरसें, तो भी प्रेम की आग किसी प्रकार से नहीं बुझती है । (६) प्रेम की यह ज्वाला इसी प्रकार अपनी एक चिनगारी यदि बाहर मार (निकाल) दे। (७) तो उसके एक तिल मात्र से धरती, आकाश तथा पाताल जलकर भस्म हो जाएं ।

(३२४)

'जेहिं रे पिरमु तेंहि' बिरहु संतावा। बिरहु 'जेंहि तेंहि' नींद नआवा।
पिरम सेलु 'आहइ अनियारा' । 'पैग न जोर' 'पिरम कर मारा' ।
पिरम घाउ तेंहि पूंछहु जाई' । 'जेइं यह भाल करेजइं खाई ।
पिरम 'घाउ' 'ओखदि नहि मानइ'। पिरम बान जेहिं 'लाग सो जानइ'।
भल 'फुनि होइ' 'खांड' कर मारा। जरम न 'पलुह' 'पिरम' 'कर' जारा।
'कवनिहु' भांति न 'छूटत देखेउं' 'तेहि रे' पिरम 'कइ' झेल ।
पिरम खेल 'सोई' 'पइ' 'खेलइ' जो सिर सेतीं खेल ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २६८।२, म० पत्र १७०, बी० ११०४-११०६ ।

शीर्षक—मै० : अंजन लहू । म० : दर शौक़ व मुहब्बत ऊ गुफ़्तारी ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जिहि रि पिरमु तिहि । २. मै० संतावइ । ३. बी० जिही तिह । ४. मै० पिरम सुहावा । (२) १. मै० बिह । २. मै० खरि पै अनियारी, बी० घाउ अनियारा । ३. म० परग न जाइ । ४. मै० बिरह कर मारी । बी० में इस चरण के स्थान पर भी पांचवीं अर्द्धाली का दूसरा चरण है । (३) १. मै० बिरह पीर तेहि बूझउ, बी० पिरम परी (पीर) तिहु पूछौहु । २. बी० जो याह रि करेजौ । (४) १. बी० पीर । २. बी० औषध नहि मांनै । ३. बी० लागै सो जांनै । (५) १. बी० जु होय । २. मै० खरग ।

३. मै० पलुत, बी० पल्है । ४. मै० बिरह । ५. बी० का । (६) १. बी० कौनहि, म० कउनिउं । २. बी० षूटइ, मै० छूंटहि । ३. मै० परे, बी० यह रु । (७) १. मै० सो । २. म० परि, बी० पै । ३. बी० षेलै ।

अर्थ—(१) "जिसे प्रेम होता है, उसे विरह संतप्त करता है, और जिसे विरह होता है, उसे नींद नहीं आती है । (२) प्रेम एक खरी नुकीली बर्छी है, प्रेम का मारा [इसीलिए] एक पग भी नहीं जोड़ पाता है । (३) प्रेम-घाव [के बारे में] उससे जाकर पूछो जिसने कलेजे में इस बर्छी को खाया हो । (४) प्रेम (विरह) का घाव ओषध नहीं मानता है, प्रेम (विरह) का बाण जिसे लगता है, उसे वही जानता है । (५) खांड (खड्ग) का मारा पुनः अच्छा हो जाता है, किन्तु प्रेम का जलाया हुआ जन्म (जीवन) भर नहीं पलुहता (अंकुरित होता) है । (६) उस प्रेम की झेल में [पड़ने के अनंतर किसी को] किसी प्रकार से छूटते हुए मैंने नहीं देखा है । (७) प्रेम का खेल, हो न हो, वही खेलता है जो उसे सिर से (सिर की बाज़ी लगा कर) खेलता है ।"

(३२५)

इकु दिनु दूसरि 'रइनि निरिबही' । चांद न 'छूटि गहन जउ गही' ।
मन चिंता 'चखि' नींद गंवानीं । दई दई 'कइ रइनि' बिहानी ।
लोरिक 'देखि नियर भिनुसारा' । 'चंदन' काटि 'कइ चियहि' संवारा ।
'चांद कांध कैं(कइ)सरि पहुचाई । आनी आगि चीह(चियहि)सिरगाई'।
फिर 'जउ' देख गुनी इकु आवा । मंतरु 'बोल अउ' डाक बजावा ।
घालि पाग 'गियं अपनी' 'लोरिकु' परा 'पाइ भहराइ' ।
'सोवत' सांप डसी 'धनि' चांदा 'तूं मोहि' देहि 'जियाइ' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र २७०, म० पत्र १७१, बी० ११०७-११०९ ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'हाथ', जो अगले का है ।

शीर्षक—मै० : दुअम रोज़ आमदने गुनी व पाय उफ़तादने लोरिक बर ऊ रा ।

म० : दो शब व रोज़ मानदन चांद अज़ बेहोशी ।

पाठान्तर—(१) १. मै० रैनि तसि भई, बी० रैनि निरबाही । २. बी० छुटै गरहनै गाही । (२) १. मै० कइ । २. बी० कै रैनि । (३) १. बी० देष नेर (नियर—फ़ा०) भुनसारा । २. बी० चांदन । ३. बी० कैं चीह । (४) १. मै० चांद मांथ ले सरि पहुछाई: नैन नीर तेहि आगि बुझाई; म०

चांद कांध कै मेरिहउं जाई : आनी आगि चाह (चीहि—ना०) बरि जाई। (५) १. बी० जौ। २. बी० दे औ। (६) १. बी० गैं आपनैं। २. बी० लोरु। ३. म० पाव सहराइ, बी० तिसु पाई। (७) १. म० सोवतहिं। २. बी० धन। ३. बी० तहु मो। ४. बी० जिवाई।

अर्थ—(१) एक दिन [बीता] और दूसरी रात निबही (व्यतीत हो गई), [किन्तु] क्योंकि ग्रहण ने उसे पकड़ा था, [इसलिए] चांदा उससे मुक्त न हुई। (२) मन में चिन्ता [होने] के कारण [लोरिक की] आंखों में [की] नींद गंवा उठी; 'दैव, दैव' करके [उसकी] रात्रि व्यतीत हुई। (३) लोरिक ने प्रभात को सन्निकट देखकर चंदन [का वृक्ष] काट कर चिता संवारी। (४) चांदा को कंधे पर लेकर और चिता पर उसे पहुंचा कर वह आग लाया और उसने चिता को सिलगा दिया। (५) वह फिर जो देखता है, तो एक गुणी आया हुआ [दिखाई पड़ता] है, जो वह मंत्र बोल रहा है और डाक बजा रहा है। (६) अपनी ग्रीवा में पाग डालकर लोरिक उसके पैरों पर भहरा (वेग से गिर) पड़ा, (७) [और उसने कहा,] "सोते समय सांप के द्वारा स्त्री चांदा डस ली गई है, उसे तुम मेरे लिए जिला दो।"

(३२६)

हाथ 'क मुंदर' 'मकर' कटारा। कान 'क कुंडर चांद' 'गियं' हारा।
'अउर जो' सा(सां)ठि 'गांठि हइ' 'मोरी'।
'देहौं(हउं) सभ' 'बलिहारइं तोरी'।
करु उपगारु 'करइ जउ पारसि'। पिता मोर 'जउ' मोहि निसतारसि।
तोरें 'गुनहीं' चांद 'जउ लहऊं'। दुहूं जरम चेर 'होइ रहऊं'।
'जउ न होइ' पतियारु हमारा। 'बचा बांध कइ करु' पतियारा।
'कुवां डाभ' जल 'मेलउं' 'सत सइ होइ तउ' लेऊं(उं)।
जो रे 'बस्तु' 'मइं बोली' चांद 'चेतें' 'तुम्हं' देऊं(उं)॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७१, म० पत्र १७१, बी० १११०-१११२।

शीर्षक—मै० : शिरीनी (ज़रीनः ?) क़ुबूल करदन लोरिक बर गुनी रा।
म० : ज़रीनः कुबूल करदन लोरिक हकीम अफ़सूंगर रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० का मूदरा। २. मै० खरग, बी० करि का। ३. म० कुंड चांदा, बी० का कुंडरु चांद। ४. बी० गैं। (२) १. बी० और। २. म० हइ गांठीं, बी० गांठि है। ३. बी० मोरैं। ४. मै० सो फुनि देउ।

५. बी० बलिहारैं तोरैं, मै० बरिवारी तोरीं। (३) १. बी० करनु जो पावसि। २. बी० तूं। (४) १. म० बचन। २. म० जउ पइहउं, बी० जौ पाउं। ३. म० तोर होइहउं, बी० तोरौ कहांउ। (५) १. बी० जो न होय। २. मै० बचा बंध करि करहि, बी० बाचा बांधि रु करि। (६) १. मै० कुंवइ दाब, बी० कुंवा डामु। २. बी० मेल्यों। ३. मै० कइ सत सेतीं, बी० सत सई होय त। (७) १. मै० रे पता, बी० रु बस्त। २. बी० मैं बोल्यों। ३. बी० जिये। ४. म० तउ, बी० सौ।

अर्थ—(१) [लोरिक ने कहा,] "हाथ की मुद्रा, मकर-कटार, कानों के कुंडल, चांदा की ग्रीवा का हार, (२) तथा और भी जो द्रव्य मेरी गांठ में है, वह सभी मैं तेरी बलिहारी दूंगा। (३) उपकार (उपाय) कर, यदि तू कर सके; तू मेरा पिता [होगा] यदि तू [इस संकट-सागर से] मेरा निस्तार कर देगा। (४) यदि तेरे गुण (उपाय) से चांदा को पा जाऊं, तो दोनों जन्मों (इस जन्म और अगले जन्म) में तेरा सेवक बन कर रहूं। (५) यदि मेरा विश्वास न हो, तो वचन-बंध करके मेरा विश्वास कर। (६) मैं [चाहे] कुएं के दाभ में जल डालूं [और डाल कर लूं], [चाहे बैठे-बैठे] सत्य से लूं, (७) जो भी वस्तुएं मैंने कहीं हैं, चांद के चेतित होने पर तुम्हें दूंगा।"

(३२७)

'कवन' लोग तुम्हं 'गारुरि पूछइ'। 'नांउं कहउ' अउ जातिहुं बूझइ।
जाति 'गुवार' गोवरु 'मोर' ठाऊं। 'धनि' चांदा 'मोहि' लोरिक नाऊं।
गुनी कहा 'जिनि' जीउ डुलावसि। धीरु 'बांधि' 'अब' चांदहि पावसि।
'बोलि' मंतरु 'छिरकेसि लइ' पानी। उतरा बिसु 'चांदा' 'अंगिरानी'।
धाइ लोर 'धरि' बांह उचाई। पिरम 'पियारि' चांपि 'गियं' लाई।
'सरग हुत' चांद उतरि 'जनु' 'आई' देखि 'लोरु' बिहसान।
'कंवल' भांति मुख बिगसा दुखु 'जो हुत कुंबिलान'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७२, म० पत्र १७२, बी० १११३-१११५।
म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'दाउद' है, जो कडवक ३२६ का है।

शीर्षक—मै० : मंतर ख्वानीदने गुनी व होशियार शुदने चांदा।
म० : पुरसीदने हकीम ज़ात व नाम लोरिक व चाँदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौन। २. बी० गारुर पूछे। ३. मै० नाउ कहउ, बी० नांव कहसि। ४. म० अउ जातिउ पूछइ, बी० औ जातेंहि इछें।

(२) १. बी० मेरौ । २. बी० धन । ३. बी० मोरो, म० अहइ । (३) १. बी० जिन । २. मै० बंधि । ३. बी० जौ । (४) १. बी० पढा । २. बी० छिरका लै । ३. मै० चांद । ४. बी० अगुरांनी । (५) १. बी० धर । २. बी० गै । (६) १. म० सरगहि, बी० सरगैहु । २. बी० भुई । ३. म० में नहीं है । ४. मै० सूर । (७) १. बी० कंवर २. बी० सु होय सु बुझान ।

अर्थ—(१) गारुड़ी पूछने लगा, "तुम कौन लोग (किस देश-प्रदेश के) हो ?" "तुम अपना नाम और अपनी जाति कहो," उसने कहा । (२) [लोरिक ने कहा,] "मेरी जाति ग्वाले की है और गोवर मेरा स्थान है, स्त्री को चांदा है और मुझे लोरिक का नाम [मिला] है ।" (३) गुणी ने कहा, "अपने जीव को तू मत विचलित कर; धैर्य बांध, अब तू चांदा को पा जाएगा ।" (४) उसने मंत्र कह कर और पानी लेकर छिड़का, विष उतर गया और चांदा ने अंगड़ाई ली । (५) लोर ने दौड़ कर और [चांदा की] बांह पकड़ कर उसे उठाया, और अपनी प्रेम-प्रिया को चिपका कर गले से लगाया । (६) मानो चांद [ही] आकाश से उतर कर आई थी, यह देख कर लोरिक हँसा (प्रसन्न हुआ) । (७) उसका मुख कमल की भांति विकसित हो गया, जो कि दुःख से कुम्हलाया हुआ था ।

(३२८)

'हिया' सिरान जरत 'जो' अहा । 'दौरि लोर तौ पौ(पउं)चा गहा' ।
'लोरिक' 'रस करि' आहि पियासा । 'चांद मिली मन' पूजी आसा ।
'अभरन आनि कीन सभ लोरा । तरिवन हांस अउ सोनइ चूरा' ।
'भंवर मोर अउ कान क फेरे । मूंड मंग अउ करइं केजूरे' ।
'हाथ क करपा सोवन मांठी । अंगूठी मानिक कइ कांठी' ।
अनवट 'बिछुई' पायर लोर चांद 'कइ' लीन्ह ।
अरथ दरब 'अउ खरग कटारा' आनि गुनी 'कहं' दीन्ह ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७३, बी० १११६-१११८ ।

म० में कडवक नहीं है, वह प्रतिलिपि करने में कदाचित् रह गया है ।

शीर्षक—मै० : होशियार शुदने चांदा व दादने लोरिक गुनी रा ज़ेवर ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हियरा । २. बी० जौ । ३. मै० छूटि चांद निसि गहनइं गहा । (२) १. बी० लेरिक । २. मै० हुत जो आस । ३. मै० चांद जिई । (३) १. बी० : गहनां आनि गुनी कौं दीन्हा : हाथ पसारि

गुनी सबु लीन्हा । (४) १. बी० : भौंर मोर औ कांन कि षूटी : गौ का हारु औ वरगज मोती । (५) १. बी० : हाथ क बाहू सोवन मांठी : अंगुठी व कुरा अन अन भांती । (६) १. बी० बिछुवा । २. मै० कर । (७) १. बी० औ करि का कटारा । २. बी० कौं ।

अर्थ—(१) [लोरिक का] हृदय शीतल हुआ, जो जल रहा था, और तब उसने दौड़ कर चांदा का पहुंचा पकड़ा । (२) लोरिक [उसके] रस के लिए प्यासा था, [अतः] चांदा जी गई तो इससे उसके मन की आशा पूरी हुई । (३) लोरिक ने समस्त आभरण लाकर [इकट्ठे] कि ए, तरिवन, हांसली, सोने के चूड़े, (४) भंवर (?), मोर (?), कान के फेरे, सिर की मांग, हाथों में [के] केयूर, हाथों के करपे, सोने की मांठिएं, अंगूठिएं, माणिक्य की कंठी (कंठमाला), (६) [पैरों के] अंगुष्ठ, बिछुए और पायल लोरिक ने चांद (चांदा) के ले लिए, (७) और अर्थ-द्रव्य, खड्ग तथा कटार लाकर उसने गुणी को दिए ।

(३२९)

'दाउद कबि चांदायनि(न ?)' गाई ।
'जेइं र (रे) सुना सो गा मुरुझाई' ।
'धनि ते' 'बोल' धनि लेखनहारा ।
धनि ते 'अखिर' 'धनि' अरथु बिचारा ।
हरदीं जात 'सो' चांदा रानी ।
'सांप डसी हउं सोइ' बखांनी ।
'तउ र (रे) कहा मइं यहु खंडु गांवउं' ।
कथा 'कबित' 'कइ लोग 'सुनावउं' ।
'नथन मलिक दुख बात उभारी' ।
सुनहु कान 'दइ' बहु गुनियारी ।
'अउर केत मइं करउं बीनती' सीसु नाइ कर जोरि ।
'इकुइकु सुनिसुनि बोलु बिचारौ(रउ)कहौं(हउं)जो ह्रि(हिर)दौ''तौरि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७४, म० पत्र० १७२, बी० १११९-११२१ ।

शीर्षक—मै० : आख़िर बिसहर खंड चंद सुख़न फ़रमूदने मौलाना नत्थन ।

म० : दास्तान सिफ़त मौलानां दाउद व गुफ़्तार ऊ ।

पाठान्तर—(१) १. मी० दाऊद कबि जउ चांदा, मै० मौलानां दाउद यह कबि। २. बी० जें रु सुनी सो गा मुरझाई। (२) १. बी० धनु ति। २. मै० पंडित। ३. बी० धनु। ४. मै० बोल। ५. बी० जिनि। (३) १. बी० सु। २. मै० नाग डसी हुति सोंहि, बी० साप डसी हुत सबनि। (४) १. बी० तौ मैं कहा कि यहु षंडु गाऊ। २. म० कबि। ३. बी० कहि। ४. बी० सुनांऊ, मै० सुनाएउं। (५) १. म० मलिक नथन सुनु बोल हमारी, बी० नाथ मलिक यह बात तुमारी। २. बी० दै। (६) १. बी० और कवित मैं करौ। २. म० बिनती., मै० बिनाती। (७) १. म० एक एक बोल मोंति जस पिरोवा कहौं जो हियरा तौरि, मै० एक एक जउ तुम्ह बूझउ बिचारि कहउं जेहुं तौरि।

अर्थ—(१) दाऊद कहता है कि जब [भी] उसने 'चांदायन' का गान किया है, जिसने भी [इसे] सुना है, वह मुर्झा गया है (वेदना-व्यथित हो गया है)। (२) धन्य वे हैं जो इसे बोलते हैं, और वे धन्य हैं जो इसको लिखने वाले हैं; वे [भी] धन्य हैं जो इसके अखरों (शब्दों?) और अर्थों का विचार करते हैं। (३) हरदीं [पाटन] जाते समय चांदा रानी सांप से डसी गई थी, उसी का मैंने [इस खण्ड में] वर्णन किया है। (४) मैंने तब (इसलिए) [मन में] कहा (सोचा) कि इस खंड का गान करूं कि कथा-कवित्व कर लोक (लोगों) को सुनाऊं। (५) ऐ नथन मलिक, तुमने यह दुःख [-पूर्ण] वार्त्ता उभाड़ी थी, [अतः] इस बहुत गुणों वाली [वार्ता] को तुम कान दे कर सुनो। (६) सिर को नमित कर और हाथ जोड़ कर मैं और कितनी बिनती करूं? (७) [इस वार्त्ता का] एक-एक बोल तुम सुनो और उस पर विचार करो, [क्योंकि] मैं उसे [अपने] हृदय में तौल कर कह रहा हूं।

२२. हरदीं-निवास खण्ड

(३३०)

जाइ कोस दस ऊपरि 'भए'। 'बहुल भांति बिरहइं हुत दहे'।
सभ निसि 'आखै(खइं)' पिरम कहानी। 'बात कहत उन्ह रइनि' बिहानी।
'पहर रात उठि चले कहारा'। कोस 'चारि परि' 'भा भिनुसारा'।
हरदीं 'सीम' तुलानें जाई। 'सगुन भली एक पांडुक कहाई'।
'महर दाहिनें बाएं करावा(रा)'। 'अउर दाहिनें मिरिघ कइ' मारा।

महरि कहा हुंत दाहिनें बांएं सगुन होइ न (नहि) पार।
तिनहिं अरथ तुम्ह सिधि पावहु लोरिक जानइ सयंसार॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७५, बी० १०४७-१०४९।

शीर्षक—मै० : रवान शुदन लोरिक व चांदा व रसीदन नज़दीक़ हरदीं।

पाठान्तर—(१) १. बी० रहे। २. बी० बहु भांते बिरहैं हुते अहे (दहे—फ़ा०)। (२) १. मै० कहहि ते। २. बी० उवा सूर निसि रैनि। (३) १. बी० फांद सुषासनु चले गुहारा (कहारा—फ़ा०)। २. बी० पाच। ३. बी० सूरु दिषारा। (४) १. बी० सेव (सींव—फ़ा०)। २. बी० सुरंगा झीवरु आइ तुलाई (तुल० तुलाने जाई—पूर्ववर्ती चरण में)। (५) १. बी० महुवर धानी (दाहिने—फ़ा०) राउ गुहारा। २. बी० औ दाहिनै मिरगु इकु। (६-७) दोहा बी० में इस प्रकार है :

होय कहा कहु पैसत दाहिन तुम्ह करतार।
और सभै तुम्ह पाये दाहिन सम सैसार॥

दोनों चरणों में 'दाहिन' की पुनरुक्ति चिंत्य है।

अर्थ—(१) चलकर वे दस कोस से अधिक जा पहुंचे, वे बहुत प्रकार से विरह-दग्ध थे। (२) समस्त रात उन्होंने प्रेम-कथन किया और बातें कहते-कहते (करते-करते) उनकी रात व्यतीत हो गई। (३) [तदनन्तर] एक प्रहर रात के रहते ही उठ करके [चांदा के सुखासन के] कहार चल पड़े, चार कोस चलने पर सबेरा हुआ। (४) वे हरदीं [पाटन] की सीमा पर जा तुले (पहुंचे), एक भली पांडुक [जहां पर] शुभ शकुन कह (बता) रही थी। (५) दाहिने महर तथा बाएं कराल पक्षी (काग) थे, पुनः दाहिने मृग-माला थी। (६) महरी (चांदा) ने कहा, "दाहिने और बाएं इतने [शुभ] शकुन हो रहे हैं कि उनका पार (अन्त) नहीं है। (७) उनका अर्थ यही है कि तुम सिद्धि पाओगे, ऐ लोरिक, यह (शकुनों का यह अर्थ) संसार जानता है।"

(३३१)

'छेतम' राउ 'अहेरइं' चढ़ा। हरदीं 'कहं हुंत दई जो' गढ़ा।
निकरत राउ 'जोहारेसि सोई'। 'राय बूझ अहिआनहु' कोई।
'अति गुनवंत आहि रुपवंता'। 'सहस करां जइस' मैमंता।
'कोउ न चीन्ह सभ कहहिं' बटाऊ। 'संग संग राजे(जइं?)' पठवा नाऊ।
'जउ तुम्हं चीन्हउं देखि लइ आएसु। जउ परदेसी उतार देवाएसु'।

हरदीं 'पइठइ' लोरिकु 'खोरि खोरि' फिरि आउ।
'जांवत नगर तहं' चीन्ह न कोऊ 'सब ही लोक पराउ' ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७६, बी० १०५०-१०५२।

शीर्षक—मै० : सलाम करदने लोरिक राव रादर शिकार व पुरसीदने राव छेतम रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० जैतम। २. बी० अहेरै। ३. बी० कौं हिते ई जौ। (२) १. बी० झारअस (जुहारेसु—फ़ा०) होई (सोई—फ़ा०)। २. बी० कोइ जाय अहिजांनिहै। (३) १. बी० को रूपवंतु दीसै गुनवंता। २. बी० ससिहर बरन आहि। (४) १. बी० चीन्ह न कोई आहि। २. मै० पाछें राउ। (५) १. बी० होय जुहार देषि घर आवोहु : होई परदेसी उतारा द्यावोहु। (६) १. बी० पैठा। २. बी० षोर षोर। (७) १. बी० जनि। २. बी० सभै लोगु तह आव।

अर्थ—(१) छेतम राव ने आखेट के लिए चढ़ाई की, जो हरदीं के लिए दैव गढ़ा हुआ (निर्मित) था। (२) निकलते ही उस राजा को [लोरिक ने] जुहार की, तो राजा ने पूछा (कहा), "इसे कोई अभिजानते (पहचानते) हो? (३) यह अत्यधिक गुणवान और रूपवान है, यह सहस्र-कला (सूर्य) जैसा और मदमत्त है।" (४) किन्तु कोई उसे पहचान नहीं रहा था, सभी कह रहे थे कि वह पथिक था, [इसलिए] राजा ने उसके साथ-साथ नाई को भेजा, (५) [और कहा,] "यदि तुम पहचान सको तो उसे देखकर ले आना, और यदि वह परदेशी हो, तो उसे उतारा (उतर कर ठहरने का स्थान) दिलाना।" (६) हरदीं में प्रविष्ट हुआ और लोरिक गली-गली फिर आया। (७) यावत् नगर में वहां उसे कोई पहचानता न था, सभी लोक (देश) उसके लिए पराया था।

(३३२)

'राउ दीन्ह राउल एक आए। ऊंच मंदिर पटसार सोहाए'।
बहु बनान बहु भांति कुंदारा। घरे अनेक लाइ सुतधारा'।
'चउतरा ऊंच नीक घोरसारा'। 'लइ लोरिक तेहि घर बइसारा'।
अरसी काढ़ि लोर कर दीन्हीं। बात बूझि गै नाऊं लीन्ही।
कवन देस हुत आए गोसाईं। एहि पाटन गौंनइं केंहि ठाईं।
नाउं कहउ तुम्हं आपन अउ तुम्हं जेहि लगि आइ (आएहु)।
निकरत राउ देखि दरसन तेंहि गुन पूछि पठाएहु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७७, बी० १०५३-१०५७।

स्वीकृत (४)—(७) के स्थान पर बी० में सात पंक्तियाँ हैं—दे० पाठान्तर। ऐसा ज्ञात होता है कि प्रति का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित हो गया था, इसलिए छंद-व्यवस्था न समझने वाले किसी व्यक्ति ने यह प्रक्षेप कर डाला।

शीर्षक—फ़िरिस्तादन राव हज्जाम रा बर लोरिक।

पाठांतर—(१) १. बी० नाउ बाषर (रि) जाई झराई : ऊच उतारा दीस सुहाई। (२) १. बी० बहु भंत के सौ पथर उसारा : गरे अनेक आहि-सुतधारा। (३) १. बी० ऊचा जोवरु (चौवरु—फ़ा०) औ करसारा (घुरसारा—फ़ा०)। २. बी० कै (लै—फ़ा०) लोरिक तेहि ठाव उतारा (४)—(७) के स्थान पर बी० में है :

रावर ते नीरे तैसै आही : जो जस जोगु सो तस ताही।
पाषर सै दोइ सेती आवा : मारि सुरिज कौ चांद लिवावा।
हाथी औरति मैंमत माते : अते बहुत ते भातेहि भांते।
हाक देई के पाइक बाजा : लोरिक षरग मुठि महि साजा।
षरग काटि कैं मूठि उतारसि : कोई न राउ उही रन पारसि।
चला राउ देषि मुन साई जिहि उहि कौ अवास।
जाहि लोर तिहि हरदीं अब न आवै कोई पास ॥

अर्थ—(१) वे (लोरिक-चांदा) राजा के दिए हुए एक रावल (राज-भवन) में आए; मंदिर (प्रासाद) ऊंचा था और [उसमें] सुन्दर पटसार थे। (२) वह बहुत बनाव का था और बहुत भांति से कुन्दी किया हुआ था, उसको अनेक सूत्रधारों ने लग कर गढ़ा (निर्मित किया) था। (३) उसमें [बाहर बैठने के लिए] एक अच्छा चबूतरा था, और एक अच्छी धुड़साल थी; लोरिक को ले जाकर [नाई ने] उसी घर में बिठाया। (४) [तदनंतर उस नाई ने] एक आदर्शिका (आईना) निकाल कर लोरिक के हाथ में दी और जाकर नाई ने उसकी वार्त्ता पूछी। (५) [उसने कहा,] "हे स्वामी, आप किस देश से आए हैं और इस पाटन में किस स्थान पर जा रहे हैं? (६) आप अपना नाम कहें और [वह प्रयोजन कहें] जिसके लिए आप आए हुए हैं। (७) [बाहर] निकलते समय राजा ने [आपका?] दर्शन (रूप-रंग) देखा, इसी गुण से उन्होंने यह पूछ भेजा है।"

(३३३)

सुनि 'लोरिक' अस ऊतर कहा । सभ परिवार गोवर 'मोर' अहा ।
'गरह संताएउं कत घर जावहुं' । कहा पंडित परदेस दिखावहुं ।
बैरी होइ 'खर' रकत पिपासा । 'लेन न देइ' सुक्ख महं सांसा ।
'लोग' 'चाह' अहिताई करहीं । मुख देखत 'हूं' कानि न धरहीं ।
जाति 'गोवरइ' अहउं 'बडवारू' । 'लोर' गोवर कुर नाउं 'हमारू' ।
'गोवर' राजा सहदेउ महर ओंहि कइ धीय दुलारि ।
'जेंहि' कारन हम लीन्ह देसंतर अहइ सो' चांदा नारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७८, भो० पत्र ५ (नवीन) । बी० का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित था—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक बर हज्जाम रा ।
भो० : पुरसीदन मुज़इयन लोरिक रा व गुफ़्तन लोरिक ।

पाठान्तर—(१) १. भो० लोरिख । २. भो० मोरु । (२) १. भो० गरहं संताप आनहि घर आवहिं । (३) १. बी० गएउ । २. मै० लेइ न देहि । (४) १. मै० लोरिक । २. भो० जाइ, मै० चाहि । ३. मै० हम । (५) १. भो० गोवार । २. मै० बडारू । ३. मै० गोर । (६) १. मै० गोवर का । (७) १. भो० तेंहि । २. मै० ऊहइ ।

अर्थ—(१) लोरिक ने [उसकी बातें] सुनकर ऐसा उत्तर कहा (दिया), "मेरा समस्त परिवार गोवर में है । (२) पंडित ने [मुझसे] कहा, 'ग्रहों से संतापित होकर घर क्या जाते हैं ? परदेश देख आएं । (३) [उनके प्रभाव से] वैरी रक्त का प्यासा हो जाता है, और, वह सुख में सांस नहीं लेने देता है; (४) [अपने] लोग भी अहित करना चाहते हैं और मुख देखते हुए भी कानि (लिहाज़) नहीं करते हैं ।' (५) जाति से मैं ग्वाल ही हूं किन्तु (कुल से) बड़ा हूं और लोर गोवर (गोपाल) मेरा कुल का नाम है । (६) गोवर का राजा [जो] सहदेव महर है, [यह] उसी की दुलारी दुहिता है; (७) जिसके कारण मैंने देशान्तर [का प्रवास] लिया (स्वीकार किया), यह वही चांदा नारी है ।"

(३३४)

होइ अहेरे राउ घर आवा । नाउव जाइ कहइ कर पावा ।
बूझा राइ कवन इन्हं अहा । जस (जइस?) सुनां तस नाउवं कहा ।

राउ कहा कहं दीन्ह उतारा । ऊंच मंदिर नीक घोरसारा ।
एंहि नर नौ खंड प्रिथिमी जानइ । जस दिनियर तस किरित बखानइ ।
सुनि राजइं असि कीरति कीन्हां । जो कुछु जगत मंदिर उन्ह दीन्हां ।
आहि गोवर कर लोरिक नाउवं कहा जुझार ।
जेंहि कारन राव रूपचंद मारा अउ हइ चांदा नारि ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २७९ । बी० का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मै० : बाज़ आमदने राव अज़ शिकार व मअ़लूम करदन हज्जाम कैफ़ियते लोरिक ।

अर्थ—(१) आखेट से होकर राजा घर आया, तब नाई जाकर उससे [लोरिक-चांदा के] हाथ-पैर (नख-शिख) बताने लगा । (२) राजा ने पूछा, "ये [दोनों] कौन हैं ?" इस पर नाई ने जैसा कुछ सुना था, वैसा कह सुनाया । (३) राजा ने कहा (पूछा), "कहां उतारा (डेरा) दिया है ? नाई ने बताया, "एक ऊंचे मंदिर और अच्छी घुड़साल में । (४) इस नर (लोरिक) को नौ खंड पृथ्वी जानती है और जैसे दिनकर के वैसे ही इसके कृत्यों का बखान करती है । (५) ऐ राजा सुनो, ऐसी कीर्त्ति करो कि जो कुछ जगत् में [हो सकता] है, वह सब उनके मंदिर में [प्रस्तुत करा] दो ।" (६) नाई ने कहा, "यह गोवर का योद्धा लोरिक है, (७) और जिसके कारण उसने राव रूपचंद को मारा (मार भगाया), वह [उसके साथ की] नारी चांदा है ।"

(३३५)

खेम कुसर निसि खेलि 'बिहानीं' । रंग राती निसि पिरम 'कहानीं' ।
देइ पिछौरा राउ जोहारा । राउ मया कइ 'लोर' हंकारा ।
'राउ बूझ' तुम्हं कैसें आएहु । बाट घाट कस आवन पाएहु ।
नगर 'मुगेर(?)' 'जउहि' हम आए । 'राइ' करिगा भेजि 'हंकराए' ।
देखन पाय राइ के आएउं । दइय संजोगे आनि मेराएउं ।
भलें लोर तुम्हं आएहु 'इंहवां' राखहु चित (चित्त) हमार ।
जो किछु आहि 'हमारें' सो फुनि जानु तुम्हार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८०, भो० पत्र १ (नवीन) । बी० का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—म० : आमदने लोरिक पेश राव छेतम ।

भो० आमदन लोरिक बर राव छेतम व सलाम करदन ।

पाठान्तर—(१) १. मैं० बिहानी । २. मैं० कहानी । (२) १. भो० बीर । (३) १. भो० राइ पूछ । (४) १. भो० भुगेर (मुगेर—ना०), मैं० सुगेर (मुगेर—ना०) । २. भो० जउ । ३. मैं० राउ । ४. मैं० बोलाए । (६) १. मैं इहवां । (७) मैं० हमारे ।

अर्थ—(१) क्षेम-कुशल पूर्वक खेल कर रात समाप्त हुई । प्रेम-कथनों के कारण [रात] रंग-राती (अनुराग-रक्त) रही । (२) [सबेरा होने पर भेंट में] एक पिछौरा (बड़ी चादर) देने के लिये लोरिक ने [आकर] राजा को जुहार की, तो राजा ने मया (ममता) कर लोरिक को बुलाया । (३) राजा ने पूछा, "तुम कैसे आए ? मार्गों और घाटों से तुम कैसे आने पाए ?" (४) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "जब हम मुंगेर (?) नगर में आए, राजा करिंगा ने मुझे [भृत्य] भेज कर बुलाया । (५) [वहां से] राजा के चरणों का दर्शन करने आया हूं, और दैव-संयोग से ही आकर मिल रहा हूं ।" (६) [राजा ने कहा,] "हे लोरिक, अच्छा हुआ जो तुम यहां आए, तुम मेरे चित को [संतुष्ट?] रक्खो (मेरी इच्छाओं के अनुसार कार्य करो), (७) और जो कुछ हमारे पास है, वह तुम जानो कि तुम्हारा [ही] है ।"

(३३६)

सइं हथ राय बान कर लीन्हां । 'नियर' हंकारि लोर कहं दीन्हां ।
सीस 'लाइ कइ' लोरिक लीतिसि । रहंसि 'केकान राइ' फुनि दीतिसि ।
तेहिं तुरिया चढि लोर फिरावा । हनी (नि) ताजनइं घोर दउरावा ।
रहंसा लोर तुरिय जउ पावा । बचन सगुन 'जो' इहवां आवा ।
पुरुख सोइ जो परभुइं जाई । जगत सुनइ जेहि किरित भलाई ।
लोर चांद गोवर बिसारा 'कीतें' हरदीं बास ।
बरिस देवस अउ 'केतिक' मांसा कीन्हां भोग बेलास ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८१, भो० पत्र २ (नवीन) । बी० का कोई पूर्वज इस प्रसंग में त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मैं० : असबाब दहानीदने राव बर लोरिक रा व बर्गे सब्ज़ दादन ।

भो० : मरहमत करदने राव छेतम व बर्ग दादन लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) भो० बीर । (२) १. मैं० चढाए । २. भो० कैकान एक । (३)—(४) मैं० (३)।१=भो० (४)।१ मैं०, (३)।२=भो० (३)।१, मैं० (४)।१=भो० (३)।२, मैं० (४)।२=भो० (४)।२ : स्वीकृत क्रम मैं० का है । (४) १. भो० हउं । (५) १. मैं० तेहि । (६) १. मैं० कीनें । (७) १. मैं० कातिक ।

अर्थ—(१) राजा ने स्वयं हाथ में बाना (पहनावा) लिया, और निकट बुला कर [उसे] लोरिक को दिया । (२) सिर से लगा कर लोरिक ने [उसे] ले लिया, पुनः (तदनंतर) राजा ने हर्षित होकर उसे एक घोड़ा दिया । (३) उस घोड़े को लोरिक ने चढ़ कर फिराया, और चाबुक से मारकर उस घोड़े को दौड़ाया । (४) लोर ने जब यह घोड़ा पाया, वह हर्षित हुआ, [और उसने मन में कहा,] "यही उस शकुन का वचन था जो यहां आया (प्राप्त हुआ)। (५) पुरुष वही है जो परभूमि (परदेश) में जाए और जगत् जिसकी भलाई के कृत्य सुने ।" (६) लोर और चांदा ने हरदीं में निवास कर [इतना सुख पाया कि] गोवर को विस्मृत कर दिया । (७) बरस दिन और कुछ मास [वहां पर] उन्होंने भोग-विलास किए ।

(३३७)

जनां सहस रचि राउ दौराए । चीवर कापर बाग फिराए ।
दुलाइयनि बहोरि भरि लीन्हें । ते लइ चेरन्ह माथें दीन्हें ।
चेरन्ह का(कां)वरि कांधइं किया । हरदि लोन तेल सब दिया ।
चेरी दस चीर अभरन दीन्हें (लीन्हें ?) । अपर संजोग जो काउ न दीन्हें ।
अनवन भांति खजहजा अहे । खाट पालकी पालिक लहे ।
बहुल आभरन रायहिं दीन्हें चांदहिं जनहु बरोक ।
लोर चांद कहं पिता अस कीन्हें कौतुक भएउ सो लोक ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८२ । यह कडवक परवर्ती से संबद्ध है यह प्रकट है । बी० का कोई पूर्वज यहाँ पर त्रुटित था—दे० कडवक ३२२ की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

शीर्षक—मैं० मताअ खानः क़नीज़गान व ग़ुलामान व ज़ामहा फ़िरिस्तादने राव लोरिक रा ।

अर्थ—(१) राजा ने एक सहस्र जनों को रच (सज्जित) कर दौड़ाया, जो चीवर (?), कपड़े और बागे पहनाए हुए थे । (२) दुलाइयों को तदनंतर भर (भरवा) लिया और उन्हें लेकर चेरों (सेवकों) के माथे (सिर) पर

दिया। (३) चेरों (सेवकों) ने कांवरों को कंधे पर किया (रखा), हल्दी, लवण तथा तैल —सब उन्हें दिया गया। (४) दस चेरियों ने चीर और आभरण लिए तथा और भी संयोग (सज्जा के सामान) उन्हें दिए गए जो कभी [किसी अन्य को] न दिए गए थे। (५) अनहोने भांति के खाद्य-भ्रज्य थे, खाटें, पालकिएँ तथा पर्यङ्क उन्होंने पाए। (६) राजा ने बहुतेरे आभरण चांद (चांदा) को दिए मानो उसको बरोक में (सगाई के उपलक्ष्य में) दिया हो। (७) लोर और चांद (चांदा) को उन्होंने पिता के समान किया (माना), जिससे लोगों को कौतुक (कुतूहल) हुआ।

(३३८)

टांका 'सउ एक' लोरिक लीन्हां। बीरइं घालि नाउवं कहं दीन्हां।
अउरन्ह दीन्ह 'जिनहिं' जस जानां। सब ही लोक कहं दीतिसि पानां।
फुनि बस्तर आगें लइ आए। जेइ आए सो समंदिं चलाए।
खोलि पेटारा कापर देखे। अभरन अछरिन 'कीन्ह' बिसेखे।
'चीर लउक' भरा खरबारू। जस चाहत तस दीन्ह करतारू।
चांद सुरुज मन रहंसे तिल तिल करहिं बधाउ।
एक समौ गोवर हुंत आए हरदीं पाटन 'रहाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८३, भो पत्र ४७ (नवीन)। बी० का कोई पूर्वज यहां पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

इस कडवक के बाद भो० में तर्क 'सावन मांस' है, जिसका कडवक कदाचित् ३४३ है, जो बहुत बाद में आता है, इससे ज्ञात होता है कि भो० का भी कोई पूर्वज यहां पर अस्त-व्यस्त अथवा त्रुटित था।

शीर्षक—मै० : बख्श करदने लोरिक दर शहर पाटन रा।

भो० : सखावत करदन लोरिक बराए क़स्र रा दरे शहर।

पाठान्तर—(१) १. भो० एक सौ। (१) १. मै० जेहि। २. मै० लोगन्ह। (३) १. भो० में चरण परस्पर स्थानांतरित हैं। २. मै० चीर। (४) १. मै० आहि (आहिं—ना०)। (५) १. भो० चीरइं चीर। (६) १. भो० जाव।

अर्थ—(१) सौ-एक टंके लोरिक ने लिए और उन्हें बीड़े में डालकर उसने नाई को दिया। (२) औरों को भी [इसी प्रकार], जिसको जैसा समझा, उसने दिया और सभी लोगों को पान दिया। (३) तदनंतर वस्त्र [उसके] आगे लाए गए, और जो आते गए उन्हें [उसने] वस्त्रों की भेंट देकर चलाया (विदा किया)। (४) पेटारे खोल कर [लोरिक ने] कपड़े देखे; आभरण [तो] अप्सराओं (के आभरणों से] भी विशेषता युक्त किए गए (बनाए) हुए थे। (५) चीर खरबारों में भरे हुए लौक (झलक) रहे थे, [लोरिक] जैसा चाहता था वैसा ही सृष्टि-कर्ता ने उसे दिया। (६) चांद (चांदा) और सूर्य (लोरिक) मन में हर्षित हुए और वे तिल-तिल (पूरे आयोजन के साथ) बधाइयां करने लगे। (७) एक समय वह था कि वे गोवर से [संत्रस्त] आए थे, और एक यह हुआ कि हरदीं पाटन में [ऐसे सुख से] रहने लगे!

२३. मैनां-संदेश-निवेदन खण्ड

(३३९)

निसि दुख मैनहि रोइ बिहाए। सभ दिन रहइ नैन पंथ लाए।
मकु लोरिक एहिं मारग आवइ। कइ पहिया गइ आपु जनावइ।
निसि दिन झुरवइ आस पियासी। रोवइ खिन खिन होइ निरासी।
लोर लोर कहि दिन परि आवइ। अउर बचन हिरि मुखहिं न आवइ।
तपतइं आछइ रइनि बिहाई। जसि मंछरी बिनु नीर मुरुझाई।
बिरह संताई मैनां एहिं परि दिन अउ राति।
सइंहि लीन्हे दुख लोरिकहिं केरा बिरहा कीन्ह संघाति॥

सन्दर्भ—भो० पत्र १८ (नवीन)। मै० यहाँ पर अत्रुटित है, जो उसके चित्र से प्रकट है, किन्तु अगले कडवक के लिए प्रस्तुत कडवक नितान्त आवश्यक है, क्योंकि अन्यथा उसकी प्रथम पंक्ति कर्त्ताहीन हो जाती है। बी० का कोई पूर्वज यहाँ पर त्रुटित था—दे० कडवक ३३२ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० : बयान करदन दुश्वारी मैनां।

अर्थ—(१) रात में दुःख मैनां ने रो-रोकर काटे, और समस्त दिन वह नेत्रों को [लोरिक के] पथ में लगाए रहती, (२) [यह सोच कर] कि संभव था कि लोरिक उस मार्ग से आ जाता, अथवा [पास] जाकर किसी पथिक से अपने को (अपना कुशल) वह विदित करता। (३) वह रात-दिन आशा की प्यासी रहकर संतप्त होती और निराश होकर क्षण-क्षण रोती। (४) दिन भर वह 'लोर' 'लोर' [ही] कह पाती, अन्य कोई वचन लज्जा के कारण उसके मुख से न आता (निकलता) था। (५) तप्त हुए-हुए ही उसकी रात्रि

व्यतीत होती, जैसे मछली बिना जल के मुर्झा जाती है। (६) इसी प्रकार मैनां दिन और रात विरह से संतापित [रहती] थी, (७) [क्योंकि] उसने स्वयं ही लोरिक का यह दुःख ले रक्खा था और विरह को [अपना] संगी कर रक्खा था।

(३४०)

'दइ दइ संवन सुनी इक' बाता। आवा टांडु 'खाडु' सै साता।
'गुइंडइं' आइ 'संगति कइ' मेला। 'पूछहु आनि' 'कवनि' भुइं खेला।
'खोलिनि' नायक 'मंदिर' बुलावा। पूछेसि टांडु कंहवां हुंत' आवा।
कवन बनिजु लाधेउ परधानां। कवन 'राट' तुम्हं 'दीत पयानां'।
कवन लोग घरु कहां तुम्हारा। कवनु नाउं कहं कुटुंबु' हंकारा।
'आसा लुबुधी 'पूछउं' जो परदेसी आइ'।
मोर बारु परदेसि बिरूधा 'मकहुं चाह' को पाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८४, भो० पत्र ४८ (नवीन), बी० ११९१-११९३।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'दिन एक', जिसका कडवक अप्राप्य है। इससे ज्ञात होता है कि दोनों के बीच में उसमें कुछ कडवक और रहे होंगे।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने खोलन सुरजन रा पुरसीदन अखबारे लोरिक।

भो० : शुनीदन मैनां व खोलिन कि कसे बाज़रगान अज़ तरफ़ हरदीं आमदह।

पाठान्तर—(१) १. बी० दे दे सुनि सरवनि याह। २. मैं० षाडु, बी० षांड। (२) १. बी० गुइरैं, भो० गुंडइं। २. भो० संकति किए, बी० सकति कै। ३. बी० पुछसि आन, भो० पूछउ टांड। (३) १. बी० षौलनि। २. मैं० घरहिं। ३. मैं० पूछसि टांडु कहां हुत, बी० पूछसि टांडु कहां ते। (४) १. मैं० लाघउ परधानां, बी० लाद परधाना। २. भो० देस, बी० राठ। ३. मैं० देब पयाना। (५) १. बी० कहु कुटंबु। (६) १. बी० आस लुबधि मैं पूछौं, भो० आसा लुबधी हउं दिन पूछउं। २. भो० आव। (७) १. बी० मुकु चाहौ। २. भो० पाव।

अर्थ—(१) [मैनां ने कहा,] "कान दे-देकर एक बात मैंने सुनी है : एक विशाल टांडा (व्यापारी-दल) आया हुआ है, जिसमें सात सौ [व्यापारी ?] हैं। (२) [गांव के] ग्वैंडे में आकर उसने संगति (सार्थ) को डाल दिया है। ला (बुला) कर पूछो कि वह [यहां] आकर किस भूमि को खेल (जा) रहा

है।" (३) खोलिन ने [टांडे के] नायक को घर बुलाया और पूछा, "यह टांडा कहां से आया हुआ है ? (४) हे प्रधान, तुमने कौन-सा वाणिज्य (सौदा) प्राप्त किया है और किस राष्ट्र (देश) को तुमने प्रयाण दिया (किया) है ? (५) तुम कौन लोग (किस देश के ?) हो और तुम्हारा घर कहां है ? तुम्हारा नाम क्या है और कहां पर [तुम्हारा] कुटुंब पुकारा जाता (कहलाता) है ? (६) जो भी परदेसी आता है, आशा-लुब्ध [हो कर] मैं [उससे] पूछती (प्रश्न करती) हूं, (७) मेरा बालक परदेश में विलुब्ध (लुभाया हुआ) है, संभव है कि कोई उसकी चाह (ख़बर) पा जाए।"

(३४१)

मैन मंजीठि चिरौंजि सुपारी। नरियर 'गुवा लवंग' छुहारी।
'मोदक(?)मंहकउं' कूंकूं चलावा। पत्रज बंभी गिनत न आवा।
पाट पटोर चंवर बहु भांती। 'हय मय सहस सहस कइ' पांती।
'हीर पंवार' रूप बहु 'तांबा'। 'बेनां चेना' अगरु 'भर' 'लांबा'।
गोवर का बांभनु सुरजनु नाऊं। हरदीं पाटन परभुइं जाऊं।
बरद सहस दस आपन अउर मिलें बहु आइ।
दखिन हुतें भरि 'लांबा' पाटन 'मेलसि' जाइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८५, बी० ११९४-११९६।

शीर्षक—मैं० : जवाब दादने नायक खोलिन रा कैफ़ियते बनिज।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क दिया हुआ है 'मैन मंजीठ', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. भो० लौंग कपूर। (२) १. बी० नषतंज पत्रज ('पत्रज' दूसरे चरण में भी है)। (३) १. बी० हमय साह सहस मैय। (४) १. बी० हरदी पावर। २. बी० ताबा। ३. बी० बीना चंदनु। ४. बी० भरि लांवा। (५) १. मैं० अउ मेला। (६) १. बी० लावा। २. बी० परभुई।

अर्थ—(१) [नायक ने कहा,] "मदन (मोम), मंजीठ, चिरौंजी, सुपारी, नारियल, गुवा (एक विशिष्ट प्रकार की सोपारी), लवंग, छुहाड़ी, (२) मोदक (?), सुगधियां तथा कुंकुम को मैंने चलाया है, और पत्रज (तेजपत्ता) तथा ब्राह्मी (?) गिनती में नहीं आ रहे हैं; (३) पाट-पटोर, बहुतेरे भांति के चामर और सहस्र-सहस्र पंक्तियों में हय-मृग (पशु) हैं; (४) हीरे, प्रवाल,

बहुत-सा ताँबा, रौप्य (चांदी), वीरण (खस), चेना (कर्पूर) तथा अगुरु लांबे (टाँडे) को भर रहे हैं। (५) मैं गोवर का ब्राह्मण हूं, सुरजन मेरा नाम है, परदेश हरदीं पाटन को जा रहा हूं। (६) दस सहस्र बरद अपने हैं (बैलों का बोझ अपना है) और [दूसरों के भी] बहुतेरे उनके साथ सम्मिलित हो गए हैं। (७) हम दक्षिण से इस लांबे (टांडे) को भर कर [हरदीं] पाटन में ले जा कर डालेंगे।"

(३४२)

सुनि पाटनु 'खोलिनि' तसु रोवा। नैन 'नीर' मुख 'बूढिइं' धोवा।
मैनां 'दौरि' पायं 'लइ' परी। सुरिजन 'बइसु कहउं एक' घरी।
नांह मोर हउं बारि बियाही। लइ गइ चांदा पाटन ताही।
लोरिक नाउं सुरुज कइ करा। सो लइ 'चांदइं' पाटन धरा।
मोहिं तजि सुरिजु चांद 'लइ' भागा। दूसर 'समउ' आइ अब लागा।
'सभ' दिन नैन 'चुवहिं अउ' 'सभ' निसि जागत जाइ।
मोर संदेसु 'लोरिकहिं' कहियहु एहिं परि रोइ बिहाइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८६, का०, बी० ११६७-११६६।

बी० में तीसरी तथा चौथी अर्द्धालियां नहीं हैं।

शीर्षक—मै० : गिरियः करदन खोलिन व पाय सुरजन उफ़्तादने मैनां।

का० : दर पाय सुरजन उत्फ़ादन मैनां रा अहवाल गुफ़्तन ऊ।

पाठान्तर—(१) १. का० खोइलिन, बी० षौलनि। २. बी० रगत। ३. मै० बी० बूढी। (२) १. मै० आइ। २. बी० लै। ३. बी० बैठु कहै येकै। (४) १. का० चांदा। (५) १. बी० लै। २. बी० समां। (६) १. का० सब। २. बी० चुवैहि औ, मै० चुवहिं पंथ। ३. मै० अउ। (७) १. बी० लोर सौं कहियहु।

अर्थ—(१) [हरदीं] पाटन [का नाम] सुनकर खोलिन ऐसा रोई कि उस बुड्ढी ने नेत्रों के नीर (आंसुओं) से अपना मुख धो डाला। (२) मैनां दौड़ कर उसके पैरों को पकड़ कर [उन पर] गिर पड़ी, [और उसने कहा,] "ऐ सुरजन, तुम बैठो तो एक घड़ी [अपनी बातें] कहूं। (३) मेरे स्वामी ने मुझे बालिका के रूप में (बाल्यावस्था में) ब्याहा था, और उसे चांदा लेकर पाटन चली गई। (४) [मेरे स्वामी का] नाम लोरिक है, जो सूर्य की कला है, उसको लेकर चांदा ने पाटन में रख छोड़ा है। (५) मुझे छोड़ कर वह सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को लेकर भाग गया, [और इतने दिनों से वह

भागा हुआ है कि] दूसरा समय (वर्ष) आकर लग गया है। (६) समस्त दिन मेरे नेत्र चूते रहते हैं और [समस्त] निशा मुझे जागते हुए जाती है, (७) मेरा यह संदेश लोरिक से इसी प्रकार रोते-रोते गुज़ारना।"

(३४३)

सांवन मांस नैन 'झरि लाए'। 'उघरहिं नांहि' दिन 'एकउ' माए।
'बरिसि भरइ भुइं खार खडोला'। 'भुइं तस नव किय चीरु अमोला'।
'चख काजरु चखि रहइ न पावा'। खिन खिन 'मैनां रोइ बहावा'।
सावनि चांदु लोर 'लइ' भागी। मैनां नैन पूरि 'झरि' लागी।
इहिं परि नैन 'चुवहिं' ओरवानी। 'सरि गइ हार डोरि तेहिं' पानी।
'जेहिं' सावन तुम्हं गंवने सो मैनां चखि लाग।
सुरजन कहसि 'लोरिकहिं' 'मांजरि केर अभाग'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८७, बी० ११६६-१२०१।

भो० में कडवक ३३८ के बाद तर्क 'सावन मांस' तथा का० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क 'सावन' हैं, जो इसी कडवक के हैं।

शीर्षक—मै० : क़ैफ़ियते माह सावन गुफ़्तने मैनां बर सुरजन आं च दुश्वारी बूद।

बी० : बारह मासा।

पाठान्तर—(१) १. बी० झरु लाये। २. बी० उघरैहि ना। ३. बी० येकै। (२) १. बी० बरस मेत भुई भरे खडौरा : भीनु सूकू नहि चीरु अमोरा। (३) १. बी० चषि चुषु काजरु रहै न पावै। २. बी० लोयन रोय बहावै। (४) १. बी० लै। २. बी० झरु। (५) १. बी० चुवैहि। २. बी० सुरि गाहार ढोर तिहि। (६) १. बी० जिहि। (७) १. बी० लोर सौं। २. बी० औ माजरि के भाग।

अर्थ—(१) "सावन मास में नेत्रों ने झड़ी लगाई और वे ऐसे भरे हुए रहते थे कि एक भी दिन खुलते नहीं थे। (२) वर्षा से भूमि के खार (खाल)-खड्ड (गढ़े) भर रहे थे, और भूमि ने भी उसी प्रकार [हरीतिमा का] नवीन और अमूल्य चीर कर रक्खा था। (३) आंखों का काजल [ऐसे समय में] आखों में रह नहीं पा रहा था, उसे प्रतिक्षण [रो-रो कर] मैनां बहा रही थी। (४) [ऐसे] सावन में चांदा जब लोरिक को लेकर भाग गई, मैनां के नेत्रों में पूरित होकर [आंसुओं की] झड़ी लग गई। (५) नेत्र इस प्रकार

से ओलती [की भांति] चू रहे थे कि मेरे हारों की डोरी उस पानी से सड़ गई। (६) जिस सावन में [ऐ लोरिक,] तुम गए, वह सावन मैनां के नेत्रों में आ लगा। (७) ऐ सुरजन, लोरिक से मंजरी (मैनां) का [यह] अभाग्य कहना।"

(३४४)

'भादौं मांस निसि भइ' अंधियारी। 'रइनि डरावनि हउं धनि' बारी।
'बिजुलि' 'चमकि मोर हियरा' भागइ। मंदिरु नांह बिनु धइ धइ 'लागइ'।
संग न साथी न 'सखी' 'सहेली'। 'देखि' फाट हिय मंदिर 'अकेली'।
'तेहि दुख' नैन फूटि तस बहे। धरती पूरि सागर भरि रहे।
निकरि 'चलउं पउ' 'चली' न जाई। 'पुहमी' पूरि रहा 'जलु' छाई।
दुरजनु बचनु 'संवन कइ लोर' 'परदेसहिं छाएउ''।
'मइं' 'लाए नैननि' दुइ बरिखा 'सुरिजन' रोइ 'बिहाएउं'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८८, भो० पत्र ४६ (नवीन), बी० १२०२-१२०४।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियते माह भादौं।

भो० : सख्तीए माह भादौं गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० भादौ चमकि बरसै, भो० भादौं बरसि चमंक ('चमंकि' दूसरी अर्द्धाली में भी है)। २. बी० रैनि डरावैनि मेघ म। (२) १. बी० चंचर। २. भो० चमकि मोर हियउर, बी० चमकि मोरौ हियरा। ३. बी० भागै। ४. बी० लागै। (३) १. बी० सही। २. भो० सहेलीं। ३. बी० देख। ४. भो० अकेलीं। (४) बी० इहि परि। (५) १. बी० चलौं मुकु, भो० चलउं पग। २. बी० चाल। ३. भो० भूमिहि, बी० धरती। ४. बी० जरु। (६) १. बी० सुनि कै नाहु, मैं० सवन कइ लोर। २. मैं० बिदेसहिं छाएउं, बी० परदेसहिं छायो। (७) १. बी० भो० में नहीं है। २. बी० लई नैन। ३. बी० मैं सुरिजन। ४. भो० बिहाएउ, बी० बुलाये।

अर्थ—(१) "भादौं मास में अंधेरी रात हुई (आई), वह रात डरावनी थी और मैं स्त्री बालिका थी। (२) बिजली चमक कर मेरे हृदय को भग्न करती थी, और [मेरा] मंदिर स्वामी के बिना [जैसे] पकड़-पकड़ कर मुझसे लग रहा था। (३) न [कोई] संगिनी थी, न साथिनी, न सखी और न सहेली थी, मंदिर में [अपने को] अकेली देखकर मेरा हृदय फट जाता था। (४) उसी दुःख के कारण नेत्र जैसे फूट गए हों, इस प्रकार बह निकले, और

धरती को पूरित कर वे सागरों को भर रहे। (५) यदि मैं निकल चलती, तो पैरों से चला न जाता, [क्योंकि] पृथ्वी को पूरित कर [वह] जल छा रहा था। (६) ऐ लोर, तुम दुर्जन का वचन सुनकर (मानकर) विदेश में छाए हुए हो। (७) ऐ सुरजन [अथवा स्वजन], दोनों नेत्रों में वर्षा को लगाए हुए मैंने उसे रो-रो कर व्यतीत किया।"

(३४५)

'चढ़ा' कुंवारु अगस्ति जनावा। तीर 'घटइ पइ' कंतु न आवा।
फूल कांस 'हांस' सर छाए। सारस 'कुरुलहिं खिडरिच' आए।
'चरुवा बारहिं अपुरुब' बारीं। 'अति' रस भीनी नांह पियारीं।
नव 'रितु' लाग पितरपख होई। राइ 'रांक' घर 'सीजि(झि)' रसोई।
'मोंहि पीउ बिनु नित परइ' उपासू। 'संग न साथी भुगुति न' गरासू।
बारां 'तुरै' पलानि लोर 'जानिउं' घरि 'आइहि'।
रहा 'चितहि(चित्तहिं) धरि मेच्छु सुरिंजन बहुल दिन लाइहि'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २८८, बी० १२०५-१२०७।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के अनन्तर तर्क है 'चढ़ा कुंवार', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियते माह कुंवार।

पाठान्तर—(१) १. बी० चरा। २. बी० घटे पै। (२) १. बी० हंस। २. बी० कुररे खंडरिट। (३) १. बी० नरुवा परहि अपूरब। २. बी० सभ। (४) १. बी० रुति। २. बी० रंक। ३. बी० संचर। (५) १. बी० मै पिय बिनु नित करौ। २. बी० सुख न सुहाई भुगति। (६) १. बी० तुरी। २. बी० जनि बेगि। ३. बी० आयहु। (७) बी० चिताह धरि चांदा औ सरिजानि बहु दिन लायोहु।

अर्थ—(१) "क्वार का मास चढ़ (लग) गया और अगस्त्य [तारक] जान (दीख) पड़ने लगा; जल घटने लगा, किन्तु कान्त (प्रिय) न आया। (२) कांस फूल उठे, और सरोवरों में हंस छा गए, सारस बोलने लगे और खंजन आ गए। (३) बालिकाएं (बालाएं) अपूर्व चरुवे (थालियों में दीप) जला रही थीं, [अपने] स्वामियों की वे प्रियाएं अत्यधिक रस-सिक्ता थीं। (४) नई ऋतु लग गई, और पितृ-पक्ष होने (मनाया जाने) लगा, राजा रंक सभी के घर में रसोई सीझी (पकी)। (५) [किन्तु] प्रिय के बिना

मुझे नित्य उपास ही पड़ा रहता था, न संगी था न साथी, न भोजन था न ग्रास। (६) मैं समझ रही थी कि [इन्हीं] वारों (दिनों) में घोड़े पर जीन कसकर लोरिक घर आएगा। (७) किन्तु हे सुरजन, वह म्लेच्छ अपने चित्त को पकड़े [रोके] हुए [विदेश में] रह गया और उसने बहुत दिन लगा दिए।"

(३४६)

कातिग 'निरमलि रइनि' सुहाई। 'जोन्ह' 'डाढि हंउ खरी' संताई।
'तेहिं परि' कामिनि सेज 'बिछावहिं'। 'कंतु' अमोलु 'भेंटि' 'गियं लावहिं'।
'कहउं' दिवारी 'देखहुं' आई। उतिम परब 'रितु खेलहिं' गाई।
मोहिं लेखें सबु जगु अंधियारा। 'लइ गइ' चांद मोर उजियारा।
'एहिं बिरोग जउ' नांहु न आवा। रहा 'छाड़ि' 'पिउ' 'भएउ' परावा।
पायं लागि कइ 'सुरिजन' मो 'पति जाइ' 'मनाइहि'।
'हूवा' देव 'उठान' बीर 'पूजा' 'मिसु' 'आइहि'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८६, भो० पत्र ५४ (नवीन), का०, बी० १२०८-१२१०।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत माह कातिक।

भो० : सख्तिए माह कातिक गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

का० : सख्तिए माह कातिक गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन।

पाठान्तर—(१) १. बी० निरमर रैनि। २. बी० जोबनि। २. भो० का० ढाढि हौं जो, बी० डहि डहि हौंरु। (२) १. बी० तिहि बिधि। २. बी० बिछावैहि। ३. मै० कंतहि। ४. मै० फेरि, बी० भीरि। ५. बी० लै लावैहि। (३) १. बी० कहौहु। २. भो० देखहि, का० देखइ। ३. का० रितु खेलइ, बी० तौ खेलैहि। (४) १. बी० ले गई। (५) १. बी० ईहिं रूप रबि जौ। २. का० छाइ। ३. मै० फुनि। ४. का० भएं, बी० भया। (६) १. मै० सुरिजन। २. मै० कंतहि जाइ। ३. बी० मनावोहु। (७) १. मै० होई, भो० का० होंइहि। २. बी० उठावनु। ३. भो० का० पूजइ। ४. मै० मिसु घर। ५. भो० आउ, बी० आवौहु।

अर्थ—(१) "कार्तिक में निर्मल और सुहावनी रजनी थी, किन्तु ज्योत्स्ना से दग्ध होकर मैं अत्यधिक संतप्त रही, (२) उसी प्रकार [इससे कि] श्रेष्ठ

कामिनियां शैया बिछाती थीं और अमूल्य कान्तों को भेंट (अंकों में ले) कर गले से लगाती थीं। (३) कहती (सोचती) कि वे आकर दीपावली देख जाएं और उस उत्तम पर्व और ऋतु को [गीत] गा-गाकर खेल जाएं। (४) किन्तु मेरे लेखे (लिए) समस्त जगत् अंधकार पूर्ण था, [क्योंकि] मेरा उजाला तो चांद (चांदा) ले जा चुकी थी। (५) मुझे इसलिए विरोग (दुःख) था कि [इस सुऋतु में] मेरा स्वामी [लौट कर] न आया था, और वह मुझे छोड़कर पराया हो गया था। (६) ऐ सुरजन, तुम जाकर और [मेरी ओर से] पैरों में लग कर मेरे पति को मनाना। (७) [कहना कि] देवोत्थान हो गया, वह वीर देव-पूजन के मिस [घर] आ जाए।"

(३४७)

अगहन 'रइनि बाढ़ि' दिनु खीनां। दिन पर दिनु जाइ तनु छीनां।
पवनु 'झुरक' तनु सीउ जनावा। 'सियर गहत घर कंतु न' आवा।
बिरहा 'सतुरु' 'देह' दौ 'लावइ'। भसम करइ मुख अंग 'चढ़ावइ'।
काम दगध रामां 'बेकरारू'। अस जीवनु 'जिनि होइ' करतारू।
चांद निसूगी 'हउं रे' बिगूती। 'छाडि सूकु रबि' 'कउं छरि' सूती।
'एहिं' परिहस 'ररि मरिहूं' चांद सुरिज 'लइ' भागि।
'आपन छाडि' 'करमुखी' सुरिजन पर 'गियं' लागि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २८६, भो० पत्र ५० (नवीन), बी० १२११-१२१३।

भो० तथा का० में पिछले कडवक के बाद 'अगहन' तर्क है, जो इसी का है।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत माह अगहन।

भो० : सख्तीए माह अगहन गुफ़्तन मैनां पेश सुरतनपैग़ाम मिनजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० रैनि बढी। (२) १. बी० झरकि। २. भो० सिर भुज लोर कंठ नहि, बी० सुरसर धट पे कंतु न। (३) १. बी० सतर। २. मै० देह। ३. बी० लावै। ४. बी० चरावै। (४) १. भो० बेकरार, बी० बिकरारा। २. बी० जिन होय। ३. भो० करतार, बी० करतारा। (५) १. बी० हौं रु। २. बी० छडि सूकु रबि। ३. भो० कूझरि, बी० कौंछरि। (६) १. बी० ये। २. भो० दिन भरिऊं, बी० हौ मरिहौं। ३. बी० लै। (७) १. मै० अबहुं न छाड़इ, भो० कानिहि छाडि। २. बी० कारमुषी। ३. बी० गै।

अर्थ—(१) "अगहन में रात बढ़ी हुई थी और दिन क्षीण हो गया था

दिन प्रति दिन [मेरा] तन क्षीण हो रहा था। (२) पवन झुर-झुर करके बहता और शरीर में शीत ज्ञात होता था, और (जब) शीत मुझे पकड़ रहा था, तब भी कान्त नहीं आया। (३) विरह शत्रु [अथवा सत्वर] देह में दावाग्नि लगाता, और उसको भस्म [बना] कर मुख तथा अंगों पर चढ़ाता था। (४) काम से दग्ध रमणी बेक़रार (बेचैन) थी; हे सृष्टिकर्ता, ऐसा जीवन [किसी का] न हो! (५) चांद निष्ठुर है और मैं तिरस्कृता हूं, वह शुक्र (काने बावन) को छोड़ और सूर्य (लोरिक) को छल कर सोई हुई है। (६) इस परिहास (अपमान) में मैं रट लगाती हुई मर जाऊंगी कि चांद सूर्य (लोरिक) को ले कर भाग गई है। (७) ऐ सुरजन, वह काले (कलंकित) मुख वाली अपने [पति] को छोड़ कर अन्य [के पति] के गले लगी हुई है!"

(३४८)

'आइ पूस साईं पंथु जोवउं'। खिनु इकु राति दिवसु 'नहि' 'सोवउं'।
सुरिजन 'केहि परि सीउ सहारबि'। 'मरन न जाइ जियइ केइं पारबि'।
घर घर 'सउरि सुपेतिइं' साजहिं। 'घिरित' मांस बहु 'भांतिहि खाजहिं'।
'मइं' तनि चोला चीरु न 'सुहाई'। 'पिउ' बिनु 'रोहितास जनु' लाई।
'जानिउं सिसिर' कंतु सुनि 'आवत'। राइ 'रांक घर लइ धनि' रांवत।
'सुरजन' लोरु बनिजि गा 'हउं' नित 'ढारिउं' आंसु।
'कवनु' 'लाभ कहं भूलइ' लोरिक पूंजी होइ बिनांसु॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६०, बी० १२१४-१२१६।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियते माह पूस।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क है 'आइ पूस', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० आयो पोसु नाह पंथु जोऊ। २. मै० न। ३. बी० सोऊ। (२) १. बी० किहि परि सीउ सराअबि। २. बी० मरि न जाउ कै जीउ उबारबि। (३) १. बी० सौरि सपेटहि (सुपेतिहि—फ़ा०)। २. बी० घिरत। ३. बी० भांतेहि षाजैंहि। (४) १, बी० मोहि। २. बी० सुहाई। ३. बी० पिय। ४. मै० लूट पाट जस। (५) १. बी० जावत सुसर (सिसिर—फ़ा०)। २. बी० आवत। ३. बी० रंक लै घर निसि। (५) १. बी० सुरजनु। २. बी० हौं। ३. बी० ढारउं। (७) १. बी० कोनु। २. बी० कैं भूलैं।

अर्थ—(१) "पूस आ गया और मैं जो स्वामी का मार्ग (देख) रही थी,

एक क्षण भर भी रात-दिन मैं नहीं सोती थी। (२) [मैं कहती,] ऐ सुरजन [अथवा स्वजन,] 'मैं किस प्रकार शीत को सहन करूंगी? मरा नहीं जा रहा है, [किन्तु] जीना [भी] कैसे संभव होगा?' (३) घर-घर में लोग सौर-सुपेती (गद्दे-चादरें) सजा रहे थे और घी तथा मांस बहुत भांति से खा रहे थे। (४) किंतु मेरे शरीर पर चोली और चीर [भी] नहीं सुहाते थे, क्योंकि प्रिय के बिना ऐसा लगता था जैसे अग्नि लगी हुई हो। (५) मैंने समझा कि [मेरा] कांत शिशिर [का आगमन] सुनकर आ जाएगा, क्योंकि [इस ऋतु में] राजा-रंक सभी घर में स्त्री को लेकर रमण करते हैं। (६) ऐ सुरजन, लोरिक वाणिज्य के लिए गया है, और मैं नित्य ही [इसके लिए] आंसू गिराती रही हूँ, (७) [और कहती रही हूँ,] 'ऐ लोरिक, तू किस लाभ के लिए [यह] भूल [कर] रहा है? [देख,] तेरी पूंजी (स्त्री) का ही [इस लाभ के लोभ में] विनाश हो रहा है।"

(३४९)

'माह' मांस निसि 'परइ' तुसारू। 'कंपहिं' हार डोर थनहारू।
'कांपहिं' डसन नीर चखि झरा। बिरह अंगीठी 'हियंउरि' धरा।
'एक बिरहें अरु दहिउं तुसारा'। 'भा रे परहि यह जिवनु हमारा'।
तुम्हं बिन नांह 'अइसि हउं' भई। 'पुरइनि जइसि भूंजि डहि' गई।
'भरि हेवं[त]भोर अंक लाइउं'। 'लइ' गई चांद सुरिजु कत 'पाइउं'।
'हेवंत मोहि' बिसारि मेछु पर कामिनि 'रांवइ'।
'सुरिजन मुइउं' तुसारि बेगि कहि 'सूरिजु आवइ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २६०।२, बी० १२१७-१२१६।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियते माह मांस।

पाठान्तर—(१) १. बी० माघ। २. बी० परै। ३. बी० कंपैहि। (२) १. बी० कंपै। २. बी० हिये उपरि। (३) १. बी० इकु बिरहा अरु परै तुसारू। २. बी० भय रु परायोहु जीवनु हमारू। (४) १. बी० अैस हौ। २. बी० परवनि जैस भूंजि ठह। (५) १. बी० हीये हियो भीरि गै लाऊ। २. बी० ले। ३. बी० पाऊ। (६) १. बी० हीया होतें महिन (मुहिं—फ़ा०)। २. बी० रावै। (७) १. बी० सुरिजनु मुयो। २. बी० लोरिकु आवै।

अर्थ—(१) "माघ मास में रात में तुषार पड़ता था, [जिससे] भारी

स्तनों पर [पड़ी हुई] हारों की डोरियां कांपती थीं। (२) दांत कांप रहे थे और आंखों से जल (आंसू) झड़ (गिर) रहा था, [दूसरी ओर] विरह की अंगीठी हृदय-उर में रक्खी हुई थी। (३) एक तो विरह से और दूसरे तुषार से मैं दग्ध हुई, इसलिए मेरा यह जीवन [जैसे] पराए का हो गया था। (४) [लोरिक से कहना,] 'हे स्वामी, तुम्हारे बिना मैं ऐसी हो गई थी, जैसे [तुषार-पात से] पुटकिनी (कमलिनी) जल-भुन गई हो। (५) हेमंत भर [मुझ पुटकिनी ने] अंकों से भोर (प्रभात) को ही लगाया; क्योंकि सूर्य (लोरिक) को चांद (चांदा) ले गई थी, इसलिए मैं [पुटकिनी] उसे कहां पा सकी थी? (६) हेमंत में वह म्लेच्छ मुझे विस्मृत कर दूसरे की स्त्री से रमण कर रहा था! (७) हे सुरजन, मैं तुषार से मर गई; तू [जाकर] कहे, 'ऐ सूर्य (लोरिक), तू शीघ्र आ जा'।"

(३५०)

फागुनि सीउ 'चउग्गुन' कहा। 'उछर पवन सतगुन' होइ रहा।
फाग 'सराहउं लोरु जउ आवइ'। 'सीउ मरति गियं लाइ जियावइ'।
घरि घरि रचहिं 'डंडाहर' बारीं। आति सुहाग बहु राज दुलारीं।
मुख 'तंबोलु' चखि काजर 'पूरहिं'। 'आंकि मांग सिरि चीरि सेंदूरहिं'।
'नाचहिं फाग होइ' झनकारा। 'तेहिं रस भीनीं सबइ सयंसारा'।
रगत 'रोइ मइं' तस 'कइ' 'चोल चीर' रतनार।
कहि सुरिजन तोरि मैंनां 'भइ होरी जरि' छार॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २९६ (?), बी० १२२०-१२२२। ऐसा लगता है कि मैं० यहां पर त्रुटित हो गई थी और उसके कई पत्र टूट कर निकल गए थे, इसलिए संख्या पुनः डालते समय जब बाद की पत्र-संख्या से मिली हुई पत्र-संख्या डाली गई, उसमें भूल हो गई है।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियते माह फागुन।

पाठान्तर—(१) १. बी० चवगुना। २. बी० आछरि जीउ सूक। (२) १. बी० सर्‌यो जै लोरिकु आवै। २. बी० सीय म मरत गै लाई जिवावै (३) १. बी० डंडारसि। (४) १. बी० तबोरु। २. बी० पूरा। ३. बी० भरहिं मांग सीस सिंदूर पूरा। (५) १. बी० खेलहिं फाग करहिं। २. बी० तिहि रस भीनी सभ सैंसारा। (६) १. बी० रोय मैं। २. बी० कौ। ३. बी० चोरां ची[र]। (७) १. बी० जरि भई होरी।

अर्थ—(१) "फाल्गुन में शीत चौगुना कहा जाता है, किंतु पवन उच्छलित हो रहा था [इसलिए] वह सतगुना हो रहा था। (२) मैं फागु की सराहना करती यदि लोरिक आ जाता और [मुझ] शीत से मरती हुई को गले से लगा कर जिला देता। (३) बालिकाएं घर-घर में डंडाहर (?) रचती थीं और बहुतेरी राजदुलारियां अत्यधिक सुहाग में [थीं]। (४) मुख में वे ताम्बूल [लेती थीं] तथा आंखों में कज्जल पूरती थीं, वे मांगें अंकित करतीं और सिर [के केश] चीर कर उसे सिंदूरित करती थीं। (५) वे फाग नाचती थीं, जिससे झंकार होती थी, और उसी रस में भीनीं संसार में सभी थीं। (६) मैंने [इस मास में] इतना रक्ताश्रु गिराया कि मेरी चोली और मेरा चीर लाल हो गए। (७) हे सुरजन, [लोरिक से जाकर] कह, 'तेरी मैनां होली [की आग] में जल कर राख हो गई'।"

(३५१)

चैति बनसपति करी निकारा। हरियर बरन सेतु (सेत) रतनारा।
बिहसैं(से) क(कं)वरु अ(अउ)चंदनु गंधाना।
कुसुम बासु सहि भवरु लुभांना।
सुरिजन आई(इ) बसंतु तुलाना। पिउ पर बेली देषि लुभांना।
कंतु बसंतु जौ(जउ) न घरि आवै। रितु बसंत मोहि देष(षि) न भावै।
लोरिक आय(इ) देषि फुलवारी। तुम्ह बिनु सूकै नारि ग(गु?) वारी।
यकसर नारि मरै निसि काटेंहि सेज बिछावै।
कहि सुर(रि)जन धन पास तु(तो)र तुल(तिल?) ऐक न पावै॥

सन्दर्भ—बी० १२२३-१२२५। मैं० भी यह कडवक रहा होगा—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "चैत्र में वनस्पतियों ने कलियां निकालीं, जिससे वे हरी [वनस्पतियां] श्वेत और रत्नालु (लाल) हो रहीं थीं। (२) कमल विकास कर रहे थे, चंदन सुगंधि-विकीर्ण करने लगा था, एवं कुसुमों की सुवास से सारे भ्रमर उन पर भटक रहे थे। (३) [अन्यों के] स्वजन (आत्मीय) वसंत में आ पहुंचे थे किन्तु मेरा प्रिय अन्य की बेली (नारी) को देखकर उस पर लुभाया हुआ था। (४) क्योंकि मेरा कांत (पति) वसंत में घर नहीं लौट रहा था, वसंत ऋतु को देखना [भी] मुझे नहीं भा रहा था। (५) [मैं कहती,] 'ऐ लोरिक, तू आकर अपनी फुलवाड़ी (यौवनवती स्त्री) को देख जा, तेरे

बिना यह ग्वालिन (?) नारी सूख रही है।" (६) यह अकेली (पति-विहीन) नारी रात्रि में [अपनी विरह-पीड़ा के कारण] मरती और [मानो] कांटों पर अपनी शैया बिछाती थी, (७) [क्योंकि] ऐ सुरजन, कहना कि वह धन्या (स्त्री) तेरा-पार्श्व एक तिल भी नहीं पा रही थी।"

(३५२)

बैसाषा(ष)ह जौ तरवरु फरा। हियरे लाइ लोरिकु ही धरा।
तु (तो) रु अंबरांउ राषि केउ पारा। बिरसु आई पिउ आंब सुहारा।
न जानौ करहु कौन बन रहा। सुरिजन मोकौ(मकहुं)सुनौ तोर कहा।
करि कराप दिन दु ष भरि काढ़ौ(ढौं)। नैन रगत नित मारग चाढौ(ढौं)।
आवहु सतुरैं बीर गुसाईं। षर होय(इ) भानु तपै बिनु सांईं।
गौ बसंत रितु आहि हरि(परि?) सांई सेज न आयों (यो)।
सुरिजन नाहु भंवर परि दाष बेलि फर रांयो॥

सन्दर्भ—बी० १२२६-१२२८। मै० में भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "वैशाख में जब वृक्ष फले, तब मैंने हृदय में लगा कर लोरिक को ही धारण किया। (२) [मैंने कहा,] 'तुम्हारे आम्राराम (अपने शरीर) की रक्षा मैं किसी प्रकार कर सकी; ऐ प्रिय, तुम आकर [अब] अपने आम्र-सहकार का विलास करो। (३) तुम न जाने किस बन में रहा करते हो; भला, ऐ स्वजन, मैं कहीं भी तो तेरा कथन (तेरा बोल) सुनूं! (४) कलाप करती (चिल्लाती) हुई मैं [अपने] दिन दुःख से भर कर काढ़ती (बिताती) हूं, और नेत्रों का रक्त नित्य ही [तुम्हारे] मार्ग पर चढ़ाती हूं। (५) ऐ वीर स्वामी, तुम सत्वर ही आओ; तुम स्वामी के बिना, भानु प्रखर होकर तप्त हो रहा है।' (६) इसी प्रकार से वसंत [भी] चला गया किन्तु मेरा स्वामी शैया पर न आया, (७) [क्योंकि] ऐ सुरजन, मेरा पति भ्रमर की भांति [अन्य की] द्राक्षा-बेली (नारी-यष्टि) और उसके फलों (अधरों?) पर अनुरक्त हो रहा था।"

(३५३)

तस कै चांद सुरिजु कनि जपा। जेठ मास महि उपर तपा।
तपताह जम (जग?) आहौं दही। बिरह कहांनी मो सौ कही।
अैस तपै षडवांनी न जानौ। सीतर नीरु दगध पै मानौ।

तिह गुनि चंदनु अंगि न चराऊं। बीना परिमलु अ[ग]रु न लाऊं।
रचि रचि मढ़ु छावहि अधियारी। पिउ घरि रवनि रवैहि जग बारी।
सुर(रि)जन तपत जनमु गा सरि ज बारि जनयोहु (जनायेहु)।
मोर संदेस लोरिक सौं कहियहु जरता(त)ह आय(इ) बुझायेहु॥

सन्दर्भ—बी० १२२९-१२३१। मै० में भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "चांद (चांदा) ने सूर्य (लोरिक) को इस प्रकार जपा, तब ज्येष्ठ मास मही-तल के ऊपर तप्त होने लगा। (२) जब जग (?) तप्त हो रहा था, तब मैं भी दग्ध हो गई और उसने [अपनी] विरह-कहानी मुझसे कही। (३) [ज्येष्ठ] इस प्रकार तप्त हो रहा था कि खांड का पानी (शर्बत) [कुछ भी नहीं] जान पड़ता था, तथा शीतल जल से, हो न हो, दाह ही का अनुभव होता था। (४) इसी गुण (कारण) से मैं अपने शरीर पर चंदन नहीं चढ़ाती थी, और बीना (वीरण—खस), परिमल और अगुरु नहीं लगाती थी। (५) [वर्षा की सन्निकटता के कारण] बहुतेरे लोग रच-रच कर (सुरुचि पूर्वक) अपने मढ़ (मंदिर—भवन) अधिकता से छा रहे थे, और जिनके प्रिय घर पर थे, जगत् भर में वे बाल-रमणियां [उनसे] रमण कर रही थीं। (६) ऐ सुरजन, [ज्येष्ठ में] तप्त होते हुए यह जीवन उसी प्रकार गया जिस प्रकार सरिता का जल दिखाई पड़ा। (७) मेरा सन्देश तुम लोरिक से कहना, कि इस जलती हुई [नारी] को आकर वह बुझाए।"

(३५४)

आय(इ) अषाढ मेघ ग(घ)ररांने। नर नरवै पुहमी अंगुराने।
छावहि मंदिर औ घर सारा। दीप गये बहुरे बनिजारा।
सब को चित करै घर केरी। मोहि घर चित नाहि(ह) अवसेरी।
पिय बिरहै तनि मासु घटावा। गा अषाढु पै कंतु न आवा।
जियरा मोर नांक होय(इ) रइा। पिय बिनु मरनु नितहि को सहा।
सुरिजन सावन बहुरेहि लागा कहि मैनां अब न सभारै।
हर भ(भं)डार कर टेका नैन लोहू भरि ठा(ढा)रै॥

सन्दर्भ—बी० १२३२-१२३४। मै० में भी यह कडवक रहा होगा—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "आषाढ़ आया तो मेघ गड़गड़ाने (गर्जन करने) लगे;

पृथ्वी पर नर तथा नरपति [सभी] अंकुरित होने (अंगड़ाई लेने) लगे। (२) वे अपने मंदिर, घर और शालाएं छा रहे थे; जो बनजारे (व्यवसायी) द्वीपों को गए थे, वे भी लौट आए थे। (३) सभी-कोई (पुरुष) [अपने-अपने] घर की चिंता कर रहा था, और मुझे अपने घर की चिंता इसलिए करनी पड़ रही थी कि [मेरा] स्वामी नहीं था। (४) प्रिय के विरह में मैंने शरीर का मांस घटा (गला) दिया, और आषाढ़ [भी] चला गया किन्तु कान्त [वापस] न आया ! (५) मेरा जी नाकों आ गया था, क्योंकि प्रिय के बिना मरण नित्य ही कौन सहन करता ? (६) ऐ सुरिजन, सावन पुनः लग गया है, कहना कि मैनां अब अपने को नहीं संभाल [पा] रही है; (७) वह घर और भांडार पर हाथों को टेक कर नेत्रों में लहू [के आंसू] भर-भर कर ढाल रही है।"

(३५५)

मैं सभ दुख तुम्हं 'आगें' रोवा। चांद 'नांह मोर देहु' बिछोवा।
तूं 'हरि' पूनिउं चांद 'सपूनी'। खट रितु 'कीनी' सेज 'मोरि' सूनी।
कहि सुरिजन अस चांद न 'कीजइ'। नांहु मोर मोहिं दखिना 'दीजइ'।
एकु 'बरिसु मोर गा' बिनु नाहां। दई का(क) डरु 'कीजइ' चित माहां।
'तुहूं आहि तिरिया कइ' जाती। पिय बिनु 'मरसि रइनि हिय फाटी'।
तू 'रे' निसूगी नारि सूग 'नहिं मन माहिं' जानसि।
'लीन्हें फिरसि नांह मोर कस अबहूं नहि' आनसि॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३८ (नवीन), बी० १२३५-१२३७। मै० इस अंश में त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० : हमः हाले खुद गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० आगैं। २. बी० नाहि मोहि दीन्ह। (२) १. बी० हहि। २. बी० सवानी। ३. बी० गइ (कीनी—फ़ा०) ४. बी० मोरी। (३) १. बी० कीजै। २. बी० दीजै। (४) १. बी० बरसु भौ मो। २. भो० कइ। ३. बी० कीजै। (५) १. बी० तूंहैहि आहि तिरी की। २. बी० रैनि मरत फुटि छाती। (६) १. बी० र। २. बी० [म]न माहि न। (७) १. बी० गई तीनि रुति आहि नाहु मोरै अजहु न।

अर्थ—(१) " 'ऐ चांदा,' [मैनां ने कहलाया,] 'मैंने [अपना] समस्त दुःख तेरे आगे रो-सुनाया, [तुझसे प्रार्थना है कि] तू मुझ से अलग किया

हुआ मेरा पति दे दे। (२) ऐ पूर्णिमा की संपूर्ण चांद, उसे अपहृत करके तू मेरी शैया [पिछली] छः ऋतुओं में सूनी कर चुकी है।' (३) ऐ सुरजन, [मेरी ओर से] उससे कहना कि 'ऐ चांद, ऐसा तुझे न करना चाहिए, मेरा स्वामी तू मुझे दक्षिणा [के रूप में] दे दे। (४) मेरा एक वर्ष बिना स्वामी के जा चुका है, [भला अब भी] तू चित्त में दैव का डर कर ! (५) तू भी स्त्री की जाति [की] है; तू भी प्रिय के बिना रात्रि में हृदय के फटने से मर जाएगी। (६) [किन्तु] तू निष्ठुर नारी है, और मन में करुणा करना नहीं जानती है। (७) तू मेरे स्वामी को कैसे (क्यों) लिए फिर रही है ? अब भी क्यों उसे [वापस] नहीं ला रही है ?' "

(३५६)

काहे 'कहं बिधि हउं' औतारी। 'बरु औतरतहि मरतिउं' बारी।
चांद मया करि 'दइ' अहिवातू। मोहिं वारि सिर 'ऊपरि' छातू।
यह दुखु भारु सहइ को 'पारइ'। 'तेहि निसि रोइ दिवस मोहिं जारइ'।
'सोरह' करां 'सरगि' परगाससि। 'बारह' मंदिर सेज तूं डाससि।
सहस करां सूरिजु उजियारा। 'साईं' मोर 'तोहि भएउ' पियारा।
पाइं 'परउं जउ' 'उगवसि' 'अउ' सुरिजन पूजा सारउं।
'जारि करां जो प्रगासइ तासउं कइसें पारउं'॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३९ (नवीन), बी० १२३८-१२४०। मै० इस अंश में त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

भो० में पिछले कडवक के बाद आया हुआ तर्क 'काहे' इसी का है।

शीर्षक—भो० : वाक़अ हाल खुद गुफ़्तन मैनां पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब लौरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौ हौ बिधि। २. बी० बा(ब)रि औतरन मरती। (२) १. बी० देहि। २. भो० बारी (वारि—ना०)। ३. बी० उपरि। (३) १. बी० बारा। २. बी० तिहि निसि राई तनु यो जारा। (४) १. बी० सोराह। २. बी० सुरिजु (दे० परवर्ती चरण)। ३. बी० बाराह। (५) १. बी० नाह। २. बी० तुम्ह भयो। (६) १. बी० परौं जौ। २. भो० गौनसि। ३. बी० औ। (७) १. बी० छडि करा परगट हाई तास्यौ कैसैं पारौ।

अर्थ—(१) ["ऐ चांद,] विधाता ने मुझे अवतरित (उत्पन्न) ही क्यों किया ? इससे तो अच्छा होता कि अवतरित होते ही मैं, ऐ बालिका, मर

गई होती। (२) ऐ चांद, तू मुझ पर स्नेह करके मेरा अहिवात वापस कर, और [मेरे] सिर पर का छत्र मुझे वार (दे डाल)। (३) यह दुःख-भार कौन सहन कर सकता है? इसी से रात में मैं रोती हूं और दिवस मुझे जलाता है। (४) तू सोलह कलाओं से स्वर्ग (आकाश और धवलगृह) को प्रकाशित करती [रहती] है, और बारह मंदिरों (राशियों और भवनों) में तू [अपनी] शैया बिछाती है, (५) [और इस समय] सहस्र कलाओं से प्रकाश-पूर्ण सूर्य (लोरिक), मेरा स्वामी, तुझे प्रिय हो गया है!' (६) ऐ सुरजन, [उससे कहना,] 'यदि तू [उस सूर्य—लोरिक को] उदय कर दे तो मैं तेरे पैरों पड़ूं, और तेरी पूजा सारुं (करूँ)।' (७) किन्तु जो मुझे [अपनी] कलाओं से जला कर [अपना] प्रकाश करती है, उससे मैं कैसे [अपने प्रिय को पा] सकती हूं?"

(३५७)

चांद निसूगी तो पा सरना। पिय मोर उपरि का तो धरना।
कौन बैरु मैं(मइं) तो सौ कीन्हा। दे चिल्हवांसु नाहु मोर लीन्हा।
तोरी मांग सिंदूर संवारै। मोहि माथै नित करवतु सारै।
तोहि बहु फूल हारु पहिरावै। मोरै मारगि का(कां)ट बिछावै।
पून्यों चांद देहि घरवासा। लोरिक पाटनि नारि कर पासू।
सांवर चीर मैल तन आंग मू(मूं)ड अति रूख।
कहि सुरिजन तोरी मैंना माजरि भई अति सूष॥

सन्दर्भ—बी० १२४१-१२४३। मैं० इस अंश में त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

अर्थ—(१) "ऐ निष्ठुर चांद, मुझे तेरे चरणों की शरण है, मेरे प्रिय के ऊपर तुझे क्या (कौन-सा) अधिकार है? (२) मैंने तुझसे कौन-सा बैर किया था, कि तूने चील्हवांस (चील्हपाश—चील्हों को फंसाने का कठिन फंदा) करके मेरे स्वामी को [मुझसे ले] लिया? (३) [अब] वह तेरी मांग में सिंदूर संवारता (रचता) है, और मेरे मत्थे पर नित्य करपत्र (आरा) सारता (चलाता) है; (४) तुझे वह बहुतेरे पुष्पहार पहनाता है, और मेरे [जीवन के] मार्ग में वह कांटे बिछा रहा है। (५) ऐ पूर्णिमा की चांद, तू उसको [उसके] घर का निवास दे, उस लोरिक को जिसे तू [हरदीं] पाटन में, ऐ नारी, अपने पाशों में कर रही है। (६) मेरा चीर श्यामवर्ण का हो रहा है, मेरा शरीर मैला हो रहा है, मेरे अंग और सिर अत्यधिक रूक्ष हो

रहे हैं। (७) ऐ सुरजन [लोरिक से] कहना, 'तेरी मैंनां मांजरी अत्यधिक शुष्क हो गई है।'"

(३५८)

मोर भतारु 'सरगि लइ रावसि'। 'अउ निसि मोहिं' सिर ऊपरि आवसि।
बांभन देव 'लोक' मोहि दीन्हां। सो लइं 'लोर पेलि कइ' लीन्हां।
तूं बिनु लाज कानि 'तोहि' नाहीं। नाहुं मोर गोवसि परिछाहीं।
'मोहि राखसि अपनें उजियारें'। लोरु रवसि पर घर 'अंधियारें'।
बावन 'पुरुस जउ' तोर बियाहा। 'लोरिक मोरु गहसि दहुं' काहा।
सुरिजन 'बिनउ चांद कहं पठवहि लोर दिवाइ'।
छाडि देहु घर 'आवइ मोहि जिय' आस 'तुलाइ'॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ५२ (नवीन), बी० १२४४-१२४६। मैं० इस अंश में त्रुटित है—दे० कडवक ३५० की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शीर्षक—भो० : बकिनायत गुफ़्तन मैंनां हाले खुद पेश सुरजन पैग़ाम बजानिब चांदा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुरगि लै रावसि। २. बी० औ निसि मोहि। (२) १. बी० लोग। २. बी० लोगह देषत। (३) १. बी० तो। (४) १. बी० मुहि रषिसि आपनै उजियारा। २. बी० अधियारै। (५) १. बी० बीरु सु। २. बी० लोरु मोरु करिसी धौ। (६) १. बी० बिनय चांद कर पठई को पियै सनाहु जाई। (७) १. बी० आवै मोर जिउ। २. बी० तुलाई।

अर्थ—(१) "[ऐ चांद,] तू मेरे भर्त्तार (पति) को आकाश में ले जाकर उसके साथ रमण करती है, और रात्रि में तू मेरे सिर के ऊपर आती है! (२) जिसको ब्राह्मणों, देवताओं और समाज ने मुझे दिया, उस लोरिक को तूने [मुझे] धकेल कर ले लिया। (३) तू बिना लज्जा की है, और तुझे मर्यादा [का ध्यान] नहीं है, इसीलिए तू मेरे स्वामी को [अपनी?] परछाहीं में छिपा रही है। (४) मुझे तो तू [अपने] प्रकाश में रख रही है, जब कि [मेरे] लोरिक से तू पराए घर में और अंधेरे में रमण कर रही है। (५) जब कि तेरा विवाहित पुरुष बावन [विद्यमान] है, क्या (क्यों) तू मेरे लोरिक को पकड़ रही है?' (६) ऐ सुरजन, चांद को (से) [मेरी ओर से] निवेदन करना, कि वह लोरिक को मुझे दिला (दे) कर भेज दे; (७) उसे छोड़ दे कि वह घर आए और मेरे जी की आशा पूरी हो।"

(३५९)

मोर खिलवना अपुर(रु)बु अहा। देषत कीरु मंजारी गहा।
दूध भातु जो(जें)वनु नित देत्यौं। सगरी राति हिये परि लेत्यौं।
सेज पिरम रस सून्यौं आवत।
अंब सहरा (सहारि) डार चरि रावत।
तिहि तू चांद गगन लै गई। मास हीन हौ (हौं) पिषिना भई।
रसु लै निरसु कीन्ह तुम्ह लोरा। दीजै अबहि बियाहा मोरा।
सुर(रि)जन चांद गवन परदेसाह उंजियार।
हौ(हौं)रु निलषनि पिय बिनु मंदिर मोर अधियार॥

सन्दर्भ—बी० १२४७-१२४९। भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क 'मोर खिलवना' आता है, जो इसी का है।

अर्थ—(१) "मेरा वह खिलौना—क्रीड़ापक्षी—(लोरिक) अपूर्व था, मेरे उस [क्रीड़ा-] शुक को देखते-देखते मार्जारी (चांदा) ने ले (छीन) लिया। (२) उसको मैं नित्य ही दूध-भात का भोजन देती थी, और सारी रात हृदय पर लिए रहती थी। (३) शैया में वह प्रेम-रस में भर कर शून्य (एकान्त) में आता था और [मेरी यौवन-वाटिका के] आम्र-सहकार की डालों (विभिन्न अंगों) पर चढ़ कर रमण करता था। (४) उसको, ऐ चांदा, तू अपने आकाश (धवलगृह) को चढ़ा ले गई, और मैं मांसहीन होकर प्रक्षीण हो गई! (५) लोरिक का समस्त रस लेकर तूने उसको नीरस कर दिया है, [भला] अब भी तू मेरा विवाहित [पुरुष] दे दे!' (६) ऐ सुरजन, चांदा तो परदेश जाकर प्रकाशपूर्ण हो रही है, (७) किन्तु मैं प्रिय के बिना लक्षण-हीना [हो रही] हूं और मेरा मंदिर (भवन) अंधकार-पूर्ण [हो रहा] है।"

(३६०)

सुरिजन पाव रही लइ मैनां। 'बनिजु' तुम्हार मोर दुखु बैनां।
लादि टांड 'तहं चलहु' गुसाईं। 'जेहि' पाटनि 'गा' लोरिकु साईं।
'जेहि' पाटन(नि) गइ चांद सभागी। 'तेहि' पाटनि 'गवनहु मोहि' लागी।
'जेहि' पाटनि पिउ रहा लुभाई। 'लोभ(भि)नि' 'चांदहि लइ' घरि आई।
'तेहि' पाटनि 'लइ बनिजु' 'पसारौ(र)हु'।
'अउ बेसहइ कहं' लोरु 'हकारौ(र)हु'।

देउं तुरी 'चढ़ु' सुरिजन 'उडइ' पवनु पंखि(ख) लाई(इ)।
दस 'गुन लाभ देब मइं तो कहं' लोरु 'बेसाहइ' जाई(इ)॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ५३ (नवीन), बी० १२५०-१२५२।

भो० में इस छंद के बाद तर्क 'खोइलिन नायक' है, जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—भो० : पाए उफ़्तादन मैनां अज़ बराए रसानीदन पैग़ाम बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० बनजु। (२) १. बी० तू चालु। २. बी० जिहि। ३. बी० है। (३) १. बी० जिहि। २. बी० तिहि। ३. बी० मोकौं गुहनै। (४) १. बी० जिहि। २. भो० लोभी। ३. बी० चांद न ले। (५) १. बी० तिहि। २. बी० लै बनजु। ३. भो० पसारा। ४. बी० औ बिसहन कौ। ५. भो० हकारा। (६) १. बी० चरु। २. बी० उडिरु। (७) १. बी० गुनौ लाभ देऊ मैं तोकौं। २. बी० बिसाहै।

अर्थ—(१) सुरजन के पैर मैनां ने पकड़ लिए, [और उससे कहा,] "तुम्हारे बनिज के लिए मेरे दुःख के वचन हैं। (२) [इस प्रकार का] टांडा लाद कर तुम, हे गोसाईं, वहाँ जाओ, जिस पाटन (महानगर) को मेरा स्वामी लोरिक गया है। (३) जिस पाटन (महानगर) को भाग्यशालिनी चांदा गई है, उसी पाटन (महानगर) को तुम मेरे [कार्य के] लिए जाओ। (४) जिस पाटन (महानगर) में [जाकर] मेरा प्रिय लुब्ध हो रहा है, [जिससे कि] वह लोभिनी चांदा को लेकर [भी] घर आए। (५) तुम उसी पाटन (महानगर) में यह बनिज ले जा कर पसारो, और इसे क्रय करने को लोरिक को बुलाओ। (६) ऐ सुरजन, मैं तुम्हें घोड़ा देती हूं, जिस पर तुम पवन के पंखे लगा कर उड़ो। (७) यदि तुम लोरिक को क्रय करके लाए, तो मैं तुम्हें [अन्यथा होने वाले] लाभ का दस गुना दूंगी।"

(३६१)

'खोलिनि' नाइकु दुहुं कर गहा। 'आपनि पीरि हियइं कइ' कहा।
लकुटि हाथ अंधरी कइ लिई। 'हउं' बिनु लकुटि टेक मोरि 'गई'।
'पियरि' धूप 'अब' जीवन मोरा। बहु पछिताउ 'रहसि' तुम्हं लोरा।
बूढ़ि 'बैसि' 'खोलिनि' 'कुंबिलानी'। 'तुम्हं' बिनु पूत सींच को पानी।
आइ देखु 'हउं अंथवति आहा'। 'अंथएं' आइ करउ फुनि 'काहा'।

मोहि 'जि[यत] जिय' सुरिजन लोरिक आइ 'देखाउ'।
'नैन नीर भरि' 'साइर' [धो]इ 'पियउ दुइ पाउ'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २९७, भो० पत्र ४० (नवीन), बी० १२५३-१२५५।

शीर्षक—मै० : गुफ़्तने खोलिन सुरजन नायक रा व रवानः करदन।

भो० : गुफ़्तने खेलिन वाक़अ् हाल ख़ुद व ज़ईफ़ी पैग़ाम बजानिब लोरिक।

(६) तथा (७) में कोष्ठकों के अंश मै० में कीट-भक्षित होने के कारण निकल गए हैं।

पाठान्तर—(१) १. भो० खेइलिन (खोइलिन); बी० षौलनि। २. बी० आपन पीर हिये की। (२) १. भो० लकुटि तो अंधरी कइ गई, बी० लकुटी हाथ अधर की लई। २. बी० हौ। ३. भो० लिई। (३) १. बी० पियर। २. भो० यह। ३. बी० होय। (४) १. मै० भइसि, बी० बैसि। २. भो० खेलिन। २. मै० कुमिलानी। ४. भो० तेहि, बी० अस। (५) १. बी० हौं अथवति अहा। ३. बी० अथवे। ४. मै० आए करियहु, बी०, आइ तुम्ह करिहौ। ४. बी० कहा। (६) १. बी० जीउ जौ। २. बी० दिषावा। (७) १. बी० दासि तुम्हारी। २. भो० सरवर, बी० होइ रहौ। ३. बी० पीउ दोई पाव।

अर्थ—(१) खोलिन ने नायक को दोनों हाथों से पकड़ा, और [उससे] हृदय की अपनी पीड़ा कही, (२) '"[चांदा ने] इस अंधी के हाथकी लकुटि (लकड़ी) ले ली; [अब] मैं बिना लकुटि (लकड़ी) की हूं, [क्यों कि] मेरी टेक चली गई! (३) अब मेरा जीवन [संध्या की] पीली धूप है, [इसके रहते-रहते तुम न आए तो] तुम्हें, ऐ लोरिक, इसका बहुत पछतावा रहेगा। (४) अपनी वृद्धावस्था में खोलिन [लता] कुम्हला गई है; हे पुत्र, तुम्हारे बिना उसे पानी से कौन सींचे? (५) तुम आकर देखो, मैं अस्तमित हो रही हूँ; अस्तमित हो जाने के बाद पुनः तुम आकर [ही] क्या करोगे?'(६) ऐ सुरजन, यदि मुझे [मेरे] जीते-जी लोरिक को आकर दिखाओ, (७) तो अपने नेत्रों के जल से सागर भर कर और [उससे] तुम्हारे दोनों पैर धोकर मैं पिऊं।"

२४. संदेश-प्राप्ति तथा स्वदेश-आगमन खण्ड

(३६२)

'कवनु' बनिजु 'तुम्ह' नाइक 'कीन्हां'। सोक संताप बिरह दुख 'लीन्हां'।
'दुंद' उदेग उचाट बिसाहा। अति बैराग 'खंभार' जो आहा।
'अरथु दरबु' 'सभै(भइ) बीसरा'। बाखर गूनि बिरह 'परजरा'।

'आहर दांवरि' 'सभ' दौं लागा। झार न सहइ साथु 'सभु' भा(भां)गा।
मारग 'घर' 'तेहीं(हि)' 'जरतइं' जाई। मैनां काम न आगि बुझाई।
'दानि ते मांगत' दानु 'सहारत' 'अउ बैठे' बटवार।
कहत सुनत 'दौं' दाधे सुरिजन 'के पइसार'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २९८, भो० पत्र ४१ (नवीन), बी० १२५६-१२५८।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कौन बनिज', जो इसी कडवक का है।

भो० में इस कडवक के नीचे बाद वाले कडवक का तर्क है 'मिरिग पंथ'।

शीर्षक—मै० : रवानः शुदन सुरजन'''सूए हरदीं पाटन।

भो० : पैग़ाम फ़िराक़ हासिल शुदन सुरजन राव व रवां करदन अज गोवर बजानिब लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. बी० कौनु। २. बी० देषु। ३. भो० लीन्हा। ४. बी० भो० दीन्हा। (२) १. बी० बहुल। २. मै० खबार। (३) १. भो० अरती मरन। २. मै० सभ पाखर भरा, भो० धरन सम भरा। (४) १. बी० अहिरंन दांव। २. बी० सौ, मै० सब। ३. मै० सब (५) १. बी० षर (घर—फ़ा०), भो० तन। २. भो० में नहीं है, बी० तांह। ३. बी० जरतन (जरतई—फ़ा०)। (६) १. बी० दानू मांगहि। २. बी० में नहीं है। ३. बी० औ मागहि। (७) १. बी० सभ। २. मै० नेकहि उपकार, बी० के व्यापार।

अर्थ—(१) [लोग सुरजन से कहते थे,] "ऐ नायक, तुमने कौन-सा वाणिज्य किया है कि तुमने शोक, संताप तथा विरह-दुःख ले रक्खा है? (२) तुमने द्वन्द्व, उद्वेग, उच्चाट (अरति), अत्यधिक विराग, तथा खभार (क्षोभ) को मोल ले लिया है! (६) अर्थ तथा द्रव्य—सब तुम्हें विस्मृत हो गए हैं, और [तुम्हारे] बाखर और गून विरह-दुःख से प्रज्वलित हो रहे हैं! (४) तुम्हारे आहर और दांवर—सब में [वह] दावाग्नि लग गई है, जिसकी ज्वाला न सह सकने के कारण तुम्हारा समस्त सार्थ (व्यापारी-दल) भग्न हो गया है। (५) मार्ग के घर उससे जलते ही जा रहे हैं, क्योंकि मैनां की कामाग्नि नहीं बुझ रही है।" (६) दानी (कर उगाहने वाले) जो दान मांगते हुए [उगाहने का कार्य] संभाल रहे थे, और जो बटपार (डाका डालने वाले) बैठे हुए थे, (७) सुरजन के प्रवेश से कहते-सुनते [भर में] उस दावाग्नि में दग्ध हो गए।

(३६३)

'मिरिघ जो' पंथु लांघि 'कइ' जाहीं। धूम बरन होइ 'छाडि' पराहीं।
जांवत 'पंखि' उरध उड़ि गए। किसन बरन कुइला जरि भए।
'जेहिं सरि जाई होइ संतारा'। करिया 'दहे' नाव 'कंडहारा'।
सायर 'डाहि मंछ डहि डहे'। 'डहे कुंरुजवा' 'सरवर' अहे।
'अइसनि झार बिरह कइ' भई। धरती 'डाहि गगन लहि' गई।
सरगि 'चंद्र मुंह मइला' 'अउ' 'धूम' मेंघ भए कार।
सुरिजन 'बनिजि' 'तुम्हारे' उबरे 'बूढ' न 'बार'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र २९९, भो० पत्र ५१ (नवीन), बी० १२५९-१२६१।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत दर फ़िराक़ सुरजन गोयद।

भो० : अज़ फ़िराक़े मैनां अह्वान सोख्तन व जानवरान दस्ती व माह्यान दर आब सोख्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० मिग ज। २. भो० जो, बी० करि। ३. बी० माझ, मैं० जाइं। (२) १. बी० पंष। (३) १. मैं० चालहि सुरजन होइ सुंतारा, बी० जिहि याह बातनि भई झारा। २. बी० दाधे। ३. बी० गंधारा (कंडहारा—फ़ा०) (४) १. बी० माझ मछ सब दहे। २. बी० दहे करजूवा। ३. मैं० जलहर। (५) १. बी० अैस झार बिरहै की। २. बी० लागि गगनि लहु। (६) १. बी० चांद महि लागौ जाई। २. बी० औ, भो० में नहीं है। ३. भो० धरमर, बी० दर। (७) १. बी० बनजि। २. बी० तुम्हारैं, मैं० तुम्हारे। ३. बी० बूड। ४. मैं० पार, बी० हार।

अर्थ—(१) [लोग कहते,] "जो मृग [तुम्हारे] मार्ग को लांघ कर जाते हैं, वे धूम्र-वर्ण के होकर और [मार्ग को] छोड़कर पलायित हो जाते हैं। (२) जितने पक्षी ऊपर से उड़कर गए, वे भी जलकर कृष्ण वर्ण के और कोयला जैसे हो गए! (३) जिस सरिता में संतारा होने (संतरण) के लिए आप जाते हैं, उस नाव के करिया और कर्णधार जल जाते हैं! (४) सागर के दग्ध होने से उसके मत्स्य दग्ध हो रहे हैं, और वे क्रौंच जल गए हैं जो सरोवरों में थे। (५) विरह की ज्वाला ऐसी हुई है कि धरती को दग्ध कर वह आकाश तक चली गई है। (६) आकाश में चंद्र का मुख मलिन हो गया है और धूम से मेघ काले हो गए हैं। (७) ऐ सुरजन, तुम्हारे इस वाणिज्य से बुड्ढे और बालक [तक] कोई नहीं बचे हैं।"

(३६४)

मास चारि चलि बाट 'खुटाई'। हरदीं पाटन उतरा जाई।
पाटन नगर 'पाइ' औधारा। दीख धौरहरु 'ईंगुर' ढारा।
सुरिजन बस्तर साजि 'फिराए'। नरियर 'गूवा' थार 'भराए'।
लौंग खिजूर चिरौंजी 'लिए'। सुरिजन भेट लोर कहुं 'गए'।
पूंछत गंवनें 'लोर दुवारा'। 'परतिहार' 'भरु बइठे बारा'।
बात 'जनावहु बीर कहं' परदेसी 'एकु आएउ'।
सोवत लोरु धौराहर 'पंवरियइं जाइ जगाएउ'॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३००, बी० १२६२-१२६४।

शीर्षक—मैं० : रसीदन सुरजन दर शहर पाटन व ख़ुद रफ़्तन दर मुलाक़ात लोरिक।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क हैं 'मास चारि', जो इसी कडवक का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० घटाई। (२) १. बी० पाउ। २. बी० हींगरु। (३) १. बी० फिरावा। २. बी० गोवा (गूवा—फ़ा०)। ३. बी० भरावा। (४) १. बी० लई। २. बी० दई। (५) १. बी० लोरिक बारू। २. मैं० प्रतीहार। ३. बी० भरि बैठ दुवारू। (६) १. बी० जनावोहु जाइ बीर। २. बी० यकु आयो। (७) १. बी० पौरियेहि आई जगायो।

अर्थ—(१) चार मास चल कर (चलते रहने पर) बाट समाप्त हुई और [सुरजन] हरदीं पाटन जा उतरा। (२) पाटन नगर में उसने पैर रक्खा और उसे ईंगुर के वर्ण का धवलगृह (प्रासाद) दीख पड़ा। (३) सुरजन ने वस्त्र सज कर बदले (पहने), नारियल और गुवा (सुपारी) से थाल भराए। (४) लवंग, खजूर और चिरौंजी लिए हुए सुरजन लोरिक से भेंट करने को गया। (५) पूछता-पूछता वह लोरिक के द्वार पर गया (पहुंचा)। द्वार पर प्रतीहार और भट बैठे हुए थे। (६) [उसने कहा,] "वीर [लोरिक] को यह बात सूचित करो कि एक परदेशी आया हुआ है।" (७) लोरिक धवलगृह में सो रहा था, उसे पौरिए ने जा कर जगाया।

(३६५)

'खिन इक' नैन नींद 'महं आए'। 'कहतइ' 'पौरिया' आइ जगाए।
'बांभनु एक पंवरि हइ' ठाढ़ा। तिलकु दुवादसु 'मसतगि काढ़ा'।

'पोथी कांखि' हाथ बइसाखी । अन(नं)त 'कानि दुहुं 'भेजइ' राखी ।
'जनेऊं कांधि' 'तरि' धौति कखाई । 'अउर धौति माथइं पहिराई' ।
रिगु 'जजु' साम अथरबनु पढ़ा । आइ 'परंतरि' 'रउरिइं' चढ़ा ।
पंडितु पढ़ा 'बिध(द)वांसिक 'पोथा बांच पुरान ।
बिरह भाख 'पइ' भाखइ' दूसर 'भाख' न जान ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०१, बी० १२६५-१२६७ ।

शीर्षक—मै० : बेदार करदन दरबान बर (?) लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० तिल यक । २. बी० मैं लाये । ३. बी० कतहि । ४. मै० पौइया । (२) १. बी० बंभनु देउ परोहितु । २. बी० मस्तकि गाढा । (३) १. बी० पतरी काष । २. बी० भीतरि । (४) १. बी० कंधि जनेउ । २. मै० किर । ३. बी० और धोति मांथैं पहराई । (५) १. मै० जुग । २. बी० बरंतर (परंतर—फ़ा०) । ३. बी० देहरि । (६) १. बी० सहदे परि । (७) १. बी० पै । २. बी० भाषै । ३. म० भखा ।

अर्थ—(१) एक क्षण [लोरिक के] नेत्र नींद में आए थे कि [नायक के] कहते भर में पौरियों ने आकर उसे जगा दिया । (२) [उन्होंने कहा,] "एक ब्राह्मण पौरी पर खड़ा है, जिसने मस्तक पर द्वादश तिलक काढ़ (बना) रखा है । (३) कांख में वह पोथी और हाथ में बैसाखी लिए हुए है, वह [आपके] दोनों कानों के लिए अनंत राखियां भेज रहा है । (४) [उसके] कंधे पर जनेऊ है, [और उस के] तले कखाई (कांखों से होती हुई रक्खी) धोती है, और उसने मस्तक पर भी धोती (धुली हुई पाग) पहन रक्खी है । (५) वह ऋक्, यजु, साम और अथर्वण (वेदों) को पढ़े हुए हैं और प्रान्तर में आकर रावल में चढ़ आया है । (६) वह पढ़ा हुआ पंडित है, विद्वान् है और पुराणों के पोथे बांचता (पढ़कर सुनाता है), (७) [किंतु] वह, विरह की भाषा ही भाष रहा है, दूसरी कोई भाषा [जैसे] वह जानता न हो !"

(३६६)

लोरु 'बचन' सुनि पंवरि सिधारा । 'पंवरि' बरंभनु आइ जुहारा ।
'बीरहि बिप्र' 'आसिका(षा)' औधारी । दीरघ 'आइ तुम्हं रूप' मुरारी ।
'सुभ' कल्यान 'रिधि बहुलि' पाएहु । लखि 'औधारि' सहंस ओरगाएहु ।
'अनंत' कोरि जुग राजु 'करीजउ' । तुरी 'पीठि' खांडइं जसु 'लीजउ' ।
'रूपवंत' धनवंत सुलक्खिन । सिरीवंत जजमान 'बिचक्खिन' ।

असि 'कइ बहुतइं आसी(सि)सा' बीर लोरिकहि' दीन्ह ।
'फुनि' पटरइं 'चढि बैठेउ' सुरिजन 'परति(पतरि)' हाथ 'कइ' लीन्ह ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०२, बी० १२६८-१२७० ।

शीर्षक—मै० : बेरून आमदन लोरिक व मुलाक़ात करदन बा सुरजन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० बीर । २. बी० पौरि । (२) १. बी० बिरह बिपरि । २. मै० सुनत । ३. बी० आय तुम्हारौ । (३) १. बी० मै० सिधि । २. बी० बहुत रिधि, मै० बुधि बहुलि । ३. बी० अधार । (४) १. बी० अंन । २. बी० करीजा । ३. बी० पूठि । ४. बी० लीजा । (५) १. बी० पुत्रवंत । २. बी० बिचिषिन । (६) १. बी० कैं पढी आसिका । २. बी० लोर कहु । (७) १. मै० पुनि । २. बी० चरि बैठा । ३. मै० पोथि । ४. बी० कर ।

अर्थ—(१) लोर यह वचन सुनकर पौरी पर गया, तो पौरी पर ब्राह्मण ने आ कर जुहार की । (२) [तदनंतर] उस विप्र ने वीर [लोरिक] को आशीर्वाद प्रस्तुत किया, "हे रूप-मुरारी, तुम्हारी आयु दीर्घ हो ! (३) तुम बहुतेरे शुभ, कल्याण तथा ऋद्धियां प्राप्त करो और देख तथा अवधार कर सहस्रों को सेवक (अनुचर) बनाओ ! (४) अनंत कोटि युगों तक तुम राज्य करो और घोड़ेकी पीठ पर [सवारी करते हुए] खड्ग से यश लो ! (५) तुम रूपवान्, धनवान् और सुलक्षण हो, तुम श्रीमान, यजमान (यज्ञ करने वाले—पुण्यात्मा) और विचक्षण हो !" (६) इस प्रकार करके उसने वीर लोरिक को बहुतेरे आशीर्वाद दिए । (७) तदनंतर सुरजन फलक (पीढ़े) पर चढ़ कर बैठा, और उसने [लोरिक की] जन्म-पत्री को हाथ में कर (ले) लिया ।

(३६७)

भेट 'आपि' 'फुनि परति (पतरि) पसारी' ।
मेख रासि तुम्हं रूप मुरारी ।
मेख 'बिरिख अउ' मिथुन 'भनीजइ' । करक सिंघ कन्या 'जो गनीजइ' ।
'तुला ब्रिचिक' 'धनु आइ बुलावइ' । मकर कुंभ 'गुन बैन सुनावइ' ।
'मेष चंद्र' जनम 'घरि' आवा । 'तिसरें' घरि सूरिजु दिखरावा ।
'सतएं' मंगरु आइ 'अवासू' । 'नवएं घरइं' बिहपै 'परगासू' ।
चारि 'नखत' तुम्हं 'दाहिन' गिनि जि जोइसी देख ।
मंगरु 'बुद्ध' बिरसपति 'जनमै(म)हि 'चंद्र' बिसेख ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०३, बी० १२७१-१२७३ ।

शीर्षक—मै० : दीदने सुरजन तालअ लोरिक व तासीरे सितारगान शाद व नहस ।

पाठान्तर—(१) १. बी० दीन्ह । २. मै० में अस्पष्ट है । (२) १. बी० बृष औ । २. बी० कहीजै । ३. बी० जु भनीजै । (३) १. बी० तुल बृश्चिक । २. बी० धन गुन अरथावै । ३. बी० औ मीन सुहावै । (४) १. बी० मेषहि चंदु । २. बी० भरि । ३. बी० तिसरै । (५) १. बी० सातवैं । २. बी० अवासा । ३. बी० नवमै घरि । ४. बी० परगासा । (६) १. बी० गरह । २. बी० दाहिनैं । (७) १. बी० सूरु । २. मै० जनम । ३. बी० चंदु ।

अर्थ—(१) भेंट अर्पित कर तदनंतर ब्राह्मण ने जन्म-पत्री पसारी [और कहा,] "हे रूपमुरारी, तुम मेष राशि के हो । (२) [राशियां] मेष, वृष और मिथुन कही जाती हैं और कर्क, सिंह और कन्या गिनी जाती हैं । (३) तुला, वृश्चिक तथा धनु आयु बुलाती (बतलाती) हैं और मकर तथा कुंभ गुणों के वचन सुनाती हैं । (४) मेष का होकर चन्द्र जन्म के घर में आया है और तीसरे घर में सूर्य दिखलाई पड़ रहा है । (५) सप्तम में मंगल आवास में आया हुआ है और नवम घर में बृहस्पति का प्रकाश है । (६) चार नक्षत्र तुम्हारे दाहिने हैं, जिन्हें ज्योतिषी गिन कर देख रहा है : (७) मंगल, बुध, बृहस्पति और जन्म में चन्द्र का वैशिष्ट्य है ।"

(३६८)

'चउथें बुध सुख(क्ख)किछु आवइ' । 'बिहफइ सउं जिमि' राजु 'करावइ' ।
दुसरें 'मंगर पाज परवानइ' । परिहरि पापु धरम 'पंथि' 'आनइ' ।
छठे 'सनीचरु' 'करै(रइ)' मिरावा । 'गइ' लखिमी फुनि 'हाथहि' आवा ।
राहु केतु बहु 'दिवस डोलावहिं' । 'मिलइं कुटुंबि घर देस तें' आवहिं ।
'जउ न होइ अस जीउ उतारउं' । 'गुनित टूट तउ' पोथा 'फारउं' ।
'खाटि निबू(बौ)री रोमथा' दाख बेलि फर 'खाब' ।
'पाप कुंड सब तजि' लोरिक गंगा 'सुद्ध नहाब' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०४।१, बी० १२७४-१२७६ ।

शीर्षक—मै० : अैज़न लहू ।

पाठान्तर—(१) १. बी० औ चौधर जौ सूरिजु आवै । २. बी० विहई सो जमु । ३. बी० करावै । (२) १. बी० सुकरु वाच परवानै । २. मै० कहं । ३. बी० आनै । (३) १. बी० सनीसरु । २. मै० दीख । ३. बी० गौ । ४. बी० हाथहु । (४) १. बी० द्यौंसु डुलावहिं । २. बी० मिलै कुटंबु घरि दस वै । (५) १. बी० जौ न होइ तौ जनेउ तोरौं । २. बी० गिनत चूक तौं । ३. बी० बोरौं । (६) १. मै० गंग नीर तुम्ह अन्हउब (तुल० दोहे का दूसरा चरण) । ५. बी० षाई । (७) १. बी० पति परजा सभ (दे० अगला कडवक) । २. बी० सुध होइ न्हाई ।

अर्थ—(१) "चौथे स्थान पर बुध है, इसलिए तुम्हें कुछ सुख आएगा (मिलेगा), बृहस्पति जैसे तुमसे राज्य कराएगा । (२) दूसरे स्थान पर जो मंगल है, वह तुम्हारा पाज (पर्याय—अधिकार-विशेष) प्रमाणित करेगा और पाप का परित्याग कर (करा कर) तुम्हें धर्म-पथ पर लाएगा । (३) छठे स्थान पर जो शनि है, वह मिलाप कराता है, [उसका प्रभाव यह होगा कि] गई हुई लक्ष्मी पुनः तुम्हारे हाथ आएगी । (४) राहु और केतु बहुत दिनों तक घुमाते रहते हैं और [इनके कारण] कुटुंबीजन जो घर तथा देश में आते हैं, वे मिलते हैं । (५) ऐसा न हो, तो मैं अपनी जीवा (अपना जनेऊ) उतार दूं, और यदि मेरा ज्योतिष का विचार त्रुटिपूर्ण हो तो मैं [अपनी] पोथी फाड़ डालूं । (६) तुमने खट्टी (कड़वी) निबौरी (पर-स्त्री) को रोमंथा है, किन्तु तुम पुनः द्राक्षा-वल्ली (विवाहिता स्त्री) के फलों को खाओगे (भोगोगे) । (७) और पापकुंड (पर-नारी के संग) को सम्पूर्ण रूप से छोड़ कर, ऐ लोरिक, तुम शुद्ध गंगा का स्नान (विवाहिता का भोग) करोगे ।"

(३६९)

'उत्तिम' 'समउ' 'सब सुख घर जाइहु' । पति परजा 'सब दूध अन्हाइहु' ।
राजा चंद्रु पाटि बइसारा । 'मंति' बिरसपति 'सुरिजु उभारा' ।
'बिसवां पंदरह' धरमु 'जनावइ' । पापु पांच 'बाईं दिसि' 'पावइ' ।
अनु चौदह 'तृणु(नु)' बिसवां साता । 'बाव' सीउ बिसवां नौ 'बा(पा?)ता' ।
'सोरह बिसवां' बिरिधि बखानिय । 'बारह बिसवां मोर तोर जानिय' ।
राजपाटु तुम्हं 'गोवरां आहइ' मैनां केर 'गोसाइं' ।
'चांदा' गगनि 'चढ़ाएहु' मैनां धरती काइं ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०४।२, भो० पत्र ६४ (नवीन), बी० १२७७-१२७९ ।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियते सितारगान गोयद ।

भो० : तालअ ए सअद नमूदन सुरजन अज रफ़्तन लोरिक वतन क़दीम खुशूद । खुशवद ।

पाठान्तर—(१) १. भो० अबौं । २. बी० मास । ३. भो० सब ही सुंख जाइहु, बी० भला रहसा जाई । ४. बी० हन्हाई । (२) १. बी० मंत्रि । २. बी० कही बिचारा । (३) १. मै० पंदरह बिसवा । २. भो० जगावइ, बी० भनीजै । ३. बी० बिसंवा जु । ४. बी० गनीजै, भो० पावा । (४) १. भो० रतन सु । २. बी० बाइ । ३. बी० बाताह । मै० में पंक्ति है—सतरह बिसवां कहउं तउ मानिय : बिसवां दोय पाप गएउ जानिय (किंतु 'पाप' ऊपर आ चुका है) । (५) १. मै० अन बिसवा दस, बी० सोराह बिसुवा । २. बी० बिरधि बखानौ । ३. भो० खर बिसवां दुहुँ सेवन जानिय, बी० बिसुवा दसें तेज फनि जानौ । (६) १. बी० गोवर रहै, भो० लोरिक हइ । २. भो० मै केर, बी० मै केर कहा । (७) १. मै० चांदहि । २. बी० चरायहु । ३. भो० नाही गाइं, बी० उतरी काइं ।

अर्थ—(१) उत्तम समय में समस्त सुखपूर्वक तुम घर जाओगे और [तुम] पति (स्वामी) और [तुम्हारी] प्रजा—सभी दूध से स्नान करोगे । (२) [नक्षत्रों का] राजा चंद्र सिंहासन पर बिठाता है, और सूर्य बृहस्पति को मंत्री के रूप में उभाड़ता (उठाता—लाता) है । (३) [तुम्हारे राज्य में] पन्द्रह बिस्वा (२० में से १५ भाग) धर्म ज्ञात होगा और पांच बिस्वा (२० में से ५ भाग) पाप बाईं दिशा (उपेक्षा) प्राप्त करेगा । (४) अन्न चौदह बिस्वा तथा तृण सात बिस्वा हुए, वात और शीत को नौ बिस्वे प्राप्त हुए । (५) पुनः दस बिस्वा (२० में से १० भाग) वृद्धि कहिए और बारह बिस्वा (२० में से १२ भाग) मेरा-तेरा (राग-द्वेष) समझिए । (६) तुम्हारा राज-पाट गोवर में [लिखा हुआ] है, और तुम मैनां के स्वामी [लिखे हुए] हो, (७) फिर चांद (चांदा) को तुमने आकाश पर क्यों चढ़ा रक्खा और मैनां को धरती पर रख छोड़ा है ?"

(३७०)

मैंनां सबदु 'बिपर' जु सुनावा । 'सुना' 'लोर' हिएं गहबरि आवा ।
'चांद बात' बांभन कत पाएहु । अउ 'मैनां कइ' आइ सुनाएहु ।
कहु पंडित 'फिर कित हुत' आवा । 'केइं' 'तूं' हरदीं नगर पठावा ।
मैनां नांउं 'कहां' 'तूं' सुनां । 'अउ' चांदा 'कर' कहुवां 'गुनां' ।
तूं न 'होसि' बांभन परदेसी । 'देखउं' लखिन आहि सहदेसी ।

खेह पाय तोर 'झारि' 'बरंभन' अपनें सीस 'चढ़ावउं' ।
माइ भाइ 'मैनां कर' कुसर खेम 'जउ पावउं' ।।

सन्दर्भ—मै० पत्र ३०५।१, भो० पत्र ६१ (नवीन), बी० १२८०-१२८२ ।

शीर्षक—मै० : अैंजन लहू पुरसीदन लोरिक ।

भो० : शुनीदन लोरिक हाल वाक़अ मैनां व गिरियः करदन बा-फ़िराक बराय मैनां ।

पाठान्तर—(१) १. मै० बीर, बी० विपरि । २. मै० सुनतइं । ३. बी० लोरि । (२) १. मै० मैनां बात । २. मै० अउ चांदा कहं, बी० औ मैनां की । (३) १. बी० तूं कत हुंते । २. बी० के । ३. मै० तुम्हं । (४) १. भो० कहा । २. बी० तैं, मै० तुम्हूं । ३. बी० औ । ४. मै० खर । ५. बी० मना । (५) १. मै० होइ, बी० होहि । २. बी० देख्यों । (६) १. बी० झारौं, भो० में नहीं है । २. भो० बांभन, बी० बभन । ३. भो० चढावहुं, बी० चरांऊ । (७) १. बी० औ मांजरि मैनां । २. भो० जउ पावहुं, बी० जौ पाऊ ।

अर्थ—(१) विप्र ने जब मैनां का शब्द (नाम) सुनाया, तो उसे सुनते ही लोर के हृदय में विह्वलता आ गई । (२) [उसने पूछा,] "चांदा की वार्ता को, ऐ ब्राह्मण, तुमने कहां पाया, और मैनां [के नाम] को कहां आकर सुनाया है ? (३) ऐ पंडित, तदनंतर तुम कहो, तुम कहां से आए हो और तुम्हें किसने हरदीं [पाटन] नगर भेजा है । (४) मैनां का नाम तुमने कहां सुना है, और चांदा का कहां गुना है ? (५) तुम, ऐ ब्राह्मण, परदेशी नहीं हो, तुम्हारे लक्षण देख रहा हूं कि तुम सहदेशी (स्वदेशीय) हो । (६) ऐ ब्राह्मण, तुम्हारे पैर की धूल झाड़ कर अपने सिर पर मैं चढ़ाऊंगा, (७) यदि [तुमसे] माता, भाई और मैनां का क्षेम-कुशल पाऊंगा ।"

(३७१)

'कुंवरू' भाइ 'तोरि' महतारी । लोगु 'कुटुंबु घर' मैनां 'नारी' ।
तोरी चिंत 'रइनि दिनु आहहिं' । नैन 'पसारि तोहि' मारग 'चाहहिं' ।
अंन पानी चखि देखि न 'भावइ' । 'जागहिं रइनि' दिनु नींद न 'आवइ' ।
'पंथि बटाऊ' पूछहिं लोरा । 'कोउ न कहइ सु कूसर' तोरा ।
सूकि सो मैनां 'पांजरि' भई । 'झार बिरह' अधिकु जरि गई ।
'डरियहि ताहि निसूगि लोर सुनि' जो दइयहि न 'डराइ' ।
तजि 'कइ' 'बार बियाहा आपन' 'लीन्हे फिरै(रइ)' पराइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०५।२, बी० १२८३-१२८५ ।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'कुंवरू', जो इसी कडवक का है ।

शीर्षक—मैं० : गुफ़्तने सुरजन बख़ैरे सलाहे हमा अज़ीज़ान ।

पाठान्तर—(१) १. बी० कवरू । २. बी० तोर । ३. बी० कुटंबु घरि । ४. बी० [ना] री । (२) १. बी० रैनि दिन अहहीं । २. बी० पसारैहि । ३. बी० चंहंही । (३) १. बी० भावै । २. बी० जागैहि निसि । ३. बी० आवै । (४) १. बी० देहि बधाई औ । २. बी० कोई कहै न कोसर (कूसर—फ़ा०) । (५) १. मैं० मैनां मैनां । २. बी० प्यंजरु । ३. बी० तोरी झार । (६) १. बी० तिहि रु निसूगें डरिये लोरा । २. बी० पत्याई । (७) १. बी० तजि । २. बी० बार बियाही अपनी । ३. मैं० लीन्हां पुरुख, बी० लीन्हौ फिरैहि ।

अर्थ—(१) [ब्राह्मण ने कहा,] "कुंवरू, जो [तेरा] भाई है, तेरी माता, [तेरे] लोग, कुटुंबी और घर [वाले] तथा [तेरी] स्त्री मैनां (२) तेरी ही चिन्ता में दिन-रात रहते हैं, और नेत्र पसार कर तेरा मार्ग देखते हैं । (३) अन्न तथा पानी आंखों से दिखने पर उन्हें नहीं भाते हैं, रात में वे जागते हैं तथा दिन में उन्हें नींद नहीं आती है । (४) वे पथिकों और राहगीरों से, ऐ लोरिक, पूछते हैं, किन्तु कोई तेरा कुशल नहीं बताता है । (५) सूख कर मैनां पंजर हो गई है और विरह की ज्वाला से [और] अधिक जल गई है । (६) तुम्हें उससे डरना चाहिए जो निःशूक (निष्ठुर) हो, और ऐ लोर, सुनो, जो दैव से न डरती हो, (७) और जो अपने बचपन के विवाहित [पुरुष] को छोड़ कर अपर पुरुष को लिए फिरती हो ।"

(३७२)

'हउं रे बनिजु' 'गोवरां' 'लइ आएउं' । 'घिरित' 'लेइकहं कुंवरू बुलाएउं' ।
'लइ गए' मंदिर जहां 'भंडसारा' । 'अउ तौलइ किय' 'बया' हंकारा ।
'पूछिसि' कवन 'बनिजु' तुम्हं आनां । कवन 'देस' 'तुम्हं' 'कीत' पयानां ।
'कहेउं' देव मइं 'गोवरु छावबि' । 'गएं' मांस 'दुइ' 'पुरुब चलावबि' ।
कहेउं 'सबदु मइं' आपनु ठाऊं । 'गोवर क' बांभनु सुरिजनु नाऊं ।
'मोहिकों कहा सुरजन हरदीं संदेस लइ जाइ' ।
जननि तोरि औ 'सांवरि मैनां' 'परीं दुवइ लइ पाइ' ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३०६।१, भो० पत्र ४२ (नवीन), बी० १२८६-१२८८ ।

इस कडवक के नीचे भो० में अगले कडवक का तर्क है 'जाउ तुम्हं बरु' ।

शीर्षक—मैं० : कैफ़ियत आवरदन बनिज गुफ़्तने सुरजन पेश लोरिक ।

भो० कैफ़ियत खेलखानः लोरिक गुफ़्तन पेश लोरिक पैग़ाम बजानिब मैनां ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौ रु बनजु । २. भो० गोवर । ३. बी० लै आये । ४. बी० घिरत । ५. मैं० लेन कों कुंवरू बुलाएउं, बी० लिये कौ कंवरू बुलाये । (२) १. बी० ले गयो । २. मैं० भो० भटसारा । ३. बी० औ तौलौं काहु । ३. बी० बियाहि । (३) १. बी० पूछसि । २. बी० बनजु । ३. बी० राठ । ४. मैं० हुत । ५. बी० दीत । (४) १. मैं० कहा, बी० कह्यों । २. भो० गोवरु जावउं, मैं० गोवरां आएउं । ३. मैं० गए, बी० गयो । ४. बी० दस । ५. मैं० भो० पुरुब चलावउं, बी० पूर चलावबि । (५) १. मैं० लोर सभ, भो० सबद अउ । २. भो० गोवर क, मैं० बी० गोवर का । (६) १. बी० इतनौ सुनि कै उनि दुष कीन्हौ बिरह आगि न बुझाइ, भो० कुवरू राषहि जौन मिस अहिरइं दई न जाइ । (७) १. मैं० सांवरी, बी० सांवर । २. भो० पाय परी लइ धाइ, बी० परी पाय लै आइ ।

अर्थ—(१) "मैं गोवर में वाणिज्य ले आया, और घी लेने को मुझे कुंवरू ने बुलाया । (२) वह मुझे [तुम्हारे] मंदिर में वहां ले गया जहां भांडशाला थी और तौलने के लिए उसने एक बया (तौलने वाले) को बुलाया । (३) उसने पूछा, 'तुम कौन सा वाणिज्य लाए हो, और किस देश को तुमने प्रयाण किया है ?' (४) मैंने कहा, 'हे देव, मैं अभी तो गोवर में ही रहूंगा, फिर दो मास जाने (बीतने) पर पूर्व की ओर प्रस्थान करूंगा ।' (५) हे लोर, मैंने अपने स्थान का शब्द (नाम) बताया और कहा, 'मैं गोवर का ब्राह्मण हूं और मेरा नाम सुरजन है ।' (६) उन्होंने मुझसे कहा, 'हे सुरजन, तू हरदीं [पाटन] को [हमारा] सन्देश ले जा ।' (७) [तदनंतर] तेरी जननी और सांवली—मैनां दोनों ही मेरे पैरों को पकड़ कर [उन पर] गिर पड़ीं ।'

(३७३)

'जउ तुम्हं पुरुबहि बनिजु' चलावबि । मैना 'कह मइं गोहन' आवबि ।
'छाड़' न आंचरु गहु कइ रही' । 'दुख की(कइ) बूडी 'बिरह 'कइ' दही ।
'खोलिनि' आंचरु आइ छुडावा । 'कहिसु संदेसु जेहिं पिउ' आवा ।
'मोहि देखत लइ बइठि' कटारी । अस 'कहि आजु मरउं' कंठ सारी ।
'खोलिनि' धरि धरि 'करतिइ' अहा । मैनां 'दीखि' मरन पइ चहा ।

'बनिजु' छाड़ि 'मइं लादेउं' मैनां केरु संदेसु ।
बेगि आजु चलु गोवर 'लोर तजहु' परदेस ।।

सन्दर्भ—मै० : पत्र ३०६।२, भो० पत्र ४३ (नवीन), बी० १२८६-१२९१ ।

शीर्षक—मै० : कैफ़ियत लहू ।

भो० : कैफ़ियत मैनां गुफ़्तन सुरजन बाफ़िराक़ हाल बाज़ नमूदन ।

पाठान्तर—(१) १. बी० जब तेहि पूरबि बनजु । २. बी० मैनां गौहनि तब तेहि । (२) १. बी० छाडि । २. मै० कर गहि रही, बी० गहु करिही । ३. मै० अति दुख पूरि, भो० दुख कइ बूढि । ४. बी० की । (३) १. भो० खोइलिन, बी० षौलनि । २. मै० कहु संदेसु लोर जेहि, बी० कहि संदेसु जस जिहि पिउ । (४) १. बी० मैं देषत लै पेट । २. बी० कहि आजु मरौं । (५) १. भो० खोइलिन, बी० षौलनि । २. मै० धर धरि, बी० धर धर, भो० धरहरि । ३. मै० करति, बी० करती । ४. बी० देषि । ५. भो० मरइ पैं । (६) १. बी० बनजु । २. बी० मैं लाद्यौं । (७) १. मै० लोरिक तजि, बी० लोर तजौहु ।

अर्थ—(१) "मैनां ने कहा, 'यदि तुम वाणिज्य पूर्व की ओर चलाओगे, तो मैं तुम्हारे साथ आऊंगी (चलूंगी) ।' (२) वह [मेरा] अंचल नहीं छोड़ रही थी, और हठ कर रही थी वह दुःख [के जल में] डूबी हुई और विरह [की अग्नि में] दग्ध थी । (३) खोलिन ने आकर [मेरा] अंचल छुड़ाया [तो मैनां ने कहा,] '[मेरा] सन्देश इस प्रकार कहना जिससे मेरा प्रिय आ जाए ।' (४) मेरे देखते ही वह कटारी लेकर बैठ गई और ऐसा कहने लगी, 'आज मैं गला काटकर मरूंगी ।' (५) खोलिन धर-पकड़ करती रही, किन्तु मैनां दीखी कि वह, हो न हो, मरना चाहती थी । (६) [अतः] वाणिज्य छोड़कर मैंने मैनां का सन्देश लाद लिया । (७) आज ही तू शीघ्र गोवर चल, और ऐ लोरिक, तू परदेश को त्याग ।"

(३७४)

'मइल' चीरु सिर तेलु न 'जानइ' । बहु दुख लोरिक तोर 'बखानइ' ।
'कहत' संदेस नैन 'झर पानी' । 'बरिसहिं' मेघ जइस खरवानी ।
'बुडि बुडि मरइ' थाह नहि 'पावा' । करिया 'बिहुनि' तीरि को 'लावा' ।
मैनां रूप देखि का 'देखउं' । अउर रूप 'सयंसारि न पेखउं' ।
सीप एक 'कन' 'करइ' अहारू । किहि परि जियइ जान करतारू ।

'रवनि ठवनि' गज 'गवनीं' मैनां बिधि 'असि' औतारी ।
'नैन न सूझहि धीर मुंचहि लोरिक नित हियं उर पजरइ नारी' ।।

सन्दर्भ—मै० ३०७।१, बी० १२९२-१२९४ ।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'चीर मइल', जो इसी का है ।

शीर्षक—मै : कैफ़ियत शिकस्तगी हाले मैनां गोयद ।

पाठान्तर—(१) १. बी० मैल । २. बी० जानै । ३. बी० बषानै । (२) १. बी० कहसि । २. बी० भरि पानी । ३. बी० बरसैहि । (३) १. बी० डबि डबि मरैहि । २. बी० पावैहि । ३. बी० नहीं । ४. बी० लावहि । (४) १. बी० देष्यौं । २. बी० सैसारि न लेष्यौं । (५) १. बी० दिन । २. बी० करै । (६) १. मै० रूपवंतिहि (?) । २. बी० गामिनि । ३. बी० में नहीं है । (७) १. बी० तिह चिताह न मिरबोहु मेघहि मैन बिसारि ।

अर्थ—(१) "[वह] मैला चीर [पहनती है] और सिर में तेल [देना] नहीं जानती है; वह, ऐ लोरिक, तेरा बहुतेरा [विरह-] दुःख बखानती (कहती) है । (२) संदेश कहते समय उसके नेत्रों से आंसू झड़ने लगे; और वे इस प्रकार झड़ रहे थे जैसे मेघ प्रखर वर्ण से बरस रहे हों । (३) वह [उस अश्रु-सागर में] डूब-डूब कर मर रही थी, किन्तु थाह नहीं पा रही थी; वह कह रही थी, 'करिया (पतवार पकड़ने वाले) के बिना मुझे पार कौन लगाए ?' (४) मैनां के रूप को देखकर मैं क्या देखूं ? मैं संसार में [उसके रूप जैसा] अपर रूप नहीं देख रहा हूं । (५) वह केवल एक सीपी कण (नाज) का आहार करती है; वह किस प्रकार से जीती है, यह सृष्टिकर्त्ता ही जानता है । (६) वह रमणी, ठवनि [वाली] और गज-गामिनी है, मैनां को विधाता ने ऐसा अवतरित किया है । (७) ऐ लोरिक, उसके नेत्रों से सूझता नहीं है, वह धीरज छोड़ती रहती है, और नित्य ही वह नारी अपने हृदय-उर में प्रज्वलित होती रहती है ।"

(३७५)

सुनि संताप मैनां कर रोवा । लोरिक 'हिएं कइ' कसमर धोवा ।
अब मैनां बिनु 'रही(हा?)' न जाई । देहि पंख बिधि जांउं उड़ाई ।
'मंदिर' जाइ मैनां मुख 'देखउं' । 'बिनु मुख देखे' 'मरन पइ' लेखउं ।
दिवसु 'गएउ' निसि आइ तुलांनी । बांभन बात न करति 'खुटांनी' ।
सुरिजन 'जाइ' 'संपरि कइ आवहु' । 'लइ जेंवन आपनां' 'करावहु' ।

दाम लाख दुइ 'लेहुं बरंभन' बरद 'सहस्स भरावहु'।
मोर गवनु 'दिन' दुसरें तुम्हं 'फुनि' 'गोहनि' 'आवहु'॥

सन्दर्भ—मै० ३०७।२, भो० पत्र १६ (नवीन), बी० १२६५-१२६७।

शीर्षक—मै० : ज़ारी करदने लोरिक अज़ शुनीदने दुश्वारी मैनां।

भो० : शुनीदन लोरिक हाल बेहालिए मैनां व गिरियः करदन ब फ़िराक़े हाल बाज़ नमूदन।

पाठान्तर—(१) १. बी० हीय कैं। (२) १. बी० रह्यो। (३) १. मै० जउ न। २. बी० देषौं। ३. भो० बिनु मुख जा जीवन, मै० तउ यह जीवन। ४. भौ० मरन कै, बी० जीवनु न। ५. बी० लेषौं। (४) १. बी० गया। २. बी० घटांनी (खुटांनी—फ़ा०)। (५) १. बी० आइ। २. बी० संपरि कैं आवोहु, मै० सीस अन्हवावहु। २. बी० कै जीवनु औ पानि, मै० लइ अपुनां कहं जेवन। ३. बी० करावोहु। (६) १. मै० देउं हंउ, बी० लेहु। २. बी० सहंस इक जाइ भरावोहु। (७) १. भो० में नहीं है। २. बी० दूसरें। ३. भो० पुनि। ४. बी० गौहनि। ५. बी० आइ।

अर्थ—(१) मैनां का संताप सुनकर लोरिक रो पड़ा और उसने [आंसुओं से] हृदय की कालिमा धो डाली। (२) [उसने कहा,] "अब मैनां के बिना रहा नहीं जा रहा है; ऐ विधाता, तू पंख दे कि मैं उड़कर [उसके पास] चला जाऊं, (३) और मैं घर जाकर मैनां का मुख देखूं; बिना [उसका] मुख देखे, हो न हो, मैं [अपना] मरण समझ रहा हूं।" (४) दिन गया और रात्रि आ पहुंची, किन्तु ब्राह्मण के द्वारा कही जाती हुई बात न समाप्त हुई। (५) [तब लोरिक ने कहा,], "ऐ सुरजन, तुम जाओ, स्नान करके आओ और अपने को ले जाकर भोजन कराओ। (६) हे ब्राह्मण, तुम [मुझसे] दो लाख दाम लो और तुम एक सहस्र बरदियां (बेलों का बोझ) भरा लो, (७) मेरा जाना दूसरे ही दिन होगा, और तब तुम मेरे साथ आओगे (चलोगे)।"

(३७६)

मैनां बात 'बिपर जउ' कही। 'सुनतहिं' चांद 'राहु परि' गही।
'पूनिउं' 'जइस मुख' 'दीपत जो' अहा। गई 'सो' जोति 'गहन' होइ रहा।
'अउ' 'सो' सुरिजु' 'जनम' घरि 'जाइहि'।
सिंघ रासि 'लइ' गगनि 'चढ़ाइहि'।
'बहुरा' लोरु मंदिर महिं आवा। 'कहा' चांद 'पिउ भया' परावा।

उट्ठि पानि लइ 'पाउ पखारहु'।
तुम्हं 'जे(जें)वउ' अउ बिपरु 'हंकारहु'।
'कवनिउं भांति न 'बइसइ' 'संधू आहि गरास'।
'लोरिक' 'जेवन जेंवहि' चांदइं किय उसवास'॥

सन्दर्भ—मै०३०८, भो० पत्र ५५ (नवीन), बी० १२६८-१३००।

शीर्षक—मै० : बाज़ आमदन लोरिक ब खानः व मुतफ़िकर गश्तने चांदा अज़ अख़बारे मैनां।

भो० : कैफ़ियते मैनां गुफ़्तन लोरिक बा चादां ऊ ग़मगीन शुदन चांदा अज़ रफ़्तन लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. मै० जउ बांभन, बी० बीर (बिपर—फ़ा०) जौ। २. भो० सुनइ, बी० सुनताह। ३. मै० राहु जनु, बी० राह पर।(२) १. बी० पून्यो। २. भो० बी० मुख निसि। ३. बी० दीप जु, मै० दीपत। ४. बी० सु। ५. भो० कार, बी० षीन। (३) १. मै० अब, बी० अबहि। २. बी० सु। ३. मै० सूरिजु (सुरिजु—ना०)। ४. मै० अपनें। ५. बी० जाई। ६. बी० लै। ७. बी० चराई। (४) १. मै० बहुरि। २. भो० कहेउ। ३. मै० चित भएउ। (५) १. मै० पाइ, बी० पाव। २. बी० पषारौहु। ३. भो० जेवहुं, बी० जीवोहु। ४. बी० हकारहु। (६) १. मै० कवन, बी० कौनहि। २. भो० दीसइ, बी० बैसई। ३. भो० सज्जन हूं कर आस, बी० लोरिक किछू उदास। (७) १. मै० लोर, बी० लोरहि। २. भो० जेंवन संभाखइ, बी० जीवनु सनेहा। ३. भो० चांदा परा उपास, बी० चांदहि कियो उपास।

अर्थ—(१) जब ब्राह्मण ने मैनां की वार्त्ता कही, उसे सुनते ही चांद राहु की भांति ग्रस्त हो गई। (२) उसका जो मुख पूनों के चन्द्र जैसा दीप्त था, [उसकी] वह ज्योति चली गई और [उसे] ग्रहण [जैसा] हो रहा। (३) [उसने अनुमान कर लिया कि] अब सूर्य (लोरिक) जन्म-गृह को जाएगा, और सिंह राशि को लेकर आकाश पर चढ़ेगा। (४) लोरिक लौटा और मंदिर (घर) में आया, तो चांदा ने [मन में] कहा कि उसका प्रिय [जैसे] अन्य का हो गया था। (५) [उसने कहा,] "उठकर और पानी लेकर पैर धो लो, तुम स्वतः जीमो और [जीमने के लिए] ब्राह्मण को बुला लो।" (६) वह [स्वयं] किसी प्रकार नहीं बैठ रही थी, [मानो उसे] संधू (सुरजन) का ग्रास (ग्रहण) हुआ हो। (७) लोरिक जब कि जेंवन जीम रहा था, चांदा ने उपवास किया।

(३७७)

कारि राति दुख 'रोइ' बिहाई। भा 'भिनुसारु' उठा 'रिरियाई'।
पाटन 'राउ' लोरु हंकरावा। चला बीरु राजा पहिं आवा।
'राउ' पूछ घरि 'कूसर आहा'। 'कहु लोरिक' कस पाएहु 'चाहा'।
'अनचीतउ' आइ एकु बनिजारा। माइ भाइ हउं 'घरहिं' हंकारा।
'कहेसि आजु मोरें संगि आवहु'। 'मकु जियतइं मुख देखन पावहु'।
'तेहिं दिन हुत' 'अन पानी न भावै(वइ)' घरु बाहरु न सुहाई(इ)।
उठइ आगि सिर 'पा लहि' बिनु देखें न बुझाई(इ)॥

सन्दर्भ—मै० ३०६, बी० १३०१-१३०३।

शीर्षक—मै० : विदाअ करदने लोरिक बा राव छेतम।

पाठान्तर—(१) बी० गई। २. बी० भुनसारु। ३. बी० रबि आई। (२) १. बी० राय। (३) १. बी० राव। २. बी० कोसर (कूसर—फ़ा०) अहा। ३. बी० कहहु लोर। ४. बी० चहा। (४) १. बी० अन जौ। २. बी० घरह। (५) १. बी० कहै लोरु अैसै घरि आयहु। २. बी० मुकौ जीवै मुषु देष्यों पायहु। (६) १. बी० तबतै मोहि। २. मै० अन पानी (७) १. बी० पाइ लहु।

अर्थ—(१) काली रात [लोरिक ने] दुःख में रो-रोकर व्यतीत की और सवेरा हुआ तो वह रिरियाता हुआ उठा। (२) [हरदीं] पाटन के राजा ने लोरिक को बुलवाया तो वह बीर चला और राजा के पास आया। (३) राजा ने पूछा, "घर पर कुशल तो है? कहो लोरिक, वहां के कैसे समाचार तुम्हें मिले हैं?" (४) [लोरिक ने उत्तर दिया,] "अचानक एक बनजारा आया, [उसके द्वारा] मुझे मेरी माता और भाई ने घर बुलाया है। (५) उसने कहा है, 'यदि तुम आज मेरे संग आ जाओ तो कदाचित् तुम [उनका] मुख उनके जीवित रहते हुए देखने को पा जाओ।' (६) उसी दिन से अन्न-पानी नहीं भा रहा है और घर-बाहर [कुछ] नहीं सुहा रहा है; (७) सिर से पैर तक आग उठती है और उन्हें देखे बिना बुझ नहीं रही है।"

(३७८)

राइ घोर 'सै दुइ' पलनाए। पाइक 'सै दुइ साथ दिवाए'।
कापरु आनि लोर पहिरावा। समदि बीरु कछु 'साथ' दिवावा।
'समुंद' बीर किछु साथ तुम्हं 'जाएहु'। गोवरु देखि पलटि घरि 'आएहु'।

'फांदि' सुखासन चांद 'चलाई'। 'इहिं पछिताउ कतइ हउं' आई।
बरद सहस 'एक संधू भरा'। पाटनु छाड़ि 'सीउं ऊतरा'।
'राहु' गरह जस गरही चांदा 'मुख' अंधियार।
'सिंघ रासि रबि पालटौं(टउ)' सुरिजन के उपगार॥

सन्दर्भ—मै० ३१०, बी० १३०४-१३०६।

शीर्षक—मै० : विदाअ करदन राव व मदद दिहानीदन बर लोरिक रा।

पाठान्तर—(१) १. बी० सै दोइ. मै० सहस दोइ। २. बी० सौ दोइ सै बुलाये। (२) १. बी० दरबु। (३) १. बी० तौ लहि। २. बी० जायुहु। ३. बी० आयोहु। (४) १. बी० डाड। २. मै० चलावा। ३. बी० बहु पछितानी कत हौं। (५) १. बी० दस सूठी भरे। २. बी० सुवनु उतरे। (६) १. बी० राह। २. बी० भई। (७) १. मै० मीन रासि धनि बैरिनि।

अर्थ—(१) राजा ने दो सै घोड़े पलानों से सज्जित कराए और साथ के लिए दो सै पदाति दिलाए। (२) कपड़े लाकर (मंगा कर) उसने लोरिक को पिन्हाए, और उस वीर को विदा करते हुए कुछ वीर उसको साथ [के लिए] दिलाए। (३) [उसने कहा,] "ऐ वीरो, प्रसन्नतापूर्वक तुम में से कुछ इसके साथ [गोवर तक] जाना, और गोवर देख कर घर लौट आना।" (४) [लोरिक ने] सुखासन कसवा कर चांदा को चलाया; उसे यह पछतावा था कि वह यहां क्यों आई। (५) एक सहस्र बैल संधू (सुरजन) ने भरे और पाटन छोड़ कर वह उसकी सीमा पर उतरा। (६) राहु के ग्रह से जैसे ग्रस्त हो, वैसा ही अंधेरा (अंधकारपूर्ण) चांदा का मुख हो गया। (७) सुरजन के उपकार (उपाय) से सूर्य (लोरिक) सिंह राशि (मैनां) की ओर पलट गया है।"

(३७९)

लवटि चांद लोर 'सों' कहा। 'पलटि' नीरु 'गंगा नइ' बहा।
'पिरिति' लाइ 'तइं मोसेउं' तोरी। 'जहवां टूटि फुनि तहंवां' जोरी।
'तोहि' न खोरि हउं 'बुधि(द्धि)चुकानी'। 'कइ' सनेह हरदीं तइं आनी।
तेहिं दिन 'संवरु बाच जेहिं' कीन्हीं। अब 'हौं ठेलि कुवां' महि दीन्हीं।
बाहं 'देइ' 'धनि' नाव 'चढ़ाई'। 'फुनि रु(रे) काटि गुन' गांग बहाई।
बहुरि लोर चलु हरदीं 'रहहिं बरिस दुइ' चारि।
बाचा 'पुरवहि आपनि साईं' बिनवइ' दासि तुम्हारि॥

सन्दर्भ—मै० ३११।१, बी० १३०७-१३०६ ।

शीर्षक—मै० गुफ़्तने चांदा लोरिक रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० सौ । २. बी० पलटा । ३ बी० गंडानी । (२) १. बी० पिरति । २. बी० तैं मोसौ । ३. बी० जहा टूट हुत तहा ही । (३) १. बी० तुहि । २. मै० सरगि लुकानी । ३. बी० कै । (४) १. बी० संभरु बात जु । २. मै० लै गोवर । (५) १. मै० देहि । २. बी० तें । ३. बी० चराई । ४. मै० अब गुन काटि । (६) १. बी० रहांह बरस दोई । (७) १. बी० पूरनि वाचे । २. बी० बिनवै ।

अर्थ—(१) चांदा ने लौट कर (पलट कर) लोरिक से कहा, "[समुद्र में बह कर जाता हुआ] जल [अब] पलट कर [पुनः] गंगा नदी में बह [कर जा] रहा है ! (२) मुझसे प्रीति लगा कर तूने उसे तोड़ दिया, और जहां से वह टूटी हुई थी, वहां तूने उसे पुनः जोड़ दिया ! (३) [किन्तु] इसमें तेरा दोष नहीं है, मैं ही बुद्धि में चूक गई थी जब तू स्नेहं कर मुझे हरदीं लाया । (४) तू उस दिन को स्मरण कर जिस दिन तूने [स्नेह के निर्वाह का] वचन किया (दिया) था, किन्तु अब तू ने मुझे कुएं में ढकेल दिया ! (५) बांहें देकर तूने [इस] स्त्री को [जीवन की] नाव पर चढ़ाया था, [किन्तु] पुनः तूने [उसकी] नाव की रस्सी काट उसे गंगा में बहा (डाल) दिया । (६) ऐ लोरिक, तू हरदीं लौट चल, वहां पर हम दो-चार वर्ष [और] रहें । (७) ऐ स्वामी, तू अपना वचन पूरा कर, तेरी दासी [तुझ से] यह विनय करती है ।"

(३८०)

'हउं जानउं' राजा 'कइ' जाई । अपनें हुतें 'नहिं होब तुराई' ।
'अउ अस जानउं पुरुख कइ जाती । सेज न 'देखत एकउ' राती ।
'देस देसंतर तोहि संग' धाई । 'बनखंड गौनेउं' थिर न रहाई ।
'करिहु त सोइ जेहि होइ मेरावा' । 'तुम न खोरि हम चाहत पावा' ।
'कुजा नातर' मोरें संग आवसि । 'जियहि लाइ धनि अपने रावसि' ।
मंगरु बुधु (द्धु) बिरसपति 'सुकुरु सनीचर' 'काहु' ।
'चांद' सुरिजु 'लइ अंथवा' 'बारह घरहि उतिराहु' ॥

सन्दर्भ—मै० ३११।२, बी० १३१०-१३१२ ।

शीर्षक—मै० : जवाब दादने लोरिक बर चांदा रा ।

पाठान्तर—(१) १. बी० हौं जानौं । २. बी० की । ३. बी० न होत पराई । (२) १. बी० हौं जानौं (तुल० प्रथम अर्द्धाली) मानसाहं की । ३. बी० देष्यों येकै । (३) १. बी० दोय सह करै येक कौं । २. बी० घर घर गमनी (गमनइ—फ़ा०) । (४) १. बी० घरह सेव जिहि होय न मिरावा । २. बी० तिह न साथु मनंसह कर भावा । (५) १. बी० हौं जानों । २. बी० जीभ (जियहि—फ़ा०) लाई मोहि नषत दिषावसि । (६) १. बी० सुकरु सनीसरु । २. मै० राहु । (७) १. बी० कैतु । २. बी० लै आंथवा । ३. बी० बरहै घरह उतराहु ।

अर्थ—(१) "ऐ राजकन्या", [लोरिक ने कहा,] "मैं जानता हूं, कि अपनी ओर से उतावली (जल्दी) न होगी, (२) और ऐसा (यह) [भी] जानता हूं कि पुरुष की जाति एक भी रात को सेज नहीं देखती है । (३) तुम्हारे साथ देश-देशान्तर की दौड़ लगाकर मैं बनखंड गया और स्थिर न रहा । (४) तुमने वही किया जिससे मिलाप होता, इसमें तुम्हारी [ओर से] कोई त्रुटि नहीं हुई और तुमने [भी] अपना चाहा हुआ प्राप्त किया । (५) अन्यथा तुम मेरे साथ कहां (क्यों) आतीं ? तुम अपने जी के लिए ही, हे स्त्री [मुझसे] रमण करती हो । (६) अब तुम मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि [में से] किसी को पकड़ सकती हो, (७) [और] या तो तुम सूर्य (लोरिक) को लो, [और उसके साथ] बारह घरों (राशियों और गृहों) में उतराओ ।"

२५. मैनां-सतीत्व-परीक्षा खण्ड

(३८१)

सूरुज दिस्टि सिंघ घर गई । मीन 'ठाउं हुत अठई' भई ।
'संवन न करइ' चांद कर कहा । 'संग बइठ दुइ लाकर' रहा ।
'पहर राति उठि कीन्ह' पयानां । 'दिवस' बीस एक जाइ तुलानां ।
'कोस बीस तेहिं गोवरां लागइ' । 'उतर देवहां लोग डरि भागइ' ।
'घर घर गोवरां' बात जनाई । 'द्यो(देव)हां' कौन[उ?]उतरि गा आई ।
खाई कोटु 'संवारहिं' 'बइठे सबइ झुझार' ।
'जउ' लहि राउ गढु 'होइ लागइ' 'तउ' लहि लोग संभार ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१२, बी० १३१३-१३१५ ।

शीर्षक—मै० : रवानः करदने लोरिक व चांदा सूए गोवर ।

पाठान्तर—(१) १. बी० रासि हुतें अथई (अठईं—फ़ा०)। (२) १. बी० श्रवन न सुना। २. बी० सिध पंथ मनु लावत। (३) १. बी० राति दिवसु वोहु। २. मै० कोस। (४) १. मै० तीस। २. बी० गोवर तेंहि आये। ३. बी० तबैहि ति किनहू बात जनाये। (५) १. बी० गोवर लोगहि। २. मै० कोउ एक राउ। (६) १. बी० सवारैहि। २. बी० संवहे सबै जुझार। (७) १. बी० जौ। २ बी० साजै। ३. बी० तौ।

अर्थ—(१) सूर्य की दृष्टि सिंह [राशि की मैनां] के घर गई और वह मीन (चांदा) के स्थान के आठवीं हुई। (२) सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) के कथनों पर कान नहीं कर रहा था, [यद्यपि] वह उसके साथ दो दण्ड तक बैठा रहा। (३) फिर एक प्रहर रात रहे उठ कर उसने प्रयाण किया, और बीस-एक दिन में [स्वदेश] जा तुला (पहुंचा)। (४) वहाँ से गोवर बीस कोस लगता था; वह [जब] देवहां में उतरा, लोग डर कर भागने लगे। (५) गोवर में घर-घर यह बात विज्ञप्त हो गई कि देवहां में कोई आ उतरा था। (६) [गोवर में] लोग खाई और परकोटा संवारने लगे, और सब योद्धा [यथास्थान] बैठ गए। (७) [वे कह रहे थे,] "जब तक [शत्रु] राजा गढ़ से हो लगे, [तब तक] लोग [खाई और कोट] संभाल लें।"

(३८२)

घर घर 'गोवरां परा खभारू'। 'कहहिं' आजु 'राखइ' करतारू।
'तलवा' कोटु झराई खाई। परी राति सभ 'पवंरि' बंधाई।
सोन रूप 'सब गांठी करहीं'। धरहिं 'उतारि इकंतेहि सरहीं'।
मैनां के 'जियं अइस' जनावा। 'एइं दर' 'हुतें' भए कोउ' आवा।
जो 'रे' बात लोरिक 'कइ कहा'। 'मकहुं सो भैया आवतु 'अहा'।
सांझ परी 'माइ खोलिनि' मोरे 'चितहि जनायो(एउ)'।
राति लोर की चाह घनेरी भोर होत पिउ आयो(एउ)'॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१३, बी० १३१६-१३१८। बी० प्रति इसी कडवक तक लिखित है, इसके आगे के अंश के लिए उसमें १३ पृष्ठ सादे छोड़े हुए हैं, और एक पृष्ठ पर २½ कडवकों का औसत है, इसलिए बी० के इस त्रुटित अंश में अनुमान से २९-३० कडवक और हो सकते थे।

शीर्षक—हैबत उफ़्तादन दर शहर गोवर।

पाठान्तर—(१) १. बी० गोवर परा खरभारु। २. बी० कहसि।

३. बी० राषै। (२) १. बी० तलब। २. बी० पौरि। (३) १. बी० भल काठी गडही (गांठी करहीं—फ़ा०)। २. मै० उसारहिं ढांकि हरदीं ('धरहिं' आ चुका) है। (४) १. बी० चित अैस। २. बी० हरदीं। ३. बी० अबहि को। (५) १. बी० रु। २. बी० की कहै। २. बी० मुकु। ३. मै० पहुना (?)। ४. बी० अहै। (६) १. बी० मा षौलनि। २. बी० चितांह जनायो, मै० चितहि असि आई (७) मै० आजु राति के सपनहि लोरिक सुधि पाई।

अर्थ—(१) गोवर में घर-घर अशांति मच गई, [लोग] कहने लगे, आज सृष्टिकर्त्ता ही हमारी रक्षा करे! (२) परकोटे के तल और खाई झराए (गहरे कराए) गए, और रात पड़ी तो समस्त पौरियां बंधवा (बंद करा) दी गईं। (३) सोना और रूपा (चांदी) सब लोग गांठों में कर रहे थे वे उन्हें उतार-उतार कर रख रहे थे, और [उन्हें गाड़ने के लिए] एकान्त में जा रहे थे। (४) [किन्तु] मैनां के जी में ऐसा जान पड़ने लगा कि कोई यहाँ उक्त दल से होकर आया था; (५) जो लोरिक की बात कहता, ऐसा कोई भाई कदाचित् आ रहा था।" (६) [वह कहने लगी,] "ऐ मां खोइलिन, [अब] संधि (शांति) पड़ी (प्रतीत हुई) है, क्योंकि मेरे चित में यह जनाई पड़ा है (७) कि रात में मुझे घनी चाह लोर की थी, तो भोर होते ही प्रिय आ गया।"

(३८३)

गाउं कोठारइं परा उपासू। मैनां कें चित अनंद हुलासू।
सोवन बहोरि राति जो भूली। देखि तराइन मैनां फूली।
रहंसि उठी चित बहु निसि जागी। पछिली राति नींद फिरि लागी।
लागत नैन सपन एक आवा। भा बिहान तइ कोउ नसावा।
खोलिनि पूछ सुनहु दहुं मैनां।
परति सांझि जउ बकतिहि मैनां (बैनां)।
तोर मन कालि जो रहंसा पाइहु पिय कइ चाहि।
सपन[इं?] गनि गुनि मैनां कहु किछु देखिउ आहि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१४।

शीर्षक—मै० : ख़्वाब दीदने मैनां अज़ आमदने लोरिक।

अर्थ—(१) गांव और कोठार में उपास पड़ा हुआ था, [किन्तु] मैनां के चित्त में आनन्द और उल्लास था। (२) और वह जो रात में सोना भूल

गई थी, तारिकाओं (सखियों) को देख कर वही मैनां फूल उठी। (३) क्योंकि वह चित्त में हर्षित हो उठी थी और वह बहुत रात तक जागती रह गई थी, पिछली रात्रि (रात्रि के पिछले प्रहर) में उसे पुनः निद्रा आ गई। (४) नेत्रों के लगते ही एक स्वप्न आया (दीख पड़ा), किन्तु प्रभात होने पर किसी ने [उस स्त्री को जगाकर] उसे नष्ट (भंग) कर दिया। (५) खोलिन पूछने (कहने) लगी, "ऐ मैनां, सुन; यदि तू कोई वचन कहती, तो संधि पड़ती (शांति मिलती)। (६) तेरा मन कल जो तक हर्षित हुआ था, क्या तूने [अपने] प्रिय का [कुशल] समाचार पाया ? (७) स्वप्न को सोच समझ कर, ऐ मैनां, तू कहे कि क्या तूने कुछ देखा है।"

(३८४)

दिन भा लोरिक मारी बुलावा। गोवरां कस दहुं बात जनावा।
अस जनि कहु कि लोर पठाएउं। जउ को पूछ कहसि हउं आइउं।
फूल करंड भरि माली लीतेसि। फिरि फिरि गोवरां घर घर दीतेसि।
देखि फूल मैनां तस रोई। फूर सो भरहिं जिनहिं पिउ होई।
नांह मोर परदेसहि छावा। फूल पान मोहिं देखि न भावा।

बर कइ हार मेलेसि माली बचन न भोलि।
बास लागि सति मैनां उठहि बैन अस बोलि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१५।

शीर्षक—मै० : तलबीदन फ़िरिस्तादने लोरिक गुलफ़रोश रा बर मैनां बागुल।

मैनां ने खोलिन से अपने स्वप्न के बारे में क्या कहा, पिछले कडवक के बाद इस आशय का एक कडवक संभव है यहां और रहा हो।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो लोरिक ने माली को बुलाया [और कहा,] गोवर में किस प्रकार इस बात की सूचना दी जाए [कि मैं हरदीं से वापस आ गया हूं] ? (२) ऐसा न कहे कि तू लोर का भेजा हुआ है; यदि कोई पूछे तो कहे कि तू [स्वयं] आया (गया) है।" (३) माली ने फूल की टोकरियां भर लीं और उन्हें फिर-फिर गोवर में घर-घर में दिया। (४) उन फूलों को जैसे ही देखा, मैनां रोने लगी; [उसने कहा,] "फूल वे भरती हैं जिनके प्रिय होते हैं। (५) मेरा स्वामी तो परदेश में छाया हुआ है, मुझे फूल-पान देख कर नहीं भाते हैं।" (६) माली ने ज़बर्दस्ती [उसके गले में] हार डाल दिया, तो भी वह उसके वचनों में न भूली। (७) किंतु सती मैनां को जब

उन फूलों में पति को सुवास लगी (जान पड़ी), तो वह इस प्रकार का वचन बोल उठी।

(३८५)

कहंसि न मारी कत हुत आवा। फूल बास मइं लोरिक पावा।
जानउं अस तूं लोर पठावा। सपनइं मांझ जाउ देखिउं आवा।
लागि बास मोर हिया जुड़ानां। अइस फूल पिउ लोरिक आनां।
लोर नाउं लइ बहु दुख रोई। जनु सांवन बीरं बहूटी होई।
सूरुज कर मारग हउं चाहउं। लइ गइ चांद कहां अब नाहउं।

देवस सुहाए रोवउं रैनि जागतहिं जाइ।
पायं लागि मइं बिनवंउं जउ परदेसी आइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३१६।

शीर्षक—मै० : पुरसीदने मैनां बर गुलफ़रोश रा ख़बर।

अर्थ—(१) "ऐ माली, तू कहता क्यों नहीं कि कहां से आया है ? फूलों में मैंने लोरिक [के फूलों ?] की वासना पाई है। (२) मैं ऐसा जान रही हूं कि तू लोर का भेजा हुआ है, क्योंकि मैंने स्वप्न में देखा है कि वह आया हुआ है। (३) [इन फूलों की] सुवास लगी, तो हृदय शीतल हो गया; ऐसे ही फूल प्रिय लोरिक लाया करता था।" (४) [तदनंतर] लोर का नाम ले-लेकर वह [अपना विरह-] दुःख बहुत रोती रही; [उसकी आंखों से रक्त के अश्रु ऐसे गिरे] मानो सावन में बीर बहूटियां [निकल पड़ी] हों। (५) [उसने कहा,] "मैं सूर्य (लोरिक) का मार्ग देख रही हूं। मेरे स्वामी को चांदा ले कर चली गई थी; अब वह स्वामी कहां है ?। (६) सुहावने दिनों में रोती हूं और रातें जागते ही जाती हैं। (७) मैं तुम्हारे पैरों से लग कर विनय करती हूं, तुम बताओ यदि वह परदेशी आया हुआ है।"

(३८६)

सुनहु न किर धिय हउं परदेसी। ताहि संझाइ मोर सहदेसी।
सो देखु मोंहि कों घरहिं चलावा। गोवर सपदि मइं देखन आवा।
महरि देखि हंउ दही कहं आएउं। तोर बिरह जस अउर न पाएउं।
तब तूं सुद्धि लोर कइ पावसि। लइ कइ दूध जउ बेगां आवसि।
फूल मोर तोरीं झार सुखाने। छार भए अउ जरि कुंबिलाने।

बहुल लोक पुर आवा मकहुं बोल सुधि कोइ ।
बेगां आउ त पीछें ओ ठां मेरावा होइ ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१७ ।

शीर्षक—मैं० जवाब दादने माली बर मैनां रा ।

अर्थ—(१) [माली ने कहा,] "ऐ बेटी, तू सुन न, मैं परदेशी हूं, तू उससे मिले जो मेरा सहदेशीय है । (२) उसने देखो, मुझे अपने घर भेजा और मैं तत्काल [उसके घर को] देखने के लिए गोवर आ गया । (३) तुझे महरी देख कर मैं [यहां] दही के लिए आया, किन्तु तेरा विरह जैसा मैंने और [किसी का] न पाया । (४) तू लोर की सुधि तब पाएगी, जब तू [वहां] दूध लेकर शीघ्र आएगी । (५) मेरे फूल तेरी ज्वाला से सूख गए; वे राख हो गए और जलकर कुम्हला गए ! (६) बहुतेरे लोग पुर में आए हुए हैं, संभव है कि कोई [उसकी] सुधि बोले (कहे) । (७) यदि तू शीघ्र आए, तो [आने के] पीछे उस स्थान पर उनसे मिलना हो जाए ।"

(३८७)

दिन भा मैनां बेगां गई । अउर सहेलि जनीं दस लिई ।
बेचत दूध घर गईं [लुगाईं ?] । दही कहं लोरहिं महरि बुलाई ।
महरीं जेति सब लोरिक देखीं । देखत मैंना अउर न लेखीं ।
[तउ ?] हि लोर चांदा कहं बोलिसि ।
सीपि सेंदूर चंदन तन घोलिसि ।
[आ ?] गूं छाड़ि जउ पाछूं आवा । चमकि चमकि धनि पाउ उचावा ।
ओहि कर दूध दहि लीजिए दस गुन दीजिय दान ।
सती रूप जिसु देखेउं तेंहिक बड़ाई मान ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१८ ।

शीर्षक—मैं० : रफ़्तने मैनां बा सहेलियां दर बेगां व तलबीदन लोरिक मैनां रा ।

मैं० (२)।१ में अंतिम शब्द छूटा हुआ लगता है । और (४)।१ तथा (५)।१ में कोष्ठकों के स्थानों पर पत्र फटकर निकल गया है ।

अर्थ—(१) दिन हुआ तो मैनां शीघ्र ही गई, और [साथ में] उसने दस जनीं सहेलियां ले लीं । (२) वे [स्त्रियां] दूध बेचती हुईं [उस माली के] घर गईं, तो लोरिक ने उन महरियों को दही के लिए बुलाया ।

(३) जितनी महरियां थीं, उन सब को लोरिक ने देखा, किन्तु मैंनां को देखते ही औरों को उसने [कुछ] न लेखा (ध्यान में रक्खा) । (४) तभी लोरिक ने चांदा को बुलाया [और कहा,] "सीपियों में कर सिन्दूर और चंदन [रख लेना और] सभी के शरीर पर लगाना ।" (५) आगे के उस स्थान को छोड़कर जब वह पीछे [हट] आया, तो उस स्त्री (मैनां) ने चौंक-चौंक कर पैर उठाया । (६) [लोरिक ने कहा,] "उसका दूध-दही लो और दस गुना दान (दाम) [उसे] दो । (७) जिसे मैंने सती के रूप में देखा है, उसका बड़प्पन मानो ।"

(३८८)

लइ कइ 'दूध तउ' दरब दिवावा । सीप सेंधउरा 'मांग भरावा' ।
सेंदुर चंदन 'सभ कोइ' लेई । मैनां 'आपुन' करइ नहि देई ।
सेंदुर सो कर जेहि पिउ होई । नांह मोर हरदीं हइ सोई ।
'जउ लहि वह तजि मोहि कहं गवा' । तउ लहि 'हम'अस साध न 'भवा' ।
'निसि दिन हउं दुख आंसू रोवउं' । नींदि न आवइ कइसें 'सोवउं' ।
रोवत दिस्टि खुटानी 'खीनि भई चख जोति' ।
चांद सुरुज तेहि परखइ 'बास (?) परी भुइं लोट' ।।

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३१९, भो० पत्र ५९ (नवीन) ।

शीर्षक—मैं० : ख़रीदने लोरिक शीर व देहानीदने माल बर लोरिक मैनां रा ।

भो० : सितवन लोरिक शीराज़ाने अज़ मैनां व माल दिहानीदन व आज़मूदन मन दिल रा ।

मैं० में (५) में प्रारंभ का अक्षर त्रुटित है तथा 'आसू' शब्द छूटा हुआ है ।

पाठान्तर—(१) १. भो० दहि दूध । २. भो० आनि चढ़ावा । (२) १. मैं० सब को । २. भो० आपुहि । ३. भो० नहि । (४) १. मैं० [जउ] लहि मोहि को वह तजि गएऊ । २. भो० मोहि । ३. भो० भएऊ । (५) १. भो० दिन दिन आंसू लोहू रोवउं । २. भो० सोवउं । (६) १. मैं० गई चक्ख कइ जोति । (७) १. भो० बीज परइ भुइं टूटि ।

अर्थ—(१) [महरियों से] दूध लेकर तब [उन्हें लोरिक ने] द्रव्य दिलाया, और [चंदन-भरे] सीप तथा सिंदूर-पात्र से [उन की] मांग भराई ।

(२) [शृङ्गार के लिए] सिन्दूर और चन्दन सभी कोई ले रही थी, किन्तु मैनां अपना नहीं करने दे रही थी। (३) [उसने कहा,] "सिन्दूर वह करता है जिसका प्रिय (पति) होता है; मेरा जो स्वामी है वह तो हरदीं में है। (४) जब तक वह मुझे छोड़कर गया हुआ है, तब तक मुझे ऐसी साध नहीं हो सकती है। (५) मैं रात-दिन दुःख के आंसू रोती रहती हूं। नींद नहीं आती है तो मैं कैसे सोऊं? (६) रोते-रोते मेरी दृष्टि समाप्त हो गई और चक्षुओं की ज्योति क्षीण हो गई है, (७) [क्योंकि] मैं चांद (चांदा) और सूर्य (लोरिक) को परख रही हूं और [उनकी] वासना (?) में पड़ी हुई भूमि पर लोटती (लुंठित होती) रहती हूं।"

(३८९)

लोरिक मैंनहि 'जान' न देई। करइ धमारि मरम सभ लेई।
मैनां कह मन ताहि संझाई। मोर नैन आ ही मीत रचाई।
तइं 'का' दीखि 'हउं बेसा दारी'। 'तहं तूं' मों सउं 'करसि' धमारी।
जानसि अस 'तइं' 'बारी भोरी'। थाप देइ मोहि 'घालत' चोरी।
'आपन नांह' त रहंस संझाई। मोर ठाउं 'का करसि' बोलाई।
कोह बहुत कइ मैनां चली(लि) भइ ओहि क आवास।
चांदा 'भइ तब पालिंक ऊपर' धरि बइसारिसि पास॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२०।१, मसा०।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'लोरिक', जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मैं० : अैज़न लहू। मसा० : नीज़ गुज़ाश्तने लोरिक बर मैनां रा बे बाज़ी व लाग दरयाफ़्त करदन।

पाठान्तर—(१) १. मसा० चलइ। (३) १. मसा० कै। २. मसा० मइं अकुल कुवारी। ३. मसा० तब तैं। ४. मसा० करइ। (४) १. मसा० तइ। २. मसा० सूवा सारी। ३. मसा० घालब। (५) १. मसा० अपने मान। १. मसा० तोर रहन। (७) १. मसा० तब पालिंक सों।

अर्थ—(१) लोरिक मैनां को जाने नहीं दे रहा था, [उसके साथ] वह धमार (हास-परिहास) कर रहा था और [इस प्रकार से] उसका समस्त मर्म ले रहा था। (२) [इस पर] मैनां कहने लगी, "मेरा मन उसी [प्रिय] से मिलेगा और मेरे नेत्र उसी मित्र द्वारा रचाए (रंजित) होंगे। (३) तुझे क्या मैं वेश्या और दारी दिखी हूं और इसलिए तू मुझसे ऐसी धमार कर रहा

है? (४) क्या तू मुझे इस प्रकार भोली बालिका समझता है, और चोरी में डालते हुए मुझे थाप दे रहा है (मुझे चोरी करने के लिए बढ़ावा दे रहा है)? (५) अपना स्वामी हो तो हर्ष और मिलन है। तू इस स्थान पर मुझे बुलाकर मुझसे यह क्या कर रहा है?" (६) बहुत क्रोध कर मैनां उसके आवास से होकर चली। (७) चांदा तब पलंग के ऊपर हुई और उसे भी पकड़ कर उसने पास में बिठा लिया।

(३९०)

पिरम समुंद अतिय अवगाहा। जउ जग बूड न पावइ थाहा।
चहुं दिसि कइसें थाह न पावइ। मानुस बूड़इ तीर न आवइ।
मोरें रोए सायर भए। धरती पूरि सरग लहि गए।
फूटी(टि) आंखि जनु आंसू भए। परइं सो छाइ बान न(नहि) रहे।
तेहि गुन हउं तो नैन न देखउं। राति चांद दिन सूरुज लेखउं।
जान देहि घर आपन मोरिहि सासु मोहिं माइ।
बिसए संताप मइं बैठउं कालि पास तुम्हं आइ॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२०।२।

शीर्षक—मैं० : अैज़न लहू।

अर्थ—(१) [मैना ने कहा,] "प्रेम का समुद्र अति गहरा है, यदि जगत् डूबे (डुबकी लगाए), तो भी उसका थाह न पाए। (२) चारों ही ओर किसी भी प्रकार से वह थाह नहीं पाएगा; मनुष्य उसमें डूब जाएगा और तीर पर नहीं आएगा। (३) मेरे रोने से सागर हो गए और वे धरती को पूरित करके आकाश तक जा पहुँचे। (४) मानो आंखों के फूटने से आंसू हुए, वे आच्छादित पड़ (हो) रहे हैं, [इसलिए मेरे नेत्र अपने] वर्ण में नहीं हैं। (५) इसी कारण मैं तुझे नेत्रों से नहीं देख पा रही हूं, [बस] रात में चांद को तथा दिन में सूर्य को लेखती (ध्यान में रखती) हूं। (६) मुझे तू मेरे घर जाने दे; मेरी सास है जो मेरी मां है। (७) संताप के विश्राम करने (शमित होने) पर मैं कल तेरे पास आ कर बैठूंगी।"

(३९१)

उदए भानु 'अउ' राति बिहानी। महरीं 'देवहां' जाइ तुलानी।
मैनां देखत मंदिर बुलाई। बहुरि चांद वह बात चलाई।
कहु 'दहुं मैंनां सू(सु)रुज जसि करा। सो लइ 'चांदहि पाटन' धरा।

मोंहि तजि 'सूरु' चांद लइ भागा। बरहां 'चांद' आइ अब लागा।
जउ 'पइ' कतहूं चांद हउं 'पावउं'। 'कारा कइ मुंह' 'सरग हंडिहावउं'।
जस ओइं कीति संझाई तस जग करइ न कोइ।
जइसन दाह ओइं मोहि दीन्हां तइसन दाह ओहि होइ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२१, भो० पत्र ५६ (नवीन)।

शीर्षक—मै० : बाज़ रफ़्तने मैनां दर पैकां बा सहेलियान ख़ुद।

भो० : अज़ शब सुबह गाह रौशन बर आमदन व पुरसीदन मैनां व पुरसीदन चांदा।

पाठान्तर—(१) १. भो० में नहीं है। २. भो० देवहा। (३) १. भो० ओइं सुरुज चांद जसि। २. भो० चादइं हरदीं। (४) १. भो० सुरुज। २. मै० मांस। (५) १. मै० में नहीं है। २. भो० देवस चांद जउ। ३. मै० पाएउं। ४. भो० कार मुंह कइ। ५. मै० नगर फिरावउं (७) १. मै० दुहु मोहि दीन्हेउ। २. मै० दुहुक।

अर्थ—(१) भानु उदित हुए और रात समाप्त हुई, तो महरियां देवहां जा तुलीं (पहुंचीं)। (२) मैनां को देखते ही उसे भवन में बुला कर चांदा ने पुनः वह बात चलाई। (३) "ऐ मैनां, [तेरे] सूर्य (लोरिक) की जैसी कला है, उसे कह।" [मैनां ने कहा,] "उसको लेकर चांदा ने [हरदीं] पाटन में रख छोड़ा है। (४) वह सूर्य (लोरिक) मुझे छोड़ कर और चांदा को लेकर भाग गया, और अब बारहवां चांद (चांद्र मास) आ लगा है। (५) यदि कहीं मैं चांदा को पा जाऊं, तो [उसका] मुख काला कर उससे आकाश में चक्कर लगवाऊं। (६) जैसी उसने साठ-गांठ की वैसा जगत् में कोई नहीं करता है। (७) जैसा दाह [उसने] मुझे दिया है, वैसा ही दाह उसे भी हो!"

(३९२)

चांदइं आपनि कीति बड़ाई। 'मैनां' बूझत रही लजाई।
बोलत बोलत भई चिन्हाई। कहसि न चांद कहां हुति आई।
बर कइ चांदइं 'झूझ उपावा'। 'भया झूझ' जस दाउद गावा।
'तब उठि लोरिक आपु जनावा। मैनां रही लोर जउ पावा।'
लोरिक 'चांदहि' तस कइ हरकी। 'झूझन कारन' बहुरि न भरकी।
चेरी सात पांच कहं बोलिसि 'मैनहि' जाइ संवारि।
आजु 'राति मैनइं घर' जाउं 'ओहिकि हइ' बारि॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२२, भो० पत्र ५७ (नवीन)।

शीर्षक—मै० : बुज़ुरगी ख़ुद नमूदन चांदा व अहानत करदन मैनां।

भो० : बुज़ुरगी व बलंदी ख़ुद गुफ़्तन चांदा व शनाख़्तन मैनां व जंग करदन चांदा।

पाठान्तर—(१) १. मै० मैनहि। (३) १. मै० जूझ उपावा, भो० झूझ उचावा। २. भो० भई जूझ। (४) १. भो० में उपर्युक्त (५) यथा (४) है और यथा (५) है : अबहु समुझि नहि रहइ लजाई : आपनि चांद जो कइत बुलाई। (५) १. मै० चांदा। २. भो० चांदा जूझी न। (६) १. मै० मैनां। (७) १. भो० राति मइं ओहि घर, २. भो० राति हइ ओहि करि।

अर्थ—(१) चांदा ने अपनी बड़ाई की, तो मैनां के पूछते (प्रश्न करते) हुए वह लज्जित हो रही। (२) बातें होते-होते चिन्हाई (पहचान) हो गई [तो मैनां ने कहा,] "ऐ चांदा, कह न कि तू [यहां] कहां से आ गई?" (३) [तब] चांदा ने बल कर युद्ध उत्पादित किया और ऐसा युद्ध हुआ जैसा दाऊद ने [पहले] गान किया है। (४) तब लोरिक ने उठ कर अपने को बताया, और मैनां रुक गई जब उसने लोरिक को पा लिया। (५) लोरिक चांदा को इसलिए मना करने लगा, कि युद्ध करने के लिए वह फिर न भड़के। (६) सात-पांच चेरियों को (से) उसने कहा, "जाकर मैनां को संवारो। (७) आज रात मैं मैनां के घर जाऊंगा, [आज] उसी की बारी है।"

(३९३)

मैनां चेरिन्ह लइ अन्हवाई। मुंगिया 'सारि' आनि पहिराई।
दुसरें पाट 'जउ ओहि बइसारे'। मुखि तंबोल चखि काजर 'सारे'।
बदरी हुत जनु उ(उं)छटि 'नीसरा'। देखि सुरुज तब चांदा बिसरा।
राति जाइ 'तउ' नारि मनाई। 'चांदहु' चाहि अधिक 'पइ' पाई।
'पहिलइ' दुक्ख जउ नारि बखानां। राखेसि मान लोर जस जानां।
कहिसि सुरुज धनि 'चांदा (चांद) लइ कस दीतिउं तोहि' दोस।
'हम मैनां जेउं तोतें' 'न रहंसहुं' चांद परोस॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२३, भो० पत्र ५८ (नवीन)।

भो० में पिछले कडवक के बाद तर्क है 'मैनां चेरिन' जो इसी कडवक का है।

शीर्षक—मै० : दर शब रफ़्तने लोरिक दर ख़ानः मैनां व दिल ख़ुश करदन ऊ रा ।

भो० : ग़ुसल दादन कनीज़गान बर मैनां रा व किसवते ख़ास आरास्तन बर ख़ानः बुरदन ।

पाठान्तर—(१) १. भो० सारी । (२) १. मै० जउ बइसारेसि । २. मै० सारेसि । (३) १. भो० निसरा । (४) १. मै० कइ । २. मै० चांदा । ३. मै० तइ । (५) १. मै० पहिल । (६) १. भो० छाड़ि जउ मइं कीता । (७) १. भो० हमारिहि छांह जस तरइनि । २. भो० रहि हहि ।

अर्थ—(१) मैनां को चेरियों ने ले जाकर स्नान कराया, उसे लाकर मुंगिया साड़ी पहनाई । (२) [फिर] दूसरे पाट पर जब उसे बैठाया, उन्होंने उसके मुख में तांबूल दिया और आंखों में कज्जल लगाया । (३) [उस समय वह ऐसी लगी] मानो वह बादलों से उछट कर निकला हुआ [चंद्र] हो । तब उसे देखकर सूर्य (लोरिक) चांद (चांदा) को भूल गया । (४) तब रात को जाकर उसने स्त्री (मैनां) को मनाया [और कहा,] "तुझे, हो न हो, मैंने चांदा से भी अधिक [सुंदर] पाया है ।" (५) जब नारी ने पहले (विरह) के दुःखों का वर्णन किया, तो लोर ने जैसा-कुछ वह जानता था, उसके अनुसार उसने उसका मान रखा । (६) सूर्य (लोरिक) ने कहा, "ऐ धन्या (स्त्री), चांद (चांदा) को लेकर मैंने तुम्हें कैसे दोष (दुःख) दिए ? (७) [किन्तु] हे मैनां, मैं जैसा हर्षित तुझसे होता हूं, वैसा चांदा के पड़ोस (पास) में नहीं होता हूं ।"

२६. गृह-आगमन खण्ड

(३९४)

गोवरां अपजस बात जनाई । मैनां राखिसि ताहि संझाई ।
अजई के घर खोलिनि गई । लागि गोहारि बात असि भई ।
भा असवार घोर दउरावा । लोरिक सुनि कइ झूझन आवा ।
दौरि खांड अजई सिर दीन्हां । टाटर टूट लोर तेहि चीन्हां ।
तउ हि उतरि कइ भए अंकवारा । ··· ··· ···मंइं तुइं मारा ।
काहि लागि तुहुं ढांकिसु उठि आपन घर आउ ।
आगें दइ कइ लोरिक लीतेसि जाहि पूत तुम्हं पाउ ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२४ ।

भो० में पूर्ववर्ती कडवक के बाद तर्क 'गोवरां' है जो इसी कडवक का है ।

शीर्षक—मै० ख़बर कुनानीदने लोरिक दर शहर गोवर अज़ आमदने ख़ुद ।

मै० में (५)।२ में छोड़ा हुआ अंश सामने के चित्र का रंग उभड़ आने से अपाठ्य हो गया है ।

अर्थ—(१) गोवर में यह अपयश की बात विज्ञप्त हो गई कि मैनां को [किसी ने] साठ-गांठ कर रख लिया है । (२) अजई के घर खोलिन गई [और उससे कहा,] "तू मेरी गुहार लग, क्योंकि बात ऐसी हुई है ।" (३) [अजई] सवार हुआ और उसने घोड़े को दौड़ाया, यह सुनकर लोरिक युद्ध करने के लिए आया । (४) दौड़कर अजई ने [उसके] सिर पर खड्ग दिया, [जिससे] उसका टाटर टूट गया तो उसने लोरिक को पहचान लिया । (५) तभी वे [घोड़ों से] उतर कर अंकपाली में हो (बँध) गए । [अजई ने कहा,] ····· मैंने तुम्हें मारा । (६) किस लिए तुम ढंके (छिपे) हो ? उठ कर अपने घर आओ ।" (७) उसने लोरिक को आगे कर लिया और कहा, "तुम जिसके पुत्र हो, वह [माता—खोलिन] तुम्हें पाए !"

(३९५)

चढ़ि [?] तुरै लोर घर आवा । पायं लागि कइ माइ मनावा ।
मांत कह[इ] अस पूत न कीजइ । बूढ़ि माइ कहं दोख न दीजइ ।
खोलिनि बहुअइं दोऊ आनीं । चांदा मैनां दूनइं रानी ।
पाइ परीं अंकवारइं धरीं । काजर सेंदुर दोऊ करीं ।
आगिनि परजारि कइ रसोइ बघारी । कोठा बारी सेज संवारी ।
चांद सुरुज अउ मैनां बरिस सहस भा राजु ।
गावहुं गीत सहेलियां गोवर बधावा आजु ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र ३२५ ।

शीर्षक—मै० : दर ख़ानः आमदने लोरिक व पाय मादर उफ़्तादन ।

अर्थ—(१) घोड़े पर चढ़ कर लोरिक घर आया । पैरों से लगकर उसने माता को मनाया । (२) माता कहने लगी, "पुत्र ऐसा न करो, बूढ़ी माता को दोष (दुःख) न दो ।" (३) खोलिन दोनों बहुओं को लाई । चांदा और मैनां [अब] दोनों रानियां थीं । (४) वे उसके पैरों में पड़ीं और [तदनंतर] उन्होंने उसे अंकपाली में पकड़ा (भरा) । दोनों ने कज्जल और सिंदूर [से

शृंगार] किए। (५) अग्नि जलाकर उन्होंने रसोई बघारी (तैयार की) और उन्होंने कोठे, बाटिका और शैया को संवारा। (६) [मैनां की सखियों ने कहा,] "चांद (चांदा), सूर्य (लोरिक) और मैनां का सहस्र वर्षों का राज्य हुआ ! (७) सहेलियो, गीत गाओ, आज गोवर में बधावा (हर्ष का आयोजन) है।"

(३९६)

लोरिक पूछहि कहु मोहि माई। कत दहुं मैनां कत हुत भाई।
तोरें पाछें बावन आवा। बैनां मैनां काढ़इ लावा।
अजई करि गोहारि उठि धावा। बैनां मैनां आइ छुड़ावा।
तउहि महरहुं नाउव चलावा। मांकर कहं अस बोलि पठावा।
कहा लोर ईहि देस परानां। हरदीं पाटन जाइ तुलानां।
भई बेर हइ मांकर मारि गाइ लइ जाहि।
ऐसइ बीर कतहुं दहुं पाइय सवंरू (कुवंरू?) राढ को आहि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२६।

शीर्षक—मैं० : पुरसीदने लोरिक मादर रा व जवाब दादने मादर।

अर्थ—(१) लोरिक पूछने लगा, "मेरी माता, कहो कि मैनां कहां थीं और भाई कहां था ?" (२) [उसने कहा,] "तेरे [जाने के] पीछे बावन आया और बैनां और मैनां को वह [घर से] निकालने लगा। (३) अजई ने गुहारी की और वह उठकर दौड़ा; उसी ने बैनां तथा मैनां को आकर छुड़ाया। (४) तभी महर ने भी नाई भेजा और मांकर को ऐसा कहला भेजा : (५) उसने कहा, "लोर इस देश से भाग गया है और हरदीं पाटन चला गया है। (६) ऐ मांकर, [उपयुक्त] वेला हो गई है, तू मार-पीट कर उसकी गाएं ले जा। (७) ऐसा (तेरे जैसा) वीर कहीं क्या पाया जाता है ? राढ़ (बलहीन हुआ) संवरू (कुंवरू ?) [तेरे समक्ष] कौन (क्या) है ?"

(३९७)

सुनि कइ मांकर कटक चलावा। बोहां 'कुंवरुहि मारइ धावा'।
'बहुल कटक सिउं' मांकर अहा। एक कुंवरू कर दहुं काहा।
राजा पहं 'कुंवरू चलि' आवा। 'बांगर मांकर कुंवरू' मरावा।
'अस दुख पूत तोहि बिन भएऊ'। 'परिहंस' गाढ़े न कोउव गएऊ।
'कुंवरू मारा नाउव सुनावा'। राजा कापर 'तेहिं' पहिरावा।

एक 'दुख पूत मोहि' तोरा दूसर 'औहि क जउ' लाग।
दिवस रोइ कइ फेकरउं राति जाइ मोंहि जागि॥

सन्दर्भ—मैं० पत्र ३२७, भो० पत्र ६ (नवीन)।

भो० में इस कडवक के बाद तर्क है 'डारहि हाथ', जो अगले कडवक का होगा। इसके आगे के कडवक किसी प्रति में नहीं मिलते हैं। जैसा कि बी० के संबंध में कडवक ३८२ की सन्दर्भ-टिप्पणी में कहा गया है, असंभव नहीं कि पूरी रचना में इसके आगे भी १४-१५ कडवक रहे हों।

शीर्षक—मैं० : अैज़न·····। भो० : शुनीदने मांकर कैफ़ियत रफ़्तने लोरिक व आमदन बालश्कर व गुश्तन संवरू व बुर्दने मांद गाव।

पाठान्तर—(१) १. मैं० कुंवरू मारन धावा। (२) १. भो० बहुत कटक सिउं, मैं० बहुल कटक महं। (३) १. भो० तउ संवरू। २. भो० धरि करि मांकर संवरू। (४) १. भो० देखि पूत अस पीछेइं भएउ। २. मैं० बिरहे (५) १. भो० कुंवरहि नाऊ हंकारइ आवा। २. भो० तेहि। (६) १. भो० में अपाठ्य है। २. भो० ओहिकर।

अर्थ—(१) यह सुनकर मांकर ने कटक चला दिया और वह बोहां में कुंवरू को मारने दौड़ पड़ा। (२) मांकर बहुतेरे कटक से (के साथ) था, एक (अकेला) कुंवरू भला क्या करता ? (३) कुंवरू जब चल कर राजा के पास [उसकी सहायता प्राप्त करने के लिए] आया, तो वक्र (कुटिल) मांकर ने कुंवरू को मरवा डाला। (४) ऐसा दुःख, हे पुत्र, तेरे बिना (न रहने के कारण) हुआ और इस परिहंस (परिहास पूर्ण स्थिति) और संकट में कोई [सहायक] न हुआ (५) जब नाई ने कुंवरू का मारा जाना सुनाया, तो राजा (महर) ने उसे वस्त्र पहनाए। (६) एक दुःख तो, हे पुत्र, मुझे तेरा था ही, दूसरा जो उसके लिए हुआ, (७) दिन भर मैं रो-रो कर चिल्लाती रहती हूं और रात मुझे जागते-जागते बीतती है !"

परिशिष्ट

प्रक्षिप्त कडवक

[कोष्ठकों के बाहर दी हुई संख्याएँ प्रक्षिप्त माने गए कडवकों की क्रम-सख्याएँ हैं, और भीतर दी हुई संख्याएँ स्वीकृत कडवकों के साथ उनकी स्थिति का निर्देश करती हैं।]

१. (२४ अ)

पौरि छाडि चलि भींतर गयो। येक पौरि फिरि दा (दो) उ भयो।
अस धौ बाहरु दक्खिन बाउ। जिव बिसंभर गा उठै न पाउ।
तर उपरि धरि बानी फिराई। बांस काटि सरके(कि)हि सब छांई।
जरी जरत पट उटंग किवारा। भये (?) झरोखा सजे दुवारा।
ही (हीं) गुर चित्र कियो रतनारी। कनक नीर स्यैं भरी छिहा[री]।
भींतर के (कै?) राजा मनि बारी फूली सोवन जाइ।
घर घर नीर बह(हु)ल तर आनी गंग बहाइ॥

सन्दर्भ—बी० ७५-७७।

मै० यहां पर अत्रुटित है, जो कडवकों के साथ दिए हुए चित्रों से प्रकट है, और उसमें यह कडवक नहीं आता है। फिर इसमें भवनों का जो वर्णन है, वह खाई और परकोटे के वर्णनों को देखते ही बहुत रंक प्रतीत होता है: यथा (३) में कहा गया है कि उनमें बांस काट कर सरकंडे से सब छाजन की हुई थी; पुनः, आगे चांदा की चौखंडी का जो वर्णन उसके लोरिक द्वारा आरोहण के प्रसंग में किया गया है, उसकी तुलना में यह वर्णन बहुत हेटा है। इन कारणों से यह कडवक प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

२. (३१ अ)

का गा येकइ·····न भना। कुहकत देषि महरि सिर धुना।
कह धौं बात जु पूछौं रोइ। बा(बां)झ बेलि फर कैसैं होइ।
न्यौंतिहौ(हौं) जौ आनीये कागा। ज(न)य(ज)नौ कवन धरम फरु लागा।
भयों सपूरन दसयें मासा। जनमि चांद मनि पूजी आसा।
अति रुपवंति करम आगरी। काकौं या धन बिधना धरी।

चांद सुरिज तेहि निरमरा सहद्यौं गिनीं जु बारि ।
गन गंधर्ब रिषि देवता देषि बिमोहे नारि ॥

सन्दर्भ—बी० १००-१०२ ।

मैं० यहां पर अत्रुटित है, जो कडवकों के साथ आए हुए चित्रों से प्रकट है । इस कडवक में फूला रानी को निस्संतान बता कर सिर पीटते हुए उससे कौए से संतानोत्पति के विषय में प्रश्न कराया जाता है, और कौए के बिना कोई युक्ति बताए ही गर्भ के दस मास पूरे हो जाते हैं और चांदा का जन्म हो जाता है । यह प्रसंग-योजना असंगत और अटपटी लगती है । पुनः दोहे का दूसरा चरण बिल्कुल ज्यों का त्यों आगे आए हुए कडवक ८२ का दूसरा चरण है, जैसा वह मैं० में भी है । अतः यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है ।

३. (५३ अ)

सुनं सखी मांह मांस कइ बाता । अपुनें (?) रांग सभइ धनि राता ।
कर गहि रवन्ह कंठ लइ लावइं ।
अति पियारि सखी (सुख ?) सेज बिछावइं ।
तिल दिन बाढि होइ तिल धानी । हउं तिल एक पिय संग न जानी ।
रइनि डेरावनि बरबरि(?) कारी । घटइं न आवइ बजर कइ मारी ।
जागत लोयन आछइं राते । फिरि..... राते ।
रइनि तुसारें कछू न हेरउं(रिउं) रहउं(हिउं) भुव बरु गियं लाइ ।
सउर सुपेती कंत बिनु तिल एक थांमि न जाइ ॥

सन्दर्भ—शि० । मैं० यहाँ पर त्रुटित है ।

शीर्षक—शि० : कैफ़ियत करदन फ़िराक़ माह फागुन पेश सहेलियान जुदाई शौहर [स्पष्ट है कि फ़ारसी शीर्षक अशुद्ध है ।]

इसके पूर्व पौष का भी एक कडवक रहा होगा, यह शि० में दिए हुए उसके चित्र से प्रकट है, किन्तु यह बारहमासा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है, क्योंकि माघ मास का उल्लेख तो स्वीकृत ५१ में आ चुका है, जो मैं० तथा बी० में मिलता है । पुनः बी० यहां पर अत्रुटित है, और उसमें संबंधित वर्णन में शीत, ग्रीष्म तथा वर्षा के प्रतिनिधि मासों माघ, ज्येष्ठ तथा भाद्र के वर्णन आए हैं । ऐसा लगता है कि इन तीस मासों के वर्णन के स्थान पर एक पूरे बारहमासे की कल्पना शि० परम्परा में की गई थी ।

४. (५३ आ)

चइत मांस सब (?) खेलहिं..... । .....भुइं(?)..... ।
जो[व]हु कतहुं सबहिं जग भूली । सभइं बना फति धरती फूली ।
नौ खंड फूले फूल सोहाए । मंदिर मंदिर..... : ।
सखी बसंत सभं (?) देखइं आई । ..... : ।
हीं उर जइस बइसंदर बरई । ..... : ।
... ... ।
... ... ॥

सन्दर्भ—शि० ।

शीर्षक—अपाठ्य है ।

प्रथम अर्द्धाली अधिकतर अपाठ्य है । पत्र के फट जाने के कारण (३)।२ का उत्तरार्द्ध (४)।२, (५)।२, (६) तथा (७) शेष नहीं हैं ।

इसके पूर्व फाल्गुन का भी एक कडवक रहा होगा, यह शि० में पाए जाने वाले उसके चित्र से प्रकट है ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी ।

५. (२१० अ)

मोरा मरमु चांद तैं सुना । तुम्ह फुनि कहहु जु तुम्हरें मना ।
जहां मन पिय के नेहु न होई । पर बेदना न जानै कोई ।
सारस हिरन जु बनह बसाहीं । बाझु प(पि)रीतम झूरि मराहीं ।
जिह पै दई न पिरम षिलावा । सो कस आपै मानु [स] कहावा ।
सब बुधि तिहि पहि कहैं सयाना । इह जगि पिरम सुवादु जि जाना ।
कहु रसु आपुनु चांदा जिहि चितु सुनै सिराइ ।
नेह कहानी भावै पिरति न हिये बुझाइ ॥

सन्दर्भ—बी० ६४६-६४८ ।

चांदा की स्नेह-साधना सुनने के लिए लोरिक को इस प्रकार का अनुरोध करने की आवश्यकता नहीं थी । बाद के कडवक में चांदा ने जो अपनी स्नेह-साधना का परिचय दिया है, उसके लिए ऐसे शिथिल अनुरोध की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है : 'पर बेदना न जानै कोई' (२), 'जिह पै दई न पिरम षिलावा' (४), और 'पिरति न हिये बुझाइ—आदि बहुत शिथिल उक्तियां लगती हैं । इसके साथ ही यह भी दर्शनीय है कि मैं० यहां

पर अत्रुटित है : इसके पूर्व और पश्चात् के—दोनों कडवक उसमें एक ही साथ दिए हुए हैं, दोनों के बीच में कोई चित्र भी नहीं है। इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

६. (२७८ अ)

चाहौं पंडित पूरब दिस चला। घरी महूरत गिनि कहि भला।
अस गिनि पंडित कहौ संजोगू। मया करै जनु राजा लोगू।
जस सुष होइ नगर कर बासा। औ राजा भल पुरवै (वइ) आसा।
गिनहु मोर औ चांदा रासी।
ष(घ)री धरत जस (जनि?) गिनत भुलासी।
यह फुनि बात न कहिहहु काऊ। जस नरु सुनै न सहदे राऊ।
सोवन जरित लै(लइ) अंगुठी लोर बिप्र कौहु दीन्ह।
गनि गुसाईं औ भल भाषौहु फुनि बिनती बहु कीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ८५८-८६०।

मै० तथा म० यहां पर अत्रुटित हैं, पुनः इस कडवक का मुख्य भाव कडवक २७९ के (१) में आ जाता है, जो बी०, मै० तथा म० में समान रूप से है, और दोनों को प्रामाणिक मानने पर पुनरुक्ति होती है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

७. (२७९ अ)

'बिहफइ' नारि आइ 'समुझाई'। चांद चीर 'जेइं बहुरि' फिराई।
चंदनु 'सीतर' 'घसि तनु' लावा। 'बेइलि' चंपा भरि सीस 'गुंदावा'।
तिलक मांग चखि काजर कीन्हां। तीस पान मुख बीरा दीन्हां।
अभरन पहिरा 'अउ गियं' हारू। 'हाथन्ह मेंहदी किएउ' सिंगारू।
'सोरह' करां सपूरन भई। लोर लागि 'मालिनि घर' गई।
'जिमि हिं(?) नखत लखि पाई' 'गरह जो भई' निसंक।
सुरिजु सनेही चांदा 'पूनिउ' भई करंक॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४४।२, बी० ८६४-८६६।

मै० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से प्रकट है, पुनः दिन ही में चांदा कैसे अपने घर से निकल कर मालिन के घर गई, जहां उसे लोरिक भी मिल गया, यह नहीं बताया गया है। अतः यह तथा बाद का अतिरिक्त कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं।

शीर्षक—म० : रसीदन बिरस्पति बर चांदां।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहपै। २. बी० समझाई। ३. बी० भाप-हरि। (२) १. म० उसीनर। २. बी० सो घसि। ३. बी० बेलि। ४. बी० चरावा। (४) १. बी० औ गै। २. बी० हाथा महदी सभै। (५) १. बी० सोराह। २. बी० मारनि कैं। (६) १. बी० जिन्हा न षिलहि पायो। २. बी० गाजहु भए। (७) १. बी० पून्यो। २. म० कलंक कलंक।

८. (२७९ आ)

दिनु भा 'बिहफइ' आइ तुलानी। 'भई' उतावलि चांदा रानी।
सुरिजु सुमंतु 'बिरस्पति' पावा। लेत खांड 'मालिनि' घर आवा।
पाइंतु धरि 'तउ' चांद 'बोलाई'। 'बिहफइ कही सो जनु दिन पाई'।
बिहसति चांद लोर पहिं गई। सीसु नाइ धनि ऊभी' भई।
'अइस' चलहु न सुधि 'कोउ' पावा। सांझ चलहु 'न कोउ गोहनि' आवा।
'लोरिक' कहा सुनहु 'दहुं' 'चांदा' गवनु करबि अब 'सांझ'।
भोग बिरास पिरम रस हरदीं पाटन 'मांझ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४५।१ [यह संख्या बाद की है, क्योंकि इसका '४' पूर्ववर्ती कडवक के '४' से भिन्न है]; बी० ८६७-८६९।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'रइनि खेलि', जो स्वीकृत कडवक २७८ का है।

शीर्षक—दस्तान रसीदन बिरस्पति बा चांदा अस्त।

मै० यहां पर अत्रुटित है, अतः यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

पाठान्तर—(१) १. बी० बिहपै। २. बी० भइ। (२) १. बी० चांद तुम्ह। २. बी० मारन। (३) १, म० जौ। २. बी० बुलाई। ३. बी० बिहपै कहा सुनहु धन आई। (४) १. म० ठाढी। (५) १. बी० तैसै। २. बी० को। ३. बी० को गौहनिन। (६) १. बी० लोरक। २. बी० धौं। ३. बी० में नहीं है। ४. बी० साझ। (७) १. बी० माझ।

९. (२८० अ)

लइ लोरिक घरु बारु दिखावा। देखि चांद 'किछु चितहिं न लावा'।
चलहु लोर 'पुनि हो भिनुसारा'। लागु 'गोहार सब' लोगु हमारा।
'मुकु(मकु)' सुनि 'पावइ' बावन बीरू। 'परहि दगध पुनि मोर' सरीरू।

'ओहि' देखत 'कोइ जाइ न पारइ'। 'बोलत बोल मांझ मुंह मारइ'।
'अरजुन जइस धनुक कर गहइ'। 'ओहि कइ हाक न हस्ती सहइ'।
'औगी भुय(भइ ?) तुम्ह आछौ चांदा' 'अइसइं' मोहि न डराउ।
'राउ' रूपचंद बांठा 'मारेउं' अब बावन परि जाउ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४७।२, बी० ८७३-८७५।

मैं० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से प्रकट है। लोरिक ने चांदा को उसका घर-बार क्यों दिखाया, इसका कारण नहीं समझ पड़ता है। इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है।

शीर्षक—म० : दस्तान आमदन चांदा ज़ेर क़स्र वाफ़्तन।

पाठान्तर—(१) १. बी० कुछु चित न सुहावा। (२) १. बी० होयहै भुनसारा। २. बी० गोहार स। (३) १. म० मत। २. बी० पावै। ३. बी० बिरह दगध फुनि मोहि। (४) १. बी० उहि। २. बी० को जान न पारा। ३. बी० बात कहत सिर मुष महि मारा। (५) १. बी० अरजन जैस धुनषु कर गहै। २. बी० उहि की हाक न मानई रहै। (६) १. म० कहहि लोर सुनहु तुम्ह चांदा। २. बी० अैसैं। (७) १. बी० राव। २. बी० मार्‌यों।

१०. (२८० आ)

'ओडन खांड मैनां लइ' सूती।
'सब (सहि)' निसि जाग बिरह कइ' भूती।
दुहुं 'मिलि घंसि तइ रोइ संचारा'। 'करहि गहत जनु उठी झनकारा'।
मैनां मांजरि रूप मुरारी। 'एहि गुन कतहुं (कहत) न देखउं नारी'।
ओडन गाढ (खांड)' 'गेंडुवा (कुंडौर) सिर धरा'।
'नैन नीर चख झरि झरि परा (काजर झरा)'।
काउ ऊंच नहि बोलसि बोलू। अउगुन करति राखि 'मोर' तौलू।
'एत रूप (सरूप)' सयानी 'अउ कुलवंती बारि (नारि)' संजोग।
तुम्हं 'पंथ[नहीं है]'चांदा मनु राता'। अब 'तेहि[नहीं है] परा' बिजोग॥

सन्दर्भ—म० पत्र १४७।१ तथा १४८।१, बी० ८७६-८७८।

[म० में यह कडवक दो बार आया है, अतः प्रथम बार का पाठ सामान्य

रूप से देते हुए दूसरी बार का कोष्ठकों में दिया जा रहा है] ऊपर दिया हुआ पाठ म० का है, बी० के पाठान्तर यथास्थान नीचे दिए जा रहे हैं। मैं० यहां पर अत्रुटित है, और ओडन-खांड तो अपना लोरिक लेता ही गया है (दे० ओडन खांड लोरकर गहा—परवर्ती कडवक), पुनः कडवक का संगठन संदिग्ध है : (१), (२), तथा (४) ओडन-खांड से संबंधित हैं शेष पंक्तियां मैनां की आत्म-प्रशंसा की हैं। अतः यह कडवक भी प्रक्षिप्त लगता है।

शीर्षक—म० : दस्तान शमशीर व सिपर लोरिक गिरफ़्तन मैनां।

टिप्पणी—पहले स्थान पर इस कडवक के बाद तर्क है 'लइ लोरिक घर', जो इसके पहले आने वाले कडवक का है, और दूसरे स्थान पर कडवक के बाद तर्क है 'कार' जो स्वीकृत २८१ का है।

पाठान्तर—(१) १. बी० वोडन सिर दे मैनां। २. बी० सब। ३. बी० की। (२) १. डी० घाटेहि मिलि रुइ संचारी। २. बी० कर गहि जान उठै झनकारी। (३) १. बी० इहि ढग कतहं पिषीय न नारी। (४) १. बी० सिरहते लीन्हा। २. बी० रोइसि लाख बहुत दुष कीन्हा। (५) १. बी० मौ। (६) १. बी० अते सरूप। २. बी० गावति जोग। (७) १. बी० अस नेहु। २. बी० चांद मनु बीधा। ३. बी० सो पर्‌यो।

११. (२८१ अ)

रहु कवरू भल बात न जांनैहि। अनजनते कस काहि बखानै।
रंग कर बूड न पावै तीरू। चांद रहा रंग मोर सरीरू।
बात सबै याह षंड षंड गई। मुहि लगि चांद कलंकी गई (भई?)।
अब जौ रहौ त लागै लाजा। चांद मरै फुनि हमरे काजा।
दइ कर लिष्या सु मेट(टि) न जाई। महर धिया संग मो सहा आई।
मैना माजरि तजि कै रंगु चांद सौं कीन्ह।
दुष ता निसहि बहु फिरि कैं अबहि दिसंतरु लीन्ह॥

सन्दर्भ—बी० ८८२-८८४।

मैं० तथा म० यहां पर अत्रुटित हैं, और रंग का तर्क लोरिक कुंवरू से करता, यह कम संभव प्रतीत होता है। यों भी भागने की इस जल्दी में संवाद का खिचना कम संभव और स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसलिए यह तथा बाद के तीन अतिरिक्त कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं।

१२. (२८१ आ)

बोला कंवरू सुनि धौं लोरा। कहा करासि चांद फुनि तोरा।
अति बड महर धिया संग आयें। कुर कौं बहुत अंकरंकु लाये।
छाडि देहु घर आपनै जाई। जस नहि परिहंसु महर कराई।
अत सुनि महर करसि बड बैरू। हम डरु आहि होइ तुम्ह पैरू।
वोछ पुरषु अस करिहै काजा। सरग कार मुष होइ घर लाजा।
भल न कीन्ह अस लोरिक चांदा कै बैराई।
माइ बूढि औ माजरि मैना गंगा दीन्ह बहाइ॥

सन्दर्भ—बी० ८८५-८८७।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

१३. (२८१ इ)

सुनी बात लोरिक भइ झारा। फिरि फिरि गोवरु निरषि निहारा।
चांद तेहि संका मनि करै। बचनु भाषै वाइकु न सरै।
झूरै मनहि औ[रु] डर षाई। बैरु न अस तुम्ह महरु कराई।
महरि बचनु इक मोसौं कीन्हा। आधे गोवर राजु मोहि दीन्हा।
राउ रूपचंद बांठा मार्‌यौं। असमै गोवरु महरु उबार्‌यौं।
फुनि चांदा लागें मनु मोरा। येह परि तुम्ह सौ पर्‌यों बिछोरा।
अब तुम्ह [भ]अै सयाने षौलंनि करिहौ सार।
बिरहिनि माजरि मैना झूर न देहु किहि बार॥

सन्दर्भ—बी० ८८८-८९१।

यह कडवड भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी। इस कडवक में पांच के स्थान पर छः अर्द्धालियाँ हैं, यह भी सन्देह-जनक है।

१४. (२८१ ई)

कुंवरू कहा लोर अस भावै। बिरह जरत अम्ह कैस कलावै।
एकै लोर सुनहु मोरी बाता। देषहु नारि जिसे मनु राता।
अति बर राई बराई गये। यंद्र अहल्या तिवई रये।
देषहु चंदु कलंकी भयो। रावन सीय हेतु फुनि गयो।
नल पंडौ कौं कहिये गियानू। तुम्ह फुनि तिय संग भये अयानू।

मैनां रूप न तीवई देष्यों इहि सैसारि।
कहा भाई तुम्ह तजिहौ कहौ सु मोहि बिचारि॥

सन्दर्भ—बी० ८९२-८९४।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

१५. (२८२ अ)

भादौ मास निसा अधियारी। मन महि डरै न चांदा नारी।
छाइ रह्यौ घन मेंघ अडंबरु। जानु कि धरती लागौ अंबरु।
बरषत नान्ही बूंद सुहाई। चली चांद सुधि काह न पाई।
फिर ताह कौउ न दीसै लोगू। सभ को अपनै करै संभोगू।
इक अधियारी बरसैहि मेहा। ता रुति भौगी तजैहिन गेहा।
चांद चल लै लोरु तहा अति अधियारी रैनि।
को नहि दीसै ना मिलै बोल न कोउ बैनि॥

सन्दर्भ—बी० ८९९-९०१।

यह तथा आगे के चौदह कडवक चांदा-लोरिक की उस खोज से सम्बन्धित हैं जो दोनों के गोवर छोड़ने पर महर के द्वारा कराई जाती है, और जिसमें असफल होने की सूचना बावन को दी जाती है। इनमें लोर-चांदा का भागना भादों में बताया गया है (२८२ अ. २), जबकि स्वीकृत कडवकों में वह सावन में कहा गया है (२७५.२)। मैं तथा म० यहां पर अत्रुटित हैं, और उनमें इन पन्द्रह कडवकों में से एक भी नहीं है, अतः ये निश्चित रूप से प्रक्षिप्त हैं।

१६. (२८२ आ)

बीती निसा भयो भुन सारा। कहै बिरसपति बोलहु बारा।
दिन दिन रैनि दुषह विहांनीं। आजु कि तुम्हारी झार बुझानी।
मनमहि भेदु बिरसपति जानैं। कबही दूसर पहि न बषानै।
तबहि नरायन चेरि बुलाई। चांद न बोलै देषहु आई।
उठी बिरसपति सेज निहारी। सो जनही कही उपइ वारी।
कहै बिरसपति चांद सुनि भेदु न जानै कोऊ।
औगुनु मोहि भयो कछु तौ मोहि कहि समुझाऊ॥

सन्दर्भ—बी० ९०२-९०४।

१७. (२८२ इ)

मंदिर महि चांदा छिपि रही। ढूढत रांनी चांद न लही।
सूना मंदिरु सेज सब सूनी। देनि बिरसपति झौंहा रूनी।
सबै तरायनि तहां मुरझाई। मंदिर माहि परी बिललाई।
ऐक बार चांद तुम्ह आवोहु। मुषा कवरु तुम्ह आइ दिषावोहु।
अहो बिधाता भयो बिवोगू। देषि करंकु हसै सभ लोगू।
तबहि बिरसपति उतरी कह्यो महरि सौ जाई।
सैज सून चांदा की मंदिर देषौ आई॥

सन्दर्भ— बी० ९०५-९०७।

१८. (२८२ ई)

महरि महरु मंदिर चरि धावा। चांद दुलारी देष न पावा।
सूनी सेज चांद तहं नांही। मूरछि परा झुरैहि मन मांहीं।
इक अफसोसु झूरिहै कोऊ। अहो चांद कहु लै गयो कोऊ।
गोवर माहि उठ्यो बहु सोरू। रैनि बडी तहा होइ न भोरू।
कोउ(ऊ) सुधि न जानै काहू। अहो सोरु योहु कौनु अगाहू।
निसि अंधियारी रैनि डरु कोय न बाहरि जाई।
चांदा सुधि न जानहीं तहा को कहै न आई॥

सन्दर्भ—बी० ९०८-९१०।

१९. (२८२ उ)

मनहि बहु करै बिलापा। अहे बिधात दीन्ह संतापा।
अबहि दिषावोहु बारा मोरी। कौन पाप मो धीया बिछोरी।
चांद दुलारी मो कोहु देहू। कै मो जीउ कढि कैं लेहू।
कौं रस हौ यह ऐत बियोगू। इक दुषु औरु हसै सभ लोगू।
तुम्ह बिनु औरु न कोय मिलावै। तुम्ह पसाइ अब चांदा आवै।
महरि महरु मूरछि परहि कोन उठावै आई।
अति बियोग चेता नही तबहि न मुरछा जाई॥

सन्दर्भ—बी० ९११-९१३।

२०. (२८२ ऊ)

पवनि छतीसक आये बारा। लही सु तबहिं चांद की सारा।
कोइ कहै उपइ वाह गई। कोइ कहै देवाह हरि लई।
रूपवंति संदरि जैसै बारी। यंद्र अषारैं भइ पियारी।
कोई कहै किने हरि लीन्ही। देषि सरूप यंद्र कौह दीन्ही।
कोई कहै राकसु लै जाई। सीय समान कि देषी आई।
बाजुर सुधि कोई लहै कबहू वोहु ले जाई।
बहुत दिवस वोहु येक दिन पर्‌यो देषि मुरझाई॥

सन्दर्भ—बी० ९१४-९१६।

२१. (२८२ ऋ)

उठि महरु बिरसपति बूझै। तो कौहु चांद गइ निजु सूझै।
तबहि बिरसपति झूरै नैना। गहबरि मनि तहा बोलै बैना।
जौ हौ भेदु चांद कौ पाऊ। तौ हौ चांद कैसै गेहि न धाऊ।
जेत वियोग कौर तनि सहै। बारैं बार बिरसपति कहै।
महरि रोसु तहा अधिका कीन्हा। साचु बिरसपति तै कछु दीन्हा।
सुन्यों बिरत मै नर महि लोरिक सौं कछु नेहु।
अबहि पठावोहु कोइ जनु ढूढहु ता घर गेहु॥

सन्दर्भ—बी० ९१७-९१९।

२२. (२८२ ॠ)

महरु क [हा] यह दोय जन धावोहु। लोरिक कौ बेगि लै आवोहु।
दोय जन बेगि लोर घरि आवा। घर महि ढूढा लोरु न पावा।
मैना षौलनि दोऊ जागी। लोरिक नही दाह तनि लागी।
देषि कछु नहि बोल ऊभारा। मनमहि जाना लोरिक मारा।
मोर कहत लोरकु ना रहा। तैसै करत अबहि करु लहा।
दोइ जन घरु ढूढताह तहा न पावहि लोरु।
सही पिरम रस चांदा कहु लेइ सु नाठा चोरु॥

संन्दर्भ—बी० ९२०-९२२।

२३. (२८२ लू)

घर महि नही लोर हथियारा। दीठी सूनी सेज अपारा।
दोउ नेवर चांदा तने। चलत पंथ तै बोलहि घने।
लोर उतार सेर पर धरा। चांदा लेइ पयाना करा।
वै दोई नेव जनाह पिछानै। दोउ लेय महर पहि आंनै।
देषि महरु तहां उठा रिसाई। लोरिक कुनबा मारहु जाई।

मंत्री कहहि राय सुनु अैसी करै न कोई।
यकु करंकु तुम्ह चांद लगि दूसर मारत होइ॥

सन्दर्भ—बी० ९२३-९२५।

२४. (२८२ लू)

जाइ भौहरै मैना पैठी। षैलनि आई तहा ही बैठी।
भीतिरि रोवै झौहां दोऊ। जातेहि बाहरि सुनै न कोऊ।
इकु रोवैहि अरु डरिहैहि षरी। लोरिक लागि अवस्था परी।
महरु कहै कोऊ जनु धावोहु। लोरिक चापि पकारि लै आवोहु।
महरु कि मंत्रिह तो समुझावा। लोरिक कहहु कौन दिस धावा।

महर लाज उपनी घनी कछु न बोलै बैनि।
तब मंत्री बाहरि कहैहि देषु छमासी रैनि॥

सन्दर्भ—बी० ९२६-९२८।

२५. (२८२ ए)

मंत्री कहहिं निवारहु रोजू। जलमहि जाते लहै न षोजू।
निसि अधियारी भादौं मासा। देषि गगनु रो लेइ उल्हासा।
बहुरि बात यह नगुन लीजा। लेताह अकंरकु कुर कौंहु दीजा।
अैसे हुइय न होय कै काऊ। सुनि करि समझा सहदे राऊ।
जा दिनि जनमी चांदा बारी। मंत्रेहि तिहि दिन बात बिचारीं।

परथसि चिन्ता गरभ की उपनी अंगि अपार।
ईछ करी देवाह तनी पाछै जनमी बार॥

सन्दर्भ—बी० ९२९-९३१।

२६. (२८२ ऐ)

जा दिनि चांद कि परगट भई। चिंता महर तनी नहि गई।
देस देस का नरवै राई। तिन्ह की सुधि गोवर महि आई।
महरि न उतरु काहू दीन्हा। बहुरिह काहू पयाना कीन्हा।
करम सजोग जैत घर ब्याही। बावन बरु पायो तिह ताही।
इक बावनु अरु चषि है कानी। मनमहि डरी चांदा रानी।

कुर करंकु ता दिन दियो सीर न राष्यौं ताहि।
चांद कि बरजी नां रही तब घरि आइ आहि॥

सन्दर्भ—बी० ९३२-९३४।

२७. (२८२ ओ)

लोरिक पूठि ये बिधि आवै। जै आवै तौ षरी लजावै।
बाजुर ताहि रूप मुरझावा। राव रूपचंद जा लगि आवा।
गोवरु सहरु राई तहां जारा। पाईक बहुत महर कर मारा।
अति कऊ घरि चांदा गई। हमरै जानै भल अस भई।
बहुत द्यौस चांदा जौ रहती। कौन जानै कछु चांदा करती।

अब तिस गयाह जु भल भई उपनी अंगेह सिधि।
जानौ औषध बाहरी गइ निरंतर ब्याधि॥

सन्दर्भ—बी० ९३५-९३७।

२८. (२८२ औ)

रासि जनम की महरि सचारी। असि नाह भली बिचारी।
अब यह बात कहे जो कोऊ। मोर सांस नां लहिहै कोऊ।
पर इक पाइक कौंहु बुलाई। बावन सुधि कहौ अब जाई।

यकु लोरिकु अरि यनु यहु मोरा।
मो तेहि अधिकु कि बावन तोरा।

जैसै बावनु आडा आवै। ता पहि लोरु जान नहि पावै।

इकु जनु भेज्यौं महरि तहा बावनु कहियो जाई।
सुनि करि बावनु रौसु करि चरा तुरंगम धाई॥

सन्दर्भ—बी० ९३८-९४०।

२९. (२८२ अं)

बाहुरि महरि बात न चलाई। यहै सुधि लोरिक सभ पाई।
गइ सु चांदा सबही जानी। गोवर माहि किने न बषानी।
कुरि करंकु काहू कैं आवै। ताते उत्तिमु आधिकु लजावै।
वोछा पुरुषु ने जानै ग्यानू। तैसौ मानु तैसौ अपमानू।
कुरि करंकु नरवै कै लागै। प्रगटै सुधि सुरायाहू आगै।

लाज उपनी महर कैं कछु सुषु अंगि न होई।
चांद करंकी बाताह गोवरि कहै न कोई॥

सन्दर्भ—बी० ९४१-९४३।

३०. (२८६ अ)

परि गई चांदा हेठि न काऊ। कछु न सभारै हाथ न पाऊ।
लोरहि दुहु चषि नीद न आवै। जागै झूरै बहुरि संतावै।
हिरदै षोलनि मैनां नारी। झूरि झुरि लोरिक मनहिं बिसारी।
उठि उठि लोर भौ धोरू। रैनि छमासी होय न भोरू।
देषी चांदा सूत न जागै। दुहु चषि लोरिक नीद न लागै।

रवनि ठवनि गजगामिनि मैना दइ सवार।
मै कस जानौ अबही केरि करै इहि बार॥

सन्दर्भ—बी० ९५६-९५८।

इस तथा बाद के तीन कडवकों में चांदा नाव पर अकेली चढ़ कर चल देती है, और जब नाविक उससे अनुचित प्रेम का प्रस्ताव करता है, गहनों के किनारे पर ही छूट जाने का बहाना करके वह नाव को वापस कराती है और तब उसके साथ लोरिक भी नाव पर सवार होता है। इन कडवकों में इस शंका का समाधान नहीं है कि जिस लोरिक के लिए उसने विवाहित पति और पिता का घर छोड़ा, उसको सोता छोड़ कर चांदा ने नदी पार करने की चेष्टा क्यों की। प्रसंग के स्वीकृत कडवकों से इनका विरोध स्पष्ट है (दे० २८८ अ-आ की टिप्पणी)। २८६ अ. ६ लगभग वही है जो आगे ३७४.६ है। फिर म० यहां पर अत्रुटित हैं और, उसमें ये नहीं है। अतः ये अवश्य ही प्रक्षिप्त हैं।

३१. (२८६ आ)

रैनि बिलाप करत मुरझाना। उठी चांद जहा उगयो भाना।
चांदहि षेवट देषि हकारा। देषत परि गा हुइ बिसभारा।

षिन इक मूरछि बहुरि नि जागा। चाहत अधिक रंग मनु लागा।
सुरंग देषि षरी जहां नारी। फुनि षेवट यह बात उभारी।
कहौ कौन तू अस कै आई। सषी सहेली को न सहाई।

फुनि चांदा अस बोली षेवट पारि पठाऊ।
मोत्यों हारु मै देहों तू बड बार न लाऊ॥

सन्दर्भ—बी० ९५९-९६१।

३२. (२८६ इ)

लोरु न जान चांद चरि नावा। षेवट षेव चला जस धावा।
अरघ लागि फुनि [नि] रषिसि आहैं। चांद रवन अस षेवटु चाहैं।
चांदहि पूछ तोर कस भाऊ। कहहु मोहि कस करहु पसाऊ।
मोरैं आहि जु भल घरि नारी। कहहु तौ करिहौं दासि तुहारी।
कर गहि बाह चांद गै मेलैं। झरकि छुडाइ चांद तह ठेलैं।

जिहि रुति दाष सुपकणी बाईस तिहि मुष रोगु।
दई लेष सब पाइ है का मनि बौरे हस लोगु॥

सन्दर्भ—बी० ९६२-९६४।

३३. (२८६ ई)

चांद कहा मोहि औटे लेहू। हम सुरंग होय जस नेहू।
अरथ मो सभ पारै राहा। मैं बहरी हा औ काहा।
चलहु अरथु लै आवह जाई। फुनि मनसा तुम्ह है सु कराइं।
हरषा षेवटु नाव बहोरी। अस तिरिया मोहि बिधि लै जोरी।
षिन इक काजि करौ न कुभाऊ। ऐ गौहनि कै दुसस(र) न आऊ।

षेइ नाव ले आवा अब घन करिहौ काह।
रंग करं धन छाडै रंगु सैसार अथाह॥

सन्दर्भ—९६५-९६७।

३४-३५ (२८८ अ-आ)

चांदा नारि उतावरि चली। खेवट कहा बात हइ भली।
गई चांद जहं लोरिक रहा। खेवट सरंगा बइसि एक अहा।

गुन बांधे वह खेवट सरंगा घेरत आइ।
लइ कइ पार उतारउं सो धनि जउ लहि लोक तहं आइ॥
मांझ गांग हुत खेवट कहा। कवन नारि घर कंहवां अहा।
रइनि कहां तुम्हं कीन्ह बसेरा। नदीं न देखेउं गांउ न खेरा।
घर हुंत बिहिया चलिउं रिसाई। घरि एक राति गांग हउं आई।
तूं मेहरी कइ जाति अकेली। साथ न कोऊ सखी सहेली।
काहे न कोउ मनावन आवा। जेहिं घर आहि सो आव न पावा।
सासु ननंदि मोरि माखिउं दीख न कूंवह पनार।
मोर साईं बिरुद्धा तेहि छाडीउं घर बार॥
चांदहिं खेवट सों अस कहा। अभरन मोर वंहि पारहिं रहा।
खेवट सरंगा खांचि लइ आवा। बोलतहिं लोरिक मांथ उचावा।
दीन्हि तिराई खेवट कही। दुइ जन चले न तीसर अहा।

सन्दर्भ—मै० २३७।१.३ तथा २३९.४ के बीच।

शीर्षक—पहले दोहे के बाद है: सवार शुदन लोरिक चांदा बर कश्ती; तथा दूसरे दोहे के बाद है: गुज़ार शुदने लोरक व चांदा अज़ आबे गांग।

स्वीकृत २८८ म० पत्र १५३।१ पर पूर्ण कडवक के रूप में दिया हुआ है, अत: यह प्रकट है कि म० पाठ में ये पंक्तियां कभी न रही होंगी और कदाचित् उसके किसी पूर्वज में भी न रही होंगी।

इन पंक्तियों के सन्दर्भ में भी प्रश्न यह उठता है कि लोरिक को इस पार ही छोड़ कर चांदा को अकेले नदी पार करने की उतावली कौन-सी थी? स्वीकृत कडवकों में कहा गया है कि [उस औघट घाट पर] कोई नाविक न देख कर लोरिक ने एक छलना का आश्रय लिया, [वह छिप गया] और चांदा बार-बार अपने को इस अभिप्राय से दिखाने लगी कि [उसे अकेली जान कर] कोई नाविक कदाचित् आ जाता, और जब एक नाविक उसे सरंगा के निकट दिखाई पड़ा, उसने अपना कंगन चमकाया। जब चांदा को अकेली देख कर एक केवट सरंगा लेकर आया, तब लोरिक भी प्रकट हो गया और लोरिक तथा चांदा—दोनों उसके सरंगे पर चढ़ गए; केवट इस पार ही रह गया और लोरिक करिया लेकर सरंगा खेने लगा। दोनों ने दैव-संयोग से नदी पार की और वे डूबते-डूबते बचे। यदि घटना किसी और प्रकार से घटित हुई होती,

जैसी कि ऊपर की अतिरिक्त पंक्तियों में वह घटित होती बताई गई है, तो स्वीकृत कडवकों में भी वह उसी प्रकार से वर्णित होती। स्वीकृत कडवकों और इन दो कडवकों की पंक्तियों में इस प्रकार स्पष्ट विरोध है। फलत: ये अतिरिक्त पंक्तियां निस्संदेह प्रक्षिप्त हैं।

३६. (२९६ अ)

'धीमर' जाइ 'राइ' गुहरावा। कौतिगु एकु 'जो रे' दिखरावा।
तितिया एक 'जो दइय' उपाई। सरग 'हुते जनु' आछरि आई।
'अइसी तिरिया कतहुं न देखेउं'। चांद 'तराइनि' एक न 'लेखेउं'।
'पुरुख एकु आहइ ओहि' पासा। देखत 'दुहुं कहं मारि गइ' सांसा।
'अउर' पिटार 'सब सोनइ' भरा। 'अदस न जानउं केहि कहं' धरा।
चलहि राउ ओहि 'मारि कइ' 'तउ लइ आइय जाइ'।
'घरहिं मांझ होइ उजियारा' 'अस तिरिया जउ आइ'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १५७।२; बी० १०३१-१०३३।

शीर्षक—दस्तान रवाने शुदन बावन तरफ़ खान: खुद।

मै० यहां पर अत्रुटित है, जो उसके चित्रों से प्रकट है, धीमर के कहने पर राजा ने क्या किया यह भी कडवक में नहीं कहा गया है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

पाठान्तर—(१) १. बी० धीवरि। २. बी० राउ। ३. बी० दई। (२) १. बी० जु दई। २. बी० हतें जानौ। (३) १. बी० ऐसी तिरी न काहू देष्यौं। २. बी० तरायनि। ३. बी० लेष्यौं। (४) १. बी० पुरुषु येकु जौ है वहि। २. बी० रहै लेहि मर। (५) १. बी० और। २. बी० सुवन सब। ३. बी० अैस न जानौ कहां है। (६) १. बी० मारहु। २. बी० चांद लिआवहु जाई। (७) १. बी० घरिह माहि उजियारा। २. बी० अैसी तिरी जौ आई।

३७. (३०७ अ)

राजइं आगे लोर हंकारा। अंकउं लाइ पाट बैसारा।
बूझइ बात लोर मोंहि कहऊ। मांस चारि तुम्हं इहवां रहऊ।
फुनि मइं पठउब पाटन लोरा। बार न बंका होइ जेंहि तोरा।
चांदहि आनि मंदिर बइसावहु। तुम्हं संजोइ पटसार उतारहु।
घोर आनि बांधहु घोरसारा। सार करउं जानउं परिवारा।

सुनि लोरिक असि बिनई राजा हम न रहाहिं ।
गोवर छाड़ि हम आए इहवां अब हरदीं दिसि जाहिं ॥

सन्दर्भ—मै० पत्र २५८ । इसके स्थान पर एक अन्य कडवक शेष तीन प्रतियों में मिलता है और इसके पूर्व और बाद के कडवकों में, जो मै० में भी हैं, हरदीं जाने का जो कथन है, इस कडवक के दोहे में उसकी पुनरुक्ति है, इसलिए यह कडवक प्रक्षिप्त लगता है ।

३८. (३११ अ)

सबहिं बहेलियां केरी(रि) खुटानी । नियरी मींचु दई विहि आनी ।
पइसि बीर कोपिया सब जीवां । ओही धनुक [?] बरु गीवां ।
जो संभारइ सो तस मारा । को रोवइ को करइ पुकारा ।
एक मुह मोइ उठे सौ मुहाई । बहु मारे बहु गए पराई ।
जातहिं मरहिं जान नहीं पारइं । आगें भाजइं पाछें निहारइं ।
ढे(डे)ढउ सहंस बहेलिया तिन्हकों मीचु घटानि ।
कउआ चीलिह सो फाग भा जंबुक गीध अघान ॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३१ (नवीन) ।

इस कडवक के अन्त में प्रति में कडवक ३११ आ का तर्क है ।

शीर्षक—जंग कर्द लोरिक बा अहेरियान व योज़बानान व बअज़े गुश्तन्द व बअज़े गुरेख़्तन्द ।

यह तथा इस प्रसंग के कोई अन्य कडवक न मै० में हैं और न बी० में, जो इस अंश में अत्रुटित हैं । इसलिए इस प्रसंग के कडवक प्रक्षिप्त हैं ।

३९. (३११ आ)

रगत रोहिनी आवइ गंधाई । चला लोर छोडिहिं सो ठाईं ।
बहुरि बीर ओडन कर लीन्हां । पुरुब दिसा तब पायंत कीन्हां ।
कर कइ गहे ते सोहर सूते । चउरासी लख निंद्रा भूते ।
रुंड मुंड महिं मेदिनि बा(पा)रा । बहु रोवहिं बहु करहिं पुकारा ।
संवरत नदी जो भई पंवारा । डाकिनि जोगिनि उतरि न पारा ।
चलो(लेउ) सो बनखंड लोरिक बसेउ बीर बनजाइ ।
पाकरि रुंख देखि करि तेहिं तर रहइ लुभाइ ॥

सन्दर्भ—भो० पत्र ३२ (नवीन) ।

भो० में इस कडवक के अन्त में एक तर्क है जो बाद के कडवक का होगा ।

शीर्षक—जाए जंग गुज़ाश्तः खाने शुद चांदा व लोरिक तरफ़ हरदीं ।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की सन्दर्भ-टिप्पणी ।

४०. (३२८ अ)

गारुरि संमदि चांद 'लइ' चला । 'ओहि तेइं बात कहेसि' अति भला ।
बाईं 'दिसि' तूं लोर न जाइसि । 'दहिनीं' बाट बहुत 'फर पाइसि' ।
पिरम भुलान 'वह बोलु न मानइ' । बाट 'चलत सो हारि न जानइ' ।
'डांडी कइ लोरिक' चांद 'चलाई' । 'दहिनीं दिसि ओइं दिस्टि न लाई' ।
सूरु आपन 'डंड छाडहि' कहां । जहां 'बरजहिं ठाढ हइ' तहां ।
'बार अंठउं तेइं' जाइ तुलानां लोरिक सारंगपूर ।
दिन कर मूंडु उचावा राता 'जइस' सिंदूर ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७३, बी० ११२२-११२४ ।

मै० इस स्थान पर अत्रुटित है और उसमें एक भी कडवक सारंगपुर तथा वहां के द्यूत-युद्ध से संबंधित नहीं है, पुनः इसमें लोरिक बावन को मारने की बात कहता है (३२८ औ. ४), किन्तु कथा में बावन इससे हार कर गोवर लौट गया है (२९७.१), इसलिए तेईस कडवकों का यह प्रसंग प्रक्षिप्त लगता है ।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'हियां सिरान' जो ऊपर आए हुए कडवक ३२८ का है, जिससे ज्ञात होता है कि म० का आदर्श या उसका कोई पूर्वज यहां किंचित् अस्त-व्यस्त हो गया था ।

शीर्षक—म० विदाअ् करदन लोरिक हकीम रा ।

पाठान्तर—(१) बी० लै । २. बी० दाहिनि बाट कहसि (तुल० दूसरी अर्द्धाली) । (२) १. बी० दिस । २. बी० दाहिनि । ३. बी० फिरि (फर—फ़ा०) आइसि । (३) १. बी० बोलु नहि मानैं । २. बी० चला बोहु हरि न मानैं (तुल० प्रथम चरण का तुक) । (४) १. बी० डंडी कैं लोरिकि । २. बी० चलावा । ३. बी० दाहिनि दिस वाह द्रिष्टि लगावा । (५) १. बी० बरु छाडै । २. बी० बजिये ठाढा ही (हइ—फ़ा०) । (६) १. बी० सुर अंथवत डडु । (७) १. बी० जैस ।

४१. (३२८ आ)

सागर पुर जौ लोरिकु आवा । सायर तीर महापति पावा ।
पूछ महापति कत हूतें आवसि । खेलु जुवा धन बहुत कमावसि ।

उहु जु आहि जुवा कौ रूखा। देषत हिये होइ अति सूषा।
लोरु सुनाई तौ परु पैसारे। सारि आनि कैं पासा ढारै।
बैसि जाइ तहां कूंकूं लोरा। देषौ यहै जुवा फरु मोरा।
बोर तरै जावै सा छलु करि ढाकी सारि।
सारि हाथ लै महापति आवा पहिल बार उनि पारि॥

सन्दर्भ—बी० ११२५-११२७।

४२. (३२८ इ)

सारि हाथ लै महापति आवा। पासा [लो?]रि जु देषें धावा।
कहसि महापति मै भी षेलबि। हाथ लेइ तौ पासा मेलबि।
विंदू चौकु दुई तैसा जानौ। दस जोरत हुत लेषैं आंनौ।
पाच तीन औ साता ढारौ। सात दूवा चौकु संभारौ।
ये दावै तौ माझ बुलाऊ। बीती बार छकर चलाऊ।
बाराह दूवा पासैं षेलहि हम परदेसी बार।
सुरिजु चांदु सरगि स्यों यब कैं बीती पार॥

सन्दर्भ—बी० ११२८-११३०।

४३. (३२८ ई)

दूसर बार जु लोरिकु हारसि। अभरन उपरि हाथु उभारसि।
ऐकु दाउ पै षेलि बिनानीं। सूर उतपि तब चौहां आनीं।
नव दस सेतो येक न ढारै। तौ याहि तिरिया जूवा हारैं।
परै न दाऊ चांद बुझावा। बूझा लोरु पाट उलटावा।
देषि महापति कोहु उचावा। चांदा मनहि हुवा पछितावा।
थाप येक उठि लोरिक मारसि महपति परा लुटाई।
बडी बार कैं समुझा सव बुधि गई घटाय॥

सन्दर्भ—बी० ११३१-११३३।

४४. (३२८ उ)

जाइ महीपति लोगु चलावा। भाई महापति असपति आवा।
आगैं लोरिक पीछैं धना। जाई परे झाऊ के बना।
दाहिनी दिस ते पनिच बजावा। पाछैं धरि कें आगैं आवा।

बहुते लोग बहुत असवारा। षांड पाइका होय चमकारा।
कहै लोरु तुम्ह जाहु पराई। हम आगै तोरी रहै न बडाई।
छाडि जाहु तुम्ह तिरिया मत जहु मूंड कटाई।
येक बार लरु हमं सौ सभ को जाहु पराई॥

सन्दर्भ—बी० ११३४-११३६।

४५. (३२८ ऊ)

लोरिक आई षरगु चमकावा। असपति आ·····आवा।
फरी कटि लोरिकि अस मारा। मूड काटि कैं माझ अडारा।
दूसर रावत आगै सरा। माथ घाउ दै लोरिक धरा।
पाऊ फिराई लोरु तस मारसि। मूडु काटि कैं बांह बिदारसि।
यको बीरु न उहि पहि जाई। बेलुक षरग माथ पै खाई।
राउ कहै तस करिये जौ यह तिरी रहाइ।
राषसु येकु महापति ल्याइस लोरहि सूझ न जाइ॥

सन्दर्भ—बी० ११३७-११३९।

४६. (३२८ ऋ)

चांद देषि तौ सुरिजु न देषौ। सुरज का बांनु चांद भरि छेकैं।
लोरिक कहा चांद सुनु आई। राषसु लागा सुझ न जाई।
मंतरि चांद कैं राषसु भागा। लोरिकु बहुर सूत जस जागा।
देषि लोरिक राषस कैं सांधा। माझ काटि कीतसि दोई आधा।
धुनषु साधि चांदा तस तानसि। बहुते रावत ठाढे आनसि।
लवटा लोरु नगर महि आवा बैर(रि)हि भयो तरास।
मारि नगरु मैं सभ उठि जारौ महपति कत तूं जासि॥

सन्दर्भ—बी० १०४०-१०४२।

४७. (३२८ ऋ)

लवटा लोरु नगर महि आवा। बैठा पौरि महापति पावा।
झूट पकरि कैं उहिकौ लीतसि। मूड काटि कै दुहु दिस कीतसि।
राय वस्तु दंडु देई पठावा। लोरिक लीन्ह पाट पहिरावा।
जिय भुंजि के उठि चला। कोई सुगनु हुवा तिह भला।
पैसत हरदी बेस्यां आई। चांदा जोरि सुरिजु ले आई।

माथ नाइ कैं सेवा कीतसि चांदा रही लजाई।
निश्चल नगर सुहावै की तिथि हरदी पाटण रहिया छाई॥

सन्दर्भ—बी० ११४३-११४५।

४८. (३२८ लृ)

चांद सुरिजु महुवरि आवा। पाटण माझ उतारा पावा।
टका सहंस चारि उनि दीता। पाटन भीतरि राना कीता।
षांड घुरहरी काढि जिवावा। कापरु आनि लोर पहिरावा।
येक आन मोरि दूसर तोरी। तोरी बहुल मोरि फुनि थोरी।
... ...।

दिवसु लोरु महुवरि पै आछै साझ परी घर जाई।
आधी राति चांद स्यों सुरिजु केरि कराई॥

सन्दर्भ—बी० ११४६-११४८। एक अर्द्धाली बी० में नहीं है।

म० प्रति महुवरि-ओलगानी के इस प्रसंग के पूर्व ही खंडित हो गई है, किन्तु यह प्रसंग उसमें भी रहा होगा, यह निम्नलिखित पंक्ति से प्रकट है जो म० में तोंता योगी द्वारा किए गए चांदा के अपहरण प्रसंग में है—

हम फुनि हरदीं पाटन जानी। राजा महोर कीनि ओलगानी।
(३२८ अ ट. ५)

४९. (३२८ लृ)

चांद राति जौ कीन्ह सजाई। राज कहा यह कत हूंतें आई।
महतें कहा सुरिजु लै आवा। चांद का भाउ सरगि कत पावा।
उहि की जोति भया उजियारा। परि गा राजा जिउ न संभारा।
औरि गरह सब मारि अडारै। जूझु सुरिज स्यौं कोई न पारै।
राव कहा महता कस कीजै। दरबु सूर दै चांदा लीजै।
महतें कहा सुनौ धौ राजा बोल्यौ मनहि विचारि।
चांद नारि तौ पाइये सुरिजु हरेवैहि मारि॥

सन्दर्भ—बी० ११४९-११५१।

५०. (३२८ ए)

राजा 'महता' इकु मंतु कीन्हा। लोरु बुलाइ पान 'लइ' दीन्हां।
लोरिक काजु 'अम्हारा कीजइ'। पतिया मोरि हरेवहि 'दीजइ'।

पतिया 'बात आगें' अरथायसि। 'पतिया भाइ अरथ जसु पायसि'।
घोरा कापरु लोरहि दीन्हां। 'इहवहिं संमदत आंकौ लीन्हा'।
'तउहि त' लोरु 'साहि' घरि आवा। 'चांद भेंट लइ' केतनि धावा।
'बस करि सो कैकान' अडावा रात जु राजा दीन्ह।
घोरइं चढि 'तब' लोरिकु लीन्हां चांद जु सांबर कीन्ह॥

सन्दर्भ—शि०, बी० ११५२-११५४।

शीर्षक—शि० : अज़ मशविरत वज़ीर करद बर्ग दाद राव महोर लोरिक रा व फ़रस्तादन नाम खुद बिरादर।

कडवक के अंत के चार शब्द शि० में अपाठ्य हैं।

पाठान्तर—(१) १. बी० महतें। २. बी० लै। (२) १. बी० हमार कीजै। २. बी० दीजै। (३) १. बी० पानि अैस। २. शि० पढतहि पतिया लोरहि लायसु (?)। (४) १. बी० लोरिकि हरषित वैहि सो लीन्हा। (५) १. बी० तैहि। २. बी० साह। ३. बी० ठाढ आगैं होइ। (६) १. बी० घन कैं सांबर आनि। (७) १. बी० कैं।

५१. (३२८ ऐ)

लोर हरेव कटक नेरावा। राउ अहेरे षेलन आवा।
हाथी सहस चारि लै आवा। उट घोर मोहि गनत न पावा।
रावत पाइक धानुक आये। और पषरिया लाष चराये।
बेलिक षांड जैस उजियारा। तारा सरगि गनि को पारा।
स्यंगनि घंटा और पयाना(?)। टंडौ हररौ करत पयाना।
षेलति षेलति आवति राजा देषि बीर असबार।
पूछौ योहु को पायकु भेवा कत हूतें आइ मुरारि॥

सन्दर्भ—बी० ११५५-११५७।

५२. (३२८ ओ)

पाइक आगैं आइ मिलाना। कत तूं षतरी आइ तुलाना।
राजा महुवरि हौं जु पठावा। देषौ राव अहेरैं आवा।
जिह कौ मुहवरि सरगि चलावै। पाती दे करि इहा पठावै।
कहसि लोरु तुम्ह आपु उबारौहु। पतिया देषहु बहुरि सभारौहु।
पाई [क?] साथेहि लोरिक आवा। देकर पतियां पाउ उठावा।

पाढि कै पतियां अलगै बोलसि लोरहि लेहु मझाई ।
तैसै ले धरि आवौहु जैसे निसरि न जाई ॥

सन्दर्भ—बी० ११५८-११६० ।

५३. (३२८ औ)

लोरिक कौ सब लोगु बुलावै । सुमती लोरु नेर नहि आवै ।
ढुक राहेहि कैं भजि जु जाई । बहुरि न जीवत बैसे आई ।
हौ सु आहि जिह बाठा मार्‌यौ । अैरु गगेउ रूपचंदु हार्‌यौ ।
बावनु म(मा)रि बीर हौं आयो । चांद महर धी तिरिया पायों ।
हाथ खाड लै लोरु उठावा । जूझें रावत बेगि बुलावा ।
बहुते राव देषि मोहि भागैहि तू स राड को आहि ।
मूड काटि कैं पैरि बधाऊं ना तरु जिउ ले करि जाहि ॥

सन्दर्भ—बी० ११६१-११६३ ।

५४. (३२८ अं)

सुनि कै राजा कोपु उचावा । आपन कोड मरन तूं आवा ।
तुहि कै मीचु दई दिषरावा । तौ तू मो सौं जूझे आवा ।
कौन अ(आ)हि जो करै ढिठाई । कहौ हकारि जींउ लै जाई ।
सुन न बोलु उभो पै आहै । रावत मन जूझे पै चाहै ।
सगरे कटकहि सरगि चलाऊ । नातरु ईहां मूडु कटाऊ ।
बहुते रावत बहुत इक घोरा लोरिक ते षन आव ।
फरिया लीन्ही पाव न छाडौ रोपि रहौ दोइ पाव ॥

सन्दर्भ—बी० ११६४-११६६ ।

५५. (३२८ अः)

तीसर साहन घोर चलावा । तरप षांड लौरिक सिरि आवा ।
स्याउ (?) वोडन दुहु दिस कीतसि । चरू भरवि वहि लोहू पीतसि ।
येक हाथ कैं पकरि अडारै । दूसर हाथ मेलि तस मारै ।
देषि हरेव फासु करि लावा । चिरियेहि जैसै लोरु बिधावा ।
काटा फासु हरेव कर धरा । उभरा लोरु हरेउ षसि परा ।

मूड काटि कैं पैरि बधायसि तब उठि चलिया बीर ।
गाइ दरबु सभु लै आवा चांदनु लाइ सरीर ॥

सन्दर्भ—बी० ११६७-११६९ ।

५६. (३२८ क)

लोरिक बूरी पाटन आवा । जेठा पूतु हरेव का पावा ।
नाउ बलालु औरु पुनवंता । ठाकुरु भला औरु गुनवंता ।
जिय का दानु बलालहि दीतसि । अरथु दरबु सबु उहिका लीतसि ।
बैरी उहिका मारि अडारसि । ठाव हरेव क टीका सारसि ।
आपनु नायेहि नगरु बसावा । अवरै बस्तु लेइ धरि आवा ।
हरदी आइ तुलांना लोरिक महुवरु देषि डराई ।
गाइ दरबु हरेव कारे माधी गढ महि दीन्ह पठाई ॥

सन्दर्भ—बी० ११७०-११७२ ।

५७. (३२८ ख)

सुनि कैं महुवरि कोटु लवावा । जानसि लोरिक मारन आवा ।
गढ महि गभिनी गामु सरावैहि । फाट धरति तौ आपु लुकावैहि ।
अैसौ दुरोहु राव दुषु कीता । हरदी पाटन वा दुषु दीता ।
जौ व पुरुषु तू आहि सयाना । पर की तिरिया देषि लुभांना ।
जैसौ दुरायह राय न कीजै । अगि चराइ भेदु नहि दीजै ।
राजहि अैस न छाजई परतिय देषि लुभाई ।
लोभी पापु सकौरै लोभहि पापु न जाई ॥

सन्दर्भ—बी० ११७३-११७५ ।

५८. (३२८ ग)

महुवरि सुरिजु आनि गै लावा । देइ दरबु बहु घरहु चलावा ।
लवटा सुरिजु चांद पहि आवा । सुरिजु देषि चांद जिउ पावा ।
आपुनु दुख सबु चांद सुनावा । महुवरु राउ गरहु भरि आवा ।
ज्यों ज्यों आपनु मोहि न दीन्हा । त्यों त्यों राव चाहि जिउ लीन्हा ।
अस दुषु लोरिक तुम्ह बिनु भया । अैस कालु सो दूभरु भया ।

आजु राति जै सुरिजु न आवति कालि राहु मोहि लीत ।
हौं तौ उहि कौ बोलु न मानति जै करौत सिर दीत ॥

सन्दर्भ—बी० ११७६-११७८ ।

५९. (३२८ घ)

सूरी(रि)जु चांदा आगै चला । नगर माहि देषि घरु भला ।
तहु वहा लोरि धौरहरु कीता । काढि जीउ तौ चांदहि दीता ।
चांदहि राति सुरिजु जौ आवा । अगरु धसाइ चंदनु तनि लावा ।
चांद सुरिज सब नषत बसारा । षेलहि दूवै फूल कि मारा ।
बाह बाह गै राति बिहावहि । नैन नैन देषि द्योंस गवावैहि ।
षाड धीउ जस मिरिया आछैहि कोई कतहूं न जाइ ।
पिरम मात जस भूले अैसैं रहैं लुभाइ ॥

सन्दर्भ—बी० ११७९-११८१ ।

६०. (३२८ ङ)

सावनि चांद सुरिज सौ माती (?) । रवै रैनि दिनु पिरम की माती ।
सायर देषि नित नित जाहीं । हंसा जोरी केरि कराहीं ।
निसि अंधियारी बरसै पानी । चांद सुरिज लै सुरगि लुकानी ।
पिरम पियाला रस भरि लेहीं । सेज चरे धर पाउ न देहीं ।
.....
चारि मास इक चित भई षेलहि रहस दोउ षेल ।
येक सेज इक बैठहिं दुहु महि होय चित मेल ॥

सन्दर्भ—बी० ११८२-११८४ । कडवक की एक अर्द्धाली नहीं है ।

६१. (३२८ च)

माह मास निसि सौरि बिछावहिं । पिरम रसायनि धरे भरावहिं ।
बिरहु पकरि कै आनि मिरावा । धिरत षांड सौ भूजि पकावा ।
सेज चरे नित रली कराहीं । यहै रसायनु चुवत पिवाही ।
सुरिजु चांद लै भीरि गै सोवै । दोइ जन देषत येको होवै ।
चांदा सुरज सुरज जस भई । सुरुज चांद चांद होइ गई ।

सुरिजु चांद को भाषै चांद बोल उठि देई ।
पान चांद कौहु दीयहि सूरिजु उठि कै लेई ॥

सन्दर्भ—बी० ११८५-११८७ ।

६२. (३२८ छ)

जेठ मास भरि फूल बिछावै । कुस चंपा लै सीस गुथावै ।
सेंदुर चंदनु सीसु भरावै । अवरु मनोहरु थनहरि लावै ।
बिहसिचि चांदा पहरै आंगी । अन दोइ भाति सुरंग सुरंगी ।
सहमा नैन करति अति हाला । दही षषारति लंबे बाला ।
जै लै चांद सुरिज पर जाई । सुरिजु चांद सौ रली कराई ।
जे(ये)कु बरसु भा चांद सुरिज सौ सोइ कतहु न जाइ ।
सुरिजनु आइ उतरा गोवर तो मैनां सुधि पाय ॥

सन्दर्भ—बी० ११८८-११९० ।

६३. (३२८ अ क)

उठि गइ चांदइं नींदि भलि आई । जस सपने हउ नागहिं खाई ।
कहिसि बिचारि पंथ सिर जाहीं । सपन कि सउथुक बूझिय नाहीं ।
सुठि चारि मइं सौतुक दीसी । काल्हि रेनि जउ बन महं पईसी ।
करम हमार सिद्ध एक आवा । जेहिं हुत हम तुम्हं फेरि मेरावा ।
पाउ सिद्ध कर छांडेउं नाहीं । जब लगि जीवहिं सेव कराहीं ।
देइ असीस सिद्ध असबोला तूं मोर भाइ ।
बाट मांझ एक तोंता जोगी मत चांदहि लइ जाइ ।

सन्दर्भ—म० पत्र १७३ ।

यहां पर मै० तथा बी० अत्रुटित हैं और उनमें यह तथा प्रसंग के परवर्ती ११ कडवक नहीं मिलते हैं । बी० में इस सर्पदंश तथा चांदा-अपहरण प्रसंगों के स्थान पर महापति और असपति से द्यूत-युद्ध का प्रसंग है । लगता है कि ३२८ अ के बाद म० के किसी पूर्वज के खंडित हो जाने पर इन प्रसंगों की कल्पना कर ली गई, जो कथा के किसी लोक-गाथा रूप में भी नहीं मिलते हैं ।

शीर्षक—म० : बहोश शुदन चांदा आंजा (?) लोरिक गुफ़्न ।

६४. (३२८ अ ख)

लोरिक जउ तोहि पीरा परही। चांद तोरि जउ तोंता हरही।
दइय संवरि मोहि संवरेसि लोरा। ठांउं ठांउं मइं आउब तोरा।
एतना कहि सिध चला उड़ाई। चांद लोर ओइ रहे लुभाई।
धरि इक ओहि सिर बइठ नवाए। फुनि उठि चलि कइ बाट खुटाए।
दिवस चारि जो चलतहिं भए। नगर एक पइसार तेहि गए।
लोरिक कहा चांद तुम्ह बइसहु हउं सो नघ(ग)र महं जांउं।
कनिक आनि ओलावती परि जेवन कछु रे करांउं॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७४।

म० में इस कडवक के बाद तर्क 'चांद मढ़ी' है, जो अगले कडवक का है।

शीर्षक—म० : चूं लोरिक तुरा रोज़ बद उफ़्तद मारा याद कुन।

६५. (३२८ अ ग)

चांद मढ़ी बइसारि छपाई। लोर नगर महं सउदइं जाई।
तोंतइं छपिउ देखि तउं पावा। छंद लाइ चांदा पहं आवा।
आसन मारि बइठ तहं आई। अब मो पहं कित चांदा जाई।
सींगी पूरि नाद तिसु कीया। कीन (?) बैसंदर बरा तेहि दीया।
सुनतहि चांद बेधि तसि गई। रीझति मरन सनेही भई।

जइस अहेरिया पापरधि मिरिग बेधि लइ जाइ।
तोंता भएउ अहेरिया चांदहि गोहन लाइ लाइ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७४।

शीर्षक—म० : दरमियान बुतखानः हिन्दुआं चांदा रा मानद।

६६. (३२८ अ घ)

सींगी पूरि मंतु सो लावा। चांद मन किछु चेत न आवा।
चांदा गोहन लइ चला भुलाई। गाव गीत अउ किछु न कराई।
तइसिइ संग भइ चांद सभागी। गांव गांव फिर गोहन लागी।
देखि सिद्ध अउ कंथ अधारी। भूली किछु न संभारी बारी।
चांदहि प(बि)सरा सभ संयसारू। बिसरा लोर जींयंन जो अधारू।

सुनें नीद रव रूरे पाछें हेर न बारि।
लोर आइ जउ देखइ मढ़ी चांदा बिनु अंधियारि॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७५।

म० में इस कडवक के बाद तर्क 'सूनि' है, जो अगले का है।

शीर्षक—म० : चीज़ी अफ़सूंन आं जनां ख़्वांद कि चांद दीवान शुद।

६७. (३२८ अ ङ)

सूनि मढ़ी देखि लोरिक रोवा। काहे कहं बिधि कीन्ह बिछोवा।
अब हउं जउ रे सरग चढि धावउं। तउ नहिं खोज चांद कर पावउं।
लोर चहूं दिसि भइं भइं आवा। खोज चांद कर राति न पावा।
रैनि गई पै चांद न पाई। उठा सुरुज चलि खोज कराई।
आजु राति जउ चांद न पाई। सारस परि रे मरउं उडाई।
ठांव ठांव जउ लोरिक बूझइ धनियां एक सुधि पाई।
अथएं सुरुज चांद जसि तिरिया तोंता दिख लइ जाई॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७५।

शीर्षक—म० : चूं लोरिक आमद चे बीनद कि चांदः दर बुतखानः नेस्त।

६८. (३२८ अ च)

लोरिक जउ तोंता सुनि पावा। खोजतहिं खोजि जाइ नियरावा।
नगर एक पइसत सुधि पाई। तोंता संग तिरिया एक आई।
बीर नगर तउ चाहन लागा। फीक (?) होत तोंता कर रागा।
सुनतहि नाद लोर गा आई। देखि चांद मन रही लजाई।
दौरि लाँर तोंता कर गहा। अरे भिखारी तोहि मारउं काहा।
धरें जटा लइ चला राव पहं तोहि फिरावउं सूरि।
झूठिहि जटा लागि बिहरानीं ओहट भा चलि दूरि॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७६।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'आंखि काढ़ि' जो अगले का है।

शीर्षक—म० : चूं शुनीद लोरिक कि दस्त पा बुरीदः बरदरस्त।

६९. (३२८ अ छ)

आंखि काढ़ि कइ तोंता धावा। लोर कहा हउं एइं पइ खावा।
लोरिक भागि चला जो डराई। मंत तोंता मोहि फ(भ)सम कराई।

तोंतइं खा(घा)लि लोर मोंकरावा । सिद्ध बचन हुत मन महं आवा ।
सिद्ध आइ लोरिक पंथ ठाढा । लोरहि तोंतहि बोल जउ बाढा ।
दूनउं कहहिं मोरि जोई । दोउन्ह मांझ मगावज होई ।
चांदा ठाढी कौतुक देखइ मुंह महं बकति न आव ।
बिकी खेल अउ गीत भुलानीं रावल सीस डोलाव ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७६ ।
शीर्षक—म० : चश्म कुशादह करदन व दीदन तोंता लोरिक रा ।

७०. (३२८ अ ज)

सिद्ध कहइ तुम्हं काहे जूझहु । करहु गियान अब मन महं बूझहु ।
सभा करहु अउ करहु बिचारा । दहुं को जीतइ को रन हारा ।
जूझइ चाहि जउ पूछा भला । बांन्हां जोरे लोरिक चला ।
चांद साथ भइ अउ सिध भवा । भीतर नगर सभा महं गवा ।
नगर अथाई बइठि जउ दीठी । इन्द्र सभा परि सभा बईठी ।
सभा संवारि जउ रावत बइठ उहांई जाइ ।
चारि खंड का न्याव निवारहिं एकउ भर नहिं जाइ ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७७ ।
म० में इस कडवक के बाद तर्क 'आइ' है जो अगले कडवक का है ।
शीर्षक—म० : दरमियान जोगी व लोरिक गुफ़्त शुदन ।

७१. (३२८ अ झ)

आइ चहूं मिलि कीन्ह जुहारू । जूझि मरत हहिं करहु बिचारू ।
बोला सभा कहहुं दुहुं आई । काहि लागि तुम्हं जूझहु भाई ।
एक एक आपनि बात चलावहु । झूठ सांच आपन तुम्हं पावहु ।
उठि लोरिक तउ अइसा कहा । बइठि तोंतइं यहि चेटक अहा ।
सींगी पूरि चांद हरि लीन्हां । सगरिइं रइनि खोज मइं कीन्हां ।
खोजत पाएउं तोंता धरेउं बिहरि गए बार ।
छुवंतहि जटा लागि बिहरानीं जानां सब संसार ॥

सन्दर्भ—म० १७७ ।
शीर्षक—म० : हर चहार कस सलाम रसानीदः अस्त ।

७२. (३२८ अ ञ)

पूछइ सभा कहहि दहुं लोरा । कवन लोग घर कहवां तोरा ।
कहवां अइसि तिरी तंइं पाई । काकरि रही यह कहवां जाई ।
काहे निसरेहु दुइ जन होई । इतर साथ नहि आईहि कोई ।
कवनि पुहुमि हुत लोरिक आएहि । कहवां जाहि कहां वह गाएहि ।
घर हुत काहे निसरे लोरा । लोग कुटुंब किछु कहे न तोरा ।
काहि लागि तुम्हं निसरे सांच कहहु तुम्हं बात ।
हम फुनि देखि नियाव निबारहि पूंछहिं तुम्हरी बात ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७८ ।
म० में इस कडवक के बाद का तर्क स्पष्ट नहीं है ।
शीर्षक—म० : गुफ़्त जोगी ज़न मन अस्त ।

७३. (३२८ अ ट)

तोंता कह मोरि बारि बियाही । परी राड तोरइ को आही ।
सभा कहइ दहुं अब का कीजइ । इन्ह दुहुं कहं कस ऊतर दीजइ ।
दोउ कहहिं यह मोरी जोई । इन्ह दुहुं महं हर साखि न होई ।
वह तोंता यह रावन अहइ । धनि पूछहि दहुं वह का कहइ ।
चांदहि मन किछु चेत न आवा । अइस मंत्र पढि तोतइं लावा ।
लोर कहा यह मोरी तिरिया अनु मोहि गोहन आइ ।
भा भिखारि हइ तोंता जोगी सकति चढ़इ लइ जाइ ॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७८ ।
शीर्षक—म० : गुफ़्तन जोगी कि ई ज़न मन अस्त ।

७४. (३२८ अ ठ)

जाति अहिर हम लोरिक नांऊ । गोवर नगर हमारेउं ठायूं ।
सहदेउ महर कि चांदा धिया । महर बियाह बावन सिउं किया ।
बावन केरि नारि लइ आएउं । चांदा तिरी महर धिय पाएउं ।
हउं जो आहि जेइं बांठा मारा । आसो राव रूपचंद हारा ।
हम फुनि हरदीं पाटन जानी । राजा महुवरि कीनि ओरगानी ।

चांद सनेह जउ निसरेउं छाड़ि कुटुंब घर बार।
तुम्हरे देस यह तोंता जोगी रहा होइ बटपार॥

सन्दर्भ—म० पत्र १७९ (?)।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'सुनतहि' जो इसी प्रसंग के बाद के किसी कडवक का रहा होगा, जो अब प्राप्त नहीं है।

शीर्षक—म० : पुरसीदन ज़ात गुआल इस्म लोरिक ज़न चांदा।

७५. (३३१ अ)

'तब कै (गै) लोरु' 'राइ गोहरावा'। बहुरि गंगेऊ गरहु होइ आवा।
चांद लेउं ताहि सरगि 'चलावउं'। 'सभै' 'तराइन मांझ बइसावउं'।
कहा लोर तुम्हं खांड 'संभारहु'। 'मोहि सिउं गंगेऊ तुम्हं नहिं पारहू'।
एक खांड 'लोरिक' तस लावा। फरी 'काटि' टाटर महिं आवा।
बापु बापु 'कइ' आपु 'उबारेसि'। भाइ माइ 'कइ' 'ओइं जिउ हारेसि'।
'कहेसि' चेर 'तोर होइहउं' 'लेइ डंडु जिउ राषि'।
कहा लोर सुनुं 'गंगेऊ'. 'अइस बोलु केहि' 'आखि'॥

सन्दर्भ—म० पत्र १५८।१; बी० १०५८-१०६०।

मैं० यहां पर अत्रुटित है और यह प्रसंग भी अकस्मात आया हुआ है, इसलिए यह प्रसंग प्रक्षिप्त लगता है।

म० में इस कडवक के बाद तर्क है 'डंडु लै', जो बाद के कडवक का है।

शीर्षक—म० : दास्तान बाज़ मुश्तइद शुदन व आमदन राव गंगेऊ बर लोरिक।

पाठान्तर—(१) १. म० पहिलैं लोरिक। २. बी० राय गुहनावा (गुहरावा—ना०)। (२) १. बी० चलाऊं। २. म० सरग। ३. बी० तराय महि बैसाऊं। (३) १. बी० आपु उबारहु। २. बी० मोसैं गंगेव कहा तुम्ह पारौहु। (४) १. बी० लोरक। २. म० फाटि। (५) १. बी० कै। २. बी० उबारसि। ३. बी० कै। ४. बी० उहु जिउ हारसि। (६) १. बी० कहसि। २. बी० तोरौ होइहौं। ३. म० अकसर कइ मुंह झारिव। (७) १. म० कहेसि सेवक। २. बी० गंगेव। ३. बी० अैस बोलु तू। ४. म० भाखि।

७६. (३३१ आ)

डंडु ले लोरिक कीत पयाना। पाकुरि देषत आइ तुलाना।
षाई पीई करि दून्यो बसे। नागिनि चांद सोवत निसि डसे।

उठा जबहि सूरीजु परगासा। चांद गरै देष्यै नहि सासा।
हाथ चलाइ पाव धरि पाई। लोरिक जानौ प(व)रग की षाई।
कर पलोय लें र तस कीता। तुहि तरि आइ पूर दुषु लीता।
मूंड मारि कै रोवै उभी बाह पसारि।
दई बिधाता चांद जिवावोहु बरि मोहि घालहु मारि॥

सन्दर्भ—बी० १०६१-१०६४।

म० में भी यह कडवक रहा होगा क्योंकि म० पत्र १५८ पर इसका तर्क है। बाद वाला कडवक म० में है ही। किन्तु मैं० यहां पर अत्रुटित है और इस तथा ३३१ ई के सारे विस्तार स्वीकृत कडवक ३१३ तथा ३१७ में आ चुके हैं, जो बी० तथा अन्य प्रतियों में समान रूप से हैं। इसलिए यह तथा बाद के दो कडवक प्रक्षिप्त लगते हैं।

७७. (३३१ इ)

सात दिवस लगि 'सरग' 'डफारा'। 'सूक सनीचर' आनि बइसारा।
राहु केतु '[त?]स' देखत अहा। सूरिज 'मेंह पाउ नहि रहा'।
'बुध' बिरसपति दोउ 'बुलाए'। चांद कि चित करहु 'दुहुं आए'।
'बरु' मोहि लइ 'करि' मारि 'अडावहु'। चांद मोर 'पइ' आजु 'जियावहु'।
'करिकैं' 'बछा' 'के ढाई' 'धरे'। मीन सिंघ 'आगूं होइ खरे'।
सुरिजु 'कि रोवत तिरियइं' 'अउरु' नखत को आहि।
'ओहिकि' झार सरगि सभ 'जरई' 'अउर' धरति 'कस' आहि॥

सन्दर्भ—म० पत्र १६३, बी० १०६५-१०६७।

शीर्षक—म० : दास्तान करदन लोरिक अज़ सूर चांदा।

यह कडवक भी प्रक्षिप्त ज्ञात होता है—दे० पूर्ववर्ती कडवक की टिप्पणी।

पाठान्तर—(१) १. बी० सुरिज। २. बी० डभारा (डफारा—फ़ा०)। ३. बी० सुकरु सनीसरु। (२) १. म० यह। २. बी० सीस पाइ बहबहा। (३) १. म० सुक्र। २. बी० बुलाई। ३. बी० तुम्ह आई। (४) १. बी० बरि। २. बी० कै। ३. बी० अडावौहु। ४. बी० पै। ५. बी० जिवावोहु। (५) १. म० ककुहा। २. बी० अछ। ३. बी० कहौ लै। ४. बी० धरी। ५. बी० कौं आगें बरे। (६) १. बी० रोवैं तौ तिरिया रोवहि। २. बी० और। (७) १. बी० उहि की। २. बी० जरिहहि। ३. बी० और। ४. म० को।

७८. (३३१ ई)

पाकुरि काटि लोर चिय रचा। झाप देइ मैं राषौ बचा।
तिहि षिन येकु गारुरी आवा। कनक जप देकैं चांद जगावा।
सुरिजु पाव गारुर कै परा। चांद अमावस पून्यों करा।
रहसा सुरिजु चांद गैं लाई। सुरिजु चांद लै माथ चराई।
पानी सुरिजु वारि सिर पीता। पून्यो चांद गारुरी कीता।
मरत्यों तें रु जगायो जब हौं करौं बधाई।
तोर पसाइ चांद मैं पाई गहनै गही छुड़ाई॥

सन्दर्भ—बी० १०६८-१०७०।

म० यहां पर अत्रुटित है और उसमें यह कडवक नहीं है, किन्तु इस प्रसंग के अन्य दो कडवक म० में भी हैं, केवल यही नहीं है, इसलिए लगता है कि यह कडवक म० अथवा उसके किसी पूर्वज में प्रतिलिपि करने से रह गया। यह कडवक भी प्रक्षिप्त है—दे० ३३१ आ की सन्दर्भ-टिप्पणी।

शब्द-कोश

इस शब्द-कोश में केवल उन्हीं शब्दों को संकलित करने का यत्न किया गया है जिनके संबंध में भाषा अथवा अर्थ-संबंधी स्पष्टीकरण आवश्यक था, और उन शब्दों के भी प्रयोग के कुछ ही स्थल निर्दिष्ट किए जा सके हैं। आशा है कि इस प्रयास से रचना के प्राचीन भाषा-रूप और अर्थ को समझने में सहायता मिलेगी। संख्याएं क्रमशः कडवकों और उनकी पंक्तियों की हैं।

अउ : अओ : अतस्—यहां से, इसी समय से २३१.१। अउ : वह, ३३४.७। अउंछ् : आउंछ् : आकुंच्—आकुंचन करना, सिमटना १३१.७ (तुल० 'उंछ्')। अउर : अवर : अपर—और, अन्य ५९.६, १४४.७, ३८७.१। अंकवार। अंकवारी : अंकपाली—आलिंगन ७५.५, ७५.६, २६५.७, ३९४.५। अंकुरी : अंक+डी—आंकड़ी, जिसकी सहायता से बरहा अंटकाया जाता था २८०.३। अंगिराय्—अंगडाई लेना ६३.१। अंगीठी : अग्नि+इष्टिका ५१.३। अंछ्—खिचते हुए होना, आधिक्य के साथ होना २८.७। अंथव् : अस्तम्+इ—अस्तमित होना, शान्त होना ३०९.६ (दे० आंथव्)। अंबराई : आम्रराजि १९.१। अंबराउं। अंबरांव : आम्राराम २५९.४। अकरक : कलंक २२३.२, २२८.५। अक्खत : अक्षत—समूचा चावल १६५.५, २४४.५। अखार : अक्खाड : अक्षवाटक—अखाड़ा, मल्ल-भूमि १११.६। अगर : अगुरु ३४१.४। अगियारि : अग्गिआरिआ : अग्निकारिका—अग्नि कर्म २४४.३। अगुर : आकर (?)—आकर पदार्थ, जिससे अन्य पदार्थों की रचना होती है २.७। अगुसारय् : अग्र+सारय्—आगे बढ़ाना, आगे चलाना १२६.१। अघाय् : अग्घव्—तृप्त होना १६१.७, १७२.३। अचंभा : अत्यद्-भुत (?) १७१.१। अचगर—औद्धत्यपूर्ण, अन्यायपूर्ण ३०१.६। अजोर् : योजय्—जोड़ना ७५.३। अठाउ : अस्थान २७४.२। अडागर : अडक्खिय+डा—बिना कुचला हुआ, समूचा २७.४, १४७.३। अतिरेख : अतिरेक—आधिक्य ६६.५। अथाई : आस्थानिका—गोष्ठी २६.१। अधारी—आसन-क्रिया करने के समय हाथों को टेकने की एक लकड़ी १६४.३। अनत : अन्यत्र